RAM TEERTH

1966 G.K.U.

112554

RF 545

रामतीर्थ

तन मन विकासक
सर्वोत्तम मासिक

50 पैसे आगस्त १९६६

मतीर्थ योगाश्रम
बम्बई.१४ (भारत)

RAMTIRTH MONTHL
AUGUST. 1966

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

(बम्बई १४) के

महत्त्वपूर्ण निर्माण तथा प्रकाशन

(घर-घर में उपयोगी)

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

(स्पेशल नं, १)

बाल, मस्तिक तथा शरीर की मालिश के लिये सभी प्रकृतिके लो
के लिये सभी ऋतुओंमें अनुकूल है। सर्वत्र प्राप्य है।

उमेश योगदर्शन

(प्रथम खण्ड)

(लेखकः—योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी)

अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी, मराठी भाषाओंमें मिलता है। यह ६ प्रक
के मलशोधन कर्म, आसन, प्राकृतिक चिकित्सासे रोगनिवारण औ
पानमोपचारका ज्ञान करानेवाला परमोत्तम ग्रन्थ है। ग्लेज आर्ट
र विभिन्न आसनों तथा षट्कर्मों के १०८ चित्र हैं। पृष्ठ-संख्या ४
के अन्तर्गत योगाभ्यासका विस्तृत बोध कराया गया है। मूल्य १५
डाकव्यय २ रु.

योगासन चित्रपटः—योगासन चित्रपट अनेक रंगोसे तैया
किया गया है। यह चित्रपट अनेकों आसनों से परिचित कराता है। इस
आधारपर अपने घरपर ही आसनों का अभ्यास करके सदैव नीरोग त
सशक्त रह सकते हैं।

मूल्यः—डाकव्यय सहित ३ रु.

कृपया भेजनेका पता—श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, पो. दादर, बम्बई १

112554

(प्रकाशन तिथि १-८-६६)

मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और
पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

रामतीर्थ

सम्पादक-
योगीराज
उमेशचन्द्रजी

वर्ष-७ अंक-५
अगस्त १९६६

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
थापक } 442899
पन

-प्राणायाम दादर

112554

लेख	लेखक	पृष्ठ
वैदिक प्रार्थना	संकलित	७
उमेश वाणी		८
केले की गुणवत्ता	सम्पादकीय	९
धर्मोपदेश	स्वामी रामतीर्थ	१७
विश्व विहार	कालू भाई बसिया-	२९
रामचरितमानस	टी० योगीराज उमेशचन्द्रजी	३४
लोकमान्य तिलक	हरिश्चन्द्र सिंह	५४
सफलता की सीढ़ी	आचार्य मित्रसेन	६१
भारत में संगीत की प्रगति	हरिमोहन लाल श्रीवास्तव	६८
जीव जन्तुओं का विनाश	डा० गोपाल प्रसाद वंशी	७३

लेख	लेखक	पृष्ठ
'मानस' के घाट पर संवाद	गोस्वामी बालक	५९
हमारी खाद्य समस्या और चूहे	कौटिल्य उदियानी	९०
योगासनों की महत्ता	योगीराज उमेशचन्द्र जी	९८
प्रश्नोत्तर	सम्पादकीय कलम से	१०५
सन्त कबीरदास	राजमोहन मिश्र	१२०

मुख पृष्ठ का परिचय

कदलीफल (केले) का अवलोकन कीजिये, विशेष विवरण हेतु इसी अंक के पृष्ठ ९ पर देखें।

विशेष सूचना– 'रामतीर्थ' मध्यप्रदेश व राजस्थान सरकारके शिक्षण विभाग की ओर से प्राथमिक, माध्यमिक उच्चतर, बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों व सार्वजनिक व पंचायत समिति पुस्तकालयों के उपयोग के लिये स्वीकृत है।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० आर्थर रोड वम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके लिये विन्सेन्ट स्क्वेर स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

दुःख–दर्दों से छुटकारा

संधिवात, सूजन, अनिद्रारोग, वायुरोगादि अन्यान्य रोगों से छुटकारा पाने के लिये बहुत वर्षों के अनुभवी कुशल चिकित्सक श्रीभानुभाई वैद्यजीसे संपर्क कीजिये।

स्थानः— श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर, बम्बई १४
समयः– सायंकाल ५॥ से ७ तक रविवार को छोड़कर
टेलिफोन नं. ४४२८९९

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल विषयक लोकमत

श्रीमान् व्यवस्थापक, श्री रामतीर्थ योगाश्रम, सादर प्रणाम !

मैं रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का उपयोग ५ वर्ष से कर रहा हूं और साथ ही योगासन भी कर रहा हूं मुझे इस तेल और योगासनों से काफी लाभ पहुंचा है। १४ साल की उम्र में ही मेरे बाल आधे से अधिक श्वेत हो गये थे, शिरोवेदना सदैव बनी रहती थी। आंखें लाल रहती थीं, परन्तु आज से ५ वर्ष पूर्व जब से मैंने 'रामतीर्थ ब्राह्मी तेल' का उपयोग शुरू किया तब से मुझे पर्याप्त लाभ पहुंचा है और यत्र-तत्र एक-दो ही बाल श्वेत दिखाई देते हैं। शिरपीड़ा, आंखों की लाली आदि मुझसे कोसों दूर भाग गई हैं। यह सारा चमत्कार शीर्षासन के सतत अभ्यास और रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के निरन्तर प्रयोग से प्रकट हुआ है। —राजेशकुमार गुप्त,

राजनांदगांव दुर्ग (म. प्र.)

श्रीमान् व्यवस्थापक !, श्री रामतीर्थ योगाश्रम, बम्बई-१४

आयुर्वेदिक पद्धति से अनेक मूल्यवान जड़ी-बूटियों के योग से प्रस्तुत 'रामतीर्थ ब्राह्मी तेल' अति लाभकारी है। इसकी तुलना में अन्य कोई ब्राह्मी तेल टिक नहीं सकता। यह मस्तिष्क तथा नेत्रों को शीतल, बलवान् तथा प्रफुल्ल बनाता है, शिरोरोग—शिर में पीड़ा और खुजली तथा बालों का श्वेत होना, गिरना आदि दूर करता है। इस के प्रतिदिन के सेवन से बाल काले, लम्बे तथा मुलायम होते हैं। यह सभी ऋतुओं में उपयोगी है। इससे नेत्रज्योति बढ़ती है। कानों के रोग और शिर का गंज मिटते हैं। निद्रा गहरी आती और स्मरण-शक्ति बढ़ती है। शरीर की मालिश करने से त्वचा स्वस्थ और मुलायम होती है। नई उमंग का उदय होता है। फिर भी कीमत अधिक नहीं है। — बिहारीलाल,

जौहरी बाजार, जयपुर

अजंता और एलोरा गुफाओं
को देखने आनेवाले
पर्यटकों के लिए विश्रामगृह

औरंगाबाद होटल

रेलवे स्टेशन के समीप, विश्व-विख्यात अजंता और एलोरा गुफाओं को देखने आने वाले पर्यटकों के लिए, इस प्रसिद्ध होटल में रहने-सहने की हरेक आधुनिक सुविधा है। इसमें सुसज्जित कमरे हैं जिनमें तीन वातानुकूलित हैं। यहां सौजन्यपूर्ण सेवा के साथ-साथ भारतीय और पश्चिमी ढंग का खाना परोसा जाता है।

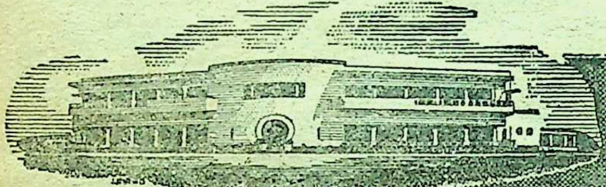

औरंगाबाद
होटल में
ठहरने पर
आपको बहुत
खुशी होगी।

कृपया आरक्षण
और अधिक जानकारी
के लिए लिखिए—
मैनेजर,
औरंगाबाद होटल,
औरंगाबाद.

तार: रेल-होटल, औरंगाबाद
फोन: ३२९

मध्य रेलवे
द्वारा प्रसारित

श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम

१–इस योगाश्रम में प्रविष्ठ होनेके बाद साधक को बीड़ी-सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि ऐसे किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक को मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आश्रम से हटा दिया जायेगा।

२–ली गई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी।

३–रूमाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आवश्यक साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर निर्दिष्ट स्थान में रखनी होंगी।

४–सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक यदि पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास की शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण संतोष होना आवश्यक होगा।

५–योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दान स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६–कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था वाले ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७–आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों को रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के २७रु. है

८–नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच में प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी होगी। समय प्रातःकाल ७॥ से ९॥ और सायंकाल ६ से ७॥ है। इन दो मेंसे किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।

विशिष्ट सूचनाएं

१- श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संचालक के निर्धारित नियमानुसार अप्रैल १९६६ से यह निश्चय किया गया कि एक सीमित संख्या में सभी प्रकार के गैर सरकारी या सरकारी, पंचायती, नगरपालिका आदि के वांचनालयों व योगाश्रम तथा प्राकृतिक चिकित्सालयों से रामतीर्थ मासिक का वार्षिक शुल्क डाक व्यय सहित केवल २ रु. ५० पैसे लिया जायेगा। अतः वाचनालयों के व्यवस्थापकोंको अपनेवांचनालयका शुल्क यथाशीघ्र भेजने की व्यवस्था करनी चाहियें ताकि संख्या पूरी होने पर निराश न होना पड़े।

२- दिन--बदिन रामतीर्थ के पाठक वृन्द की संख्या बढ़ती रहने से हर मास में हम पाठक वृन्द की मांग पर्याप्त रूप में पूरी नहीं कर पाते। फिर भी यदि मासिक विक्रेता वर्ग (एजेन्ट) अग्रिम सूचना भेज दें तो उनकी मांग यथा समय यथा साध्य हम पूरी करने की व्यवस्था करेंगे। जिससे श्रद्धा सम्पन्न एव सुख शांति, समृद्धि की तीव्र इच्छा रखने वाले हजारों वाचक बन्धुओं को निराश न होना पड़े।

३- बहुत से भाई श्रद्धा से रामतीर्थ मासिक के चन्दे को अनेक वर्षों के लिये हर मास में भेजा करते हैं उनका हम धन्यवाद करते हैं तथा उनसे आग्रह करते हैं कि अभी एक वर्ष से अधिक का चन्दा न भेजें और न बार-बार पूछ--ताछ करें कि आजीवन सदस्यता का क्या शुल्क है। इस विषय में जब भी नियम परिवर्तन किया जायेगा तो हम उसे मासिक में प्रकाशित करेंगे।

——— व्यवस्थापक

भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

सम्पादक - **रामतीर्थ** योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ७] अगस्त १९६६ [संख्या ५

वैदिक-प्रार्थना

एतवानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः,
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

ऋ. वे. पु. सू. १०/९०-३

भावार्थ—इस पुरुष की यह सब महिमा है, जो उसकी इयत्ता बताता है। वह पुरुष तो उस इयत्ता से भी अत्यंत बड़ा है। इस पुरुष का एक चरण ही सब प्राणी रूप से व्यक्त है और इसके तीन चरण तो अव्यक्त अविनाशी रूप से अपने प्रकाशमान स्थानरूप दिव्य आकाश में अवस्थित हैं।

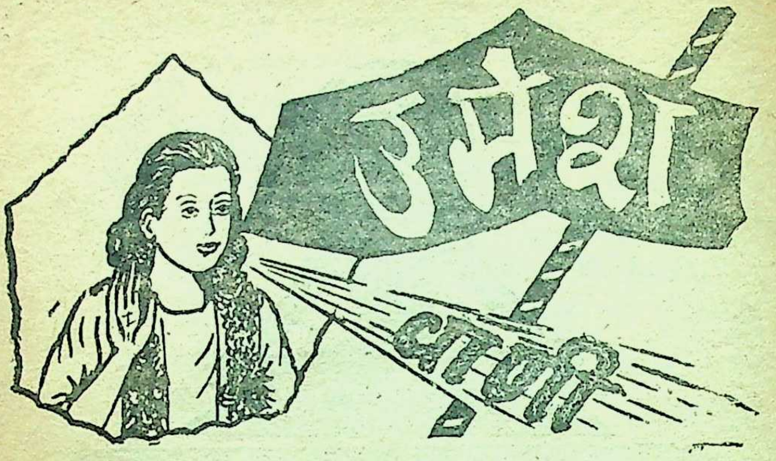

(२८१) परायें सुख में ही अपना सुख समझो।

(२८२) धन के तीन मार्ग हैं, १ भोग, २ त्याग, ३ नाश।

(२८३) मरने से जीना भला योगविद्या के हेतु।

(२८४) जीने से मरना भला पाप कर्मों के हेतु।

(२८५) त्याग-वैराग्य से परम संतोष प्राप्त होता है।

(२८६) भोग विलासमय जीवन दुःखों को बुलावा देता है।

(२८७) दुःख दारिद्रय से रक्षा हेतु योगसाधना उत्तम है।

(२८८) अपना भला चाहते हो तो पतंजलयोगदर्शन पढ़िये।

(२८९) अपनी उन्नति की अभिलाषा हो तो उमेश योग दर्शन पढ़िये।

(२९०) आहार के सेवन के समय १५ बार चर्वण करिये।

(२९१) विशेष क्षुधा शीत्कारी प्राणायाम से वशमें करें।

(२९२) दैवी जीवन यह सुलभ साध्य नहीं है। प्रयत्न से मिलता है।

(२९३) दुर्व्यसन जीवन को नरकमय बनाता है।

(२९४) शाकाहारी के मन में सात्विक गुण रहते हैं।

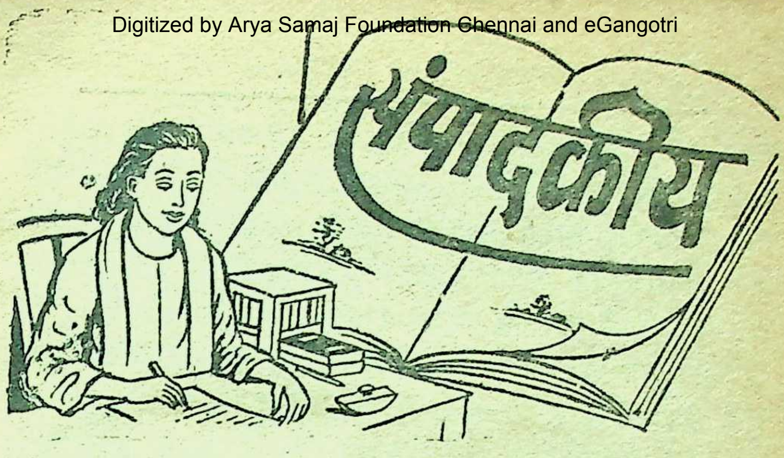

केला (कदलीफल) की गुणवत्ता

भारत में—विशेषतः हिन्दू जाति में केले को बहुत बड़ा महत्त्व प्राप्त है। नारियल तथा केले का भी धार्मिक विधि-विधान और पूजन आदि में उपयोग किया जाता है। केले के टुकड़े या समूचे केले देवता के प्रसाद के रूप में वितरित किये जाते हैं। यज्ञोपवीत, विवाहादि संस्कारों के अवसर पर तथा यज्ञादि तथा अन्य अनुष्ठानों में द्वार पर तथा मण्डपों में केले (कदली) के वृक्ष के स्तम्भ स्थापित किये जाते हैं। उत्तर प्रदेश तथा अन्य स्थानों में श्रीसत्यनारायण की पूजा और कथा के समय वेदी के पास केले का छोटा-सा वृक्ष या पत्ता स्थापित करने की प्रथा प्रचलित है। इससे केले का धार्मिक महत्त्व स्पष्ट हो रहा है।

कहा जाता है कि मूल जन्म-स्थान भारत तथा दक्षिण एशिया है। यहीं से केले के वृक्ष अन्य सभी स्थानों में ले

जायें गये। नारियल की तरह केला भी भारत में सर्वत्र समान रूप से नहीं पाया जाता। फिलहाल केले की अधिकाधिक उपज बम्बई, दक्षिण-गुजरात और कर्नाटक में होती है। कहा जाता है कि दक्षिण (मद्रास, केरल, आन्ध्र) में प्रत्येक घर के बाड़े में केले के वृक्ष लहराते दिखाई देते हैं। इन कदलीप्रधान क्षेत्रों में केले के विशाल खेत दूर दूरतक फैले हुये हैं। उनकी शोभा देखते ही बनती है।

केले की अनेक जातियां हैं। छोटे-बड़े और हरे, पीले तथा हरे छिलके के केले बाजार में दिखाई देते हैं। इनमें बचपुरी केला त्रिकोणाकार होता है। इसकी नोक लम्बी लम्बी होती है तथा छिलका पीला और मोटा होता है। सोन केला सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह छोटा और नलाकार होता है। इसका छिलका पीला और पतला होता है। स्वाद की दृष्टि से यह उत्तम माना जाता है। रायं केला लाल और मोटे छिलके का होता है। कहा जाता है कि स्वाद और गुण की दृष्टि से लाल केला भी अत्युत्तम है। ऊपर जिन लाल और पीले केलों का उल्लेख किया गया है, वे बाजार में अल्प मात्रा में ही पायें जाते हैं। उनकी उपज अधिक मात्रा में नहीं होती, इसलिये वे सर्वसुलभ नहीं हैं, हरे केले का उत्पादन अधिकाधिक मात्रा में किया जाता है, अतः वह सर्वसुलभ और लोकप्रिय है। मूल्य भी उसका अधिक नहीं और खाद्य तथा पोषण तत्त्व भी उसमें पर्याप्त रूप में पायें जाते हैं। अतः आगे चलकर हम केले की जिस गुणवत्ता का निदर्शन करेंगे, उसका संकेत हरे केले की ही ओर होगा।

केले की एक अन्य जाति भी है, जिसके वृक्ष अपने आप उग निकलते हैं और उनमें भी कदली फलियों का गुच्छा लगता है, किन्तु लोग उसे जंगली कहते और अखाद्य मानते हैं। फिर भी, उनका उपयोग होता ही है। केले का वृक्ष और फल हर तरह से उपयोगी तथा लाभप्रद है। केले के पत्ते, वृक्ष के तन्तु, फल के छिलके रंग के काम में उपयोग में लाये जाते हैं। केले का तथा केले के फूल का शाक बनाया जाता है, जो लाभकर और स्वादिष्ट होता है। स्वयं उत्पन्न केलों को कोई खाता नहीं, वृक्ष की कन्द निकालकर और उसका आटा तैयार कर वनवासी लोग उसकी रोटियां खाते हैं। उत्तम कोटि के पके केले की पकौड़ियां (भजिया) तथा रायता बनाया जाता है। यह रुचिकर तथा लाभकर हैं। गरीब जनता केले को सुखाकर उसका आटा बनाती है और उससे रोटी आदि खाद्य-पदार्थ तैयार करती है। फिर भी संपूर्ण खाद्य गुण केले में पाये नहीं जाते हैं। केले के पत्तों को भोजन के पत्तल के रूप में भी काम में लाया जाता है।

परिपक्व केला मधुर, शीतल और कषाय होता है। इसके सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है, शरीरगत धातुएं परिपुष्ट होकर कार्यक्षम बनती हैं। केला परिपाक (पाचन) में गुरु (भारी) होता है और कफ की उत्पत्ति करता है। केला रुचि उत्पन्न करनेवाला, मांसवर्धक है तथा भूख, प्यास, नेत्र-रोग और प्रमेह को दूर करता है। मन्दाग्नि की चपेट में पड़े हुये लोगों को पके केलों का उपयोग बुद्धिपूर्वक सावधानी के साथ करना चाहिये। उन्हें उतना ही केला ग्रहण करना चाहिये, जितना सरलता से पच सके।

कहा जाता है कि भस्मक रोग मनुष्य के पीछे भीषण बुभुक्षा के रूप में लग जाता। मनुष्य चाहे जितना खाता चला जाये, फिर भी उसकी भूख मिटती नहीं, और बारंबार खाते रहने की एक अतृप्त वासना उसके रोम-रोम से प्रकट होती रहती है। इस भयंकर व्याधि से मुक्ति प्राप्त करने के लिये घी और केले का उपयोग अत्यंत हितकर बताया गया है कि ऐसा करने से रोगी की कृत्रिम भूख का उपशम होगा और रोगी स्वाभाविक परितृप्ति का अनुभव करने लगेगा। इस रोग में रोगी को केले का रस निकाल कर भी दिया जाता है। और उसे लाभान्वित होते हुये देखा जाता है। ऐसे लोगों के लिये केला वरदान सिद्ध होता है। कहीं-कहीं भोजन के समय रोटी के साथ घी, केला खाया जाता है। फलतः भोजन अधिक तृप्तिकर रुचिकर और पुष्टिकर बन जाता है। केला खाने से यदि अपच हो गई हो, तो उसके निवारण के लिये इलायची का उपयोग कारगर है। कहा जाता है कि केला खाने के बाद यदि तत्काल इलायची भी ले ली जाये, तो केला आसानी से पच जाता है। जिन लोगों की पाचन शक्ति अच्छी है- जिनके पाचक अवयव बलवान् और कार्यक्षम हैं; उनके लिये केले का सेवन पौष्टिक खाद्य के समान है; वे उसके गुणों से समुचित लाभ उठा सकते हैं। केले को आत्मसात् कर ऐसे लोग कार्य शक्ति और मनोबल से संपन्न होते हैं, उनकी चेतना उद्दीप्त रहती है और वे एक सुस्थिर सत्ता से सुशोभित होते हैं उनका व्यक्तित्व

प्रखर होता और उनका अस्तित्व बोलता सा प्रतीत होता है। सशक्त मानव केले की गुणवत्ता को धारण कर उसकी महत्ता का दिव्य संगीत अपने अन्तर से मुखरित करने लगते हैं।

बच्चों के लिए केला प्रकृति माता का वरदान है। ४-५ वर्ष या इससे आगे की किसी भी उम्र के बच्चे को रोटी--दाल के स्थान पर केला की खूराक देकर उसके विकास के लिए आश्वस्त रहा जा सकता है। बच्चे की शारीरिक परिस्थिति तथा पाचन शक्ति से परिचित रहते हुए यदि उचित मात्रा में बच्चे को केला और दूध का खाद्य दिया जायें, तो वे निस्संदेह विकासोन्मुख रहेंगे, उनकी शरीर संवधन प्रक्रिया उचित गति से चलती रहेगी। उनकी त्वचा का वर्ण स्वच्छ और आकर्षक होगा। वे भले ही मलयुद्ध या द्वन्द्व युद्ध न करें, परंतु अपने दैनिक कर्तव्यों से वे कभी विचलित नहीं होंगे, अपने कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करते रहेंगे। जो लोग अपने बच्चे को सशक्त, प्राणवान्, उत्साही, चैतन्य मय और कार्यशील बनाने की महत्वाकांक्षा रखते हैं, जो उसकी बौद्धिक शक्ति को विकसित और सृजनशील बनाना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि बच्चे को रोटी-दाल अधिक आग्रह पूर्वक न खिलायें, बल्कि केले और दूध की व्यवस्था को ही कार्यान्वित करें। निस्संदेह इस व्यवस्था से लाभदायक परिणाम उनके समक्ष प्रकट होंगे और उन्हें बच्चे की इस उन्नयन प्रक्रिया से सन्तोष होगा।

केला खाने वाले प्रायः यह शिकायत करते रहते हैं कि

केला मलावरोध करता है। आयुर्वेद ने भी मलावरोधक कहा है। फिर भी अनुभव से जाना गया कि जिन लोगों के आमाशय में केले का उचित परिपाक होता है और मलोत्सारक यन्त्र अपनी कार्य-क्षमता का परिचय दे रहे हैं, उन्हें मलावरोध होने का कोई कारण नहीं। केले के साथ यदि दूध का उपयोग किया जाये, तो इसके फलस्वरूप शारीरिक शक्ति संवर्धन के साथ मल निकालने वाले यंत्र भी सुव्यवस्थित रहते हैं और सफलतापूर्वक अपनी ड्यूटी पूरी करते हैं। अतः केले को मलावरोधक कहना उचित नहीं, बल्कि इसमें मानव की उदरगत व्यवस्था ठीक रहती है।

शारीरिक वजन बढ़ाने की दृष्टि से दूध और केले का मिश्रण एक सफल आयोजन है। पीले छिलके के इलायची केले या हरे छिलके के केले दूध के साथ मिश्रित कर पाचन शक्ति और वजन के अनुसार दिन में एक दो बार ग्रहण करने से बल और वजन में पर्याप्त वृद्धि होती है। यह प्रयोग लाभदायक होने के साथ-साथ सात्विक भी है।

जो स्त्रियां प्रदर तथा सोम रोग से पीड़ित हैं, उन्हें पके केले, आंवले का रस, और शक्कर दो भाग मिलाकर दिया जाये, तो आराम का अनुभव होता है। धातुविकार पर एक पका केला आधे तोले घी के साथ नित्य सबेरे-शाम देना चाहियें। आठ दिन तक यह प्रयोग जारी रहना चाहिए। केले के सेवन से प्रदर भी मिट जाता है। यदि किसी को इस औषधि से शीत का अनुभव हो, तो औषधि में नित्य चार-

पांच बूंद मधु (शहद) मिला लें। पित्त-प्रकोप की अवस्था में भी पके केले शहद के साथ खाने की हिमायत की जाती है।

शीतला (चेचक) के प्रकोप को प्रशमित करने के लिये जंगली केले के बीजों को भैंस के दूध में मिश्रित कर कपड़-छान करने के वाद इस दूध का सेवन करने से अभिमत सिद्ध होता है। शरीर यदि गरमी से भर गया हो, तो केले के गूदे को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण बनाकर सेवन करना चाहियें। प्रमेह रोग की भी यह सफल औषधि है। सोमल–विष के प्रभाव का प्रतिकार करने के लिये १० तोला केले का पानी पिलाना हितकर होगा। यदि इतने से राहत न मिले, तो पुनः उतना ही पानी पिलायें। यदि कोई अन्य विष पेट में गयें हों तो, भी यह पानी पिलाना लाभप्रद है। यदि किसी पशु ने सोमल विष खा लिया हो, तो उस पशु को भी ४०-५० तोला केले के रस में १० तोला फिटकरी और एक तोला कत्था मिलाकर तीन दिन तक पिलाना चाहिये।

इलायची केलों को पका देने वाली है। केलों में यदि थोड़ा सा इलायची का चूर्ण मिला दिया जायें, तो केले एक दम पक कर बिगड़ जाते हैं। यह इलायची के चूर्ण का प्रभाव है। इलायची का चूर्ण केले को पचा देता हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सस्ता, सुलभ और पोषक गुण सम्पन्न होने के कारण केला लोकप्रिय फल है। सचमुच केले का बुद्धिपूर्वक उपयोग मानव शरीर के आरोग्य, विकास और सुस्थिरता की गारण्टी है।

भारत की विशिष्ट आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मासिक पत्रिका

अखण्डप्रभा

- आध्यात्म--साधकों के लिये प्रेरणादायक
- वेदान्त, उपनिषद्, गीता आदि का निचोड़
- आध्यात्मिक कहानियां, लघु--कथायें
- आध्यात्मिक चुटकुले, उपन्यास
- विद्वता एवं अनुभव से भरपूर विशेषांक
- डाक-व्यय के साथ चन्दा—

आजीवन १००), वार्षिक ४)

एक प्रति विशेषांक १), एक प्रति साधारण ३० पै.

कार्यालयः- ११२ / २३४, स्वरूपनगर, कानपुर- २

प्राकृतिक चिकित्सा-साहित्य का अग्रदूत

'प्राकृतिक जीवन'

प्रधान सम्पादक : डा० के० आर० दिलकश

संयुक्त सम्पादक : डा० गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

एक प्रति— ३७ नये पैसे : वार्षिक ४) रुपये मात्र

स्वास्थ्य सम्बन्धी सुन्दर और उपयोगी साहित्य के साथ अपने प्रश्नों के उत्तर लें। शंकाओं का समाधान करावें तथा अपने स्वास्थ्य को उन्नत करने, नीरोग रखने तथा दीर्घजीवी बनने के उपाय जानें। आज ही ४) रुपया भेजकर ग्राहक बन जाइयें और मौका न चूकियें। नमूने की प्रति मुफ्त मंगावें।

कार्यालय—
आरोग्य निकेतन, डालीगंज
लखनऊ (उ. प्र.)

धर्मोपदेश

स्वामी रामतीर्थ

(गतांकसे आगे)

इसी प्रकार आप भी वेदान्तमय जीवन बिताइये और अनुभव करिये कि आप सर्वशक्तिमान् विश्वेश्वर स्वामी के स्वाभी, देव के देव, ब्रह्माण्ड के सभी भूत-प्राणियों के प्रणेता नियामक हैं। आप अनुभव करें कि "मैं सत्य-स्वरूप हूँ" और यदि इसी अनुभूति के आधार पर आप जीवन व्यतीत करेंगे, तो देखेंगे कि आपके पास बिना बुलायें अनेक अनुयायी आने लगेंगे! किसी प्रकार का प्रचार-विज्ञापन किये बिना, किसी भी बड़े आदमी के अनुग्रह की इच्छा रखे बिना या किसी भी पत्रकार की कृपादृष्टि के बिना ही बच्चों को शिष्यों की प्राप्ति हो जातीं है। जो भी कोई बच्चे की ओर देखता है वह सभी उनके अनुयायी बन जाते हैं। क्या यह बात यथार्थ नहीं ?

वेदान्त के सिद्धन्त के अनुसार जीवन बितायें, फिर

आपको जितने चाहियें उतने लोग आपके अनुयायी बन जायेंगे-आपका कहना सुनेंगे। चन्द्रोदय होते ही सैकड़ों व्यक्ति चांदनी का आनन्द लेने के लिये चारों ओर से बाहर निकल पड़ते हैं। भारत में शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन नवोदित चन्द्र के दर्शन कर उसकी दिव्यता का मानसिक पूजन करते हैं। उस दिन लोग अच्छा भोजन करते हैं अपने मित्रों और सगे सम्बन्धियों के साथ मिलकर अपना दिन आनन्द पूर्वक बिताते हैं।

आपके हृदय में ऐसे चन्द्र का उदय हो और कार्य पद्धति के लिये तनिक भी श्रम नहीं करना। साधन पद्धतियां तो स्वयं आपको खोजते हुये आयेंगी—उन्हें आना पड़ेगा। जब गुलाब का फूल खिलता है तब मधुमक्खियों का अभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। जहां मधु का अस्तित्व है, वहां चींटियां उसे खोजती हुई निस्सन्देह आ पहुंचती हैं। अपने हृदय में आप मधु का निर्माण करने की ही आवश्यकता समझो। अपने अन्तर में ज्ञान के गुलाब-पुष्प प्रफुल्लित करो। ऐसा करते ही आप सर्व सम्पन्न बन जायेंगे, आपको किसी की भी न्यूनता का अनुभव नहीं होगा। यदि आपको किसी वस्तु की आवश्यकता है, तो वह है आपकी अन्तर्निहित प्रभुता और उसका साक्षात्कार। यदि आप इससे पीछे हटेंगे, तो प्रत्येक वस्तु आपको छोड़कर चली जायेगी।

जब आप अपनी अन्तर्निहित प्रभुता का आधार प्राप्त

करेंगे और उसका अनुभव कर जब तदनुसार जीवन वितायेंगे, तब यह आपका प्रसन्नतापूर्वक अनुकरण करेगा। अतः संसार के पीछे कभी नहीं दौड़ना, संपूर्ण शक्ति का रहस्य आपके अन्दर है, अन्यत्र कहीं नहीं।

केलिफोर्निया में शास्ता नामक झरना है। उसका जल अत्युत्तम होने से प्रत्येक व्यक्ति वहां जाने की आकांक्षा रखता है। शास्ता के इन झरनों को लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लियें अपने पास बुलाने के लियें किसी प्रकार का ढिंढोरा पीटने की या विज्ञापन करने की आवश्यकता नहीं। झरनों को आगन्तुकों के सम्बन्ध में किसी प्रकार की चिंता करनी नहीं पड़ती। लोग खुद ही उसे खोज निकालते हैं।

जिस समय ज्ञान, जीवन, प्रेम और पवित्रता के निर्मल और नूतन झरने आपके अन्तः प्रदेश से कल-कल कल-रव करते हुयें फूट निकलेंगे, उस समय दर्शक लोग आपको इस तरह खोजेंगे, मानो कि वह शास्ता के झरने के लियें लालायित हों। यह एक नित्य और अचल नियम है। आवश्यकता मात्र इस बात की है कि आपके अन्तस्थल में उन झरनों के प्रवाह का सतत संगीत संचालित रहना चाहियें। उस दशा में आप चाहें एक स्थान पर रहें या यत्र तत्र विचरण करते रहें; लोग स्वयं ही खोजते हुए आपके पास आयेंगे। मात्र आप में सत्य-ज्ञान और धर्म का प्रादुर्भाव होना चाहिये।

उन झरनों को प्रवहमान बनाने का एक मात्र उपाय यही है कि आत्मनिष्ठा का प्रवाह निर्विघ्न और मुक्त रूप से आपके अन्दर बहने लगे।

जर्मन दार्शनिक कैन्ट के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह अपनी जन्म-तिथि को जानता न था, परन्तु आज भी वह समग्र भू-मण्डल में विख्यात है। मात्र एक स्थान पर रहने में ही विजय का रहस्य नहीं। बस एक बार आध्यात्मिक सामर्थ्य का अर्जन करें। फिर भले ही पलंग पर पड़े रहें। दुनिया यदि आपके पास सत्य-ज्ञान का रहस्य जानने के लिये न आये तो यह उसका दुर्भाग्य हैं।

जब न्यायाधीश न्यायालय में आकर अपने आसन पर बैठता है, तब वादी, प्रतिवादी, वकील और साक्षी यह सब अपने आप ही वहां हाजिर हो जाते हैं। न्यायाधीश उनको बुलाने नहीं जाता वह कोर्ट में कुर्सियां और परदे भी नहीं लगाता। यह सब अन्य अपने आप भी कर लेते हैं।

'राम' का कहना है कि आप इस स्वर्ग-राज्य पर प्रभुत्व स्थापित करें। आप अपने अन्तर्निहित राजराजेश्वर को पहचानो। हे परम देव! हे परम प्रभु! हे मानव! तू अपने गौरव में चल, तू चक्रवर्ती राजा है, तू अपनी प्रभुता में चल, तू अपने ऐश्वर्य में चल; क्यों कि तू

112554

ईश्वर है, तेरी व्यापारिक प्रवृत्ति, तेरी पोशाक, तेरी रेल-यात्रा, तेरी संपत्ति, तेरा घर आदि वस्तुओं के लिये तू तनिक प्रयत्न नहीं करना, यह तो बाह्य जगत् का काम है—बाह्य शक्तियों का काम है।

आओ, अपनी दिव्यता, अपने ऐश्वर्य का अनुभव करो और यह भी अनुभव करो कि तुम सूर्यों के सूर्य हो; अतः चन्द्र, तारे और देवगण तुम्हारे सान्निध्य में रह कर तुम्हारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे। उन्हें करना ही पड़ेगा। क्यों कि सृष्टि का यही नियम है। यही सत्य है और विजय के एक रहस्य के रूप में वेदान्त उसका उद्बोधन करता है।

जिस क्षण तुम अपने दिव्य स्वरूप में स्थित होते हो, जिस समय अपने सत्य स्वरूप की प्रतीति करते हो, जिस समय तुम अपने सत्य आत्मा की अनुभूति करते हो, उसी क्षण यह दुनिया तुम्हारी कृपा की याचना करती है।

लोग मानते हैं कि कृत्रिम कायदे कानून, सर्वशक्तिमान धन, सगे संबन्धी, नौकर, मित्र और बाह्य साधनों पर विजय का आधार निहित है। परन्तु लोगों की यह बड़ी भूल है, बल्कि इससे तो उलटे वह विनाश का ही मार्ग प्रशस्त करते हैं।

लोगों के ऐसे प्रयत्न तो.........पक्षी को कृत्रिमता से

गीत गवाने जैसा है। एक कबूतर का ही दृष्टान्त लें। इस कबूतर को हिमालय के ऊंचे.........नामक पेड़ की शाखा पर बैठते ही अपने आप गाने की वृत्ति जाग्रत होगी और तुरन्त ही मधुर स्वर से अलापने लगेगा। हिमालय की रमणीय उच्च टेकरियों के गुलाब के पौधे पर बैठा हुआ चंडोल पक्षी भी रसमय मधुर स्वर निकालता है। इसी प्रकार राम का कहना भी यही है कि जब तुम स्वानुभव के रमणीय शिखर पर सुशोभित होगे, जब तुम अपने आत्म स्वरूप में निष्ठा प्राप्त कर लोगे, तब तुम्हारे प्रभुमय जीवन से तुम्हारे सभी कार्य, समुन्नत जीवन, पवित्र आचार-व्यवहार, तुम्हारे सत्कर्मों का स्फुरण होने लगेगा और वे सब अपने आप ही एक नदी की तरह बहकर चारों तरफ फैल जायेंगे। सत्य प्रचार का यही सच्चा मार्ग है।

सुधारक लोग कानून-कायदे बनाकर महान् तेजस्वी पुरुष उत्पन्न करना चाहते हैं और फिर स्वयं ही वह लोगों के परीक्षक बनते हैं! यह पद्धति सर्वथा अस्वाभाविक है, इससे फल सिद्धि संभव नहीं।

लोग कहते हैं कि हम तो **अनुभव** प्राप्त करना चाहते हैं; परन्तु राम का कहना है कि अनुभव कैसे प्राप्त हो सकता है? बाह्य क्रियाओं से अनुभव प्राप्त करने का यह प्रयास कृत्रिम रूप से ....पक्षी को गवाने के समान है।...........चण्डोल पक्षी का गला पकड़ने से

हम उसका मधुर संगीत सुन नहीं सकते। उसे हम कहें कि कि "हे........पक्षी यहां आओ और अपना मधुर गीत सुनाओ।" तो ऐसा कहने से वह कहीं गाने नहीं लगेगा। जिस समय चण्डोल पक्षी अथवा कबूतर मुक्त होते हैं, उसी समय वह गाने लगते हैं और अपनी मधुर रागिनी अलापने लगते हैं अतः आप भी जिस क्षण अपने केन्द्र में स्थिर होंगे, जिस क्षण अपने स्वरूप में विराजमान होंगे, जिस क्षण ब्रह्मत्व में दृढ़ होंगे, जिस क्षण अपने स्वरूप के साक्षात्कार की उच्च भूमिका पर पहुँचेंगे, उसी क्षण आपके उत्तमोत्तम अनुभव, आपके सभी ऊँचे वृक्ष पर बैठे हुये.........पक्षी के मधुर संगीत की तरह स्वयमेव स्फुरित हो उठेंगे। यही सत्य और सरल मार्ग है।

एक लोह चुंबक के साथ यदि लोहे के एक टुकड़े का स्पर्श कराया जाता है, तो वह टुकड़ा भी चुंबक का रूप धारण कर लेता है और अन्य लौह-खण्ड को अपने प्रति आकर्षित करने (खींचने) में समर्थ बन जाता है। यह स्थिति तब तक रहती है जब तक वह लौह खण्ड चुंबक के साथ सटा रहता है। जैसे ही उसे चुंबक से पृथक किया जाता है उस लौह-खण्ड की चुंबकीय (आकर्षण) शक्ति नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार हम किसी मानव का—ईसा का ही उदारहरण लें। ईसा अत्यन्त पवित्र मानव थे, परन्तु वह पहले **कैसे थे**? जीवन के प्रथम ३० वर्षों तक तो वह एक **साधारण**

छोटे लौह खण्ड के समान ही थे। उन्हें कोई पहचानता भी नहीं था। वह एक बढ़ई पुत्र थे। बाल्यावस्था में वह बहुत गरीब थे। एक अपरिचित-अप्रसिद्ध माता के इस बालक को उस समय कोई तनिक भी नहीं देता था परन्तु तदुपरांत इस लौह-खण्ड को उस सत्य स्वरूप आत्मा—जो समग्र आकर्षण शक्ति का मूल, समग्र जीवन और समग्र शक्ति के केन्द्र जैसा चुंबक है—के साथ जोड़ दिया—योग किया, ऐश्वर्य, सत्य, सामर्थ्य आदि के प्रत्यक्ष संपर्क में वह आये, फलतः वह लौह-खण्ड स्वयं चुंबक (आकर्षण शक्तिधर) बन गया। उनमें चुम्बकीय शक्ति का आधान हुआ और लौह खण्ड रूपी अन्य लोग उनकी ओर आकर्षित हुये। शिष्य तथा अन्य अनेकशः लोग खिंचकर उनकी ओर आने लगे। वह स्वभावतः उनके समक्ष प्रणमित होने लगे। अपने जीवन के अवसान काल में ईसा के देहरूपी लौह-खण्ड का आत्मारूपी चुंबक के साथ का सम्बन्ध भंग हो गया फल यह हुआ कि उसके साथ जो अन्य लौह खण्ड चिपके थे, वह सब उससे पृथक हो गये। यह सभी शिष्य उन्हें छोड़ कर चले गयें। जेरुसलम के जो लोग पहले उन्हें चाहते थे, पूजते थे, जो राजा के समान उनका सम्मान करते थे और उनके स्वागत में अपने शहर को सजाते थे, वह सभी छोड़ कर चलते बने। जिस प्रकार लौह खण्ड को चुंबक से पृथक करने पर उसकी आकर्षण-शक्ति नष्ट हो जाती है, वही दशा उन लोगों की भी हुई। जब ईसा के अन्दर चुंबक के गुण

नहीं रहे—उनके शिष्यों-११ आदमियों ने उन्हें छोड़ दिया और लोग उनसे इतना अधिक विमुख हो गये कि उनसे प्रतिशोध लेने का निश्चय किया। अन्त में उन्हों ने ईसा को क्रास पर- फांसी पर चढ़ा दिया। अन्तिम समय में ईसा के मुख से निम्नलिखित शब्द निकले:—'हे पिता तूने मुझे क्यों छोड़ दिया है?' इससे स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के अंतिम काल में आत्मा के साथ उनका सम्बन्ध विच्छेद हो गया था। ईसा के जीवन से हमें क्या शिक्षा मिलती है, इस तरफ यदि आप ध्यान दें तो उससे हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि ईसा के सभी गुण और सभी शक्तियां उनके सत्य आत्मा रूपी चुंबक के साथ सम्बन्ध में ही निहित थे। मृत्यु-काल में ईसा ने आत्मा के साथ पुनः संबंध स्थापित किया। आप सब जानते हैं कि जब ईसा को फांसी पर चढ़ाया गया तब उनकी मृत्यु नहीं हुई। यह वास्तविकता है और इसे प्रभावित किया जा सकता है। उस समय ईसा समाधिस्थ थे। यह स्थिति ऐसी है जिसके प्रभाव में प्राणिक क्रियाएं स्थगित हो जाती हैं। इस स्थिति में नाड़ी नहीं चलती, रक्तवाहिनियों में रक्त का भ्रमण नहीं होता, प्राण के अस्तित्व का कोई चिह्न प्रकट नहीं होता और ऐसी अवस्था हो जाती है, मानव देह मृत हो गया है। ईसा तीन दिन तक इस समाधिस्थ अवस्था में रहें। तत्पश्चात् एक योगी की तरह सजीवन वहां से भाग कर रहने के लिये काश्मीर में पहुंच गये। राम भी काश्मीर में रहा है और उसने वहां ईसा के निवास के अनेक

चिह्न देखे हैं। उस समय तक काश्मीर में खष्टान धर्मावलम्बी एक भी व्यक्ति नहीं था। वहां उनके नाम के साथ संबद्ध ऐसे अनेक स्थान हैं, जहां खष्टान लोग पहले कभी पहुंचे न थे। वहां जिन जिन शहरों में वह गये, उनके नाम जेरुसलम के साथ मिलते जुलते हैं। वहां एक दो हजार वर्ष पुरानी कब्र है। उसे बहुत ही पवित्र माना जाता है और उसे 'ईसा की कब्र' कहकर पुकारा जाता है। ईसा भारतीय भाषा में क्राइस्ट का अर्थ है और 'ईसा' शब्द का अर्थ 'राजा' होता है। जिस भारतवर्ष से ईसा ने सर्वप्रथम उपदेश ग्रहण किया था, उसी भारतवर्ष में वापस आये। इस वस्तुस्थिति को प्रमाणित करने हेतु अनेक सूत्र विद्यमान हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय जनता के पास ऐसे अनेक चमत्कारपूर्ण मरहम हैं। जिन्हें ईसा का मरहम कहकर पुकारा जाता है और जो लोग यह मरहम बनाते हैं उनका कहना है कि जबसे ईसा को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ, तब से प्रत्येक प्रकार के घाव को सुखाने के लिये वह इसी मरहम का उपयोग करते थे और सचमुच ही यह मरहम चमत्कारपूर्ण ढंग से इन घावों को सुखा भी देता है।

ईसा के पहुंचने के अनेक प्रमाण हैं; किन्तु इस समय 'राम' उनका विस्तृत वर्णन नहीं करेगा। राम इस समय आपको यह बताना चाहता है कि ईसा ने जब अपने देह को दिव्य रूप चुम्बक के साथ संबद्ध किया, तब सारी दुनिया उसकी ओर आकर्षित हुई थी, इस बात के भी अनेक प्रमाण हैं कि इस दिव्य रूप के साथ उनका संबंध

कैसे विच्छेद हुआ। एक तो बाह्य जगत् का प्रभाव, जनसाधारण के साथ अतिशय संपर्क और उच्च आध्यात्मिक जीवन से कभी-कभी विमुख हो जाना। ऐसी अनेक बातों को लेकर उच्च स्थिति से मानव का अधःपतन होता है। आपको यह विदित ही है कि ईसा बस्ती को त्याग कर वन पर्वतों में एकान्तवास के लिये गये थे अपने एक शिष्य को उन्होंने कहा था कि "मुझे प्रतीत होता है कि मेरी शक्ति विनाशोन्मुख है मुझे किसका स्पर्श हो गया है ?" अधिक समय तक जन संपर्क में रहने से और आध्यात्म के उच्च धरातल से नीचे उतर आने से उपरिकथनानुसार वह आध्यात्मिक जीवन से विमुख हो गये थे। यह मानवोचित और स्वाभाविक है। ईसा के अपराध भी आपके लिये लाभप्रद हैं। प्रत्येक पुरुष के जीवन को यदि यथार्थ रूप से पढ़ा जाये, तो बहुत लाभ होता है। ईसा के जीवन की तरह यदि आप किसी के भी जीवन को यथार्थ रूप से पढ़ेंगे, तो आपको बहुत लाभ होगा। राम का कथन है कि जिस क्षण आप आत्मा से विमुख हो जाते हैं—उसी क्षण 'आप रहे न रहें' के समान बन जाते हैं। अपने दिव्य स्वरूप में आप रमण करें। इस उच्चतर स्थिति से आप नीचे न उतरें। इस सत्य का स्वानुभव करें और लोह खण्ड चुम्बक का स्पर्श पाकर जैसे चुम्बक का रूप धारण कर लेता है, उसी तरह तुम भी चुम्बक रूप में परिणत हो जाओगे।

इस प्रकार यदि आप अपने दिव्य स्वरूप के साथ अभेद भाव स्थापित करेंगे, तो आप सर्वांग पवित्र बन जायेंगे।

आप चुम्बक के संसर्ग में रहकर स्वयं चुम्बक बन जायेंगे। इस प्रकार सर्वशक्ति के सत्यमूल, सत्य कारण और सत्य रहस्य से हम परिचित हो चुके हैं, परन्तु लोग उसे कुछ और ही समझते हैं। बालक के अंतस्थल में उसका वास्तविक बल, अपने सत्य आत्मा-सत्य स्वरूप की प्रतीति में प्रकट होता है, परन्तु लोग उसकी सारी महत्ता उसके शरीर पर ही स्थापित करते हैं और उस बालक के जीवन में उसके वास्तविक मूल को विकसित न कर उस बालक के जीवन को कुचल डालते हैं।

ईसा का जीवन-चरित्र पढ़िये और जिस तरह उन्हों ने अपना जीवन बिताया, उसी तरह आप भी बितायें। आप ईसा के शरीर पर नहीं बल्कि उनकी उस आत्मा पर आधार रखें, जो आपके अन्दर भी विराजमान है। ईसा की स्थिति पर पहुंचने का यही सच्चा मार्ग है।

वेदान्त मात्र भारत के लिये ही नहीं वह जितना हिंदुओं के लियें उपयोगी है, उतना ही खष्टानों के लियें भी। वेदान्त के मतानुसार ईसा के नाम पर मानव का उद्धार होने के सिद्धांत का स्पष्टीकरण किया जाता है? एक उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकेगा। एक अज्ञान माता ने अपने बच्चे को डर दिखाया और उसके बाल-मानस में यह बात प्रविष्ट की कि पास के कमरे में एक भयंकर भूत रहता है, फलतः बच्चा उस कमरे में जाने से बहुत डरता था। एक दिन सायंकाल बच्चे का पिता अपने आफिस से घर आया। —क्रमशः

विश्व विहार

लें० कालूभाई वसिया

(गतांक से आगे)

वास्तविक सत्य क्या है ?

विश्व और हम कौन हैं ? सुख-दुःख क्या है ? और समग्र विश्व की उत्पत्ति कैसे और किस तरह हुई सबका उद्देश्य और कारण क्या है ? इस सब रहस्य की विवेचना करनेवाला तत्त्व ज्ञान दर्शनशास्त्र है। तत्त्वज्ञान या दर्शन साहित्य का आत्मा है। मानव जाति के निर्माण में उसका स्थान सर्वप्रथम है। दर्शन के विना न तो कोई मानव उन्नत स्थिति पर पहुंच सकता और न कोई समाज उच्च स्थान पर सुशोभित हो सकता है। दर्शन का अर्थ है वास्तविक सत्य की खोज। जबतक मृत्यु अनिवार्य है और जीवन अन्धकार में भटक रहा है, तबतक दर्शन की आवश्यकता निस्सन्देह रहेगी। भारत और ग्रीस तत्त्वज्ञान की जन्मभूमि हैं। भारतीय दर्शन का उद्देश्य परमार्थ को व्यवहार में सिद्ध चरितार्थ कर दिखाने का है। भारतीय दर्शन सर्वोत्तम जीवन के निर्माण की प्रक्रिया है और पूर्णता का मार्ग दर्शन करनेवाली दिव्य दृष्टि है। दर्शन परमोत्तम जीवन कला है। जैसे सत्य के सम्बन्ध में आध्यात्मिकों तथा वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न दृष्टियों से अनेक मत प्रकट किये हैं और अनेक बिचार धारायें प्रवाहित की हैं फिर भी उसका पूर्णतः समाधान पाया नहीं जा सका है।

वैज्ञानिक प्रत्यक्ष प्रमाण को ही वास्तविक मानने लियें प्रेरित होते हैं। परन्तु दार्शनिक विचारक चिन्तन और तर्क के द्वारा सत्यानुभूति के प्रयास करते हैं।

विज्ञान ने मानव जाति को पूर्णतः विचार प्रेरणा दी है और मनोविज्ञान ने अज्ञात मन की खोज की है। फलतः ज्ञान का क्षेत्र विशाल बना है और सत्य-ज्ञायक सम्बन्धी अनेक मतमतान्तरों का उद्भव हुआ है। जैसे-

१—मनोविज्ञान कहता है-मानव जो-जो क्रिया करता है, उसमें कुछ निश्चित कारण होते हैं। कारण के बिना कुछ कार्य हो नहीं सकता। आज तक का ज्ञान मानवीय मूलक और अपूर्ण है।

२—विज्ञान के कुछ तत्वों का कथन है—विश्व व रहस्य अकारान्त और इकारान्त (निगेटिव और पोजटिव) इन दो शक्तियों में गुंफित है। द्विगुण शक्ति है।

३—चार्वाक जैसे नकारात्मक दार्शनिकों के मतानुसार सब कुछ मिथ्या है। विश्व, जीव जीवन, हम सब और मैं-यह अहंकार या ज्ञान-सब कुछ मिथ्या भ्रम है।

४—विद्वान लांग फेलों का कथन है कि विश्व और हम यह सब भ्रम नहीं, अपितु सत्य है, बुद्धि से परे है।

५—ग्रीक तत्ववेताओं का मत है कि मानव

जन्म से पहले की और मृत्यु के बाद की हकीकतें किसी भी ज्ञान से उपलब्ध नहीं हो सकतीं। जो कुछ सत्य है, वह ज्ञान और भान से रहित है।

६—वेदान्तियों का कहना है कि जो सत्य है वह ज्ञायक ही है और ज्ञान तथा मान से परिपूर्ण है। वह स्वयं ज्ञानरूप है।

७—शून्य मतवादियों का कहना है कि मानव ने अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं ही किया है अत: ज्ञान को मानवीय मन का खिलवाड़ ही समझना चाहिये। यह वास्तविक नहीं है।

८—शरीर वैज्ञानिकों के मतानुसार ज्ञान-मान और काम-क्रोध, प्रेम-आनन्द, लोभ-मोह आदि सभी प्रवृत्तियां रासायनिक हैं और शरीर के अन्दर रक्त में शरीर की विभिन्न रस ग्रंथियों में उत्पन्न होतीं हैं। शरीर के बाहर कोई वृत्ति या ज्ञान जैसा कुछ है ही नहीं। शरीर नाश के साथ इन सबका भी नाश हो जाता है यह कोई मूल तत्त्व नहीं, मात्र अंधकार में दौड़ लगाना या भटकना है।

ईश्वर का तत्त्व ज्ञान

हम श्रद्धा विश्वासपूर्वक मानते हैं-हे विश्व के महाकारण ईश्वर आप सब कुछ हो और सब कुछ

आपका ही है, अतः शरीर द्वारा, वाणी द्वारा, मन द्वा अहंकार द्वारा अथवा प्रकृति के स्वभाव द्वारा हम कुछ करते हैं वह सब आप को समर्पित है। बुद्ध और श्रद्धा-विश्वास सब कुछ आपके आश्रित हैं। आ सनातन हैं।

ईश्वर दर्शन

विश्व ईश्वर का एक अंशमात्र है। ईश्वर कोई व्याख्या पूर्ण नहीं—पूर्ण व्याख्या की भी नहीं सकती। वह अनन्त अनादि और सच्चिदानन्द कहला है। उसे कोई 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' भी कहता है। उ सत्‌चित्‌-आनन्दरूप और निर्गुण निराकार भी कहा जाता है कुछ लोगों का कहना है कि ईश्वर है और कुछ लो का कहना है कि ईश्वर नहीं है। कुछ लोग प्रेम ही ईश्वर मानते हैं और कुछ स्वयं को ही ईश्वर कह हैं अतः जिसका जैसा विश्वास वैसा उसका ईश्वर है

वैज्ञानिक उसे प्रकाश की गति कहते हैं। आत्मवा उसे आत्मा की शक्ति मानते हैं। वेदान्ती ज्ञान को ईश्वर के नाम से अभिहित करते हैं। सर्वेश्वरवादि के मतानुसार सब कुछ ईश्वर ही है-सर्व-सर्वत्र-स यही उन्होंने ईश्वर की व्याख्या प्रस्तुत की है। वे स माध्यम को ईश्वर मानते हैं और कहते हैं कि मान्यता में विश्वास ही ईश्वर है। यही आत्मा राम

एक राम घट-घट व्यापक है,
एक राम दशरथ घर डोले,
एक राम है सकल पसारा,
एक राम है सबसे न्यारा।

ईश्वर पूर्ण है। वह नाम और रूप से रहित है, अतः नाम और रूप का नाम माया और विश्व के समग्र नाम और रूप को निकाल देने पर जो कुछ शेष रह जाता वह ईश्वर ही है। भौगोलिक दृष्टि से कोई शब्द शेष न रह जाये वह ईश्वर है–जैसे कि पृथ्वी शब्द बोलने पर सूर्यग्रह शेष रहें समझे जायेंगे, परन्तु विश्व कहने पर भी आकाश जैसी वस्तु शेष रह सकती है, परन्तु कुछ भी शेष न रह जायें, उसे ईश्वर समझना चाहियें। ईश्वर का स्मरण तभी आता है, जब महादुःख का सामना करने का अवसर आ पड़ता है। हे ईश्वर! बचाओ छुड़ाओ इस महादुःख के बन्धनों से। वस्तुतः वहीं ईश्वर विद्यमान है। ईश्वर विषयक अनेक मान्यताएं प्रवर्तमान हैं। तथा जगत् के अधिकांश मानव ईश्वर को श्रद्धा पूर्वक मानते हैं और श्रद्धाविश्वास ही ईश्वर है और श्रद्धायें ही उस ईश्वर का निवास हैं, अन्यत्र कहीं उसका पता नहीं लगता। अतः यही कहा जा सकता है कि सर्वत्र और सभी कुछ ईश्वर है। जड़ और चेतन भिन्न नहीं, अपितु ईश्वर के दो स्वरूप हैं, जो जिस पर सत्ता चलाता अधिकार का प्रयोग करता है वह उसका ईश्वर है—

जड़ चेतन पर शासन करता है, अतः जड़ चेतन का ईश्वर है। स्त्री पुरुष पर शासन करती है, अतः स्त्री पुरुष की ईश्वर मानी जांयेगी। इसी प्रकार अखिल विश्व पर जिसका शासन चल रहा हो उसे अखिल विश्व का सबका ईश्वर कहा जायेगा।

—क्रमशः

रामचरित मानस

(रामायण)

टीकाकार —

योगीराज
श्री. उमेशचन्द्रजी

(गतांक से आगे)

नाथ करहु बालक पर छोहू,
सूध दूध-मुंह करिय न कोहू,
जो पै प्रभु प्रभाव कछु जाना,
तौ कि बराबरि करै अयाना।

हे नाथ! बालक पर अनुग्रह कीजियें। यह सी और दुधमुंहा है इस पर क्रोध न करिये। यदि यह आप प्रभाव से परिचित होता, तो ऐसी अज्ञानमूलक बातें कर आपका सामना क्यों करता?

जौ लरिका कछु अचगरि करहीं,
गुरु, पितु-मातु-मोद मन भरहीं,
करिय कृपा, शिशु सेवक जानी,
तुम सम, शील, धीर मुनि ज्ञानी।

यदि बालक कुछ अनुचित भी करते हैं, तो गुरु, माता, पिता प्रसन्न ही होते हैं। आप इस बाल

को अपना सेवक और लघु बालक समझकर इस पर अनुग्रह करें। आप समदर्शी, शीलवान्, धैर्यशाली, ज्ञानी महात्मा हैं।

राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने,
कहि कुछ लखन बहुरि मुसकाने,
हँसत देखि नख-शिख रिस व्यापी,
राम तोर भ्राता बड़ पापी।

राम का कथन सुनकर परशुराम कुछ शान्त हुये, किन्तु लक्ष्मण पुनः कुछ कहकर हँस पड़े। लक्ष्मण को हँसते देख कर परशुराम के नख से शिखा तक क्रोध व्याप्त हो गया और कहने लगे राम तुम्हारा भाई बड़ा ही पापी है।

गौर शरीर, श्याम मन माहीं,
कालकूट मुख, पय मुख नाहीं,
सहज टेढ़, अनुहरै न तोहीं,
नीच मीचसम लखै न मोहीं।

इसका शरीर भले ही गोरा है परन्तु मन काला है। यह स्वभावतः उलटी टेढ़ी बातें करता है। तुम्हारा और इसका तनिक भी साम्य नहीं। यह नीच मुझे मृत्यु के समान नहीं देख रहा है।

लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल,
जेहि वश नर अनुचित करहिं, चलहिं विश्व प्रतिकूल।

लक्ष्मण ने हँसकर कहा—हे मुनिवर! सुनिये क्रोध पाप का मूल कारण होता है, जिसके वशीभूत लोग

बड़े-बड़े अनर्थ कर डालते हैं और आचरण विश्व-समाज के विरुद्ध होता है।

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया,
परिहरि कोप करिय अब दाया,
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने,
बैठिय ह्वैहैं पाय पिराने।

हे मुनिवर! मैं आपका अनुचर हूँ। क्रोध को शान्त कर मेरे ऊपर दया कीजियें। क्रोध करने से यह टूटा हुआ धनुष जुड़ नहीं सकता। आप बहुत देर से खड़े हैं, आपके पैरों में दर्द हो रहा होगा। अब बैठ जाइयें।

जौ अति प्रिय, तौ करिय उपाई
जोरिय कोउ बड़ गुनी बुलाई,
बोलत लखनहिं जनक डेराहीं,
मष्ट करहु, अनुचित भल नाहीं।

यदि आपको यह धनुष बहुत प्यारा है, तो उपाय करियें और किसी बड़े गुणी तद्विषयक विशेषज्ञ को बुलाक पुनः जुड़वाइयें। लक्ष्मण की बातें सुनकर जनक भयभी हो रहें हैं और कह रहे हैं—चुप रहो इस प्रकार अनुचि बातें कहना ठीक नहीं।

थर-थर कांपहिं पुर-नर-नारी,
छोट कुमार खोट बड़ भारी,
भृगुपति सुनि-सुनि निर्भय वाणी,
रिस तन जरै, होय बल हानी।

लक्ष्मण की बातों से नगर के नर-नारी थर-थर क

रहे हैं और कह रहे हैं कि छोटा राजकुमार बहुत खोटा है। लक्ष्मण की निर्भय बातें सुनते-सुनते भृगुपति-परशुराम का शरीर क्रोध से जल रहा है, और बल क्षीण हो रहा है।

बोले रामहिं देय निहोरा,
बचौं विचारि बन्धु लघु तोरा,
मन मलीन, तन सुन्दर कैसे,
विष-रस भरा कनक घट जैसे।

रामपर उपकार लादते हुये परशुराम कहने लगे—तुम्हारा छोटा भाई मानकर इसको छोड़ रहा हूँ। इसका मन मलिन और सुन्दर शरीर वैसा ही है, जैसे विष-रस से भरा सोने का कलश हो।

सुनि लक्ष्मण बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम,
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि वाणी वाम।

यह सुनकर लक्ष्मण फिर मुस्करा पड़े। परन्तु राम के नेत्रों का संकेत पाकर वह संकुचित हो उठे और अनुचित-विरुद्ध कथनोपकथनों से विरत होकर गुरु के पास चले गये।

अति विनीत मृदु शीतल बानी,
बोले राम जोरि जुग पानी,
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना,
बालक बचन करिय नहिं काना।

तब राम करबद्ध होकर—हाथ जोड़कर अतीव विनीत भाव से कोमल और शान्त वाणी में कहने लगे-हे नाथ व से ही परम सज्जन और ज्ञानवान हैं।

इस बालक की बातों पर ध्यान न दें।

बररै बालक एक सुभाऊ,
इनहिं न संत विदूषहिं काऊ,
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा,
अपराधी मैं नाथ तुम्हारा।

बर्र और बालक एक ही स्वभाव के होते हैं। संत जन इन्हें दोषी नहीं मानते। इसके सिवा इस बाल ने तो कुछ बिगाड़ा भी नहीं है। हे नाथ! मैं ही आपक अपराधी हूँ—धनुष तोड़ने वाला।

कृपा, कोप, वध, बन्ध गोसाईं,
मोपर करिय दास की नाईं,
कहिय वेगि जेहि विधि रिस जाई,
मुनि नायक सोइ करिय उपाई।

अतः हे मुनिवर! अनुग्रह, कोप, वध, बन्धन आ जो कुछ करना चाहें उसका भोगी मुझ दास को बनाइयें। हे देव! आप शीघ्र ही बताइयें ऐसा कौन उपाय किया जायें, जिससे आपके रोष का उपशम हो

कह मुनि राम जाय रिस कैसे,
अजहुं बन्धु तव चितव अनैसे,
एहि के कण्ठ कुठार न दीना,
तो मैं कहा कोप करि कीना।

मुनिवर ने कहा—हे राम! मेरे रोष का शमन हो? अब भी तुम्हारा बन्धु वक्र नेत्रों से देख रहा यदि इसके गले पर कुठार से प्रहार न किया, तो कोप का महत्त्व ही क्या रहा?

गर्भ स्रवहिं अवनि रवनिप, सुनि कुठार गति घोर,
परशु अछत देखौं जियत, वैरी भूप किशोर।

मेरे जिस कुठार के भयंकर कामों को सुनकर बड़े-बड़े राजाओं की रानियों के गर्भ गिर जाते हैं, उस परशु के रहते इस वैरी राजकुमार को जीवित देख रहा हूँ।

वहै न हाथ, दहै रिस छाती,
भा कुठार कुंठित नृप घाती,
भयो वाम विधि, फिरेउ स्वभाऊ,
मोरे हृदय कृपा कसि काऊ।

हाथ उठ नहीं रहा है, रोष से छाती दहक रही है और महीपों पर प्रहार करने वाला यह कुठार भी आज कुंठित हो गया है। विधाता विपरीत हो गये हैं। मेरे स्वभाव में परिवर्तन हो रहा है। कुछ पता नहीं मेरे हृदय में कृपा भाव कैसे उमड़ उठा है।

आजु दैव दुख दुसह सहावा,
सुनि सौमित्र विहंसि सिर नावा,
बाउ कृपा-मूरति अनुकूला,
बोलत बचन झरत जनु फूला।

आज भगवान् मुझे असह्य दुःख सहन करने के लिये बाध्य कर रहा है। यह सुनकर सौमित्र-लक्ष्मण ने हंस कर सिर झुकाया-प्रणत हुये कहने लगे वाह री कृपा की महत्तम मूर्ति! ऐसे आपकी बातों से फूल झड़ रहे हैं।

जो पै कृपा जरैं मुनि गाता,
क्रोध भये तनु राख विधाता,
देखु जनक हठि बालक एहू,

कौन चहत जड़ यमपुर गेहू।

हे मुनिवर! कृपा से आपका शरीर जल रहा है, तो क्रोध करने पर विधाता ही उसकी रक्षा करते होंगे। यह सुनकर परशुराम ने कहा--हे जनक देखो, इस दुराग्रही बालक को! यह जड़बुद्धि अब यमपुरी को अपना निवास बनाना चाहता है-मरना चाहता है।

वेगि करहु किन आंखिन ओटा,
देखत छोट, खोट नृप ढोटा,
बिहँसे लखन कहा मनमाहीं,
मूंदे आंख कतहुं कोऊ नाहीं।

इसे शीघ्र ही मेरी आंखों के सामने से परे ले जाओ। यह नृप बालक देखने में छोटा तो है पर है बहुत खोटा-दुष्ट। यह सुन कर लक्ष्मण मन ही मन मुस्करा पड़े। और कहने लगे—आंख मूंद लीजिये, फिर वहां कोई दिखाई नहीं देगा।

परशुराम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोध,
शंभु शरासन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध।

तब परशुराम अत्यन्त क्रोध पूर्वक राम से कहने लगे—हे शठ! शंकर के धनुष को तोड़कर अब तू मेरा प्रबोध कर रहा है-मुझे ज्ञान सिखा रहा है!

बन्धु कहै कटु संमत तोरे,
तू छल विनय करत कर जोरे,
कर परितोष मोर संग्रामा,
नाहीं तो छांड कहाउब रामा।

तुम्हारा भाई तुम्हारी सहमति से ही कटु वचन बोल रहा है और तुम कपट भाव से हाथ जोड़ कर विनय कर रहे हैं। अतः अब या तो मेरे साथ संग्राम करके मेरा परितोष करो अथवा आज से राम कहलाना छोड़ दो।

छल तजि करहु समर शिव द्रोही,
बन्धु सहित न तु मारौं तोही,
भृगुपति बकहिं कुठार उठाये,
मन मुसकाहिं राम सिर नाये,

हे शिव के विरोधी! कपट भाव त्याग कर मेरे साथ संग्राम कर, अन्यथा मैं भाई सहित तुझे मार डालूंगा। इस प्रकार भृगुवर-परशुराम कुठार को ऊपर उठाये बकवास कर रहे हैं और राम नत-मस्तक हुये मन ही मन मुस्करा रहे हैं।

गुनह लखन करि हम पर रोषू,
कतहुं सुधाइहु ते बड़ दोषू,
टेढ़ जानि शंका सब काहू,
वक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू।

राम मनमें विचार करने लगे कि अपराधी तो लक्ष्मण है और यह मुनिराज क्षोभ मेरे प्रति प्रकट कर रहे हैं। कहीं सीधापन भी बड़ा दोषावह होता है। टेढ़ा जान कर सब लोग ससंकित होते हैं। टेढ़े चन्द्रमा को राहु भी ग्रस्त नहीं करता।

राम कहेउ रिस तजिय मुनीशा,

कर कुठार, आगे यह शीशा,
जेहि रिस जाय करिय सोइ स्वामी,
मोहिं जानि आपन अनुगामी।

राम ने कहा हे मुनिवर! रोष त्याग कीजियें। आपके हाथ में कुठार है और आपके सामने मेरा शिर है। जैसे भी आपका क्षोभ दूर हो, वही कीजियें मुझे अपना अनुचर मानकर।

प्रभु सेवकहिं समर कस, तजिय विप्रवर रोष,
वेश विलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोष।

स्वामी और दास के बीच युद्ध कैसा? हे विप्रवर! आप रोष से विरत-हों शांत हों। इस बालक का भी कुछ दोष नहीं है। आपका वीर वेश देखकर ही इसने कुछ कह डाला है।

देखि कुठार बाण-धनु-धारी,
भै लरिकहिं रिस वीर विचारी,
नाम जान पै तुमहिं नचीन्हा,
वंश स्वभाव उतरु तेहि दीन्हा।

कुठार-धनुष-बाणधारी देखकर इस लड़के ने आपको वीर पुरुष समझा और आप की बातें सुनकर क्षुब्ध हो उठा। यह आपके नाम को तो जानता था, किन्तु आपसे इसका कभी साक्षात् परिचय नहीं हुआ था। अपने वंश के स्वभावानुकूल ही इसने उत्तर दिया है।

जो तुम औतेउ मुनि की नाईं,
पद-रज शिर शिशु धरत गुसाईं,

क्षमहु चूक अनजानत केरी,
चहिय विप्र उर कृपा घनेरी।

यदि आप मुनि के प्रशांत वेश में यहां पधारते तो यह बालक अवश्य ही आपके चरणों की रज शिर पर धारण करता। आप इस अज्ञानमूलक भूल को क्षमा कर दीजियें। ब्राह्मण अन्तःकरण अत्यन्त करुणार्द्र होता है।

हमहिं तुमहिं सरवरि कस नाथा,
कहहु तो कहां चरण कहँ माथा,
राम मात्र लघु नाम हमारा,
परशु सहित बड़ नाम तुम्हारा।

हें नाथ! हमारी आपकी समता कैसे सम्भव है? कहां चरण और शिर? मेरा नाम तो छोटा-सा मात्र राम ही है और आपके नाम के साथ 'परशु' भी जुड़ा हुआ है—अर्थात् आपका नाम 'परशु राम' है।

देव एक गुण धनुष हमारे,
नव गुण परम पुनीत तुम्हारे,
सब प्रकार हम तुम सन हारे,
क्षमहु विप्र अपराध हमारे।

हे देव! मेरा तो एक मात्र गुण धनुष ही है और आप तो परम पवित्र नव गुणों से समलंकृत हैं। वह नव गुण हैं—शम (शान्ति), दम (इन्द्रियों का दमन) तप (कष्ट सहिष्णुता); शौच (पवित्रता), आर्जव सरलता ज्ञान विज्ञान (बुद्धि विवेक) और आस्तिकता। हम

आपसे हर तरह से हारे हुये हैं। हे विप्र देव! आप हमारे अपराध को क्षमा कर दें।

बार बार मुनि विप्रवर, कहा राम सन राम,
बोले भृगुपति सरुष तव, तुहूं बन्धु सम बाम।

राम परशुराम को बारंबार 'मुनिवर' 'विप्रवर' आदि कहकर संबोधित कर रहे थे। फिर परशुराम ने रोष पूर्वक कहा—"तुम भी अपने भाई की तरह विरोधी भाव रखते हो।

निपटहिं द्विज करि जानहिं मोहीं,
मैं जस विप्र सुनावौं तोहीं
चाप स्रुवा शर आहुति जानू,
कोप मोर अति घोर कृशानू।

तुमने मुझे कोरा ब्राह्मण ही समझ रखा है। मैं जैसा विप्र हूं, वह तुम्हें सुनाता हूँ। मेरा धनुष स्रुवा है, बाण आहुति है और मेरा क्रोध कराल अग्नि ज्वाला के समान है।

समिधि सेन चतुरंग सुहाई,
महा महीप भये पशु आई,
मैं यहि परशु काटि बलि दीन्हें,
समर यज्ञ जग कोटिन कीन्हें।

विशाल चतुरंगिणी सेनाएं हवन की समिधाएं (लकड़ियां) बनीं और महान महाराजाधिराज आकर बलिके पशु बने। मैंने इस परशु से उन्हें काटकर बलिदान किया है। इस प्रकार मैंने करोड़ों समर यज्ञ कर डाले हैं।

मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे,
बोलेसि निदरि विप्र के भोरे,
भंजेउ चाप दाप बहु बाढ़ा,
अहमिति मनहुं जीति जग ठाढ़ा।

मेरे प्रभाव से क्या तुम परिचित नहीं हो, जो मुझे सामान्य ब्राह्मण मानकर अपमान जनक बातें कर रहे हो ? धनुष के तोड़ने से तुम्हारा दर्प बहुत बढ़ गया है। इतना अधिक अहंकार, मानो अखिल विश्व पर विजय प्राप्त कर खड़े हो !

राम कहा मुनि कहौ विचारी,
रिस अति बढ़ि, लघु चूक हमारी,
छुवतहिं टूट पिनाक पुराना,
मैं केहि हेतु करौं अभिमाना।

राम ने कहा—हे मुनिवर ! विचार कर बोलिये। आप का रोष बहुत बड़ा है और मेरा अपराध बहुत अल्प है। यह पुराना धनुष हाथ लगाते ही टूट गया। इस के लिये मैं अभिमान कैसे कर सकता हूं ?

जो हम निदरहिं विप्र वदि, सत्य सुनहु मुनिनाथ !
तो जग को अस सुभट जेहि, भयवश नावहिं माथ।

हे मुनिवर ! सुनिये, मैं सत्य कह रहा हूं। यदि हम सामान्य ब्राह्म मानकर आपको अपमानित कर रहे हैं, तो जगत् में ऐसा कौन योद्धा है, जिसके समक्ष भयभीत होकर हम नत-शिर हो जायें।

देव, दनुज, भूपति, भट नाना,

सम बल, अधिक होय बलवाना,
जो रण हमैं प्रचारै कोई,
लड़ैं सुखेन काल किन होई।

देव, दानव, राजन्यवर्ग तथा अन्य जो नाना प्रकार योद्धा हैं, वे चाहें समान बल हों या अधिक बलधारी यदि हमें कोई संग्राम के लिये चुनौती देता है, तो वह का ही क्यों न हो, हम उससे प्रसन्नतापूर्वक युद्ध करेंगे।

क्षत्रिय तनु धरि समर समाना,
कुल—कलंक तेहि पामर जाना,
कहौं स्वभाव, न कुलहिं प्रशंसी,
कालहु डरैं न रण रघुवंशी।

क्षत्रिय की देह धारण कर यदि कोई युद्ध के भय से आ कित हो उठा हो, तो उसे कुल का कलंक और पामर (ही ही समझना चाहियें। मैं केवल स्वभाव बता रहा हूं, अ कुल की मिथ्या प्रशंसा नहीं करता। रघु के वंश में उत होने वाले युद्ध में काल से भी भय नहीं खाते।

विप्र वंश की अस प्रभुताई,
अभय होय, सो तुमहिं डेराई,
सुनि मृदु, गूढ़ वचन रघुपति कें,
उघरे पटल परशुधर मति के।

लेकिन ब्राह्मण-वंश का कुछ ऐसा प्रभाव है—कुछ महिमा है, कि जो सर्वत्र सर्वकाल अभय है, आपको ड है। राम के यह मृदु, सरल और गूढ़ रहस्यमय बचन सु कर परशुराम की बुद्धि पर पड़ा हुआ पर्दा दूर हो गया—

प्रबुद्ध प्रकृतिस्थ हो गये और कहने लगे—

राम रमापति कर धनु लेहु,
खैंचहु चाप, मिटे संदेहू,
लेत चाप आपहि चढ़ि गयऊ,
परशुराम मन विस्मय भयऊ!

हे राम! यह रमापति विष्णु का धनुष लो और इसे चढ़ाकर मेरे सन्देह का निराकरण करो। राम के हाथ में लेते ही धनुष चढ़ गया। यह सब देखकर परशुराम आश्चर्य चकित हो उठे।

जाना राम प्रभाव, तब पुलक प्रफुल्लित गात;
जोरि पाणि बोले वचन, प्रेम न हृदय समात।

जब परशुराम ने राम का यह विशद प्रभाव देखा—उनकी महिमा समझी, तब उनके अंग-प्रत्यंग पुलकित और प्रफुल्लित हो उठे। उनका अन्तःकरण अपरिमित प्रेम से भर गया, जो उसमें समा नहीं रहा है। वे करबद्ध बोल उठे :—

जय रघुवंश वनज-वन भानू,
गहन दनुज-कुल-दहन कृशानू;
जय सुर—विप्र—धेनु--हितकारी,
जय मद-मोह-कोह—भ्रम हारी।

हे रघुवंश रूपी कमल--उपवनके प्रफुल्ल बनाने वाले भानु व दानव-कुलरूपी जंगल को दग्ध कर देनेवाले प्रचण्ड अग्नि! आपकी जय हो। आप देव, द्विज और गो के शुभेच्छु हैं-संरक्षक हैं, अतः आपकी जय हो। आप मद, मोह, क्रोध और भ्रम को सर्वांश मिटा देने वाले हैं, अतः आपकी हम जय-जय

कार करते हैं ।

विनयशील करुणा--गुण-·सागर,
जयति वचन-रचना अति नागर,
सेवक सुखद, सुभग सब अंगा,
जय शरीर छबि कोटि अनंगा ।

आप परम विनम्र भाव रखने वाले हैं, करुणा और गु के सागर हैं तथा वचन-रचना में अति कुशल हैं। आप जय हो। आप सेवक को सुख पहुंचाने वाले हैं; आपके अं प्रत्यंग सुभग हैं-मनोहर हैं और शरीर से कोटि-कोटि का देवों का सौन्दर्य फूटा पड़ रहा है। आपकी जय हो।

करौं काह मुख एक प्रशंसा,
जय महेश-मन—मानस—हंसा,
अनुचित बहुत कहेऊँ अज्ञाता,
क्षमहु क्षमा—मंदिर दोउ भ्राता ।

मैं मुख से कहां तक आपकी एक-एक प्रशंसा करूं। महेश-मन--मानस-विहारी हंस! आप की जय हो। मैं अज्ञान वश बहुत-से अनुचित शब्द कह डाले हैं। हे क्षम मूर्ति दोनों वन्धु! आप उसके लिये मुझे क्षमा करें।

कहि जय—जय—जय रघुकुल-केतू,
भृगुपति गये वनहिं तप हेतू,
अपभय कुटिल महीप डेराने,
जहँ—तहँ कायर गवहिं पराने ।

हे रघुकुल--केतु राम! आपकी हम वारंबार जय--जय करते हैं। यह कहकर भृगुपति परशुराम ने तपस्या के लि

वन की ओर गमन किया। यह दृश्य देखकर दुष्ट राजा अकारण ही भय से आतंकित हो उठे और वे डरपोक यत्र-तत्र भाग कर छिपने लगे।

देवन दीनी दुन्दुभी, प्रभु पर बरसहिं फूल,
हरषे पुर—नर—नारि सब मिटी मोह—मय शूल।

देवताओं ने दुन्दुभी बजाई, प्रभु-राम पर चारों ओर से फूलों की वर्षा होने लगी। नगर के नर-नारी प्रसन्न हो उठे। उनके अन्तर में व्याप्त मोहमयी पीड़ा शांत हो गई।

अति गहगहे बाजने बाजे,
सबहिं मनोहर मंगल साजे,
यूथ-यूथ मिलि सुमुखि सुनयनी,
करहिं गान कल कोकिल बयनी।

अत्यंत प्रबल ध्वनि से नाना प्रकार के वाद्य बज उठे। और सब लोग मनोहर और मांगलिक साज से सुसज्जित हुये। विविध समूहों में संबद्ध होकर सुमुखी और सुनेत्रा नारियां अपनी कोकिला वाणी से मधुर गान करने लगीं।

सुख विदेह कर वरणि न जाई,
जन्म—दरिद्र मनहुँ निधि पाई,
विगत त्रास भइ सीय सुखारी,
जनु विधु उदय चकोर कुमारी।

जनक के आनन्द का वर्णन करना संभव नहीं, मानो जन्म का दरिद्री धन का विपुल भण्डार पा गया हो! सीताजी का भी भय दूर हो गया और प्रसन्नता हुई, जैसे चन्द्रोदय होने पर चकोर कुमारी प्रफुल्लित हो उठती हैं।

जनक कीन कौशिकहिं प्रणामा,
प्रभु—प्रसाद भंजेउ धनु रामा,
मोहिं कृतकृत्य कीन दोउ भाई,
अब जो उचित सोक हिय गोसाईं।

तब जनक ने विश्वामित्र को प्रणाम किया और कहा कि प्रभु के अनुग्रह से राम ने धनुष तोड़ दिया तथा दोनों भाइयों ने मुझे कृतकृत्य–सफल मनोरथ कर दिया। हे ऋषिवर! आज्ञा दीजिये। अब आगे क्या होना चाहिये?

कह मुनि सुनु नरनाह प्रवीना,
रहा विवाह चाप आधीना,
टूटत ही धनु भयौ विवाहू,
सुर–नर–नाग विदित सब काहू।

मुनि··विश्वामित्र ने कहा–हे परम प्रवीण राजन्! सुनिये। यद्यपि विवाह का आधार धनुष था. अतः धनुष के टूटते ही विवाह--कार्य संपन्न मान लेना चाहिये। क्योंकि देव, नर नाग आदि सभी इस तथ्य से परिचित हो चुके हैं।

तदपि जाय तुम करौ अब, यथा वंश व्यवहार,
बूझि विप्र, कुल वृद्ध, गुरु, वेदविहित आचार।

फिर भी अब आप जाकर कुलोचित व्यवहार करें और ब्राह्मण, कुलवृद्ध और गुरु के साथ परामर्श कर वेदमूलक विधि-विधान का आयोजन करें।

दूत अवधपुर पठवौ जाई,
आनहिं नृप दशरथहिं बुलाई,
मुदित राउ कह भलेहि कृपाला,

पठए दूत बोलि तेहि काला।

अवधपुरी को दूत भेजें, जो महाराज दशरथ को बुलाकर ले आयें। प्रसन्न होकर राजा ने कहा—हे कृपालु! बहुत अच्छा और तत्काल ही दूतों को बुलाकर अयोध्या भेजा।

बहुरि महाजन सकल बुलाये,
आय सबनि सादर सिर नाये,
हाट—बाट—मन्दिर-—सुरवासा,
नगर संवारहु चारिहुं पासा।

तदुपरांत जनक ने सभी महाजनों को बुलाया। उन सब ने आकर महाराज का सादर अभिवादन किया। जनक ने उन सबसे कहा—बाजार, राजपथ, भवन और देवालय और सारे नगर को चतुर्दिक सुसज्जित करो।

हरसि चले निज-निज गृह आयें,
पुनि परिचारिक बोलि पठाये,
रचहुं बिचित्र वितान बनाई,
सिर धरि वचन चले सचु पाई।

वे महाजन वहां से प्रसन्न मन चल पड़े और अपने-अपने घर आ पहुंचे। तत्पश्चात् राजा ने परिचारिकों (कर्मचारियों) को बुला भेजा और कहा—तुम जाकर रंग-बिरंगे मण्डप की रचना करो। वह सब राजा का आदेश शिरोधार्य कर प्रसन्नतापूर्वक चल पड़े

पठयें बोलि गुणी तिन नाना,
जे बितान विधि कुशल सुजाना,
विधिहिं वन्दि तिन कीन अरंभा,
बिरचे कनक कदलि के खंभा।

उन राजकर्मचारियों ने नाना प्रकार के कारीगरों को बुल भेजा, जो वितान (मण्डप) निर्माण-कला में पूर्ण कुश और प्रवीण थे। उन सबने विधाता की वन्दना क अपना कार्य आरंभ कर दिया और स्वर्ण--दीत केले के स्तम्भों की रचना की।

हरित मनिन के पत्र फल, पद्मराग के फूल,
रचना देखि विचित्र अति, मन विरंचि कर भूल।

हरित मणियों के पत्ते और फल बनायें तथा फूलों के स्थान पर पद्मराग जड़-दिये। मण्डप की यह विचित्र विविध रंगी रचना देखकर विधाताका मन भी भ्रमित हो उठा—अर्थात यह मानवीय रचना विधाता की रचना से भी अधिक मनोहर और सुयोजित थी।

वेणु हरित मणिमय सब कीने,
सरल सपरव परहिं नहिं चीन्हें,
कनक कलित अहिबेलि बनाई,
लखि नहिं परै सपरन सुहाई।

हरित मणियों (पन्नों) से सुगठित, सीधे गांठों से सम-लंकृत ऐसे बांसों का निर्माण किया, जिन्हें पहचानना असंभ था। स्वर्णमयी मनोहर नागवेलि तैयार की, जो पत्तों से समलंकृत थी जिसे देखकर जाना नहीं जा सकता था, कि प्राकृतिक है या कृत्रिम ?

तेहि के रचि-पचि बन्ध बनायें,
बिच—बिच मुक्ता—दाम सुहाये,
मानिक, मरकत, कुलिश, पिरोजा,
चीरि कोरि पचि रचे सरोजा।

उस नागबेलि से नाना प्रकार की रचना, पच्चीकारी बनाई और बन्धन के लियें उसी नागबेलि का रस्सी के रूप में उपयोगकिया। मानिक, मरकत, कुलिश, पीरोजादि रत्नों को चीरकर, उत्कीर्ण कर पच्चीकारी करके नाना रंगके कमलों की रचना की।

कियें भृंग, बहुरंग विहंगा,
गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा,
सुर—प्रतिमा मणि-खंभन काढ़ी,
मंगल द्रव्य लियें सब ठाढ़ी।

भृंग और बहुतेरे रंग-रूप के पक्षी बनायें, जो वायु का स्पर्श पाकर गुंजन और कूजन करते थे—चहकते थे। मणि-स्तम्भों में देवताओं की प्रतिमाएं उत्कीर्ण की गई थीं, जो मंगल वस्तुएं लियें खड़ी थीं।

सौरभ पल्लव सुभग सुठि, कियें नीलमणि कोरि,
हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाट मय डोरि।

नीलमणि को उत्कीर्ण कर अति सुन्दर आम के पल्लवों (पत्तों) की रचना की। सोने के बौर हैं और रेशम के धागे में बँधे हुये मरकतके आम्र-गुच्छ शोभायमान हो रहे हैं।

रचे रुचिर वर वन्दन वारे,
मनहुं मनोभव फन्द संवारे,
मंगल कलश अनेक बनायें,
ध्वज, पताक, पट चमर सुहाये।

ऐसे सुन्दर और रुचिकर वन्दन वार बनायें मानो स्वयं कामदेव ने अपने फन्दे सुसज्जित कियें हों। बहुत-मंगल-घट, ध्वज, पताका, परदे, और चमर आदि की मनोहर रचना की।

लोकमान्य तिलक

ले० हरिश्चन्द्र सिंह एम .ए.

हर देश में राष्ट्रीयता का उदय होता रहा है। किन्तु उसमें राष्ट्रीय किरण फूटने का अलग-अलग समय रहा है। रूस में लेनिन, अमरीका में लिंकन और भारत में तिलक का उदय इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान की बात वस्तुतः सत्य है कि लोकमान्य तिलक हमारे राष्ट्रनिर्माता थे, महात्मा गान्धी राष्ट्रपिता और पंडित जवाहरलाल नेहरू राष्ट्र उन्नायक।

पूर्ण स्वराज्य की मांग

लोकमान्य तिलक ही सबसे पहले भारतीय नेता हैं, जिन्होंने सन् १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में डंके की चोट पर पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने की घोषणा की। इसके पहले देश में आन्दोलनकारियों ने अपने आन्दोलन का चरम लक्ष्य ब्रिटेन के स्वशासी राज्यों की तरह एक राज्य बना रखा था। उन्होंने देश की आम जनता को पूर्ण राष्ट्रीय स्वराज्य प्राप्त करने की दिशा में चिन्तन करने की प्रेरणा दी। वे अधिकार पूर्वक कहा करते थे, "भले ही अधिक शक्तिशाली शासकों द्वारा प्रजा पर गुलामी लादी गयी हो। लेकिन उसे इस बात का अधिकार है कि वह अपने मन में पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता की आकांक्षा रखने तथा उसकी प्राप्ति के लिये दत्तचित्त होकर कार्य करे।

उग्रवादी

भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के इतिहास में तिलक और

उनके अनुगामियों को उग्रपंथी कहा गया है। इसका एकमात्र कारण था उनका पूर्ण स्वराज्य की मांग करना। उदारवादी कहलाने वाले आन्दोलनकारी इस बात से सहमत नहीं थे। उनकी मांग तथा उनकी राजनीति का सर्वोच्च ध्येय केवल सीमित स्वराज्य प्राप्त करना। वे कहलाने को उदारवादी और नम्रवादी थे। पर आचरण और दैनिक व्यवहार में उग्रपंथियों से भी उग्र थे। इसका प्रमाण हमें उनके उग्रतम विरोध से मिलता है।

स्वतन्त्रता का प्रश्न, जनता का प्रश्न

स्वनाम धन्य तिलक ने ही सबसे पहले यह अनुभव किया कि देश की अशिक्षित बहुसंख्यक जनता से सम्पर्क कर उसे जगाया जायें। उन्होंने जनता की भाषा में अपनी दो टूक बात कही और भारतीय वैदिक संस्कृति का आधार लेकर राष्ट्र की राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं को संगठित कर साकार रूप देने का प्रयास किया। वे जीवन भर भारतीय जन-मानस को जाग्रत, चैतन्य एवं सशक्त बनाने में जुटे रहे। फलतः जब राष्ट्रपिता अपने अहिंसक प्रतिरोध के संदेश को लेकर जनता के बीच आयें, तो वह उनके बलिदान और कष्ट सहन के इस सिद्धांत की व्यवहारिकता से सहमत हो गयी। इस तरह उन्होंने स्वराज्य और राजनीतिक प्रश्नों को मुट्ठी भर अंग्रेजी भाषी बुद्धजीवियों के हाथों से छीनकर, जनता के हाथों में सौंप दिया। सचमुच में कहा जाय तो महात्मागांधी ने तिलक द्वारा रखी आधार शिला पर ही हमें स्वराज्य दिलवाया।

लोकप्रियता का रहस्य

तिलक की लोकप्रियता महाराष्ट्र में ही नहीं, बल्कि सारे देश में थी। उन्होंने सम्पूर्ण देश का दौरा भी कई बार किया था। उनकी सभाओं में लाखों लोग इकट्ठे होते और उनकी कही हुई बातों को ध्यान से सुनते थे। अंग्रेजी सरकार जनता के ऊपर उनके बढ़ते हुयें प्रभाव को देखकर घबरा गयी। उससे उनके प्रभाव को खत्म करने के लिये पकड़ कर जेल में बन्द कर दिया। पर इसका परिणाम उल्टा ही हुआ। देशभर में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ लोगों में रोष भर गया। वे भारत के बिना ताज के बादशाह बन गये। गांधी जी ने उनकी लोकप्रियता का रहस्य समझाते हुयें यंग इंडिया में लिखा था, "देश प्रेम उनके हृदय की सबसे बड़ी तृष्णा थी। वही उनका धर्म था। वह जन्म से ही जनसत्ता पर विश्वास रखते थे। उनकी बहुमत पर इतनी गहरी आस्था थी कि मैं कभी-कभी उससे डर जाता था। परन्तु वही तो लोकमान्य के प्रभाव का आधार था। उनकी इच्छा शक्ति फौलाद के समान थी, जिसका उन्होंने देश के लियें उपयोग किया। उनका जीवन खुली पुस्तक के समान था। उनका निजू जीव निष्कलंक और शुद्ध था। जितनी दृढ़ता और स्थिरता से स्वराज्य धर्म का प्रचार लोकमान्य ने किया, उतना और किसी ने नहीं किया। यही कारण था कि उनके देशवासी उनपर पूरी श्रद्धा रखते थे।"

महान सज्जन पुरुष

जन नायक तिलक के महान व्यक्तित्व के बारे में सोचते न सोचते मुझे कार्डिवल न्यूमैन के शब्द याद आ जाते हैं, जो उन्हों ने सज्जन व्यक्ति के बारे में कहे थे, "वह उपस्थित

समुदाय के सभी व्यक्तियों पर समान दृष्टि रखता है, वह संकोची एवं लज्जाशील के प्रति कोमल, अपरिचित के प्रति शिष्ट, उद्धत तथा अशिष्ट के प्रति क्षमाशील होता है। उसे यह सदैव ध्यान रहता है कि वह किससे बात कह रहा है। वह असामयिक प्रसंगों को बचाता है और ऐसे विषयों को कभी नहीं छेड़ता, जिनसे दूसरे उत्तेजित हों। वार्तालाप के मध्य वह अपनी प्रमुखता कभी नहीं प्रदर्शित करता और न कभी दूसरों के बात करते समय वह अपनी उदासीनता या थकान प्रदर्शित करता है।" सचमुच में तिलक ऐसे ही सज्जन व्यक्ति थे।

कर्मयोग का संदेश

लोकमान्य का जीवन कर्मयोग का जीता-जागता दृष्टान्त था। उन्होंने प्रेय के मार्ग को छोड़कर श्रेय का मार्ग अपनाया। श्रेय का मार्ग और कुछ नहीं, अपितु स्वार्थ त्याग, तपस्या, परोपकार और निष्ठा का मार्ग है। इस पर चलकर हमें एक मंत्र दिया "विपत्तियों से घबराओ नहीं, क्योंकि उन्हीं से उत्थान होता है। कष्ट सहन करने से ही निर्जीवों में जान आती है। होनहार तो होकर ही रहती है। इसलिये निर्भय होना चाहिये और कभी डरना नहीं चाहिये। क्योंकि साहस तज देना ही मानो मनुष्यता खो देना है।" यह केवल उनका उपदेश नहीं था। स्वयं उन्होंने ऐसे कठिन मार्ग पर चलकर देश के सामने एक नया आदर्श रक्खा, जिससे लाखों देश भक्तों को प्रेरणा मिली। वे एक ऐसे अचल दीपक

बने कि उनसे छोटे-छोटे अनगिनत दीपक जल गये।

अंग्रेजी और मराठी के विद्वान

तिलक अंग्रेजी, संस्कृत और मराठी आदि भाषाओं के अच्छे जानकार थे। उन्होंने अंग्रेजी खूब पढ़ी थी। वे दूसरे लोगों को भी अंग्रेजी भाषा पढ़ने के लिये प्रोत्साहित करते थे। वे चाहते थे कि देश के नौजवान अंग्रेजी भाषा का अध्ययन कर पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को सीखें और देश की गरीबी को दूर करें। वे अंग्रेजी भाषा के खिलाफ कभी नहीं थे। पर अंग्रेजियत से उन्हें चिढ़ थी। वे नहीं चाहते थे कि लोग अंग्रेजी भाषा एवं शिक्षा ग्रहण कर अपनी मात्रभाषा, वेषभूषा, धर्म एवं संस्कृति को तिलजलि दे दें।

उन्हों ने भारतीय अर्वाचीन सभ्यता एवं संस्कृति को अन्धकार के गर्त से प्रकाश में लाने के लियें अंग्रेजी भाषा में चार पुस्तकें लिखी। उनका नाम है (१) ओरियन (२) आर्कटिक होम इन दी वेदाज (३) वेल्डियन वेदाज (४) मिसिंग कारिका इन सांख्याज। इन पुस्तकों में लेखक ने हिंदू धर्म, वेदों और आर्यों के मूल स्थान के बारे में विस्तार से लिखा है। इनका उद्देश्य केवल यह था कि विदेशों के लोग हमारे धर्म एवं उसके महान ग्रन्थों के बारे में ठीक ठीक जानकारी पा सकें। इन ग्रंथों का बखान मैक्समूलर और जैकेवियर जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने की है। इन ग्रंथों को उन्हों ने मौलिक विचारों से पूर्ण शोध की दिशा को बदलने वाला

और कई अंशों में क्रांतिकारी अंगीकार किया है।

इसके अतिरिक्त लोकमान्य ने पांच पुस्तकें मराठी में लिखी हैं। इनके नाम हैं (१) वेदांग ज्योतिष (२) वेदकाल निर्णय (३) आर्य लोगों का मूल स्थान (४) गीता रहस्य (५) हिन्दू धर्म का स्वरूप एवं लक्षण। इन पुस्तकों का अनुवाद देश विदेश के सभी प्रमुख भाषा ओं में हो गया है। 'गीता रहस्य' एक बहुत प्रसिद्ध एवं युगान्तकारी ग्रंथ है। इसके द्वारा तिलक ने भगवान् कृष्ण के अमर संदेश 'काम करो और फल की इच्छा ईश्वर पर छोड़ दो' को फिर एकबार दुहराया।

हिन्दी एवं देवनागरी लिपि के समर्थक

तिलक हिन्दी और देवनागरी लिपि के प्रबल समर्थक थे। वे देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी भाषा को सर्व श्रेष्ठ मानते थे। उन्हों ने मुद्रण की दृष्टि से इस लिपि में कुछ सुधार करने का प्रयत्न किया था, परन्तु सुधार भाषा की दृष्टि से अनुकूल सिद्ध न हुआ। सन् १९०५ में बनारस स्थित नागरी प्रचारिणी सभा में बोलते हुये आपने कहा था 'समस्त देश के लिये एक लिपि का होना राष्ट्रीय आन्दोलन का अविभाज्य अंग है और यदि आप देश को एकता के सूत्र में बांधना चाहते हैं तो इसके लियें सबसे शक्तिशाली माध्यम है एक भाषा जिसे सब लोग बोल सकें और लिख सकें। देशी भाषाओं में हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जो इस कार्य के लियें उपयुक्त सिद्ध होगी। अंग्रेजी हमारे देश की भाषा कभी नहीं हो

सकतीं और जिस दिन हो जायगी उस दिन यह समझ लेना चाहिये कि बर्बादी का प्याला भर गया है।'

स्वतन्त्रता संग्राम का अमर सेनानी देश के स्वतंत्र होने के २७ साल पहले पहली अगस्त सन् १९०२ को हमारे बीच से उठ गया और उसके साथ उठ गया हमारी आजादी के इतिहास का प्रथम युग। उनकी मृत्यु पर देश की जनता का शोक, अवसाद एवं दुख प्रकट करते हुयें लखनऊ के प्रसिद्ध शायर पंडित ब्रजनारायण 'चकबस्त' ने कहा था—

मौत का दर्द सोया है
वतन का सरदार
तनतना शेर का बाकी नहीं
सूना है कछार
बेबसी छाई है
तकदीर फिरी जाती है
कौम के हाथों से
तलवार गिरी जाती है।

गान्धी जी के शब्दों में "तिलक अपने देश के लियें जीवित रहें। अपने देश की स्वतंत्रता, जिसे उन्हों ने स्वराज्य कहा, उनके जीवन की प्रेरणा थी। उनकी मृत्यु शैया की प्रेरणा भी देश की स्वतंत्रता ही थी। भारत की भावी संतति के हृदय में यह भाव बना रहेगा कि लोकमान्य नवीन भारत के निर्माता थे। वह उनका यह कहकर स्मरण करेंगे कि एक पुरुष था, जो हमारे लियें ही जिया और हमारे लियें ही मरा।"

सफलता की सीढ़ी

(ले० आचार्य मित्रसेन एम. ए.)

संसार में जितने भी प्राणी दिखाई पड़ते हैं, वे सभी अपने जीवन में सफल होना चाहतेहैं, सभी को सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न भी करना चाहियें। परन्तु इच्छा अथवा प्रयत्न मात्र से ही सफलता प्राप्त नहीं हो सकतीं। इसके लिये योजना का निर्माण होता है, उस पर भली भांति यत्न किया जाता है तब व्यवहार में लाया जाता है तभी सफलता के दर्शन होते हैं। प्रश्न यह हो सकता है कि वे कौन से विचार हैं, कौन सी योजनायें हैं, जिन से सफलता मिल सकती है ? इसका उत्तर केवल एक शब्द में है और वह शब्द है 'यज्ञ', यज्ञ का तात्पर्य अग्नि में घी, सामग्री आदि का होम करना ही नहीं है। 'यज्ञ' शब्द बहुत ही व्यापक है, आज हम और आप इसी पर विचार करेंगे।

संसार के हित के लिये जो आत्म-त्याग किया जाता है, उसी को 'यज्ञ' कहते हैं। भारत के मानवों का सम्पूर्ण जीवन यज्ञमय है, यज्ञ से ही इसकी उत्पत्ति होतीं है और यज्ञ में ही इसकी अंत्येष्टि होती है। 'यज्ञ' शब्द का अर्थ जितनी पूर्णता के साथ आर्य अथवा भारतीयों ने माना है उतना अन्य किसी जाति ने नहीं। भारतीय वैदिक धर्म के सभी ग्रंथों में यज्ञ का विस्तृत वर्णन है। आदि धर्म-ग्रंथ वेद तो यज्ञमय ही हैं। एक भारतीय जो कर्म जीवन भर करता है, सब यज्ञ के लिये करता है। श्रीमद् भगवद् गीता के तीसरे चौथे अध्याय

में भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने यज्ञ का रहस्य अत्यन्त सुन्दरता के साथ बतलाया है। आप कहते हैं :—

यज्ञर्थाय कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं बन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय ! युक्त संगः समाचर ॥

अर्थात् यदि 'यज्ञ' के लियें कर्म नहीं किया जायगा, केवल स्वार्थ के लिये किया जायगा, तो वही कर्म बन्धन कारक होगा। इसलियें हे अर्जुन ! तुम जो कुछ कर्म करो सब के लियें करो। अर्थात्-संसार की कल्याण कामना से करो और अनासक्त होकर आनन्द पूर्वक आचरण करो। यज्ञ की उत्पत्ति बताते हुयें भगवान् कृष्ण कहते हैं :—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा, पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेव, वोऽस्त्विष्ट कामधुक् ।।

अर्थात्-प्रजापति परमात्मा ने जब आदिकाल में यज्ञ के साथ ही साथ अपनी इस प्रजा को उत्पन्न किया तब वेद द्वारा यह कहा कि, देखो ! इस यज्ञ से तुम चाहें जो उत्पन्न कर लो यह तुम्हारी कामधेनु है। 'यज्ञ' तुम्हारी सब मनोकामनाओं को पूर्ण करेगा। क्योंकि :—

देवान् भावयताऽनेन, ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः, श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

अर्थात्-इस यज्ञ से ही तुम देवताओं, सृष्टि की सम्पूर्ण कल्याणकारी शक्तियों को प्रसन्न करो। तब वे देवता स्वाभाविक रूप से तुमको भी प्रसन्न करेंगे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे को प्रसन्न करने से तुम सबका परम कल्याण होगा। क्योंकि—

इष्टान् भोगान् हि वो देवा, दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानऽप्रदायभ्यो यो, भुक्तस्तेन एव सः ॥

भाव यह है कि वे यज्ञ से प्रसन्न हुयें देवता लोग तुमको सब प्रकार से सुख देंगे। परन्तु उनके दिये हुयें उन सुखों को यदि तुम फिर उनको अर्पित किये बिना अकेले ही भोगोगे तो चोर बनोगे। क्योंकि यज्ञ द्वारा देवता लोग तुमको जो सुखद पदार्थ देंगे, उनको फिर यज्ञ के द्वारा अर्पित करके सुख का भोग करो। इस प्रकार सुख और भोग की यह शृंखला अविच्छिन्न बनी रहेगी, यज्ञ करके जो सुख भोग किया जाता है वही कल्याणकारी होता है। कहा भी है: —

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तोमुच्यते सर्व किल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापाये, पचन्त्यात्म कारणात् ॥

अर्थ यह है-यज्ञ करने के बाद जो शेष रह जाता है उसी का भोग करने से सारे पाप दूर हो जाते हैं, किन्तु जो पापी यज्ञ का ध्यान न रखकर, केवल अपने लियें ही भोजन बनाते हैं, वे पाप खाते हैं। बिना यज्ञ कियें भोजन करना मानो पाप का ही भोजन है। जिस अन्न का भक्षण हम करते हैं उसकी उत्पत्ति का प्रकार गीता में लिखा है :—

अन्नाद् भवति भूतानि, पर्जन्यादन्न सम्भवः ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि, ब्रह्माक्षर समुद्भवम् ।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म, नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।

अर्थात्-अन्न से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न वृष्टि से उत्पन्न होती है। यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है, कर्म वेद से

उत्पन्न हुआ जानो और वेद ईश्वर से उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार सर्वव्यापी ईश्वर सदैव यज्ञ है स्थित। अतः :—

एवं प्रवर्तितं चक्रंनानु, वर्त्तयतीह यः।
आद्यापुरिन्द्रिया रामो, मोघं पार्थस जीवित॥

भाव यह है कि परमात्मा के जारी किये हुये उक्तक्रम के अनुसार जो मनुष्य आचरण नहीं करता अर्थात् यज्ञ के महत्व को समझ कर जो नहीं चलता वह पापी मनुष्य अपनी इन्द्रियों के सुख में भूला हुआ इस संसार में व्यर्थ ही जीता है।

इससे अधिक प्रभावशाली शब्दों में यज्ञ के महत्व को नहीं समझाया जा सकता। लेकिन अत्यन्त दुःख की बात है कि हम लोगों ने यज्ञ करना छोड़ दिया है। यही नहीं अपितु हम में से अनेक सुशिक्षित कहे जाने वाले युवक तो यज्ञ का उपहास करते हैं। कृष्ण भगवान् की यह बात कि यज्ञ से वृष्टि होती है, उनकी समझ में नहीं आती। वे लोग कहते हैं कि सूर्य की गर्मी से जो भाप समुद्र और जलाशयों से उठती है उसी से वादल बनकर वृष्टि होती है। यह तो ठीक है परन्तु, क्या कारण है कि किसी वर्ष बहुत अधिक वर्षा होती है और किसी वर्ष विल्कुल नहीं होती? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि भाप तो बराबर उठती है परन्तु हवा बादल को इधर-उधर उड़ा ले जाती है और इसी कारण कहीं वृष्टि अधिक हो जाती है और कहीं बिल्कुल नहीं होती। उत्तर देने में तो कुशलता रही परन्तु हवा किन कारणों से ऐसा करती है? इसका कोई बुद्धियुक्त उत्तर नहीं दिया जा सकता। यही रहस्य है जिसे ऋषि-मुनियों ने समझाया है।

उनका कथन है कि यथाविधि हवन करने से मुख्यतः तो वायु की शुद्धि होती है, फिर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इत्यादि सभी भूतों पर यज्ञ का प्रभाव पड़ता है। अग्नि में घृत इत्यादि जो सुगन्धित और पुष्ट पदार्थ डाले जाते हैं, वे वायु में मिलकर सूर्य तक पहुंचते हैं और बादलों में मिलकर जल की भी शुद्धि करते हैं। महर्षि मनु ने कहा है :—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टि, वृष्टिरन्नं ततः प्रजाः॥

तात्पर्य यह है कि अग्नि में जो आहुति डाली जाती है वह सूर्य तक पहुँचती है, सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है और अन्न से प्रजा। इसके अतिरिक्त वायुकी शुद्धि से रोग भी नहीं होते। जबसे हमारे देश में यज्ञ बन्द हो गये और दूसरी ओर पश्चिमी कल कारखाने और रेलों के कारण वायु और भी अधिक दूषित हो गई तभी से इस देश में नानाप्रकार के रोग फैल गये।

रोग निवृत्ति के लिये अब भी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में यज्ञ आदि का आयोजन होता है और प्रायः उससे लाभ ही हुआ करता है। इससे अनुमान कर लेना चाहिये कि जिस समय भारत वर्ष में बड़े-बड़े यज्ञ होते थे, उस समय देश में आरोग्यता और सुख समृद्धि कितनी अधिक होगी। उस समय का वर्णन भविष्य पुराण में इस प्रकार से किया गया है :-

ग्रामे ग्रामेस्थितो देवः देशे देशे स्थितो मखः।
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने॥

अर्थात्-गांव गांव में देवता स्थिर हैं, देश देश में (भारत के प्रत्येक प्रान्त में) यज्ञ होते रहते हैं, घर घर में द्रव्य विद्यमान हैं और प्रत्येक मनुष्य धर्म स्थित है।

कुछ व्यक्तियों का कथन है कि देश की इस दरिद्रावस्था में घृत; मेवा, ओषधि तथा सुन्दर सुन्दर अन्न, खीर, हलुवा आदि अग्नि में फूंक देना मूर्खता है। इन पदार्थों को यदि स्वयं खाया जाय तो मोटे ताजे और पुष्ट होंगे। इसी स्वार्थ भावने देश को गर्त में डुबो रखा है। लोग ये जानने की चेष्टा नहीं करते कि यज्ञ जनता के हित के लिए स्वार्थ त्याग करने के हेतु ही होता है ब्राह्मण ग्रंथों में लिखा:-

यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते

इसका अर्थ है यज्ञ कार्य परोपकार और जनता के लिये होता है। हमारा निज का हित भी उससे पृथक नहीं है। यही बिचार भगवान कृष्ण का भी है।

साथ ही जिन पदार्थों को हम यज्ञ में होम करते हैं वे नष्ट नहीं होते।। जल, वायु और अन्न के द्वारा वे हमारे ही उपयोग में आते हैं। बुद्धिहीन यह समझते हैं कि इनका नाश हो जाता है। पर वास्तव में जो पदार्थ हैं उसका नाश तो हो ही नहीं सकता और जो पदार्थ हैं नहीं उसकी सत्ता हो नहीं सकतीं। गीता में भी कहा गया है:-

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत:।
उपयोरपि दृष्टान्तस्त्ययोस्तत्वदर्शिभिः॥

अर्थात् जो वस्तु है ही नहीं उसकी सत्ता कहां से हो सकती है और जो है उसका अभाव नहीं हो सकता। दोनों का

भेद तत्वदर्शी लोग जानते हैं। मूर्ख क्या जाने ? इसीलिये महर्षि दयानन्द ने भी लिखा-"जो तुम पदार्थ विद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते, क्योंकि, किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो जहां होम होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष की नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गंध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म हो के फैल कर वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गंध की निवृत्ति करता है।"

यज्ञ दो प्रकार के होते हैं। एक नैमित्तिक यज्ञ-जो किसी निमित्त से कियें जाते हैं। जैसे वाजपेय, राजसूय आदि। दूसरे नित्य के यज्ञ जो प्रत्येक मनुष्य को करने चाहिए। जिनको पंच महायज्ञ कहते हैं। महायज्ञ के अतिरिक्त पाक्षिक यज्ञ जो प्रत्येंक पूर्णमासी और अमावस्या को किया जाता है। नवशस्येष्टि नवीन अन्न के आने पर और संवत्स्येष्टि नवीन संयत् के प्रारम्भ में किया जाता है। इसी प्रकार यज्ञ की प्रथा यदि हमारे देश में प्रारम्भ हो जावे तो अतिवृष्टि, अनावृष्टि अनेक प्रकार के रोग दूर हो जावेंगे। देश की जनता में सुख शांति का प्रसार होगा जिसके लिए सम्पूर्ण विश्व के राजनीतिज्ञ, धार्मिक और सामाजिक नेता एडी चोटी तक का प्रयत्न कर रहे हैं। इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप भी विश्वका अधःपतन ही होता जा रहा है। किन्तु आज के प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा प्रतिपादित इस नियम से विश्व सुख की उपलब्धि कर सकता है। जीवन में सफलता प्राप्त करने की यही सच्ची सीढ़ी है।

भारत में संगीत की प्रगति

ले.— श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव
एम. ए., एल. एल. बी., एल. टी.

मनुष्य की अन्य विशेषताओं में वाणी का अपना स्थान है इसी के द्वारा कल्प कल्पान्तर में मनुष्य ने रागात्मिका वृत्ति के सहारे अपनी भावनावों का प्रस्फुटन किया था। क्रौंच पक्षी को देखकर महर्षि बाल्मीकि के गद्‌गद् कण्ठ से काव्य की धारा तो प्रवाहित हो ही उठी थी, किन्तु वह उनके कोमल हृदय का संगीत भी था। हृदयानुभूति को प्रकट करने के लिये संगीत मानव-सभ्यता का प्राचीनतम साधन रहा है। संसार की असभ्य से असभ्य जातियों में संगीत पाया जाता है। नदी के किनारे बैठे हुये चरवाहे की बाँस की बाँसुरी की मधुर ध्वनि जानवरों को बाँधे रहती है। मानव जाति के इतिहासमें सँपेरा अपनी तोंबी द्वारा सभ्यता के आगमन से पूर्व ही जीव-जन्तुओं पर संगीत का व्यापक प्रभाव सिद्ध करता आ रहा है।

संगीत के द्वारा मनुष्य सत्य की अभिव्यक्ति औ उल्लास तथा करुणा में अपने भावों का प्रत्यक्षीकरण करता है उसके प्रभाव में मादकता है, उन्माद है और एक स्पदन है। मनुष्य एकबार इसमें प्रवेश पा जाने पर पूर्णतया रम जाता है। जेठ की दुपहरी में हल चलाने वाले कृषक की मदिरा संगीत ही है, जो उसे कार्योन्मत्त

बनाये रखती है। प्रातःकाल घुमुर-घुमुर चक्की चलाने वाली स्त्री का संगीत उसकी हाला है जो उसका श्रम भुला देती है। मध्यकाल में रणोन्मत्त योद्धा नकारों और सहनाई की तुमुल ध्वनि में द्विगुणित उत्साह से युद्ध करते थे। आज भी ध्वनि प्रसारक यंत्र द्वारा प्रसारित बैंड की ध्वनि के साथ प्रातःकाल उठकर योरोपियन राष्ट्र मग्न होकर व्यायाम करते हैं। हमारे देश में भी प्रभात फेरियों द्वारा जनता की मनोवृत्ति में जो आशातीत जागृति हुई थी, उसे देखकर ब्रिटिश सरकार का हृदय दहल गया था। वास्तव में संगीत अलौकिक देन है, यह मनुष्य को देवता बना देता है। इसके द्वारा मनुष्य जीवन क्रमशः ऊपर को उठता जाता है।

गंगा यमुना की लोल लहरों की लोरियों की धुन के साथ गाने वाले पक्षियों में कोकिल की कुहुक ने तो आर्य-जाति के हृदय प्रसुप्त संगीत को जागृत कर दिया। मनस्वी आचार्यों ने संगीत के लियें सामवेद की रचना की। उन्हों ने नाद को ब्रह्म मानकर संगीत को पूर्ण कला का रूप दिया। गायन, वादन, और नर्तन उसके तीन अंग हैं, जिनका आधार शास्त्र है। इनमें से प्रत्येक एक दूसरे को पूर्ण बनाने में सहायक होता है। संगीत स्वर की भाषा है, किन्तु इस भाषा की पूर्णता तभी है, जब वह भावों की अभिव्यंजना करती है, रस की सृष्टि करती है, तथा कलाकार के हृदय का सजीव

चित्र खींच देती हैं। जब गायक और गान एक ह जाते हैं, तभी श्रोता भी अपने अस्तित्व की सुधि खोकर परमानन्द में लीन होता है।

वैदिक काल में सम्पूर्ण आर्यजीवन संगीतमय हो गया था। जन्मोत्सव से मृत्यु पर्यन्त सभी संस्कार संगीत के बिना अपूर्ण ठहरायें गयें थे। इस युग में धार्मिक उत्सवों में नृत्य-कला को उच्च स्थान प्राप्त हुआ। अंगों के परिचालन द्वारा हाथ तथा मुंह की मुद्रा और चेष्टा से चित्र बना देना कलाकार की सफलता तथा नृत्य-कला की पूर्णता के द्योतक हैं।

मुसलमानों का आगमन भारतीय संगीत के इतिहास में स्वर्ण--युग कहा जा सकता है। देश के नैराश्य-पूर्ण तथा अंधकारमय जीवन में दीनों पर दया दिखाने वाले दयावत्सल की प्रार्थना के लिये संगीत ही भक्तों की भावनारूपी पुकार का सर्वोत्कृष्ट साधन बना। हृदय से निकला हुआ संगीत संसार के किसी भी देश के लिये अनुकरण की वस्तु है। इसी संगीत के सहारे सारा हिन्दू-समाज राम और कृष्ण-मय हो गया। सूर, तुलसी और मीरा के मर्मस्पर्शी पद आज भी कानों में अमृत की वर्षा करते हैं। चैतन्य तथा विद्यापति के कोमल कान्त पद अब भी पूर्ण तन्मयता के साथ गायें जाते हैं। हरिदास और उनकी कला को सर्व-साधारण के हृदय में सब दिन के लिये बसा देने वाले तानसेन इसी शृंखला की पूर्ति करते हैं।

दो जातियों के संपर्क में विचारों का आदान-प्रदान स्वभाव-सिद्ध है। आर्य और मुस्लिम संगीत की गंगा जमनी से एक स्कूल का जन्म हुआ, जो हिन्दुस्तानी संगीत के नाम से प्रसिद्ध है। मुस्लिम राजसत्ता के युग में जिस संगीत का उपयोग भक्त-हृदय ईश-वंदना में करते थे, राजाश्रित गायकों ने उसी का आश्रय विलासिता की पूर्ति के लियें लिया। किन्तु औरंगजेब की कट्टरता के सामने संगीत की यह स्थिति भी न रह सकी, वह क्रमशः पतन की की ओर गया।

मुस्लिम शासन-काल में योग्य कलाकार राज्य की शीतल छाया में कला का समुचित विकास कर रहे थे, किन्तु अब समय के थपेड़े सहते हुये संगीत अंगरेजी सत्ता के आगमन के साथ ही महलों से मुहताज होकर झोपड़ियों की ओर करुण दृष्टि से देखने लगा। गवैयें अपनी जीविका के लियें जनता के सामने हाथ फैलाने को बाध्य हुयें, और इस दीनावस्था में संगीत की कला सस्ते दामों में बिकने लगी।

आज नाटक का स्थान सवाक चित्रपट ने ले लिया है। नाटक के युग में संगीत की अच्छी उन्नति हुई थी। व्यवसाय की दृष्टि से आधुनिक चित्रपट में संगीत की उन्नति भले ही संतोष जनक कही जाय, किन्तु कला की दृष्टि से अभी भारतीय फिल्म बहुत आगे भी नहीं है ग्रामोफोन और रेडियो ने इस युग में विशेष प्रगति की है।

शास्त्रीय संगीत के रूप में भारतीयों के सामने क का भव्य प्रासाद खड़ा हुआ है। जब देशवासी कला मूल तत्वों से परिचय प्राप्त कर रखेंगे, तभी कलाक की योग्यता का मूल्य आँका जाना संभव होगा। संगी से रस की सृष्टि होती है, किन्तु उसकी अनुभूति लिये हृदय के साथ ही स्वरों से परिचित कान चाहियें। इस हेतु समाज का कर्तव्य है कि वह अप शिक्षा-क्रम में संगीत को उचित स्थान देकर अपने हा में उस कार्य को ले ले, जिसकी पूर्ति प्राचीनकाल धार्मिक संस्थाएँ करतीं थीं।

यह युग परिवर्तन का है। अतः संगीतज्ञों को नवयुग का संदेश लेकर आगे बढ़ना चाहियें, और अपन कला को देश, काल एवं परिस्थितिके साँचे में ढाल क कर उस भावपूर्ण संगीत का निर्माण करना चाहियें, राष्ट्र के कल्याण में सहायक हो। इस कला पर न्यौछावर होने वाले वीरों की अधिकाधिक संख्या आवश्यकता है, जिससे इस जटिल जीवन संग्राम कठिनाइयों के बीच भी उसकी शुष्कता से दूर रहक मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध स्थायी बना रहे।

जीव-जन्तुओं का विनाश

ले.— डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'

धीरे धीरे संसार से प्राचीन जीव-जन्तुओं का लोप होता जा रहा है। यहां तक कि उनमें कुछ के नाम भर शेष रह गये हैं। पूर्वेतिहासिक काल में मैमथ नाम का एक प्राणी था। इसका संसार में अब नाम-मात्र ही रह गया है। रूस के पेट्रोग्राड (लेनिनग्राड) नगर के अजायबघर में इसके अस्थि-पञ्जर रखे हैं। इसका शव सैबेरिया के हिमावृत भूभाग में बर्फ के नीचे दबा हुआ मिला था उसी का यह अस्थिपञ्जर है। उसका पता रूसी सैनिकों को लगा था। एक बार जब वे वहां गश्त लगा रहे थे। तब उन्होंने भेड़ियों के दल को एक ग्लेसियर के टीले पर एकत्र देखा। उन्हें खदेड़ कर जब उन्होंने उस टीले को ध्यान से देखा तब वह उनको कुछ विचित्र सा मालूम हुआ, वह भूरा मायल और चमकीला सा जान पड़ा। इसके सिवा एक बड़ा भारी छिद्र भी देख पड़ा। सैनिकों का सरदार कुछ पढ़ा लिखा था। उसने सोचा, सम्भव है, इसमें मैमथ की लाश हो। अतएव उसने वहां पहरा बिठा दिया और सारा विवरण राजधानी को लिख भेजा। शीघ्र ही वैज्ञानिक लोग वहां आ पहुँचे और उन्होंने बर्फ के नीचे से मैमथ की एक समूची लाश खोद निकाली। बर्फ के नीचे दबी रहने के कारण वह नष्ट नहीं हुई थी। इसके बाल, चमड़ा, मांस, दांत ज्यों के त्यों सब मौजूद थे। केवल सूंढ़ का छोर जिसे भेड़ियों ने खुरच खाया था, नदारद था। वैज्ञानिकों ने उसकी खाल खींच और अस्थि-पञ्जर निकालकर उन्हें पेट्रो-

ग्राड भेज दिया, जहां खाल लगा कर वह जैसा का तैसा फि खड़ा कर दिया गया । इस प्रकार इस नाम शेष पूर्वैतिहासि काल के एक एक अद्भुत जन्तु का आकार-प्रकार जान सभ्य संसार को सुलभ हो गया । इस अतीतकाल के जन् के दांतों का व्यापार अभी तक होता है । पियानों बाजे के चाभी और दांत साफ करने के ब्रुश के दस्ते इसकी हड्डी बनाये जाते हैं ।

यह तो हुआ उन जानवरों में से एक का उदाहर जिनका अस्तित्व संसारमें नहीं है । अब उनका हाल सुनिए जो धीरे धीरे संसार से लोप हो रहे हैं । सभ्य देशों की जू अर्थात् पशु शालाओं में इनके नमूने हमें देखने को मिल सकते हैं। पहले ग्रेट ब्रिटेन में एक प्रकार की जंगली बिल्ली बहुतायत से मिलती थी । शिकार के पक्षियों को मार खाने में ये बिल्लियां बड़ी तेज होती हैं । इस कारण लोगों ने इन्हें फांस फांस कर मार डाला । पिछले समय में इनका एक-मात्र अड्डा स्काटलैंड का पहाड़ी भूभाग रह गया था । पर शिकारियों ने इसको यहां से भी निःशेष सा कर दिया है । यदि ये शीघ्र ही पड़ोस के किसी ऐसे निर्जन टापू में न कर दी जायँगी, जिसमें खरगोश खूब पायें जाते हों, तो शायद इस जाति का वंश और दो एक पीढ़ी तक न चल सकेगा । लन्दन के जू में हम इनका नमूना देख सकते हैं ।

इसी प्रकार न्यूजीलैंड के कीवी नामक अद्भुत पक्षी का भी विनाश हो गया है । यह बेचारा उड़ नहीं सकता । इसके पर बाल जैसे मालूम पड़ते हैं । इसके नथुनों के छिद्र चोंच के

सिरे पर होते हैं। दूसरे पक्षियोंकी तरह चोंच की जड़के पास नहीं होते। घ्राणशक्ति इसमें अद्‌भुत होती है। जमीन में अपनी चोंच गाड़ कर यह कीड़े मकोड़े खोज खोज कर खाया करता है। सदा छींकता सा ही रहता है, बारहों महीने जुकाम सा बना रहता है। परन्तु अब यह दुर्लभ सा हो गया है। इसके विनाश का कारण इसका अण्डा है। यह एक ही अण्डा देता है, जो आकार में इसके शरीर के बराबर होता है। अब तक तो इसका अस्तित्व मिट गया होता। पर यह रात में ही निकलना पसन्द करता है और अपने परों के रंग के कारण अन्धकार में दिखाई भी नहीं देता। इसी से आज भी इसका अस्तित्व बना हुआ है इसके सिवा न्यूजीलैंडकी सरकारने भी इसकी रक्षा का प्रबन्ध कर दिया है। इसका कारण यह वहां आज भी अपना अस्तित्व बनाए हुए है। लन्दन के जू में यह अद्‌भुत और दुर्लभ पक्षी अपने तृण के बिस्तरे में इस प्रकार छिपा सा बैठा रहता है कि दर्शकों को दिखाई ही नहीं देता।

वास्तव में आस्ट्रेलेशिया का विशाल भू-मण्डल विचित्र जीवों की निवास भूमि है। बत्तख की चोंचवाला और चिऊटीखोर जन्तु यहीं पाये जाते हैं। ये दोनों अण्डे देने वाले जन्तुओं की श्रेणी में गिने जाते हैं। लन्दन के जू में जो चिऊँठीखोर रहता में वह यहां कई वर्षों से है। तो भी वह अपने स्थान में छिपा सा पड़ा रहता है। कभी किसी को अपना मुँह नहीं दिखाता। जब देखो तब सिर छाती से लगाये पड़ा सोचा करता है। खाने की भी उसे सूर्यास्त की घंटी के समय ही चिंता होती है। वह चुपचाप अपने घास के विस्तरे पर पड़ा

रहता है। बत्तख की चोंचवाला जानवर पानी में रहता है उसके जहरीले कांटे होते हैं, पर उनका प्रयोग वह मनुष्य प नहीं करता। अभी तक यह लन्दन के जू में नहीं पहुंचा है इसका कारण इसके भोजन का प्रबन्ध न हो सकना है प इस पर विचार हो रहा है। वालूस नामक जो ध्रुव देशीय जन्तु जू में है उसके लिए भोज्य सामग्री उत्तरी ध्रुव से मँगाई जाती है। अतएव जू के अधिकारियों के लिए इस जन्तु के भोजनका प्रबंध कर लेना असम्भव नहीं है। जो वालूस जू में है उसके खाने में २५ शिलिंग रोज का खर्च बैठता है। उसका नाम ओल्ड बिल रक्खा गया है। यह पहला ही वालूस है जो इंग्लैंड का ग्रीष्म-ऋतु पार करने में समर्थ हुआ है।

परन्तु ये अद्भुत जन्तु अत्यधिक सावधानी रखने पर भी जू में प्रायः मर जाते हैं। ऐसे अप्राप्य जीवों का इस प्रकार मर जाना वास्तव में जू में एक खेद जनक घटना होती है। पैटागोनिया से ऐसे हंस का एक जोड़ा लाया गया था जो अब अप्राप्य है। वहां वे पक्षी जनवरी महीने में अण्डे देते थे। उस समय वहां ग्रीष्म-ऋतु होती है। अतएव यहां भी उन्होंने जनवरी में ही अण्डे दिये। जिसका फल यह हुआ कि शीत के कारण अण्डे न पके और उनकी वंश-वृद्धि न हो सकी। यह भी जू के लिये एक प्रकार की दुर्घटना ही हुई।

गोरीला का स्वभाव बड़ा तीखा होता है। जू में भी उसका कटु स्वभाव जैसा का तैसा ही बना रहता है। यहां तक कि उसके छोटे-छोटे बच्चे भी लाकर रखे गयें, पर उनके

स्वभाव में भी अन्तर नहीं हुआ। चिम्पान्जी का बच्चा तो रक्षकों को बहुत ही तंग करता है। वह यही चाहता है कि कोई न कोई उसके पास हर वक्त बैठा रहे। अतएव जब कभी रक्षकों को किसी कार्य वश बाहर जाना होता है तब वे बेचारे उसके पिंजड़े में बन्दर बिठाकर अपने काम को जाते हैं। पर गोरीले के बच्चे को इसकी रत्ती भर परवाह नहीं रहती। कोई उसके पास रहे या नहीं रहे। यदि उसके पास कोई आदमी सदा बना रहे और उसके साथ प्रेम का व्यवहार किया करे तो धीरे-धीरे वह सध भी जाता है। जू का जान डेनियल नामक गोरीला ऐसा ही था। वह कायदे के साथ चाय पी लेता था। वास्तव में जो स्त्री उसकी रक्षक थी उसके वह वशीभूत हो गया था। जो आज्ञा वह देती थीं उसका पालन वह एक बच्चे के समान करता था। एक अमेरिकन उसे मोल लेकर अमरीका ले गया था, पर वहां पहुंचते ही मर गया। यही एक गोरीला अबतक मनुष्य के वश में आ सका है।

गोरीला श्रेणी के बन्दरों का भी धीरे-धीरे नाम निशान मिट रहा है। ये अब केवल पूर्वी अफ्रीका के कीयू नामक देश में मिलते हैं। इनका विनाश न हो जाय, इस बात की व्यवस्था की ओर सरकार का ध्यान गया है। गोरीला फल खाकर रहता है और वह मनुष्य पर चोट नहीं करता।

परन्तु संसार में जिन जन्तुओं का नाम शेष हो रहा है और जिनके लिये देश के भाग विशेष रक्षित कर दिये गये हैं वे स्वयं कभी-कभी अपने अनाचार से मनुष्य के इस प्रबन्ध में

गड़बड़ कर बैठते हैं। उदाहरण के लिये दक्षिण-अफ्रीका के अडोब्रुश नामक स्नान के हाथियों को ही लीजिये। सरकार द्वारा में रक्षित ठहरा दिये गये थे, उनका शिकार करना वर्जित कर दिया था। पर जब वे पड़ोस की खेती उजाड़ने लगे तब उनके मार डालने का हुकम अन्त में सरकार को दे ही देना पड़ा। फलतः यहां के सब हाथी मार डाले गये।

इसी प्रकार का हाल अनेकानेक जीव जन्तुओं का है यदि उनके संरक्षण का प्रवन्ध अभी न किया तो बहुत से जीव जन्तु इस संसार से निःशेष हो जायेंगे।

⁂

धर्म+संस्कृति+उपासना और ज्ञान का
प्रचारक मराठी मासिक
श्रीधर संदेश
वार्षिक चंदा ४)रु. वी. पी. की पद्धत बंद है।
नामूनांक के लिये ६० पैसे के टिकट भेजें
श्रीधर संदेश कार्यालय
७२२, सुन्दर नारायण, नासिक शहर

'मानस' के घाट पर चार संवाद

ले. गोस्वामी बालक, साहित्य रत्न, शिक्षा विशारद

'मानस' में चार संवादों की योजना की गई है। यों तो संवादों की कथा प्राचीन है, परंपरा पोषित है तथा पुराण प्रतिपादित है; परन्तु मानस में इसका प्रयोग अधिक सारपूर्ण है। यह प्रयोग विशेष अभिप्राय–प्रेरित है तथा इसकी योजना कलात्मक दाक्षिण्य का चरम विराम है

मानस की संवाद योजना कथारंभ का बहाना मात्र नहीं और न इसमें 'लकीर का फकीर' शृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी जोड़ने का प्रयास भर है। कल्पना–जन्य नवीनता यहाँ अर्थ–पूर्ण व्यवहारिकता से परिपुष्ट होकर विचित्रता को अनुभव की सीमा में ला सकी है। मानवीय स्वभाव का ज्ञान तथा लौकिक अनुभव, कार्य–सफलता के हेतु बड़ी निपुणता से संयोजित कियें गयें हैं। कहानी की कला, पुराण की परिपाटी और वर्णनात्मक विशिष्टता त्रिवेणी इस अभूत·पूर्व योजना द्वारा संघटित हुई है।

यें संवाद मानव काव्य के 'घाट मनोहर चारि' हैं। यें कथावस्तु की सीमा का निर्धारण करते हैं। यों तो 'हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता' है, परन्तु 'मानस' में जो कथा वर्णित है, उसकी रूपरेखा तथा उसका घटना प्रवाह इन चारों संवादों द्वारा निश्चित कर दिया गया है, उसकी परम्परा निर्धारित कर दी गई है और वह इस प्रकार है:—

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा।
बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा॥
सोइ शिव काकभुसुंडिहिं दीन्हा।
राम भगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक मुनि पावा।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

ये सब भक्त हैं और भगवान राम का गुणगान करते हैं। इन्हें भगवान राम का वही रूप प्रिय है, जो दीनों का दुख दूर करता है, जो पतितों का उद्धार करता है, जो भक्तों का योगक्षेम वहन करता है, और जो दुष्टों का दलन करता है। मानव राम के गुणों और कार्यों की सार्थकता इनके लिये मुख्यतः इसी में हैं, कि उनके इस चरित्र को गाने से इनकी भक्ति दृढ़ होती है, उनमें इनकी भक्ति को आधार मिलता है। 'रामचरितमानस' की 'बाल्मीकि रामायण' से जब तुलना की जाती है, तब यह बात भुला दी जाती है। दोनों महानुभावों ने एक ही 'राम' को अपने-अपने दृष्टिकोणों से देखा है और अच्छा देखा है।

एक के 'राम' पुरुषोत्तम हैं और दूसरे के परात्पर ब्रह्म। एक उनको मानवीय गुणों की पराकाष्ठा समझता है और दूसरा निखिल ईश्वरीय विभूतियों का विधान। एक के राम मनुष्योचित कार्यों को करते हुये मानवीय-आदर्शों के प्रतीक हैं और दूसरे के राम मायावपुधारी हैं, मनुष्यों के से केवल आचरण करते हैं, मनुष्य हैं नहीं।

जैसे, घाट सरोवर के सौन्दर्य और भव्यता में वृद्धि करते हैं, वैसे मानस के ये संवाद भी कथा-वस्तु को अलौकिक गरिमा और अनुपम श्री प्रदान करते हैं। कथा के प्रवहमान स्वरूप को अनिश्चितता की ओर उन्मुख नहीं होने देते, न दीर्घता के इस विशाल आयोजन में नीरसता आने देते। वर्णन की निरंतरता जब श्रमकारक प्रतीत होने लगती है; तब ये संवाद सांस लेने का अवसर प्रदान करते हैं। जब कोई रहस्य मन को उलझन में डाल देता है, तब ये अविलम्ब उसकी गुत्थियों को सुलझाकर उसे प्रकृतिस्थ बनाते हैं, जब कथा की विचित्रता आश्चर्य की सृष्टि करके मानसिक चकाचौंध उत्पन्न करती है, तब ये उसकी वास्तविक पृष्ठभूमि की स्पष्टता को सामने लाकर उसके सुचारू दर्शन की व्यवस्था करते हैं, जब विश्वास को कहीं लटपटाने का स्थल मिल जाता है, तब ये उसे संभालकर उसमें नवीन दृढ़ता का संचार करते हैं। ये संवाद क्या हैं, कथा-जल तक पहुंचने के लिये सुंदर सीढ़ियां हैं।

इन संवादों की योजना केवल कथा के स्वरूप-निर्णय तथा घटना-क्रम के निर्वाह के लिये ही हुई—यह बात गले के नीचे इतनी सरलता से नहीं उतरती। बिना संवाद के अथवा एक दो संवादों से भी यह काम सफलता पूर्वक हो सकता था। इस संवाद-चतुष्टय के पीछे कोई विशेष मंतव्य होना चाहिये।

इसका कारण समझने के लिये गोस्वाजी का टटोलना पड़ेगा। उनकी राम-कथा संबंधी धारणा की करनी होगी। उनका मत था कि—

"राम-कथा जे सुनत अघाहीं।
रस बिसेस जाना तिन नाहीं॥"

राम-कथा कुछ ऐसे विशेष रस से ओत-प्रोत रहती कि, उसे सुन-सुन कर मन ऊबता नहीं, उससे विरत होने जी नहीं चाहता। कथा-श्रवण से संतुष्ट हो जाना अ अरसिकता का प्रमाण देना है। गोस्वामीजी निरे संत ही थे, संसार का अनुभव भी रखते थे। वे रुचि-विभिन्नता स्वीकार करते थे। निरसता उत्पन्न तो न होनी चाहिये, उसकी संभावना की ओर से वे आंखें किस प्रकार मूंद स थे? मनुष्य का मन ही तो है, ऊब ही गया तो? इस क गोस्वामीजी को अपनी राम-कथा को कुछ ऐसे तत्व संयुक्त करना आवश्यक प्रतीत हुआ, जिससे श्रोता को विरस होने का अवसर ही न मिले। इन चारों संवा रूप में उन्होंने पाठकों की सतत् तल्लीनता का साधन प्र किया। पाठक कभी शिवजी से कथा सुनता है, तो काकभुशुंडि से, कभी याज्ञवल्क्य की मंडली में जा बैठता तो कभी स्वयं गोस्वामीजी की सभा का आनन्द लूटता कथा तो एक ही है, पर भिन्न-भिन्न लोगों से सुनने से बहलाव भी होता है और चित्त-लगाव भी।

पौराणिक परम्परा सम्वादों को परिचायक मात्र देतीं रही है। कथारंभ के वास्ते वक्ता और श्रोता का

आवश्यक है; अतः यह शिष्टाचार निभा दिया जाता था। इसके बाद वक्ता और श्रोता कार्य-क्षेत्र से परे हट जाते थे और कवि अपना मनमाना वर्णन करता चलता था। 'सूतोवाच' के पश्चात् फिर कहीं सूत का पता न चलता था। पाठक तथा श्रोता संभवतः उनके अस्तित्व को भी स्मृति-पटल से मिटा देते थे और उनका पुनर्स्मरण तभी होता था, जब दूसरी बार कहीं 'सूतोवाच' उच्चरित होता था। इसे कहने या न कहने से कथा-प्रवाह में कोई अन्तर भी नहीं पड़ता था।

परंतु तुलसी के संवादों के वक्ता और श्रोता कथा के अभिन्न अंग बन गए हैं। वे कथा को कहते मात्र ही नहीं उसके प्रवाह में भी योग देते हैं। वे कथा सुनते भर ही नहीं, प्रत्युत उससे प्रभावित होकर अपनी ग्रहणशीलता का परिचय भी देते हैं। कहीं वे भाव-पूर्ण स्थल की रमणीयता तथा संवेदनशीलता पर मनोमुग्ध होकर आनंद-सिन्धु में गोते लगाते हैं, तो कहीं किसी विनोदात्मक प्रकरण पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। कहीं उनकी निश्चलता और मौन बोलने लगता है तो कहीं उनकी आंगिक चेष्टाएं ही वाणी को अपदस्थ कर देती है। "भारद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥" को पढ़ते ही नेत्रों के समक्ष पार्वती की स्निग्धस्मित युक्त वह लज्जाशील मुद्रा अपने आप उपस्थित हो जाती है।

ऐसी सक्रिय और स्फूर्तिमय वातावरण के सुखद जाल में से मन छुटकारा पाने की चेष्टा करे तो कैसे करे ? और कहीं

किसी कारणवश इधर-उधर भटकने की प्रवृत्ति हुई भी तो को न कोई सचेत कर ही देता है। कहीं शिवजी बोल उठते हैं, तो कहीं याज्ञवल्क्य जी। कहीं कागभुशुंडि जी ध्यान खीं लेते हैं, तो कहीं गोस्वामी जी ही सजग कर देते हैं।

रामचरित मानस का अध्ययन मात्र अध्ययन ही नहीं है प्रत्युत एक मंडली में बैठकर कीर्तन करना है, जिनमें व्यक्ति का लोप-सा हो जाता है; वैयक्तिक मन सामूहिक मन अंतर्निहित हो जाता है। वक्ताओं द्वारा समय-सम पर उद्‌बोधन होते रहने से श्रोता का ध्यान सदैव-जागृत औ आकर्षित रहता है। यह उद्‌बोधन कहानी कला की जान है

जब शिवजी कहते हैं कि-"अपर हेतु सुनु सैल कुमारी तो मात्र पार्वती जी ही नहीं, वरन् सभी श्रोता तथा पाठ अपनी उत्सुकुता को एकत्रित कर उसे सुनने के लिये आकु हो जाते हैं।

जब याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि-" सुनु मुनीस मन ला तो फिर 'मुनीस' अथवा किसी अन्य श्रोता के मन को इध उधर भटकने का मार्ग ही नहीं मिलता।

जब हम पढ़ते हैं कि, "यह सब रुचिर चरित भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा॥" तो विरत होत हुआ मन तुरन्त पलथी मारकर बैठ जाता है और तन्मय का पल्ला पकड़ लेता है।

इसी प्रकार जब शिवजी "औरेउ एक कहउँ निज चोरी सुनु गिरिजा अति दृढ़मति तोरी॥" कहकर अपना भेद खो हैं, तो गिरिजा के साथ-साथ हमारे आप के कान खड़े

जाते हैं। उस चोरी को सुनने के लिये मन मचलने लगता है, लालसा की लार टपकने लगती है और हमारा मन कथा के हाथों बिक-सा जाता है। अवसर और स्थान का सदुपयोग व्यवहारिकता की चरम है। कुछ ऐसे भाग्यशाली होते हैं, जो इस क्षमता की पूरी-पूरी गठरी विधाता से छीन लेते हैं, गोस्वामी जी इन्हीं में से थे।

इतनी बड़ी प्रथा में इन संवादों का ठीक समय पर स्वाभाविक रीति से उपयोग कर लेना तथा परिस्थिति की अनुकूलता में नगीने की तरह जड़ देना उनकी असाधारण प्रतिभा और धारणा-शक्ति का ज्वलंत उदाहरण है।

गोस्वामी जी ने आदि से अन्त तक राम के ब्रह्मत्व को अक्षुण्ण रखा है। उनके व्यक्तित्व की प्रभ-विष्णुता को असीमित सिद्ध किया है। राम के ईश्वरत्व पर उन्होंने कुछ भी आंच नहीं आने दी है। अपने इस प्रयत्न में उन्होंने इन संवादों का बहुत ही सफल और प्रभावोत्पादक प्रयोग किया है। माया की चपेट में आकर सांसारिक प्राणी राम के संबंध में उनके मानवोचित कार्यों के कारण किसी भ्रम-पूर्ण निर्णय पर न पहुंच जाएं और इस प्रकार उन्हें साधारण मनुष्यों की कोटि में रखकर उनके विषय में किसी भ्रांत धारणा को अपने मन में स्थान न दे दें—इस चिन्ता ने उन्हें सदैव सचेत और सजग रखा है। जहां भी ऐसे भ्रम के उत्पन्न होने की सम्भावना हुई है, वहां उनकी सतत् सावधानता उसके निराकरण का मार्ग प्रस्तुत करने में निरालस्य कार्यरत रही है। शंका के बादल एकत्र होने के पूर्व ही समाधान प्रभंजन द्वारा छिन्न-भिन्न

कर दिये गये हैं। यह कार्य वे अपने निजी कथनों से भी कर सकते थे; पर उसका प्रभाव सीमित होता। संभव है न भी होता। वे ही कथन शिव सदृश्य देवता, याज्ञवल्क्य जैसे ज्ञानी तथा काकभुशुंडि के समान भक्त द्वारा कराकर उनको संदेह की परिधि से बाहर कर दिया गया है।

इन संवादों का प्रकरण रखकर पात्रापात्र के विचार करने का बहुत उपयुक्त साधन प्रस्तुत किया गया है। रामकथा के श्रोता किन गुणों के आश्रय होने चाहियें, कथा कहने के लियें उपयुक्त समय और उचित प्रणाली का क्या विधान होना चाहियें तथा इसके लियें अनुकूल परिस्थितियाँ कौन सी हैं—इन सबका अंगुल्यानिर्देश कर दिया गया है।

पात्रता का प्रथम लक्षण है—उत्कट जिज्ञासा। कथा सुनने के वास्ते श्रोता में भावना की प्रबलता अपरिहार्यता की श्रेणी तक होनी चाहियें। उसके मन में होनी चाहियें वह लालसा, जो थामे न थमे, वह उत्साह जो रोके न रुके और वह विह्वलता, जो संभालने से न संभले। उसका आग्रह इतना प्रेम-पूर्ण हो कि वक्ता को सुनाने के सिवा कोई चारा ही न रह जाए। "भरद्वाज राखे पद टेकी" में भक्त की इसी उत्कट इच्छा, उसकी प्रबल-निष्ठा तथा आग्रह-पूर्ण अनुनय का प्रमाण मिलता है।

राम कथा के श्रोता में रामके प्रति अटल विश्वास भी होना चाहियें। "संशयात्मा विनश्यति" का सिद्धान्त तो प्रायः सर्वत्र ही खरा उतरता है, पर यहां तो इसकी

सत्यता अक्षरशः प्रमाणित हो जाती है विश्वास के अभाव में सारा सुना सुनाया "मरुस्थल की वर्षा" ही हो जाता है और ऊपर से भ्रम की अटूट बेड़ी पैरों में पड़ जाती है। जब तक विश्वास की अटलता की प्रतिश्रुति नहीं मिलती, वक्ता का मन खुलता ही नहीं। इसके प्राप्त होनेपर शिवजी कहते हैं:—

"औरउ एक कहउँ निज चोरी।
सुनु गिरजा अति दृढ़ मति तोरी॥

बिना 'दृढ़मति' के कथा सुनना ऊसर में बीज बोना है। जिज्ञासु श्रोता को अवसर की पहचान भी होनी चाहिये। इसी कारण—"पारबती भल अवसर जानी।
गई संभु पहँ मातु भवानी॥

भरद्वाज जी भी याज्ञवल्क्य की प्रासंगिक उपस्थिति से लाभ उठाने की बात नहीं सोचते, अपितु उन्हें सादर रोक रखते हैं। जो जिज्ञासु न आव देखता है न ताव, बस उतावली में अपनी हाँक बैठता है, उसे संभव है हाथ ही मलना पड़े जैसे शिवजी ने गरुड़ से कहा था:-

'मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोहीं।
कवन भाँति समुझावौं तोहीं॥"

इसके साथ ही जिज्ञासु के प्रश्न करने के ढंग में वाणी की मधुरता होनी चाहिए। लट्ठमार रीति से प्रश्न पूछना, अपनी अयोग्यता का डंका पीटना है। अनुनय और नम्रता की सरसता से वाणी को ऐसा कर्ण-प्रिय बनाना चाहियें कि,

वाणी, वाणी को मुखर कर सके। भरद्वाज ने जिस रीति प्रश्न किया था, उसका भव्यरूप देखते ही बनता है :—

"सादर चरन सरोज पखारे।
अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजस बखानी।
बोले अति पुनीत मृदु बानी॥
नाथ एक संसउ बड़ मोरे।
करगत वेद तत्त्व सब तोरे॥
कहत सो मोहिं लागत भय लाजा।
जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥"

उसी प्रकार पार्वती जी का करुण तथा आर्त पुकार युक्त निवेदन हृदय को बलात् द्रवित करने का साम रखता है :—

"विस्वनाथ मम नाथ पुरारी।
त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी॥
जौं मोपर प्रसन्न सुखरासी।
जानिअ सत्य मोंहि निज दासी॥
ससि भूषण अस हृदय विचारी।
हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥"

मानस के आध्यात्मिक दृष्टिकोण के आधारस्तम्भ त कथा के भौतिक स्वरूप के प्रबल साक्षी ये चारों संवाद क की सृजनात्मक कल्पना के वास्ते श्रेय की वस्तु तो हैं साथ ही वर्णनात्मक सुविधा और अवसर की अनुकूलता प्र

करने के अत्यंत सुलभ अस्त्र भी सिद्ध हुए हैं। कथा-भार को वहन करने के लिए ये चारों संवाद सुदृढ़ रथ के चार पहिये प्रमाणित हुए हैं और अपनी क्षमता तथा तत्परता से अपने निर्माता की कुशलता-पूर्ण कारीगरी का सौंदर्य-पूर्ण विज्ञापन करते हैं। गोस्वामी जी ने इनको इतनी दक्षता से नियोजित किया है कि न तो इन्होंने कभी अपनी लीक से अपना मार्ग कहीं बदला और न कभी अपनी चर-चराहट से अपनी किसी असमर्थता का आभास ही दिया।

कथा के इतने बृहद् विस्तार में इन चारों संवादों ने अपनी-अपनी भूमिका इतनी तत्परता और प्रवीणता से निभायी है कि, इनके सूत्रधार की सूक्ष्मदर्शिता आश्चर्य का विषय बन जाती है, उसके विश्लेषण की कुशलता ईर्ष्या का कारण हो जाती है और उसकी धारणा शक्ति मानवीय स्पर्द्धा का आदर्श उपस्थित करती है।

सुखमार्ग

मासिक-पत्र

सुख सम्पति पाने के लिये सामाजिक, धार्मिक, वैद्यक एवं स्वास्थ्य आदि सभी सामयिक समस्याओं से ओत-प्रोत ४० वर्षों से भारतीयों में जागरण का शंखनाद करने वाले सचित्र 'सुखमार्ग' को अवश्य पढ़ें। यह बड़े-बड़े विद्वानों के लेख लेकर हजारों की संख्या में छपता है। विशेषांक भी निकलते हैं। प्रश्न उत्तर और लेख समाचार मुफ्त छापता है। वार्षिक मूल्य केवल १) नमूना मुफ्त।

पता—सुखमार्ग, केमीकल प्रेस, अलीगढ़

हमारी खाद्य--समस्या और चूहे

ले० कौटिल्य उदियानी

हमारा देश एक लम्बे अरसे से खाद्य-समस्या के संकट से जूझता आ रहा है। इस विकट समस्या को हल करने के लिए हमारी सरकार भी आरम्भ से कटिबद्ध रही है, लेकिन फिर भी इस दिशा में स्वावलम्बन का ठोस समाधान उसकी पकड़ में नहीं आ पाया। परिणामस्वरूप देश की प्रतिक्षण बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए उसने अभी तक विदेशी-सहायता का आंचल पकड़ा हुआ है। उसका पल्ला वह तब तक नहीं छोड़ेगी, जब तक देश आत्म-निर्भरता की उन्नतिशाली गरिमा को प्राप्त नहीं कर पाता। हमारी सरकार का विवशतापूर्ण निर्णय एक दृष्टि से ठीक भी है और योग्य भी। क्योंकि वह विदेशी-सहायता के आगे अपनी झोली नहीं फैलातीं, तो देश के सम्मुख यह समस्या और अधिक विकराल रूप से उत्पन्न हो जाएगी। लोग भूखों मरने लगेंगे। बुभुक्षा का ताण्डव नृत्य अनावृत होकर फिर मानवता को भी संकट में घेर सकता है।

लेकिन विदेशी सहायता को भी कब तक वहन किया जा सकता है? और फिर इस गम्भीर समस्या का यह कोई निश्चित और सही हल भी तो नहीं कहा जा सकता। हमारे प्रशासन को अब नए सिरे से इस जटिल और वक्र समस्या का कोई ऐसा योग्य और ठोस हल ढूंढ़ना चाहिए, जिससे इस महत्त्वयुक्त जीवनोपयोगी आवश्यकता से देश सदास के लिए चुटकारा पा सके। हमें अपने राष्ट्र को न केवल

संकुचित अर्थों में आत्मनिर्भर बनाना है, बल्कि अतिरिक्त अन्नोत्पादन करके हर तरह की आपत्कालीन स्थिति के लिए भी प्रचुर मात्रा में हमें अपने यहां अन्न-संग्रह करना है। ताकि किसी भी संकटकालीन स्थिति में हमें आगे दूसरों का मुंह न ताकना पड़े और न ही दूसरों के उपकारों के भार से मजबूरन स्वयं को दबाना पड़े।

स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री जी ने इस दिशा में बड़ी गहराई और गम्भीरता से विचारा था। उन्होंने विदेशी-सहायता में अनास्था प्रगट करके राष्ट्र के मेहनती खेतिहर अन्नदाताओं को अधिकाधिक सबल और कर्मठ बनाने में अपनी आस्था व्यक्त की थी। इसके लिए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती प्रधान मन्त्री स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू की सहकारिता-नीति को नये रूप से खोलकर जनता के समक्ष रखा व सरकार द्वारा खेतिहरों को अधुनातन यान्त्रिक उपकरणों की पर्याप्त सुविधायें भी प्रदान करवायीं। यही नहीं, उन्होंने जनता का उदर-पोषण करनेवाले किसान भाइयों का सम्मान करने और उनके आत्मबल को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से उन्हें देश-रक्षा में सन्नद्ध सैनिक जवानों की कोटि में भी ला खड़ा किया और 'जय जवान जय किसान' का नारा बुलन्द किया। अन्न के एक भी दाने को व्यर्थ न जाने देने की शास्त्रीजी की अपील के पीछे कितना रहस्य छिपा हुआ था, इसे जनता भलीभांति जानती और समझती है। निश्चय ही यदि कुछ काल तक वह और देश का नेतृत्व करते, तो इस जटिल समस्या का कोई-न कोई

समाधानात्मक परिहार वह देश को दे सकते थे।

खाद्यान्न-समस्या को अधिकाधिक पेचीदा और विकरा बनाने में चूहों का भी भारी हाथ है। संयुक्त राष्ट्र के खा एवं कृषि संगठन के अनुसार निकट पूर्व में जितना अ पैदा होता है, उसका तकरीबन बीस प्रतिशत भाग चूहे तथ अन्य जन्तु चट कर जाते हैं। विश्वव्यापी स्तर पर द प्रतिशत और अफ्रीका आदि में उन्नीस प्रतिशत फसल इ पेटू जंतुओं के विशाल उदर में समा जाती है।

इस बात में भारत की स्थिति तो और भी अधिक नाजु है। भारत में मनुष्यों की संख्या जिस अनुपात से बढ़ती ज रही है, उससे कहीं अधिक चूहों की संख्या बढ़ रही है। हिन्दी की एक प्रतिष्ठित पत्रिका की विज्ञप्ति के अनुसार मैसू के केन्द्रीय खाद्य अनुसंधान संस्थान के डायरेक्टर डा. एच. ए. बी. परपिया ने इस सम्बन्ध में कुछ बहुत ही मजेदार और चौंकाने वाले आंकड़े इकट्ठे किये हैं। उनका कहना है कि 'हमारे देश में चूहों की अनुमानित संख्या २,४०,००,००,०० है। ये चूहे साल भर में करीब उतना ही अनाज चट क जाते हैं, जितना कि ५०,००,००,००० व्यक्ति खा सकते हैं। यह आंकड़े बिल्कुल सच हैं, यह तो निश्चय और निर्विवा रूप से नहीं कहा जा सकता; लेकिन इससे एक यह बा स्पष्ट होकर सामने आ जाती है कि हमारे यहां आनाज क कमी का एक प्रधान कारण चूहें भी हैं। उपर्युक्त आंकड़े बेश अतिशयोक्तिपूर्ण कहे और माने जा सकते हैं, लेकिन इ तथ्य से कोई भी प्रबुद्ध व्यक्ति इन्कार नहीं करेगा कि चूह

द्वारा आनाज नष्ट करने के कारण ही हमारे यहां यह समस्या दिनोंदिन जटिल होती जा रही है।

भारतीय स्वास्थ्य मंत्रालय भी हमारे इस कथन की पुष्टि करता है। उसके अनुसार चूहे आदि 'जानवर' हमारे देश में प्रतिवर्ष २ करोड़ ६० लाख टन अनाज हड़प जाते हैं। विदेशों से हमें अनाज की आजकल जो सहायता प्राप्त हो रही है, उक्त मात्रा उससे भी अधिक है। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है।

चूहों के अतिरिक्त हमारे देश में और भी कई तरीकों से अनाज नष्ट किया जाता है। जिनमें जूठन छोड़ना और आवश्यकता से अधिक खा लेना भी शामिल है। श्रीपरपिया के अनुसार 'भारत में जितना अनाज पैदा होता है, उसका ५० प्रतिशत भाग विभिन्न कारणों से नष्ट हो जाता है' सब लापरवाही के कारण! यदि सतर्कता बरतीं जायें तो नष्ट होने वाले इस बड़े भाग को हम बड़ी आसानी से बचाकर उपयोग में ला सकते हैं। नष्ट होने वाले इस अनाज की कीमत एक वर्ष में कुल ४६ अरब रुपयें बैठती हैं। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि हमारी सरकार का वार्षिक बजट केवल २८ अरब रुपये के ही करीब है। मतलब यह कि हमारी केन्द्रीय सरकार के सालाना बजट से भी अधिक राशि, १८ अरब, की कीमत का अनाज हमारे यहां व्यर्थ में नष्ट हो जाता है अथवा असावधानी से नष्ट कर दिया जाता है। नष्ट होने वाले अनाज का आधा हिस्सा चूहों द्वारा बरबाद किया जाता है और बाकी कीड़ा लगने से या खेतों और खलिहानों

अथवा मण्डियों में बिखरने तथा जूठन आदि के रूप में बरबाद होता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या हम व्यर्थ में बरबाद होने वाले अनाज की इस बड़ी मात्रा को बचा नहीं सकते ? निश्चय ही यह हम कर सकते हैं और बड़ी आसानी से कर सकते हैं, यदि स्थिति को सही-सही समझ लें तो।

चूहों से अन्न की सुरक्षा का जबरदस्त अभियान चलाकर हम उनसे मोटी मात्रा में अनाज बचा सकते हैं। इसके लिए हमें अपने अन्न-भण्डारों का आधुनिकीकरण करना होगा। उन बड़े समर्थ व्यापारियों का सहयोग भी इस दिशा में नितान्त आवश्यक होगा, जो मुनाफाखोरी के चक्कर में आकर अपने विशाल गोदामों को भर कर सुनहरे स्वप्न देखते रहते हैं और तहखानों या गोदामों में पड़े अनाजों के सैंकड़ों बोरे चूहों की भेंट चढ़ जाते हैं। अन्न-भण्डारों का आधुनिकीकरण होने पर यह समस्या स्वयमेव सुलझ जायेगी। और इस प्रकार नष्ट होने वाली मात्रा का आधा भाग चूहों से बचा लिया जायेगा।

जूठन फेंकने की बीमारी भारतीयों को बहुत है। आवश्यकता से अधिक खाना अथवा लेकर जूठा छोड़ देना, एक निहायत ही बुरी बात है। उदर में जितना समा सके, उतना ही भोजन लेना अथवा ग्रहण करना चाहिए। इस मनोवृत्ति पर भारत की दक्ष गृहणियां भलीभांति और प्रवीणता से अंकुश लगा सकती हैं। पके हुये अनाज का किसी भी प्रकार अपव्यय न हो, यदि किसी तरह भूलचूक से जूठन रह भी जाये, तो उसकी समुचित और योग्य रीति से खपाने की

व्यवस्था कर दी जायें—तो यह समस्या भी सहज ही सुलझ सकती है।

विविधरंगी पार्टियों और शादियों में भी खुलकर अपव्यय किया जाता है। यह सब प्रतिष्ठा की झूठी मर्यादा को व्यर्थ में कायम रखने के कारण। यद्यपि इस प्रकार के कार्यक्रमों में खुलकर अनाज का अपव्यय करने की दिशा में सरकारी नियम का कड़ा अंकुश है, लेकिन कौन किसकी मानता है। सर्वसमर्थ व्यक्ति अपने सामर्थ्यानुसार इस सरकारी प्रतिबन्ध को तोड़ते हैं और मुक्त हृदय से अन्न को बरबाद करते हैं। उनको कोई पूछने वाला नहीं। अधिकार अथवा धन के बल पर वह अपनी मनमानी करते हैं और वह भी खुलेआम। लेखक ने अपनी आंखों इधर कई ऐसी पार्टियां अथवा शादियां देखी हैं, जिनमें सैकड़ों मेहमानों को बुला कर, तरह तरह के पदार्थ उनके सम्मुख रखकर, धनिकों ने अपनी वाहवाही की ढेर सारी निरर्थक मर्यादा को संजोया-बटोरा। हालांकि नियम के अनुसार पचास से अधिक व्यक्तियों को उन्हें आमन्त्रित नहीं करना चाहिये था और न हीं अन्न से पचासियों पदार्थ उन्हें बनवाने चाहिये थे। स्मरण रहें, ऐसी पार्टियों में, जानबूझ कर, बनाये हुये पदार्थों का तकरीबन एक चौथाई भाग नष्ट किया जाता है। सब शोहरत अर्जित करने के लियें! कितनी विडम्बना है। एक तरफ अनाज समस्या को सुलझाने के लिये सरकार जुटी हुई है और दूसरी तरफ उसी सरकार के मुंहलगे

सीना खोलकर उसकी बरबादी में कमर कसे हुये ल हुये हैं। इसका परिणाम यह निकलता है कि उन्हें इस प्रकार मनमानी करते देख कर मध्यवर्गीय लोग भी धैर्यवान बनकर युक्तियों द्वारा अन्न की बर्बादी में जुट जाते हैं। पचास से अधिक लोगों को एकबारगी इकट्ठ न खिलाकर चार-चार पांच-पांच बैठकों में वह आमंत्रितों को बिठलाते हैं। और यदि कोई उन्हें समझाने का यत्न करता है, तो यह कहकर वह बात को टाल जाते हैं कि अजी एक हमारे ऐसे करने से क्या फरक पड़ जाता है। यह तो वही बात हुई कि किसी राजा ने अपने नगर में एक बड़ा-सा हौद बनवाया और सारी प्रजा में यह घोषणा करवादी कि प्रत्येक व्यक्ति एकएक लोटा दूध रात को उसमें डाले। जनता में सबने एक ही तरीके से यह युक्ति सोची कि हमारे एक लोटा दूध न डालने से क्या फरक पड़ जाता है? इतना बड़ा हौद है, किसको पता चलना कि फलाने ने दूध डाला या पानी। सो इस तरह सोचकर सबने उस हौद में एकएक लोटा पानी रात को डाल दिया। दूध को बिरलों ने ही डाला। सुबह पता चला कि हौद में तो दूध के बजाय कच्ची लस्सी भरी पड़ी है। यही हालत हमारी होती जा रही है। इस दुष्प्रवृत्ति को रोकना नितान्त आवश्यक है। तभी सही अर्थों में समस्या सुलझ सकती है।

भारत की जनसंख्या तीव्रतम गति से वृद्धिगत होती जा रही है। योजना आयोग के अनुमानानुसार १९५१-६१

के दशक में १'२५ प्रतिशत जनसंख्या प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ़ी। देश की जनसंख्या में वृद्धि का प्रमाणभूत अनुमान १९५६-६१ में एक करोड़ पर १९६१-६६ में १'७ करोड़ पर (एक केंद्रीय मंत्री के हाल ही दिये गये वक्तव्य के अनुसार प्रतिवर्ष एक करोड़ २० लाख की बढ़ोतरी हमारे यहां हो जाती है।) और १९६६-७१ में २.८ करोड़ पर लगाया गया था। इस समय देश की अनुमानित जन संख्या ४७ करोड़ के आस पास है। ऐसी स्थिति में, जबकि हमारे यहां परिवार-परिसीमन की योजना सरकारी तौर पर व्यापक रूप से विस्तृत की जा रही है और लोग भी प्रायः उसका पर्याप्त महत्व समझने लगे हैं, जनसंख्या में कोई विशेष उल्लेखनीय कमी दृष्टिगोचर नहीं दिखाई देती, तो राष्ट्र का भावी स्वरूप क्या और कैसा हो सकता है—यह बात लोगों को अपने अन्तर में मन उतारनी चाहिये। यदि हम अपने राष्ट्र का भावी स्वरूप उज्ज्वल और प्रतिष्ठापूर्ण बनाना चाहते हैं, तो इन बातों की ओर शीघ्र ही विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। क्यों कि हमारा देश इस समय अन्दरूनी तौर से बड़े ही नाजुक दौर से गुजर रहा है। यदि हम कुछ थोड़ी भी सतर्कता बरतें तो विदेशी सहायता के बिना भी हम अपनी बिगड़ी हुई अन्न व्यवस्था को सुधार सकते हैं। जो थोड़ी बहुत न्यूनता रह भी जायेगी, उसे भी हम अपने सघन-खेती के कार्यक्रम द्वारा स्वयं सुधारने में समर्थ हो सकते हैं।

योगासनों की महत्ता

लेo योगीराज उमेशचन्द्रजी

मनुष्य को जो रोग उत्पन्न हो जाते हैं, उनका जन्मदात जगन्नियन्ता नहीं, बल्कि मनुष्य स्वयं ही है। आरम्भ से ह शरीर के प्रति असावधानी रखना और बाद में ईश्वर दोष देना यह किसके घर का न्याय है? कुछ लोगों धारणा है कि हम किसी दिन बीमार नहीं हो सकते। कि बीमार न होना ही आरोग्य की गारण्टी नहीं। बलवान् शरी और अंगों का समुचित सुयोजन ही आरोग्य का सच्चा प्रमा है। जगत् में जन्म लेना और दुर्बल होकर जीना यह ए महान् अपराध है, इसलिये इस अपराध का अपराधी न बन ही सुख की कुंजी है।

नीरोगी मनुष्य अपनी छोटी-सी कुटिया में रहकर जि सुखों का उपभोग कर सकता है, वे सुख शक्तिहीन रा अपने महल में पा नहीं सकता। वर्तमान काल में प्रत्ये प्रकार से जो शक्ति हीन देश जगत् में है, वह एक भारत ही है। इसलिये यदि अभी भी हम विविध प्रकार के भो विलास और ऐश आराम करते रहेंगे, तो इसके भयंक परिणाम हमें भोगने ही पड़ेंगे। इसीलिये अभी भी शरीर सुदृढ़, मन से पवित्र तथा धन धान्य से समृद्धिवान् हो का समय है और अवश्य ही सबको "यौगिक उपचार (योगाभ्यास) में प्रवृत्त होना चाहिये। योगाभ्यास असीम महत्व मिलने का कारण यह है कि सुदृढ़ शरीर में एकाग्र मन को एकाग्रता मिल जाने के पश्चात् कठिन

कठिन और असाध्य कार्य को योग्य प्रयत्न से ही सफल बनाया जा सकता है।

शीर्षासन के लिये सुझाव

शीर्षासन करते समय पहले शिर जमीन पर और नीचे दोनों हाथ की अंगुलियों को साथ मिलाकर रखना चाहियें। तत्पश्चात् धीरे-धीरे दोनों पैर ऊपर उठाने चाहियें। शिर जमीन पर रखने से पहले नीचे मुलायम गद्दी या कपड़ा बिछा लेना चाहियें। ऐसा करने से शिर टेढ़ा नहीं होगा। यदि आसन अकेले करना सम्भव न हो, तो आरम्भ में किसी की सहायता लेकर करने का अभ्यास करना चाहिये अथवा मकान की दीवार का शरीर को सहायता मिले, इस प्रकार करना चाहिये। शिर के नीचे कपड़ा, गद्दी या ऐसी ही कोई मुलायम वस्तु रखना चाहियें, अन्यथा मस्तिष्कपर इसका दुष्प्रभाव होना सम्भव है। आरम्भ में १२ दिन तक तीन मिनट, १२ दिन से २२ दिन तक ६ मिनट, २५ से ४० दिन तक १० मिनट करने के बाद अपनी शक्ति के अनुसार ३० से ४० मिनट तक किया जा सकता है। जिनका शरीर भारी हो, उन्हें पहले दिन १ मिनट करना चाहिये और प्रति दिन एक-एक मिनट बढ़ाते रहना चाहियें, जिससे हानि न होगी और साधना सुगमतापूर्वक आगे बढ़ेगी।

शीर्षासन की साधना से आंखों की ज्योति बढ़ती है। हाथ की कुहनियों में, गले में, हाथ के स्नायुओं में, दोनों भुजाओं में बल आता है, रक्त शुद्ध होता है। पुरुषों का वीर्य और स्त्रियों का रजस गाढ़ा बनता है। स्वप्नदोष

(स्वप्न में वीर्यपात हो जाना) दूर हो जाता है। अधि समय तक करने से अंदाजा ३० बरस तक उमरवाले के सफे बाल काले हो जाते हैं। अन्न का समुचित पाचन होता है भूख अच्छी खुलकर लगती है। शरीर तथा मुखपर तेज तथा ओजस की आभा उद्भासित हो उठती है निरन्त रूप से प्रतिदिन २० मिनिट से एक घण्टे पर्यन्त शीर्षास छः मास तक करने से रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि त्वचा आदि सप्तधातुयें शुद्ध होती हैं। शरीर तथा मन में आनन्द, उत्साह निर्भयता, स्फूर्ति, सद्विचार तथा शुभ कार्य में अटल श्रद्धा-विश्वास उत्पन्न होते हैं। आयु बढ़ती है खाज, गुमड़ा, फोड़ा-फुंसी, दाद, अनिद्रा, शिर की गरमी हाथ-पैर के तलुओं में जलन तथा तजा गरमी आदि दू हो जाते हैं। आंखों से चश्मा उतर जायेगा अर्थात् चश्म लगाये बिना आंखों से सूक्ष्म से सूक्ष्म काम लिया जा सकेगा दांत मजबूत रहेंगे।

परन्तु, जिनको ब्लडप्रेसर (रक्त का दबाव), छाती की निर्बलता, फेफड़े में पीड़ा तथा संकोचन, गले के रोग, संक्रामक रोग, मस्तिष्क की अस्थिरता, अत्यन्त विचारमग्न तथा हाथ-पैर में अशक्ति हो, उन्हें पहले अनुभवी सलाहका से अनुमति प्राप्त करने के बाद ही यह आसन करना चाहियें। स्त्रियां भी यह आसन कर सकती हैं, परन्तु मासिकधर्म और गर्भावस्था काल में यह आसन वर्ज्य है। समय प्रातःकाल का बहुत अच्छा है। स्नान करने के पश्चात् शीर्षासन कर तुरंत कम से कम ५ मिनट हाथ-पै

लम्बा कर लेट जाना चाहिये। इसका कारण यह है कि पैर के अंगूठे से लेकर विशुद्धचक्र तक का रक्त शिर की ओर तीव्र वेग से बहने लगता है। यह रक्त शीर्षासन कर लेने के पश्चात् तुरंत शिरोभाग से निम्न भाग की ओर अत्यन्त वेग से उतरने लगता है, फलतः शरीर में कम्प, शिर घूम कर जमीन पर गिर जाना, फेफड़े में रक्त का दबाव, चक्कर आना, रक्त वाहिनी नाड़ियों में परिवर्तन आदि हानि होने की सम्भावना है। १० वर्ष की आयु से १०० वर्ष की आयु तक के स्त्री-पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार यह आसन कर सकते हैं।

१० मिनट तक का अभ्यास पहुंच जाने के बाद ही शीर्षासन से समुचित लाभ उठाया जा सकता है।

धनुरासन

उपर्युक्त आसन करने की रीतिः—प्रथम पेट के बल लेट जायें। तत्पश्चात् फेफड़े में यथेच्छ श्वास लें और दोनों पैरों के पृष्ठ भाग को पकड़ कर जानु के भाग की ओर सीने को जमीन से ऊपर उठायें। शिर तथा पैरों को जितना ऊपर उठाया जा सकेगा, उतना ही लाभ होगा। जमीन पर केवल पेट का ही भाग रहना चाहिये।

जितने समय तक श्वास को अवरुद्ध किया जा सके, उतने समन तक शिर और पैरों को ऊपर उठायें रहें और जब श्वास को रोक रखना असम्भव प्रतीत हो तब शिर और पैरों को धीरे-धीरे लाकर जमीन पर रख देने के पश्चात् दोनों नासा-पुटों की राह श्वास

को धीरे--धीरे बाहर निकाल देना चाहिये। बिना श्वा के भरे भी इस आसन को कर सकते हैं। आरंभ में इ आसन को करने वाले फेफड़े में आधी श्वास भरें औ चार--पांच दिन इस आसन की परीक्षा करने के पश्चात् पू श्वास भर लेने में कोई हानि नहीं। फेफड़े निर्बल हं तो आरंभ में संपूर्ण श्वास लेने से फेफड़ों में दर्द पै हो जाना संभव है। शिर में रक्त के दबाव वाले श्वा बाहर निकाल कर ही करें।

इस आसन का परिणाम :— पहले दस दिन तक नि सवेरे या सायं १ बार, १० से १८ दिन तक २ बार, १८ २५ दिनतक चार बार और तदुपरांत शक्तिके अनुसार ५ से बार तक यह आसन करना चाहियें।

इस आसन से लाभ

फेफड़े मजबूत और प्रशस्त–चौड़े बन जाते हैं। कब्जि दूर हो जाती है। गला, हाथ-पैर तथा हृदय मजबूत ब हैं। स्त्रियों की कमर का दर्द इस आसन से विशेष रूप नष्ट हो जाता है। अपान वायु छूटती है। पेचोटी स्थाना रित हो गई हो, तो दो--तीन बार यह आसन करने से पु अपने स्थान पर बैठ जाती है। भूख खुलकर लगती है हाथ–पैर के स्नायु शक्तिवान् बनते हैं। कुण्डलिनी श जाग्रत होने की तैयारी करने लगती है। छोटी तथा बड़ी आं के रोग निर्मूल हो जायेंगे। रक्त शुद्ध होता है। मन प्रफु रहता है। किडनी (गुर्दा) तथा मूत्राशय के रोग नि जाते हैं। मेरुदण्ड सीधा और लचीला बन जाता है औ

उसकी मांसपेशियां मजबूत होती हैं। मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत्त चक्र तथा विशुद्ध चक्र शुद्ध होंगे।

यह आसन किसको वर्ज्य है।

गर्भवती, मासिकधर्म तथा प्रसूति होने के पश्चात् चालीस दिन तक, स्त्रियों की आंत में चांदी पड़ी रहती है। गुप्त रोग जैसे कि शिश्नेंद्रिय के साथ सम्बन्ध रखने वाले रोगों से पीड़ित, ज्वरग्रस्तों को इस आसन का प्रारम्भ करने से पहले किसी शरीर रचना विशेषज्ञ के पास जाकर अपने शरीर की जांच करानी चाहिए। आहार सात्विक और शीघ्र पच जाये, ऐसा लेना चाहिए। १० वर्ष की आयु से लेकर १०० वर्ष तक के स्त्री-पुरुष यह आसन कर सकते हैं और उससे यथेष्ट लाभ उठा सकते।

हंसोड़
व्यंग प्रधान सचित्र मासिक
एक प्रति ४० पैसे : वार्षिक ४-५०
हँसोड़ पढ़िये और ठहाका लगाइये।
पूरे परिवार का प्यारा "हंसोड़"
एक प्रति ४० पैसे : वार्षिक ४ रु. ५० पै.
हंसोड़ कार्यालय, हिन्दपीढ़ी, राँची

* धर्मोपदेश *

(प्रथम खण्ड)

स्वामी रामतीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी तथा चुने हुये धार्मिक (वेदान्त परक) प्रवचनों का संग्रह । मानव जन्म सार्थक कर नित्य सुख प्राप्त करने के लिये अतीव सुन्दर सुयोग्य रूप से स्वामी रामतीर्थ जी ने देश-विदेशों में पर्यटन करके अपने स्वानुभव को बताया है । हरेक घरमें नित्य पठन पाठनकर सुख-शांति का लाभ लीजिये ।

पृष्ठ संख्या ३८४ कीमत ४-०० डाक व्यय अलग ।

बहुरंगी आसन चित्रपट

बहुरंगी आसन चित्रपट में नित्य उपयोगी १७ आसनों का संग्रह है । रोगों से मुक्त होकर सदा सुदृढ़ शरीर बनाए रखने के लिये आकर्षक चित्रपट अवश्य मंगवाइये । आसनों के नाम तथा लाभ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं । डाक व्यय के साथ ३-०० रु.

प्राप्तिस्थान

श्री. रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों के समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या का समाधान चाहते हों तो लिख भेजें—सम्पादक]

श्रीमती बालम्मा अच्चेरी केरी वड़ीया,
एम. ए., एम. एड. दिंडीगल (मद्रास राज्य)

पत्र-१ प्रश्न-१— इस धरती के लोगों की अध्ययन अभिरुचि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। बालक और युवक वर्ग किस साहित्य को पसन्द करता है? वृद्धावस्था में कैसे साहित्य की ओर प्रवृत्ति होती है?

प्रश्न-२— आपकी पत्रिका में महिलाओं तथा बालकों के लिये कोई रचना प्रकाशित नहीं होती है। मेरा सम्बन्ध अनेक संस्थाओं से है। हजारों बहनें आपकी पत्रिका के सम्बन्ध में बहस करतीं तथा मन्तव्य प्रकट करती हैं, परन्तु

अन्त में मुस्कराते हुये कह देती हैं कि इससे हम लोगों कोई मानसिक आहार मिल नहीं पाता।

उत्तर १:—आजकल अधिकांश बालक और युवक रोमां पूर्ण उपन्यास-कहानियां, वैसा ही मनोरंजन (सिनेमा आदि वीभत्स (विषय-भोग को उत्तेजित करनेवाला अश्लील साहित्य, रजो-तमोगुण प्रधान डिटेक्टिव (जासूसी) उपन्या और जीवन को नरक में धकेल देनेवाले साहित्य के प की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त पाये जाते हैं। बाल्यावस्था बच्चे माता-पिता और अभिभावकों से उत्तम कहानि सुनाने का आग्रह करते हैं। उस अवस्था में जैसी कहानि उन्हें सुनाई जायेंगी, तदनुसार उनके जीवन-संस्कारों निर्माण होता है। अड़ोसी-पड़ोसी और इष्टमित्रों के सहवा में आने पर भी उच्च या हीन कोटि के संस्कार प्राप्त होते हैं तत्पश्चात् स्कूल, हाईस्कूल और कालेज-जीवन में विभि प्रकार के संस्कार पड़ते हैं। कहानी-उपन्यास आदि अध्ययन से भी संस्कार दृढ़ बनते हैं। इस प्रकार उन जीवन-नौका इस भव-सागर में चलती रहती है। कि यदि बाल्यकाल में माता-पिता बच्चे के चरित्र गठन के प्र विशेष सावधानी रखें और उन्हें उच्चकोटि की ऐतिहासि सामाजिक, नैतिक और धार्मिक कहानियां सुनाते रहें त उच्च कोटि की पत्र-पत्रिकायें तथा पुस्तकें पढ़ने को दें, उनका जीवन निस्सन्देह पवित्र और उच्च होगा और आ चलकर वे महान् कार्य-साधक तथा समाज और देश लिये लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। वे माता-पिता

आज्ञाकारी बनकर तन-मन-धन से उनकी सेवा में भी लगे रहेंगे।

प्रौढ़ तथा वृद्धावस्था में प्रविष्ट लोगों की प्रवृत्ति धर्म की ओर अधिक होती है और वे तदनुसार साहित्य की ओर प्रवृत्त होते हैं। वे ऐसे साहित्य की ओर रुचि प्रकट करते हैं, जिसमें उनके धन का सदुपयोग हो और दुःखों से छुटकारा पाने की प्रेरणा प्राप्त हो। वृद्धों के ज्ञान-सम्पादन का मार्ग बदल जाता है और योग-वेदान्त, भक्ति-कीर्तन, जप-तप, रोगों से मुक्ति पाने का उपाय, त्याग-वैराग्य की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देनेवाले साहित्य-पठन—स्वाध्याय की ओर उनकी अभिरुचि बढ़ती जाती है। यह भावना उत्तम है। परन्तु यही भावना यदि यौवनकाल में प्रकट होती, तो स्वर्ण-सुगंध का सुयोग होता और उनकी यह उत्तरावस्था धन्य बन जाती।

आद्य शंकराचार्यजी चर्पट पंजरी में कहते हैं—

बालस्तावत्क्रीड़ासक्तः तरुणस्तावत्तरुणी रक्तः,
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः।
भज गोविन्दं० ॥७॥

अर्थात् बालक खेल-कूद में आसक्त रहता है; तरुण (जवान) तरुणी--पत्नी में अनुरक्त रहता है—विषय भोगों में लगा रहता है और वृद्ध चिन्तामग्न रहते हैं। परब्रह्म में कोई भी मन नहीं लगाता अर्थात् मनोयोग पूर्वक कोई भी परब्रह्म की पूजा अर्चना और भक्ति-भजन नहीं करता। वर्तमान स्थिति में माया-जाल में फँसे हुयें व्यक्तियों की

यही अवस्था है। परन्तु जो लोग बचपन से ही उच्च संस्का से दीक्षित किये गये हैं, उनका जीवन निस्सन्देह उच् विचारवान् और चरित्र उन्नत होगा और योग-वेदान्त आ की साधना के प्रति वे स्वभावतः प्रवृत्त होंगे।

उत्तर २ :— 'रामतीर्थ' मासिक में महिलाओं त बालकों के लिये स्तम्भ प्रारम्भ करने का विचार है, जिस अन्तर्गत उपयोगी लेखों और साहित्य-सामग्री का प्रकाश होगा। 'रामतीर्थ' में प्रायः महिलोपयोगी लेख दिये जाते ह परन्तु प्रति मास नहीं दिये जाते। मद्रास प्रदेश की भा तमिळ होते हुये भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्य के प्र अनेक संस्थाओं की महिलाओं का आदरभाव बढ़ रहा है यह सब पढ़-सुनकर अतीव प्रसन्नता का अनुभव होता है देश की हर तरह से उन्नति हो रही है और साथ ही हिन् भाषा की लोकप्रियता और उन्नतिशील स्थिति को देखक बहुत आनन्द हो रहा है, क्योंकि हमारे मतानुसार जबत सभी राज्यों में हिन्दी भाषा के प्रति अंग्रेजी से भी अधि प्रेम नहीं बढ़ेगा तथा जबतक हिन्दी घर-घर की स्वाभावि बोली नहीं बनेगी, तबतक न तो देश उन्नत और उच् भावापन्न होगा और न समाज में व्याप्त भेदभावों का ही निराकरण होगा। राष्ट्रीय एकता, पारस्परिक सहयोग भावाभिव्यक्ति का परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से हिन्दी का पठन-पाठन और प्रचार अत्यावश्यक है।

श्री बलभद्रदेव आचार्य, शिलांग (असम)

पत्र—२ प्रश्न—१— सुख तथा दुःख की परिभाषा संक्षे

में समझाइयें।

प्रश्न—२— वर्तमान काल में सन्तति-नियमन के उद्देश्य से जिन साधनों और विधि-विधानों का प्रचार बढ़ रहा है, वे समाज के लिये कहां तक उपयोगी होंगे। इससे मानव तथा मानवता का पतन होगा या उत्थान ?

उत्तर—१ सुखकी परिभाषा दो रूपों में की जाती है— (१) ऐंद्रियिक सुख और (२) इंद्रियातीत सुख।

ऐंद्रियिक सुख की परिभाषा है भौतिक वाद (जड़वाद) के आधार पर उपलब्ध सुख-साधनों का संभार व धन के बलपर विविध भोग सामग्री को एकत्र कर यथेच्छ सुखका आयोजन। वर्तमान जीवन में धन-वैभव, स्त्री-पुत्र और कीर्तिलिप्सु लोग जड़ इंद्रियों के माध्यम से यथेष्ट सुख की अनुभूति करते रहते हैं। किन्तु इस सुखमयी स्थिति का अस्तितत्व अधिक समय तक स्थिर नहीं रहता, किसी न किसी निमित्त से उसमें सतत परिवर्तन होता रहता है और इस कृत्रिम सुख का लोप होकर उसके स्थान दुःख और संकट हमारे जीवन को चारों ओर से घेर लेते हैं। यह जागतिक सुख व दुःख के क्षण अस्थायी हैं, अतः कभी मानव सुखानुभूति से फूला नहीं समाता और कभी दुःखाघात से जर्जरित होकर कराहने लगता है।

किन्तु जो लोग अतीन्द्रिय जगत् के विहारी हैं; उन पर इन्द्रियजन्य सुख-दुःख अपना प्रभाव डाल नहीं सकते। वे उसे तनिक भी महत्त्व नहीं देते। इन क्षणिक अनुभवों से वे पूर्णतया परे रहते हैं। उनकी प्रबुद्धावस्था के सामने यह सुख-दुःख दोनों ही नगण्य हैं। उनके सामने जाने पर यह

भौतिक सुख-दुःख स्वयं चूर-चूर होकर ढह गिरते हैं। उनकी प्रबुद्धावस्था एक दृढ़ कवच है, जिससे टकरा कर ऐंद्रियिक विषय-सुख छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

वस्तुतः देखा जाये तो समग्र संसार में मात्र सुखाभास प्रकट हो रहा है और सर्वत्र दुःख का भण्डार भरा हुआ है। इसीलिये कहा जाता है कि संसार में रहना अवश्य चाहिये; सांसारिक प्रेम-वासनाएं गौण होनी चाहियें। हमारा ध्येय उस परम तत्त्व पर केन्द्रीभूत होना चाहियें जो इंद्रियों तथा बुद्धि से भी परे हैं। इस इष्टसिद्धि के लिये योग-वेदान्त का आश्रय लेना अत्यावश्यक है। सत्-चित्-आनन्दस्वरूप में निमग्न और तत्पथ के पथिकों का कहना कि चिरन्तन सुखानुभूति बाह्य वस्तुओं में नहीं; आपके अन्तःकरण में विराजमान है। ज्ञानचक्षुओं के माध्यम से उसके दर्शन का-उसे देखने का—उसकी अनुभूति का प्रयत्न करना चाहियें। जब आप स्वयं ही आत्म-गुरु बनने का प्रयास करेंगे, तब अन्तः सुख के अनन्त भण्डार का द्वार आपके लिये खुल जायेगा। वही सत्य, नित्य और आनन्दस्वरूप है।

उत्तर—२ सन्तति नियमन के लिये आधुनिक साधनों का उपयोग एक गलत आयोजन है। इससे भ्रष्टाचार बढ़ेगा और वीर्य-दोष, रजस दोष तथा गर्भाशय के रोगों में भी वृद्धि होगी। युवावस्था में ही वृद्धावस्था के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगेंगे और भावी प्रजा निर्वीय और निस्तेज होगी। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों तथा आयु की चिन्ता

नहीं रहेगी और कुछ ही दिनों में समाज का ढांचा जर्जरी-भूत होकर पतन के गर्त में जा गिरेगा।

सच्चा उपाय :— यदि सन्तति नियमन की सच्ची व्यवस्था करनी ही है, तो एतदर्थ गांवों और नगरों के मुहल्ले-मुहल्ले में मठ, मंदिर, योगाश्रम, व्यायामशाला, भजन कीर्तन स्थान, सत्संग-भवन आदि का निर्माण कराना चाहिये और उनके माध्यम से जनता के चरित्र का निर्माण करना चाहियें। इसके लियें सरकार, म्युनिसिपैलिटी अथवा ग्रामपंचायतों से किसी प्रकार की सहायता मांगने की आवश्यता नहीं; केवल स्थानीय जनता ही परस्पर सहयोगपूर्वक स्थान, धन, साहित्य और अन्य आवश्यक साधन एकत्र करे। जिस मुहल्ले में जिसके पास अधिक स्थान हो, वह कुछ स्थान प्रदान करे भले ही उसका उचित किराया ले ले। जिन धन-पतियों के पास अधिक स्थान है, वे अपने मुहल्ले को विशाल स्थान प्रदान करें, जिससे वहां लोकोपयोगी विविध प्रवृत्तियों का संचालन सरलता से किया जा सके। धनपति ऐसी संस्थाओं के ट्रस्टी बनकर उन्हें सबल संरक्षण प्रदान कर सकते हैं। इसके मैनेजिंग ट्रस्टी ऐसे होने चाहियें, जो परोपकार-रत, एवं लगनशील हों और अपने ही व्यवसाय में व्यस्त रहनेवाले न हों अर्थात् जनसेवा के लियें जो अधिक समय निकाल सकें, ऐसे ही सज्जनों को ट्रस्टी पद पर नियुक्ति करना चाहियें। कम से कम तींन ट्रस्टी हों और कार्यकारिणी की संख्या कम से कम पांच हो। कार्यकारिणी के व्यक्ति कार्यकुशल, सेवाभावी और अधिक समय तक संस्था के कार्य में जीवन अर्पित

करने की महत्त्वाकांक्षा रखते हों।

धनोपार्जन की विधि

संस्था के पांच सदस्य भिन्न-भिन्न पांच कामों में रत हों। संस्था का प्रचार, धनोपार्जन की विधि, धन-व्यय की विधि, संस्था की व्यवस्था का काम तथा कोषाध्यक्ष (खजांची) का काम। धन संचय का ऐसा सरल तरीका अपनाना चाहिये जिससे किसी पर भार न पड़े। वह तरीका यह है कि प्रत्येक मुहल्ले में जाकर ऐसा भाषण देना चाहिये, ऐसे सुन्दर ढंग से उन्हें समझाना चाहिये कि लोग उसकी ओर स्वयं प्रवृत्त हों। आसन तथा प्राणायाम के प्रयोग कर दिखायें। लोगों को सिनेमा, चाय, सिगरेट बीड़ी, शराब आदि के दोषों को समझायें और ऐसा प्रभाव डालने का प्रयास करें, जिससे युवक और वृद्ध उक्त दुर्व्यसनों से मुक्त हों और ऐसा करने से धन की जो बचत हो, उसे संस्था की उन्नति के अर्थ में प्रदान करें। बुरी आदत से क्रमशः मुक्त होते जायें और बचा हुआ धन संस्था को परोपकारार्थ प्रदान करें।

संस्था का षण्मासिक और वार्षिक उत्सव करते रहें। जिनमें धनिकों से धनराशि प्राप्त करने के प्रयास करें। योगाश्रम, प्राकृतिक चिकित्सालय, आसन-प्राणायाम द्वारा शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य का अर्जन तथा संवर्धन तथा त्याग वैराग्य द्वारा इन्द्रियजित् बनकर सन्तति नियमन करें। इस प्रकार धार्मिक, यौगिक और नैतिक दृष्टि से सन्तति नियमन करने से भारत भूमि स्वर्ग बन जायेगी। शुद्ध निरामिस आहार और सत्संग अवश्य

करना चाहियें। कम से कम २८ से ३० वर्ष की आयु में विवाह करें। देश-रक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा, धार्मिक भावना और व्यावहारिक जीवन का ध्येय तथा आत्म-दर्शन की ओर विशेष प्रवृति रखना चाहियें। प्रतिदिन रात्रि को एक घंटे तक पारिवारिक तथा पड़ोसी लोगों के साथ भगवान का भजन-कीर्तन, आत्म तत्व विचार करनेवाले ग्रंथों का पठन-पाठन के साथ ही रामायण, महाभारत, योगवासिष्ठ, उमेश-योगदर्शन आदि का अध्ययन और विवेचन करते रहना चाहियें। सन्तति नियमन का यही उचित और श्रेयस्कर मार्ग है।

कुमारी निमाय्शा मल्लया पत्तुनी,
गोलकोंडा (आन्ध्र प्रदेश)

पत्र-३ प्रश्न १— मेरी आयु १२ वर्ष की है। मेरी मातृभाषा तेलगू है। मेरे सहपाठी, पड़ोसी, मित्र आपका मासिक मँगाते हैं। मैंने मांग कर पढ़ा, किन्तु उसमें मुझे बच्चों के लियें न तो कोई मार्गदर्शन मिला, न उपदेश और न कोई कहानी ही पढ़ने को मिली। मेरे पिताजी उच्चकोटि के जनसम्पर्क में रहते हैं। उन्होंने मुझे गीता के कुछ श्लोक कण्ठाग्र करायें हैं। मेरे घर में हिन्दी भाषा का व्यवहार किया जाता है। मातृभाषा तेलगू होते हुये भी मेरे माता-पिता हिन्दी प्रेमी हैं। आप का 'रामतीर्थ' पढ़कर आपसे प्रश्न पूछने का प्रथम प्रयास है। अंग्रजी, तेलगू, हिंदी इन तीन भाषाओं में से मुझे किस भाषा से अधिक प्रेम रखना चाहियें। देश हित, व्यवहार पालन, एवं मातृभाषा के दृष्टिकोण के विषय में

उदार वृत्ति रखते हुए मार्गदर्शन कर मुझे कृतार्थ करें।

उत्तर-- १— इतनी छोटी उम्र में ही तुम्हें श्री रामती योगाश्रम और 'रामतीर्थ' मासिक जैसे आध्यात्मिक, नैति और धार्मिक पत्र को पढ़ने और तत्सम्बन्धी ज्ञान-संपाद की इच्छा हुई। यह तुम्हारे उज्ज्वल भविष्य का द्योत है। भाषा विषयक प्रश्न और जिज्ञासा भी सुन्दर औ सराहनीय है।

तुम्हारे प्रथम गुरु माता-पिता हैं। दूसरा गुरु वह है जो गुरु-मंत्र देते, यज्ञोपवीत कराते तथा मानव में उच्च संस्कारों के बीज बोते हैं। तीसरे गुरु वे हैं, जो व्यवहारि जीवन के संचालन के लिये B. A., M. A., Ph. D. B. Ed., M. Ed., B. Sc. ., विद्यालंकार आदि की शिक्ष देते हैं। प्रतिदिन प्रातः-सायं माता पिता तथा जब दर्शन हो, तब विद्यागुरु को साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम कर तुम्हारा परम धर्म है। यही कारण है कि छात्रालयों दीवारों पर धर्मचर, सत्यं वद आदि उच्च कोटि के जीव पथ प्रदर्शक आदर्श सुवाक्य लिखे रहते हैं। माता-पिता त अन्य गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य है। विनय विनम्रतापूर्ण, मृदु तथा मधुर वाक्य बोलना चाहिये। बच्चों के लिये उपदेश तथा कहानियां 'रामतीर्थ' मासिक भविष्य में प्रकाशित की जायेंगी। तुम तो पढ़ते ही हो, अप इष्ट मित्रोंको भी 'रामतीर्थ' पढ़ने को दो।

भाषा

माता-पिता की भाषा को मातृभाषा कहते हैं। प्रतिदि

का अभ्यास होने के कारण मातृभाषा की शिक्षा में अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता और उसका पढ़ना उचित भी है। दूसरी भाषा हिन्दी है। यह राष्ट्र-भाषा है, अतः इसके प्रति विशेष प्रेम-भाव रखना चाहिये। जब प्रत्येक प्रान्त के लोग हिन्दी भाषा को विशेष महत्त्व देकर प्रेमपूर्वक उसे सीखने लगेंगे, तब प्रान्तभेद, सामाजिक भेद, जातिभेद, व्यवहारभेद, धर्मभेद, नैतिक भेद स्वतः दूर हो जायेंगे। सर्वत्र परस्पर प्रेमभाव का विस्तार होगा। भारत की राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ और सुस्थिर होगी। देश उन्नति और समृद्धि की ओर वेग गति से अग्रसर होगा। व्यापार-उद्योग, नौकरी आदि के सुअवसर उपलब्ध होंगे और विविध विषयों में उन्नति के साधन प्रस्तुत होंगे। मातृभाषा के समान हिन्दी भाषा भी आदरास्पद होनी चाहिये, क्योंकि यह राष्ट्रभाषा, देशभाषा, भारत माता की भाषा, हिन्दुस्तान की भाषा, स्वराज्य को स्थिर और सुरक्षित रखने की भाषा और सर्वोपरि भाषा है। इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह नहीं होना चाहिये। हिन्दी भाषा के प्रति जो लोग अरुचि प्रकट करते तथा संदेहभाव रखते हैं, वे भारत की सर्वांगीण उन्नति के अनुकूल नहीं होंगे।

तीसरी भाषा अंग्रेजी के लिये तुम्हारा प्रश्न है। अंग्रेजी विदेशी भाषा है और हिन्दी देश की भाषा है। विदेशी भाषा होने के नाते अंग्रेजी को अधिक महत्त्व देना अनुचित है। जैसे भारतीय जनता के लिये फ्रेंच, जर्मन, फारसी, उर्दू आदि गौण भाषाएं मानी जाती हैं, वही वस्तुस्थिति अंग्रेजी भाषा

पर भी लागू होती है । अंगरेजी विश्व-भाषा है, अत व्यवहार-संचालन के लिये अंग्रेजी की शिक्षा लेना आपत्तिजनक नहीं, परन्तु अंग्रेजी को भारत की राष्ट्रीय भाषा औ मातृभाषा के समान महत्त्व देना भारत की राष्ट्रीय भाव के लिये प्रतिकूल है । अतः मेरे मतानुसार अंग्रेजी को उतन ही महत्त्व देना चाहियें, जितना अन्य किसी विदेशी भाषा क दिया जाता है । राष्ट्रभाषा और मातृभाषा ही किसी देश क प्रमुख भाषा के पद को सुशोभित कर सकतीं हैं ।

नन्दकिशोर शर्मा, दिल्ली

पत्र—४ प्रश्न—१ मेरा पुत्र—जिसकी आयु लगभ २२ वर्ष की है सोते समय दांत कटकटाता है । दांत बहु चाबता है । इसके लिये ऐसी औषधि, आसन और परहे आदि बतायें, जिससे उसके दांत कटकटाना बन्द हों । कृपय कारण भी लिखें कि वह दांत क्यों चाबता है ?

प्रश्न—२ मेरी आयु ५० वर्ष की है । आपके 'रामतीर्थ' क लगभग ३-४ वर्ष से ग्राहक हूं । 'रामतीर्थ' पढ़कर ही मैं प्राणायाम करना प्रारम्भ कर दिया है । किसी से प्रैक्टिक ट्रेनिंग (प्रायोगिक शिक्षा) नहीं ली है । नाक से सांस लेक जब उसे अन्दर ले जाता हूं, तब उससे पेट फूलता है, फलत पेट कुछ बड़ा-सा होता जा रहा है । संभवतः प्राणाया करने में कुछ त्रुटि है । कृपया समझाकर लिखें । पूरी तर से प्राणायाम की विधि लिखें । आपकी महती कृपा होगी ।

उत्तर १:— अशक्ति तथा वायु-दोष दांत कटकटाने का एक कारण है । क्रोध का आवेश मन पर छाया रहता है और रात को उसका प्रभाव प्रकट होता है । दिन में बारंबार कुछ न कुछ खाते-पीते रहने की आदत से रात में उसका स्मरण आता रहता है ।

उपचार :— प्रातःकाल स्नान के पश्चात् देव-पूजा और संध्या-वन्दन से निवृत्त होकर सूर्यभगवान् के सामने खड़े होना चाहिए । खड़े होने का ढंग ऐसा हो, जिससे समस्त शरीर में सूर्य किरणों का स्पर्श हो । इसके अतिरिक्त सूर्य-भगवान् का मंत्र मुख से बोलते हुए ५१ बार सूर्य को दण्डवत्-नमस्कार १२ प्रकार से किया जाता है; फलतः अनुसंगिक रूप से योग के १२ आसनों का अभ्यास भी अनायास हो जाता है । सूर्यनमस्कार के मंत्र निम्नलिखित हैं—

(१) ॐ मित्राय नमः, (२) ॐ रवयें नमः, (३) ॐ सूर्याय नमः, (४) ॐ भानवे नमः, (५) ॐ खगाय नमः, (६) ॐ पूष्णवेनमः, (७) ॐ हिरण्यगर्भाय नमः, (८) ॐ मरीचये नमः, (९) आदित्याय नमः, (१०) सवित्रे नमः, (११) ॐ अर्काय नमः, (१२) ॐ भास्कराय नमः । सूर्यनमस्कार की जो क्रियाएं हैं, उन्हें किसी जानकार से सीख लेना चाहिए ।

भोजन :— प्रातःकाल सूर्यनमस्कार के ३० मिनट (आध घण्टे) बाद गाय के दूध में केसर, बादाम, खसखस, पिस्ता, कालीद्राक्ष, बड़ी सौंफ आदि जल में पीसकर दूध में मिश्रित करें । उस दूध में ४ औंस जल भी मिलायें । इसके बाद दूध को गरम करके ठण्डा हो जाने के बाद पी जाना चाहियें ।

नास्ता करने की इच्छा हो, तो मक्खन के साथ गेहूं की रोटी अथवा ब्रेड लेना चाहियें। मध्याह्न-काल में चावल, गेहूं की रोटी, उड़द की दाल, शाक-सब्जी का उपयोग करना चाहिए। भोजन के बाद मीठे फल भी लिये जा सकते हैं। अपराह्न में ४ बजे मोसंबी (मीठा नीबू) के ८ औंस रस में २ औंस गरम जल तथा जीरा और काली मिर्च का चूर्ण आवश्यकतानुसार मिलाकर पीना चाहिए। रात का भोजन ७ बजे तक कर लेना चाहिए। भोजन में गेहूं की रोटी, सब्जी, मूंग की दाल लेना चाहिए। भोजन में हिंगाष्टक चूर्ण जल के साथ सेवन करना चाहिए। उसकी मात्रा किसी वैद्य से पूछ लें अथवा आरंभ में कुछ दिनतक अल्प मात्रा में सेवन करें। चूर्ण का प्रयोग ७ दिन तक करना चाहिए। इस विधि-विधान से १५ दिन के अन्दर आपके पुत्र की शिकायत दूर हो जायेगी।

उत्तरः—२—प्राणायाम शारीरिक एवं मानसिक लाभ के लियें किया जाता है। आसन-प्राणायाम का अभ्यास जीवन भर करना चाहियें। यह साधन परम पुण्यमय, परम श्रेयस्कर, परम कल्याणकारी, परम ध्येय-निष्ठा की ओर प्रवृत्त करने वाला, परम सिद्धि का दायक, परम पुरुषार्थ का प्रकाशक, परम हेतु का द्योतक, परम दैवी ऐश्वर्य का संवाहक, परम हितकारी, परम निष्ठा का विधायक, परम कर्तव्य का प्रोत्साहक, परम निधि का संपादक, परम लाभ उठाने का प्रशस्त मार्ग, परम वैभव के अर्जन करने का अनुपम अनुष्ठान, परम सुख शान्ति की अनुभूति कराने वाला, परम पवित्र भावों में परिप्लावित रखने वाला, परम आयुष्मान बनने तथा परम श्रेयस्कर

अधिकारी बनने का महत्त्वपूर्ण दैवी साधन है। प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधि आदि अन्य योगांगों की जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है। सन् १९६१ ई० के सितम्बर महीने के 'रामतीर्थ' मासिक में प्राणायाम की विधि समय और लाभ के संबंध में विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है। आप उसे पढ़कर पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं। यदि आपको प्राणायाम की विधिवत् शिक्षा लेने की उत्कण्ठा है, तो आप अवकाश के समय सुविधानुसार बम्बई पधारने की कृपा करें और श्री रामतीर्थ योगाश्रम में प्राणायाम की विभिन्न क्रियाओं को विधिवत् सीखकर जीवन को धन्य बनायें।

शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावकों के लिए
समान रूप से उपयोगी
विचार पूर्ण शैक्षणिक मासिक
शिक्षा प्रदीप
मध्य प्रदेश व हिमाचल प्रदेशके शिक्षा विभगों द्वारा मान्य
विचारोत्पादक लेख, शिक्षाप्रद कहानियां, शैक्षणिक
सुविधाओंकी जानकारी, छात्र गतिविधियोंकी सचित्रझांकी
वार्षिक मूल्य ५)रुपयें एक प्रति ५० पैसे
पत्र व्यवहार का पता:—
व्यवस्थापक, शिक्षा प्रदीप मासिक, शांति निकेतन,
मारवाड़ी रोड, भोपाल (म. प्र.)

सन्त कबीरदास

ले. राजमोहन मिश्र

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अन्तर्गत महान् ऋषि महर्षि, योगी, सन्त-महात्मा, विद्वान्, वीर, धनिक, सेवा- भावी, परमार्थ-रत, विश्वकल्याणचेता, तात्विक औ तार्कित विचारक, विश्व-ब्रह्माण्ड की आन्तरिक सूक्ष्म औ पार्थिव शक्तियों के प्रयोजक वैज्ञानिक आदि अपनी महत्त और प्रतिभा का परिचय कराकर अनन्त में विलीन हो गये हैं आज भी यह महान दैवी विभूतियां भारत-भूमि के कण-क और जन-जन में छाई हुई हैं। यहां संकट के विरुद्ध रण- हुंकार में सन्तों की प्रोत्साहन मूलक वाणी का स्पष्ट प्रभा प्रकट होता है। आध्यात्मिक रूप में इन सन्तों के उपदेशों भारत-भूमिपर जो कल्याणकारी स्वर संचालित किया, उसक प्रभाव अद्यावधि विद्यमान है। इन सन्तों की अमरवाणि और उनके जीवन का महान कृतित्व आज भी आदर्श बं हुई हैं। सन्तों की महिमा संस्कार रूप में भारतीय जनता रोम-रोम में रम रही है

भारत का भूतकालीन साहित्य सन्तमहात्माओं, विद्वा वीरों और निस्स्वार्थ जनसेवकों के जीवन-वृत्तों से भरा हु है। ऐसे त्याग-तपोमय जीवन में चैतन्य का निरन्तर उद्रे होता रहता है, जिसके सान्निध्य में आकर सर्वसाधारण शरीर में चैतन्य का संचार हो उठता है। सन्तों के अप्रतिह तैज्यसीय विचारों से मानव प्रभावित हुए हैं और उनक जीवन बदल गया है। सन्त की नवीन आशाओं और उमं

से परिपूर्ण वाक्प्रणाली से प्रभावित होकर वृद्धों में नवीन जीवनी शक्ति का आविर्भाव हुआ और वे पुनः एक नवयुवक की तरह जीवन-कर्तव्यों के पालन में लग गये। महात्माओं के उपदेशों को सुनकर अनायास ही उच्च भावों का उद्रेक हो उठता है। सन्तों के अन्तः शरीर से निःसृत जीवन-रस का पान करने से एक अनिर्वचनीय शान्ति और तृप्ति का अनुभव होता है।

सन्तों के उपदेशों में पारस्परिक एकता की गूंज स्पष्ट लक्षित होती है। वे जन-मानस के अत्यन्त निकट रहते हैं और तत्कालीन वास्तविक स्थिति से परिचित कराकर तदनुसार जीवन-निर्माण का साकार चित्र प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने आख्यानों, उपाख्यानों, कविताओं, भजनों का जो विराट् कोष प्रस्तुत किया, उसके सतत स्पर्श का स्थायित्व नित्य नई ताजगी का आह्वान करता रहता है। सन्त भारतीय जीवन के गौरवशाली अंग हैं और उसपर उनकी सत्ता अक्षुण्ण है। जनता उनकी अवहेलना कर नहीं सकती। इसके मूल में है सन्तों का त्याग-तपोमय शुद्धाचार। भारतीय जनता सन्तों की अनुगृहीत है। वह उनके नेतृत्व को स्वीकार करती है। गांधीजी ने राजनीति की तुलना में सन्त-जीवन को ही अधिकांश में प्रकट किया, और समग्र विश्व में उनका स्वागत हुआ। महात्माजी भारतीय सन्त-परंपरा के प्रतिनिधि थे।

इसी सन्त-परंपरा में हमारे विवेच्य सन्त और कवि महात्मा कबीरदास का आसन अत्यंत ऊंचा है। अंध-

विश्वासों और कुरीतियों पर प्रहार करते हुये उन्होंने जो विचार प्रस्तुत किये और मानव के समक्ष प्रगल्भ वाणी से उसके खोखले चरित्र का जो चित्र उपस्थित किया, वह उपादेय और ग्राह्य है। वे नैतिक जीवन तथा चरित्र के प्रति सजग बनने के लिये प्रेरित करते हैं और पाखण्डपूर्ण कुरीतियों से दूर रहकर वास्तविक जीवन-दृष्टि अपनाने का उत्साह प्रदान करते हैं। उनके प्रबल व्यंग मानव के निस्सार आचार विचारों की पोल खोल देते हैं और उनके अनौचित्य का परिचय भी करा देते हैं। कबीर भले ही शास्त्रीय विचारों से अपरिचित थे, किन्तु व्यावहारिक जीवन का ज्ञान उनमें व्यापक रूप से था।

कबीर की भाषा और भावों में भक्ति-रस का अजस्र और अदम्य स्रोत परिलक्षित हो रहा है। उन्होंने जीवनभर भक्ति-भाव से भरपूर काव्यों की रचना की। इनके भजनों, साखियों और दोहों में अन्तःजन्य भावनाएं सुश्रृंखलित रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। कबीरदास तीर्थ-यात्रा, व्रत-उपवास, पूजा-पाठ आदि के विरोधी थे। इस सम्बन्ध में कबीरदास के विचार निम्नलिखित श्लोक के साथ पूर्णतया मेल खाते हैं।—

आत्मात्वं, गिरि मतिः, सहचरः-
प्राणः, शरीरं गृहम्,
पुजार्थे विषयोपभोग रचना,
निद्रा समाधिस्थितिः,
संचार पदयोः प्रदक्षिण विधिः

स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं
शम्भो तवाराधनम् ।

अर्थात हे देव ! तुम मेरी आत्मा हो, गिरिजा मेरी बुद्धि में स्थितप्रज्ञा बनकर व्याप्त हो रही हैं, मेरे प्राण तुम्हारे सहचर हैं, मैं जिन विषयों का सतत उपभोग करता हूं, कर्तव्य कर्मों का पालन करता रहता हूं, वही पूजन, वन्दन और उपासना है; जब निद्रानिमग्न तब समाधि में ही तल्लीन होता हूं—निद्रा ही मेरी समाधिपूर्ण स्थिति है। जब मेरे पैर यत्र-तत्र संचालित होते हैं, तब मैं तुम्हारी प्रदक्षिणा ही करता रहता हूं। मैं निरर्थक अपने पैरों को गति प्रदान नहीं करता हूं, अपितु तुम्हारी प्रदक्षिणा में ही उन्हें लगाये रहता हूं। हमारी समस्त वाणी—हमारा समग्र वाग्विलास आपकी स्तुति में ही अपने कर्तृत्व और प्रतिभा शक्ति का प्रदर्शन करता है। मेरा प्रत्येक शब्द आपके स्तोत्र-गान का अंग है, सहायक है। इस प्रकार हे शम्भो ! हे शिव ! हे कल्याण ! मैं जो कुछ भी करता रहता हूं, वह सब आपकी आराधना अर्चना ही है।

कबीर की ईश्वरोपासना का भी यही स्वरूप है। यही उनके नित्य जीवन का अनुष्ठान है। यही उनका ध्येय है। यही तत्व उनके समग्र कथनों में प्रशस्त पाया जाता है। उन्होंने समाज को कुप्रवृत्तियों से बचे रहने का सन्देश दिया और वे पण्डितों और मौलवियों के कार्यों को व्यावहारिक विधानों के सुचारु संचालन में बाधक मानते थे।

कबीर के उपास्य राम हैं। इसका उल्लेख उन्होंने अपनी वाणी में–अपनी कविताओं में राम का स्मरण अनेक स्थलों पर किया है, किन्तु यह राम सगुण और निर्गुण दोनों ही स्थितियों से भिन्न हैं—परे है। वह द्वैत अद्वैत के विवादों से दूर है। वह परब्रह्म हैं। 'राम' नाम अपनी साकारता के दर्शन करा रहा है, साथ ही निराकार ब्रह्म ता उनकी भावनाओं और कविताओं में सर्वत्र छाया हुआ है। उनके बिचार वेदान्त दर्शन के सर्वथा अनुकूल हैं। उन्होंने वेदान्त के सूत्रों की अपनी सशक्त और प्रचलित लोकवाणी में व्याख्या की। रहस्यवाद, उलटवांसी को यदि प्रयत्नपूर्वक हृदयंगम किया जाये, तो निस्सन्देह वह हमारे लिये उपयोगी सिद्ध होती हैं, उसमें एक गूढ़ व्यंजना निहित जान पड़ती है। सूरदास ने भी ऐसी ही पहेलियां बुझाई हैं। तुलसीदास ने कहीं भी पहेलियां नहीं बुझाई हैं। उनकी रस, अलंकार आदि से परिपूर्ण बिराट लोक भाषा के अन्तर्गत साकार ब्रह्म के चरित्र का चित्रण किया गया है। वह ब्रह्म लोक जीवन के साथ घुल-मिल कर काम कर रहा है और उसका महान् जीवनादर्श दर्शनीय है। कबीर और तुलसी दोनों ने ही एकता और पारस्परिक सद्भावना का आह्वान कर जीवन को नवीन चैतन्य धारण करने के लिये प्रेरित और उत्साहित किया है यह दोनों कुछ मुख्य सिद्धान्तों को लेकर ही एक दूसरेसे भिन्न लक्षित होते हैं, किन्तु जन-कल्याण सर्वतोभद्रभावना, सर्वोदय, पारस्परिक भावनात्मक एकता, सहयोग आदि में दोनों ही एक मत हैं। वेदान्त-

निदर्शित माया की मीमांसा कबीर और तुलसी ने भी की है।

कबीर 'सहज समाधि, की स्थिति को ग्रहीत करते। यह समाधि योग की है, जिसका दूसरा रूप निराकार ब्रह्म की अनुभूति में मस्त रहने का है। किन्तु कबीरदास अष्टांग योग के समर्थक नहीं थे। इन सब क्रियाओं का उन्होंने यह कहकर विरोध किया है कि वे अत्यंत क्लिष्ट-दुःसाध्य हैं, अतः उनकी जरूरत नहीं, नित्य जीवन में स्वभावगत ईश्वरानुभूति करते रहना ही सरल साध्य साधन है। वे राम-ब्रह्म का अनुभव शून्य में करते प्रकट हो रहे हैं, जिनकी साक्षी उनकी साखियां दे रही हैं। वे ब्रह्माराधना में सतत जागरूक रहते हैं। उनका प्रत्येक कार्य आराध्य का पूजन है। उनकी यह पूजा अहर्निश चलती रहती थी। ईश्वर के साथ उनका तादात्म्य कभी विच्छिन्न नहीं हुआ। वह शून्य रूप में निरंतर सर्वत्र अनुभूति करने, निर्विकार रूप से--वासनाओं और इच्छाओं के भ्रम-जाल से दूर रहकर त्रिगुणातीत शून्य ब्रह्म के भाव में निमग्न रहने को ही वे वांच्छनीय और सुलभ मानते हैं। कबीर के ब्रह्मार्चन का यही विधान है--यही मार्ग है, जो जनता के सामने स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

कबीर की जीवनी

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में यह प्रचलित जनश्रुति है कि उनकी जन्मदात्री एक ब्राह्मण-विधवा थी। और उनका लालन पालन एक मुसलमान जुलाहे के घर हुआ। परन्तु ऐतिहासिक तथ्य इसका समर्थन नहीं करते हैं। ऐतिहासिक खोजों के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका

है कि कबीर का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था, जिसने दो-तीन पीढ़ी पहले मुसलिम धर्म स्वीकारा था, अत उस परिवार पर और उसके सतत सान्निध्य के कारण कबीर पर भी हिन्दू धर्म का प्रभाव पूर्णतः विद्यमान था। उनके आचार विचार और कार्य व्यवहार में हिन्दू-धर्म के सिद्धान्त और व्यवहारिक संविधान का पालन प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। वह हिन्दू या मुसलमान किसी के भी विरोधी नहीं थे। दोनों की रूढ़िगत परंपराओं और अंधविश्वासों पर ही उन्होंने निर्भीक भाव से प्रहार किया है और बताया कि इस रूढ़िवाद और अंधविश्वासों ने ही मानव को तिमिराच्छन्न वातावरण भटकने के लिये विवश किया है। जनता को नई ज्योति और नवीन आदर्श लेकर नवीन प्रकाशानुभूति और नई प्रकाश गरिमा का आह्वान और धारण करना चाहिये ऐसा करने पर ही हम वास्तविक मार्ग को देखते हुये उसका अनुगमन कर सकेंगे। कबीर का परिवार दीर्घकाल से नाथ पंथियों और योगियों के प्रभाव में रहा। इन पंथों में निरूपित और गृहीत सद्गुरु की आवश्यकता और महत्व का प्रतिपादन कबीर ने वारंवार किया है। कबीर के परिवार में वर्णाश्रम धर्म भी अग्राह्य था। फलतः कबीर पर उसकी स्पष्ट छाप पाई जाती है। कबीर भी वर्णाश्रम धर्म के विरोधी थे।

सद्गुरु की आवश्यकता बताते हुए कबीरदास कहते हैं कि इन्द्रियों के मोहजाल में फँसकर मन विकार ग्रस्त हो जाता है, परन्तु सद्गुरु के सम्पर्क में आने पर इन्द्रियों का मायावी

आकर्षण छिन्न-भिन्न हो जाता है और अन्तःकरण निर्विकार और प्रकृतिस्थ बनकर कर्तव्य-कर्मों को कलात्मक स्वरूप में प्रकट करता रहता है। कर्म-कला की तन्मय साधना ईश्वरानुभूति में चिरन्तन सहयोगिनी बनी रहती है। उनकी जीवन-कला काव्य-कला के माध्यम से पूर्णतः प्रतिबिम्बित हुई है और हम उनके वास्तविक स्वरूप और लक्ष्य से परिचित हो जाते हैं! उनकी कविता एक व्यापक शंखध्वनि के रूप में गूंजी और उसने जन-मानस में नवीन भावों और विचारों का प्रस्फुटन किया। कबीर ने दाता को दान से बड़ा माना है, इसी तथ्य के आधार पर उनका कहना है कि ईश्वरानुभूति की अवस्था पर पहुंचाने वाला सद्गुरु ईश्वर से भी बड़ा है।

ईश्वरानुभूति के लिए कबीर ने अन्तःकरण की पवित्रता को बताया है। उनका यह भी कहना है कि मन ही तृष्णाओं का निवास स्थान है और माया-मोह से परावृत होकर नाना प्रकार के आघात-प्रतिघात सहन करता रहता है। मानव की मौलिक चेतना इस मन के हाथ में इस तरह नाचता रहता है, जैसे मानव कठपुतली या बन्दरों को स्वेच्छानुसार नचाता रहता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। उसका कृपा पात्र बनकर मानव अनायास ही क्लेश-मुक्त रह सकता है। कबीर के मतानुसार यह संसार नाशवान् और असार है। इसके मोह-जाल में फँसकर जीवन को नष्ट करना कदापि वांछनीय नहीं। यह मूढ़ता है और यह कभी श्रेयस्कर नहीं हो सकती; अतः हमें सर्वजन हितकारी कार्यों में लगे रहना चाहिए। कबीर ने अपनी कविताओं में साम्प्रदायिकता का घोर विरोध किया है। वे समग्र कर्मकाण्ड (तीर्थ, व्रत, रोजा-नमाज आदि)

को अनावश्यक मानते हैं और कहते हैं कि यह अनुपयो दम्भ है और इस साम्प्रदायिक ध्वजा को स्थिर रखने से लाभ नहीं। यह सब माया का प्रपंच है और मानव उलझकर वास्तविकता से पराङ्मुख हो बैठा है। इस माय मोह से पृथक रहकर ही मानव सच्चे भक्ति-मार्ग अनुगामी बन सकता है।

यहां हम उनके कुछ पद उद्धृत कर रहे हैं, जिस उनके जीवन का सच्चा परिचय मिलता है :—

घूंघट का पट खोल रे! तो को पीव मिलेंगे।
घट-घट में वह साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे
धन-यौवन को गरब न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे
सुन्न महल में दियना बारिले, आसन से मत डोल रे
जाग जुगत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे
कहै 'कबीर' आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे

अर्थात् अपने अन्तःकरण के द्वार को खोल दो, उस ड़ा हुआ पर्दा हटा दो फिर तुम स्वयं ही ईश्वरानुभूति तन्मय हो जाओगे। वह स्वामी-ईश्वर घट-घट में रम है—अर्थात् सबके अन्तर ईश्वरीय चैतन्य से भासमान है अतः किसी के प्रति कटु बचनों का उच्चारण करना उचि नहीं। धन और जवानी का अहंकार कभी नहीं कर चाहियें, क्योंकि यह पचरंगी चोला—पंच भूतमय शरीर झू है—साररहित है। यह पचरंगी काया शून्य है—अन्धकार है, इसके अन्तः प्रासाद में दीपक जलाओ—आत्मज्यो प्रस्फुटित करो और सदैव उसके समक्ष आसन लगाये रहो, जिससे यह आत्मज्योति कभी बुझ न सके।—क्रमश

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

(महत्त्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति)

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश मानसोपचार आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

पुरुषों के लिये समय:—प्रातःकाल ७ से ९॥
सायंकाल ६ से ७॥

महिलाओंके लिये समयः—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार को सबेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रमके संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आनेवाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रातः १० बजे व्याख्यान होता हें।

शनिवार तथा रविवार को व्याख्यानों के साथ-साथ भजन, कीर्तन वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास तथा व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

विशेष सूचना:— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से आनेवालों के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने तथा भोजन का प्रबंध नही है।

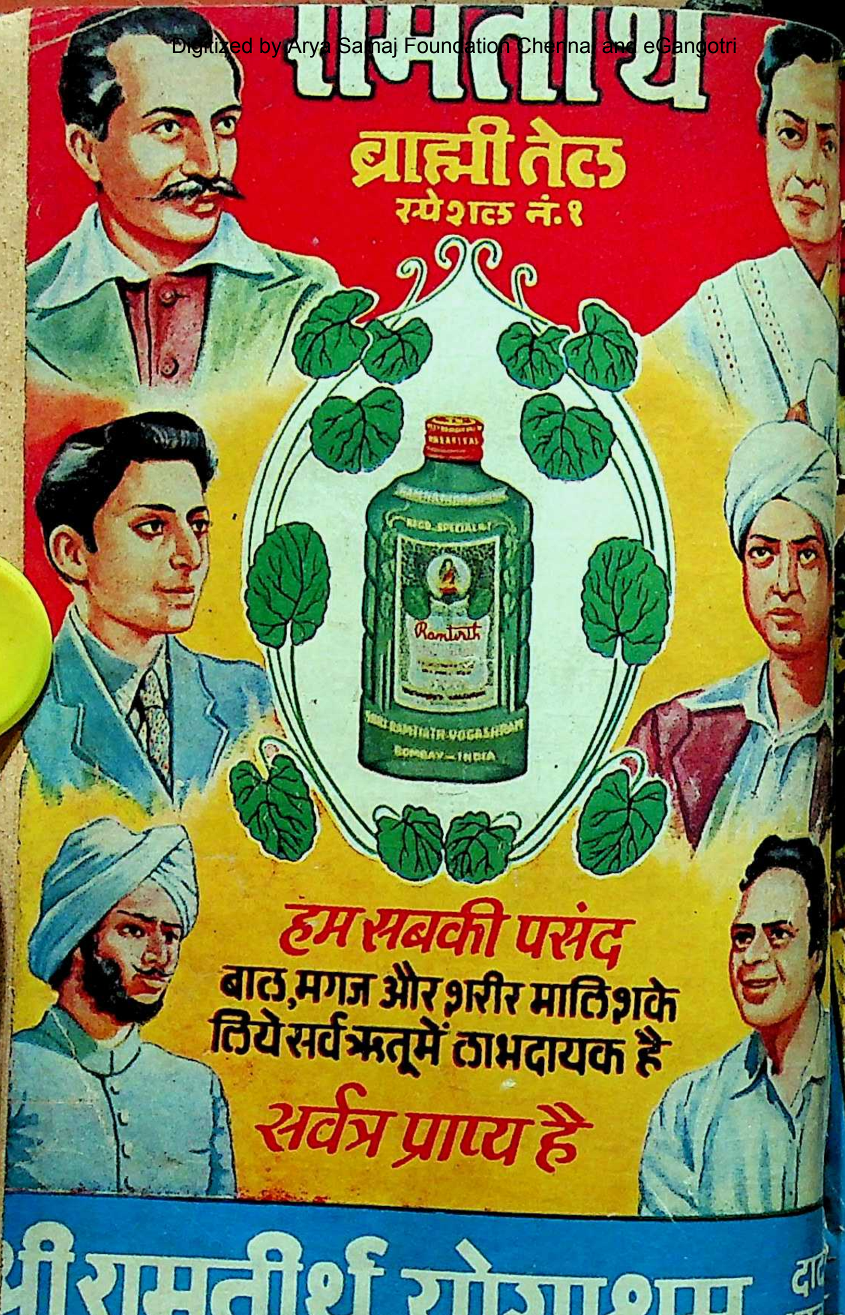
रामतीर्थ
ब्राह्मी तेल
स्पेशल नं. १
REGD. SPECIALITY
Ramtirth
SHREE RAMTIRTH YOGASHRAM
BOMBAY—INDIA
हम सबकी पसंद
बाल, मगज और शरीर मालिशके
लिये सर्व ऋतूमें लाभदायक है
सर्वत्र प्राप्य है
श्रीरामतीर्थ योगाश्रम,

AMTIRTH AUGUST 1966 Regd. No. MH

मताथ

न विकासक सर्वोत्तम मासिक

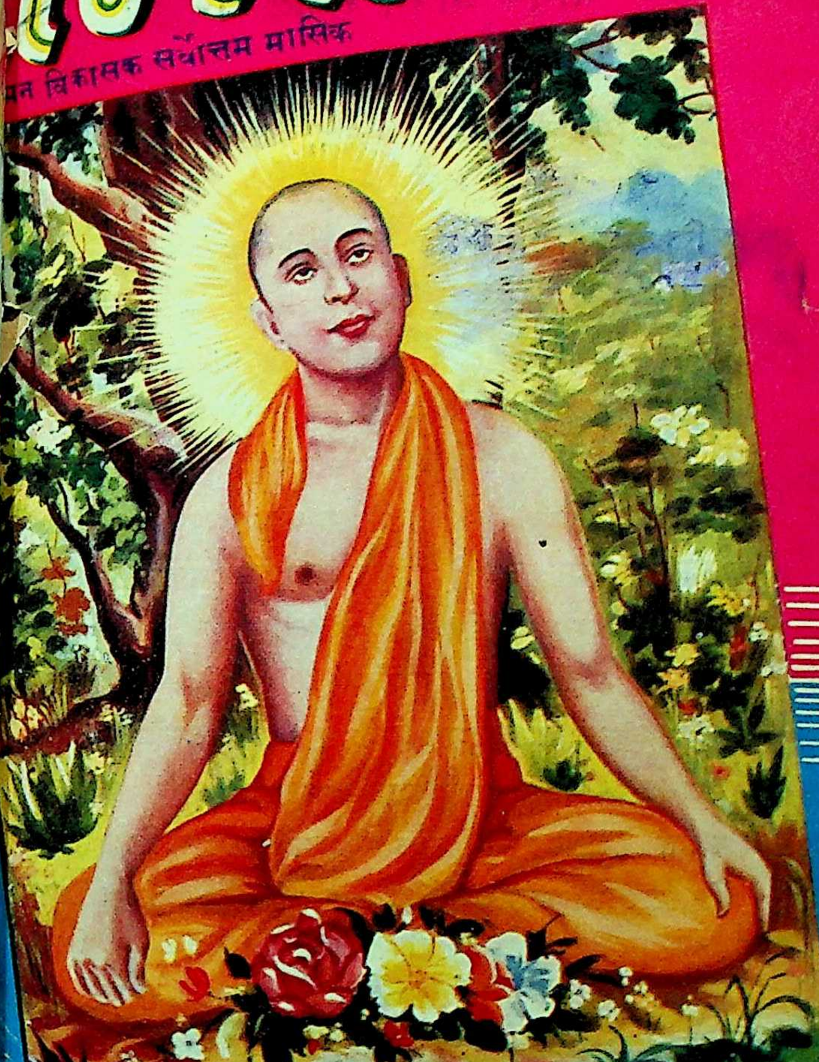

सितम्बर १९६६ ५० पैसे

मानव जीवन सफल बनाइये

नेति, धोति, बस्ति, नवली, त्राटक, कपालभाति, प्रकार के आसन, विभिन्न प्रकार के प्राणायाम, कुण्ड शक्ति जागृतिके लिये महत्वनीय अनेक मुद्राएँ, धारणा, समाधि का अभ्यास गत ४० बरसों से श्री राम योगाश्रम में चालू है। सत्य सुख का स्रोत, जन्म-मृत्यु निजी अनुभव, आपके मूल स्वरूप सत् चित् आनन्द करने के लिये सुलभ उपाय बताया जाता है। अष्टांग तथा राजयोग के निरंतर अभ्यास की व्यवस्था रखी गई व्यवहार एवं परमार्थ का अज्ञान यह दुःख का कारण आत्मज्ञान सुख का भंडार है। केवल आहार, भय, मैथुन निद्रा से सदा सुख आपको नहीं प्राप्त होगा। अर्थात् दु के साथ सुख का अनुभव मिलेगा। आपका वर्तमान काल सुख-शांति प्राप्त करने का अमूल्य समय है। अष्टांग अथवा राजयोग से यथेच्छ लाभ उठाने के लिये राम योगाश्रम का आश्रय लीजिये। सुवर्ण संधि का लाभ उठा

(प्रकाशन तिथि [illegible])

मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और
पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

रामतीर्थ

सम्पादक–
योगीराज
उमेशचन्द्रजी

वर्ष–७ अंक– ६
सितम्बर १९६६

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक } 442899
विज्ञापन
तार–प्राणायाम दादर

लेख	लेखक	पृष्ठ
वैदिक प्रार्थना	संकलित	५
उमेशवाणी		६
स्वामी रामतीर्थ एक परिचय	संपादकीय	७
जलपाईगुड़ी एक्सप्रेस (कहानी)	अनु. नामवर	१५
सन्त कबीरदास	राज मोहन मिश्र	१७
दुःख का कारण	बुद्धि प्रकाश बाजपेई	३१
धर्मोपदेश	स्वामी रामतीर्थ	४०
रामचरित मानस	टी. योगीराज उमेशचन्द्रजी	५४
नये पैसे का जन्म (कविता)	महावीर प्रसाद अग्रवाल	७४
विश्व विहार	कालूभाई बसिया	७८
प्रश्नोत्तर	सम्पादकीय	९०
मछेरन राजकुमारी (कहानी)	शोभा कमलापुरकर	१०५
रोगों से दूर रहें	योगीराज उमेशचन्द्र जी	११०
भारत के प्राचीन आयुध	डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'	११५

मुख पृष्ठ का परिचय

स्वामी रामतीर्थ के दर्शन कीजिए, विशेष विवरण हे इसी अंक के पृष्ठ ७ को देखें।

दुःख दर्दों से आराम

सिरदर्द, दमा, पेट के गैस, तथा पेट के अन्यान्य रो सूजन, अर्धांगवायु, संधिवात, लकवा, कमर की वेद फेफड़े का विकार, गर्दन की बीमारी, धातु विकार, चर्मरो अनिद्रा, मानसिक व्यधियां, हाथ-पांवों का कंपन, मेद रो पित्त रोग, कफ रोग, बेचैनी, सिर में चक्कर आना, पांडु रो आदि। विभिन्न प्रकार के शारीरिक रोगों के उपचार हेतु रामतीर्थ योगाश्रम में अवश्य पधार कर इलाज करवाइ पुरुषों का इलाज पुरुष और महिलाओं का महिला उप करती हैं। —उपचार हेतु मिलने का पता—

श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर (मध्य रेलवे) स्टेशन
सामने स्वामी नारायण मंदिर के पीछे वाली गली
उमेश धाम, २७, विन्सेन्ट स्केअर स्ट्रीट नं. २, बम्बई-
(स्टेशन से पूर्व की ओर केवल दो मिनट के रास्ते पर)।
फोन—४४२८९९ तार—प्राणायाम दादर

विशेष सूचना- 'रामतीर्थ' मध्यप्रदेश व राजस्थान सरका शिक्षण विभाग की ओर से प्राथमिक, माध्यमिक उच्च बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों व सार्वजनिक व पंचा समिति पुस्तकालयों के उपयोग के लिये स्वीकृत है।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके लिये विन्सेन्ट स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल विषयक लोकमत

(१) कुमारी नीला बक्शी, लालबाग लखनऊ

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल सिर की सुस्ती को मिटाता है।

बालों में हल्की हल्की खुशबू लाता है।

बाल झड़ते नहीं हैं।

दिमाग की वजह से आंखों को शीतल बनाये रखता है।

जब सिर में दर्द हो तो रामतीर्थ ब्राह्मी तेल बहुत लाभदायक तेल है।

मेरी समझ में रामतीर्थ ब्राह्मी तेल हमारे देश में सबसे अच्छा तेल है। इस तेल को सिर में लगाने से आपके सर की बीमारियां सब दूर हो जायेगी।

मेरे बाल इस समय दो फुट लम्बे हैं।

हमारे देश के स्त्री जीवन में बालों की ही सुन्दरता है।

मेरी ममी इस लाभदार तेल की मेरे शरीर में मालिश करती है।

शरीर मुलायम होता है।

(२) मिस सरला देवी किंगर; मद्रास

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल हमारे लिये बहुत लाभदायक है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल बुद्धि की तीव्रता को बढ़ाता है।

जब हम बहुत थक जाते हैं तब इस तेल से गाढ़ी निद्रा आती है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल स्मरण शक्ति बढ़ाता है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल गिरते बालों को रोकता है।

आरोग्य और आनन्ददायक बने रहने के लिए और प्रफुल्लित रहने के लिए हमारे लिए रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की जरूरत पड़ती है।

* धर्मोपदेश *

(प्रथम खण्ड)

स्वामी रामतीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी तथा चुने हु धार्मिक (वेदान्त परक) प्रवचनों का संग्रह । मानव ज सार्थक कर नित्य सुख प्राप्त करने के लिये अतीव सुन् सुयोग्य रूप से स्वामी रामतीर्थ जी ने देश--विदेशों में पर्य करके अपने स्वानुभव को बताया है । हरेक घरमें नित्य पा पाठनकर सुख--शांति का लाभ लीजिये ।

पृष्ठ संख्या ३८४ कीमत ४-०० डाक व्यय अलग ।

द्विरंगी आसन चित्रपट

बहुरंगी आसन चित्रपट में नित्य उपयोगी १७ आसनों संग्रह है । रोगों से मुक्त होकर सदा सुदृढ़ शरीर बनाए र के लिये आकर्षक चित्रपट अवश्य मंगवाइये । आसनों के ना तथा लाभ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं । डा व्यय के साथ ३-०० रु.

प्राप्तिस्थान

श्री. रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

भद्रंकर्णेभि श्रणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

सम्पादक - **रामतीर्थ** योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ७] सितम्बर १९६६ [संख्या ६

वैदिक-प्रार्थना

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥
ऋ. वे. पु. सू. १० / ९०-४

भावार्थ— यह पुरुष है, जो अपने तीन चरणों के साथ अव्यक्त रूप से ऊर्ध्व लोक में प्रकाशित रहता है। इस पुरुष का चौथा चरण जो इस लोक में प्रकट होता है। उस चौथे चरण से सारा विश्व आक्रान्त हो गया और उसी से स्थावर जंगम, जड़-चेतन आदि संपूर्ण विश्व चारों ओर भरा हुआ है।

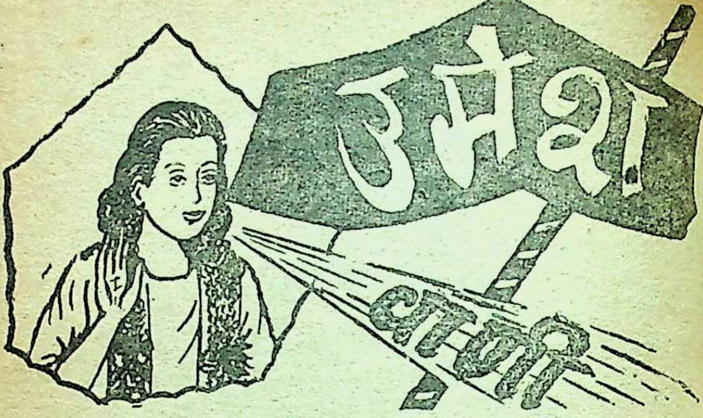

(२९५) बंध और मोक्ष आत्मा को नहीं, मन को है।
(२९६) मन जड़ और आत्मा चेतन है।
(२९७) पंचमहाभूतों से जड़ कोष बना है।
(२९८) प्राणों से प्राणमय कोष बना है।
(२९९) मन से मनोमय कोष बना है।
(३००) विज्ञान से विज्ञानमय कोष बना है।
(३०१) आनन्द से आनन्दमय कोष बना है।
(३०२) आनन्दमय कोष से परे निराकार परब्रह्म है।
(३०३) निराकार परब्रह्म स्वरूप आप ही हैं।
(३०४) ध्येय, ध्याता एक होने के पश्चात् केवल दृष्टा ही रहता है।
(३०५) नाम और रूप के मोह से अशांति बढ़ती है।

(३०६) देह आत्मा के रहने की जगह है इसी कारण इसको तीर्थ जैसी पवित्र रखना चाहिये।

(३०७) जो आदमी नशे में मदहोश है उसकी सूरत उसकी मां को भी बुरी लगती है।

स्वामी रामतीर्थ एक परिचय

स्वामी रामतीर्थजी का जन्म ८ अक्टूबर १८७३ ई० को पंजाब प्रान्त में स्थित गुजरानवाला जिले के मराली नामक गांव में हुआ था। उनका कुटुम्ब गोस्वामी नाम से प्रसिद्ध है। जिस विख्यात कुटुम्ब में हिन्दी-रामायण के रचयिता जगद्विख्यात महात्मा श्री तुलसीदास का जन्म हुआ उसी कुटुम्ब में स्वामी रामतीर्थ जी का जन्म हुआ, अर्थात् वे तुलसीदास जी के वंशज थे। यह कुटुम्ब प्रथम से ही अपने कुल गौरव के लिए प्रसिद्ध था, परन्तु स्वामी श्री रामतीर्थ जी ने इस कुटुम्ब में जन्म लेकर उसकी प्रतिष्ठा और भी अधिक बढ़ा दी। स्वामी जी के पिता का नाम गोस्वामी हीरानन्द जी था। स्वामी जी का जन्म होने के कुछ ही दिनों के बाद उनकी परम सुशीला माता का देहान्त हो जाने से उनकी बुआ (पिता की बहन) ने उनका लालन पालन किया। बचपन में माताका दूध न मिलने से वे बाल्यावस्थामें बहुत ही

दुर्बल थे, परन्तु इसी शारीरिक शक्तिहीन बालक ने बाद जिस तरह योगाभ्यास से इच्छाशक्ति और आत्मबल में प्रबलता प्राप्त की, उसी तरह शारीरिक स्वास्थ्य और पुष्टता भी प्राप्त की। एक दिन में कई मील तक पहाड़ों पर चलना अथवा अमेरिका के सिपाहियों के साथ कई मील तक दौड़कर सबसे आगे निकल जाना अथवा समुद्र में कई मील तक तैरना आदि क्रियाएं उन्होंने प्रत्यक्ष कर दिखाई थीं। इससे साबित होता है कि शारीरिक अथवा मानसिक किसी भी प्रकार की निर्बलता ऐसी नहीं, जिसका सुधार करना सम्भव न हो।

स्वामीजी ने प्राथमिक पाठशाला की अंतिम परीक्षा अपने गांव में ही उत्तीर्ण की और तत्पश्चात् वे गुजरानवाला आये। गुजरानवाला के हाईस्कूल में उन्होंने 'एंट्रेन्स' परीक्षा तक का अध्ययन पूरा किया और इस परीक्षा में वे उत्तीर्ण हुए।

इस नगर में धन्ना भगत नाम के एक सज्जन रहते थे। उन्होंने स्वामी जी को प्रथम से ही अपने घर में रखा। अध्ययन के सिवा स्वामी जी को जो समय मिलता, वे उपरोक्त महापुरुष के संसर्ग में ही व्यतीत करते। जब धन्ना भगत् उपदेश करते, तब स्वामीजी उस उपदेश को अति ध्यानपूर्वक सुनते और जब वे चुप हो जाते तब स्वामीजी अपनी पुस्तक पढ़ने में लग जाते। वे सदैव अपनी एक दो पुस्तकें अपने साथ रखते। धन्नाभगत स्वामीजी पर अत्यन्त प्रेम रखते थे। दसवीं परीक्षा पास कर लेने के पश्चात् स्वामीजी के पिता उनका अभ्यास बन्द कर देना चाहते थे, परन्तु धन्ना भगत ने उन्हें

लाहौर के मिशन कालेज में दाखिल करा दिया। इस कालेज से उन्होंने बी. ए. की परीक्षा पास की। इस परीक्षा में वे समग्र पंजाब विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में आये। गणित विद्या में तो अति निपुण थे। बी. ए में पास हो जाने के के पश्चात् उन्होंने लाहौर के सरकारी कालेज में दो वर्षतक अध्ययन किया और गणित का विषय लेकर एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इस समय स्वामीजी की आयु २१ वर्ष की थी।

स्वामी रामतीर्थजी का आहार मुख्यतः दूध ही था। कभी-कभी वे अन्नाहार भी करते तो भी दो पतली रोटियों (फुलकों) के सिवा कुछ नहीं खाते थे। वे हमेशा दो बार दूध पीकर रहते, अपने अन्तरंग मित्रों और निकट के स्नेही सम्बन्धियों का स्वागत भी वे दूध से ही करते। औषधि खाते उन्हें कभी किसी ने नहीं देखा। वे मांसाहार को महापाप मानते थे और मादक पदार्थों को हलाहल विष समझते थे। उनकी वेष-भूषा (पोषाक) बहुत शादी थी। ग्रीष्म ऋतु में एक खादी की मोटी धोती और एक कुरता यही उनकी पोषाक थी। ग्रीष्म ऋतु में भी वे शिर को खुला रखते थे। बाहर जाते समय मलमल का फेंटा (पगड़ी) बांधते थे। टोपी कभी नहीं पहनते थे। शीतकाल में कम्बल का एक कोट पहनते थे। कालेज की शिक्षा पूर्ण करने के बाद जब वे स्यालकोठ के मिशन कालेज में प्रोफेसर थे समस्त शीतकाल में गरम कपड़े के रूप में कम्बल के सिवा अन्य किसी वस्तु का उपयोग न करते। प्रातः-सायं कालेज के विद्यार्थियों को वे अपने साथ टहलने के लिये ले जाते और आध्यात्मिक बातों पर संवाद करते। वे पतलून आदि का व्यवहार कभी न करते थे।

उनका मानसिक धैर्य असाधारण था। अपनी बहन (इस
ने भी शैशव काल में श्री रामतीर्थ को संरक्षण प्रदान
था) के स्वर्गवास का समाचार पढ़कर वे रावी नदी के
पर गये और वहां एकांत में ईश्वर से प्रार्थना की—
इस दुःख सहन करने की मुझे शक्ति प्रदान करो,
शोकाभिभूत न रह कर मैं निरन्तर तुम्हारी स्मृति में ही
लीन रहूं और मेरे अन्य कर्तव्यों को हानि न पहुंचे। ए
वनस्पतिजी ने पूछा-'आप के हृदय में ही वास्तविक
क्या है ? कालेज के लड़कों को पढ़ाने की या अन्य को
श्री रामतीर्थ ने उत्तर दिया —'यह पढ़ाने का काम तो
कुछ दिनों का है। पत्नी और पुत्र के लिए थोड़ा सा
संचय कर लेने के पश्चात् रात दिन देशाटन करना
लोगों को उपदेश देना-यही मेरी अन्तिम इच्छा है। जहां
जाऊंगा, विद्यार्थियों को शिक्षा दूंगा, बदले में थोड़ा सा
मिल जायेगा बस। अन्य किसी वस्तु की मुझे इच्छा न
उपदेश देकर अविद्या को दूर करना ही मेरे जीवन का वा
विक कर्तव्य है।'

कालेज के प्रोफेसर थे, तभी १८९७ ई० के अक्टूबर
में दिवाली के दिन उन्होंने अपनी आत्मा परमेश्वर को स
की' अर्थात् आत्मविद्या प्राप्त करने का निश्चय किया।
समय उनकी आयु २४ वर्ष की थी।

इस घटना के दो वर्ष के बाद वे वैराग्य की उत्तम शि
पर पहुंच गये और कालेज के गणित के प्रोफेसर का
आपने त्याग दिया। १८९९ ई० के लगभग वे हिमाल
ओर चल पड़े। उस समय उन्होंने २६ वर्ष पूर्ण कर २७ व

में पदार्पण किया था। उन्हें दो पुत्र और एक पुत्री थी। बड़े पुत्र का नाम मदनमोहन और छोटे का ब्रह्मानन्द था। हिमालय में पहुंचकर स्वामीजी ने कठिन तपश्चर्या की और ब्रह्म विद्या में प्रवीणता प्राप्त की। एक वर्ष के अन्दर ही उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। तत्पश्चात् थोड़े ही दिनों में उन्हें पूर्णत्व की—पूर्ण ज्ञान की स्थिति प्राप्त हुई और उनका योगबल बढ़ा। दो वर्ष के पश्चात् धर्म महोत्सव के अवसर पर वे मथुरा आयें थे। स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिये लोग इतने अधिक उत्कण्ठित थे कि शीत, वायु, समय, असमय आदि किसी भी विघ्न-बाधा की चिन्ता न कर वे उनके पीछे ही लगे रहते। तम्बू अथवा मण्डप का स्थान पर्याप्त न होने से यमुना के किनारे उन्हें व्याख्यान देने पड़ते थे।

कुछ दिनों के बाद अर्थात् १९०२ ई० में स्वामीजी पर्यटन के लिये निकल पड़े और तीन वर्ष में मिश्र, अमेरिका, जापान आदि देशों में घूम आयें। इन तीन वर्षों में उन्होंने जनता को पर्याप्त धर्मोपदेश किया। फिर भी उन्होंने अपनी आत्मिक उन्नति की साधना बन्द न की, लक्ष्मी की कोई पर्वाह न की, फिर भी समग्र जगत् का पर्यटन किया। स्वामीजी जब संयुक्त राज्य (युनाइटेड स्टेटस) में थे तो वहां के तत्कालीन राष्ट्रपति विशेष रूप से स्वामीजी का दर्शन करने के लिये दो बार उनके पास आये थे। 'क्या आपको किसी वस्तु की आवश्यकता है ?' इस प्रकार राष्ट्रपति के पूछने पर स्वामीजी ने उन्हें जो उत्तर दिया, उससे स्पष्ट हो जाता है कि स्वामीजी का त्याग कैसा था, स्वामीजी ने कहा— राम' को किसी वस्तु

की इच्छा नहीं, अतः वह क्या मांगे ? अखिल विश्व वैभव और सुख समृद्धि तथा सम्राटों की राजसत्ता 'राम' ही है । 'राम' सम्राटों का भी सम्राट है । क्या 'राम' याचना करने के लियें सन्यास लिया है ? नहीं ।' स्वामी हमेशा कहते रहे—

सारे जहां के बादशाह, प्यादे मेरी शतरंज के,
दिल्लगी की चाल है, सब रंग सोलहजंग के।

अमेरिका की जनता 'राम' पर इतनी अधिक मुग्ध उठी थी कि उनकी आध्यात्मिकक्षुधा तृप्त करनेके लिये राम एक दिन में ६-६ बार व्याख्यान देने पड़े थे। वहां बहुसंख्यकवासी राम उपदेश के वास्तविक उपभोक्ता बन ग थे। इतना ही नहीं; बल्कि बहुतेरे तो उन्हें ईश्वर का अवता मानने लगे थे और प्रतिक्षण स्वामी 'राम' के स्मरण में तल्लीन रहने लगे। वहां बहुतों के घर में अद्यापि राम चित्र उच्च स्थान पर लटकता दृष्टिगोचर होगा। केलिफोर्नि में दियें गयें व्याख्यान के संबंध में वहां के एक समाचार प में निम्नलिखित वर्णन पाया जाता है—

'भारत में हिमालय पर्वत पर अतर्क्य ज्ञानियों का निवास है, यह हम अभी तक सुनते आ रहे थे, परन्तु आज उनमें स एक का हम प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं। इन स्वामीजी का अगाध ज्ञान देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि नये जगत के ज्ञान की अथवा सुधार की दिशा भ्रांति पूर्ण है। इस ओर एक भी रामतीर्थ भविष्य में होने का चिह्न अभी दिखाई नहीं देता ।

स्वामीजी 'ओम्'—इस प्रणव-मन्त्र का सदा उच्चारण करते रहते। उपदेश करते-करते बीच २ में भी एकाएक जोर से प्रणवोच्चार करते थे। अमेरिका के पर्वतों में, झाड़ियों में जहां कहीं स्वामी राम जाकर रहते, वहां ओंकार की अव्याहत ध्वनि गूंजती रहती-उससे आकाश तथा आसपास का वातावरण प्रतिध्वनित होता रहता।

भू-प्रदक्षिणा कर स्वामीजी १९०५ ई० में भारत वापस आये। उनके आने के पश्चात् मथुरा में उनके अनेक शिष्यों ने स्वामीजी से नई संस्था स्थापित करने का अनुरोध किया। स्वामीजी ने इस बात से स्पष्ट इन्कार किया और उत्तर दिया कि—'भारत में काम करती हुई सभी संस्थायें अपनी-हमारी ही हैं, स्वामीजी ने आनन्द की उमंग में नेत्र बन्द किये और सबका आलिगन कर रहे हों—इस प्रकार हाथ फैलाये उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे और उन्होंने निम्नलिखित शब्दों का उच्चारण किया:—

क्रिश्चियन, हिन्दू, पारसी, आर्यसमाजी, सिख, मुसलमान किंबहुना मेरे प्रिय इष्टदेव के, भारत भूमि के-अन्न-जल-वायु से अस्थि, स्नायु, रक्त और मस्तिष्क का गठन हुआ, वे सब मानव मेरे बन्धु ही हैं—अरे! मेरे आत्मा ही हैं। उनसे कहो कि मैं उनका हूं। मैं सबको स्वीकार करता हूं। किसी को दूर नहीं रखता। मैं प्रेम हूं। प्रेम प्रकाश किरणों की तरह सभी वस्तुओ को अपने तेज से देदीप्यमान बनाता है। सचमुच मैं प्रेमका लहराता सागर हूं। मेरा सब पर समान प्रेमभाव है जो कोई इस प्रेम सागर में डुबकी लगायेगा, वह निरसन्देह

प्रेममय बनेगा। अधिक तो क्या, बल्कि जो कोई शत्रुभाव लेकर आयेगा, उसका भी मैं प्रेम से ही आलिंगन करूंगा। मेरे प्रेम का प्रवाह ऐसा प्रचण्ड है कि शत्रुता उसमें पड़कर कहीं की कहीं बह जायेगी।' इससे स्वामीजी का विश्वव्यापी प्रेम और निश्चय आत्मशांति कैसी थी, यह स्पष्ट हो जाता है।

कार्तिक वदी अमावस्या संवत १९६३ [१७ अक्टूबर १९०६ ई०] बुद्धवार अर्थात् दिवाली के दिन ३३ वर्ष की आयु में स्वामीजी जिसे स्वयम् गंगी कहकर पुकारते थे, उस गंगा को अपना शरीर अर्पण किया। स्वामीजी ने जिस दिन गुरु को आत्मसमर्पण किया, वह दिन भी दिवाली का ही था। इसी दिन स्वामीजीने अपना काम पूरा किया, अपूर्ण लेख पूर्ण किये और जलसमाधि लेने से कुछ क्षण पहले उनकी लेखनी से निम्नांकित शब्द उद्भूत हुए:—

'ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, गंगा, भारत, हे मृत्युदेव! मेरी यह देह भले ही ले जाओ मुझे इसकी तनिक भी पर्वाह नहीं। मुझे अन्य देहों का अभाव नहीं। चन्द्र की निर्मल किरणों में रूपहरी देह धारण कर मैं आनन्द से विहार करूंगा। जंगल, नदी और निर्झरों के रूप में मैं गाता फिरूंगा। समुद्र की उत्ताल तरंग बनकर मैं उझलूंगा-नाचूंगा। आनन्द विस्तारक मन्द वायु तथा शीतल सुगन्धित वायु मैं स्वयं ही हूं। ये सब मेरे विभिन्न स्वरूप ही हैं। इस स्वरूप में मैं पर्वत के नीचे उतरा, मृतकों को उठाया, जो सो रहे थे, उन्हें जगाया। अनेकशः दुखियों के आंसू पोंछे, गुलाबों को हँसाया और स्पर्श किया, उनसे लिपटा। यहां गया, वहां गया, साथ में कुछ भी नहीं रखा और किसी के हाथ में आया भी नहीं।'

गुजराती कहानी

जलपाईगुरी एक्सप्रेस

[मूल लेखकः— मनसुखलाल जवेरी : अनुवादकः— नामवर

"भूतकाल का इतिहास युद्ध के समय में मनुष्य को बहुत ही सहायक बन पड़ता है।" यशपाल ने कुछ सोचते हुये कहा।

"परन्तु अब युद्ध का समय दुनियां के ऊपर क्यों होना चाहियें ?"

"प्रकृति का ऐसा ही रिवाज है कि वह थोड़े थोड़े वर्षों बाद मनुष्य को युद्ध के लिये प्रेरित करता है। संहार करना उसे सर्जन की भांति अच्छा लगता है।" पुतली ने जवाब देते हुयें कहा।

"लेकिन भारत ने तो हमेशा शांति और आजादी ही चाही है। आज से नहीं..........अनादि काल से। यह आर्यों का देश है। राम, युधिष्ठिर, अशोक, हर्ष, कनिष्क..... ... . चन्द्रगुप्त का। फिर कई देश यहां क्यों हमला करते हैं ?"

"बस........बस.......वैरभाव की बातें बाद में शुरू होतीं हैं। सुनो योरोप देश में भी हमारे देश की तरह, तरह-तरह की भाषा बोलनेवाले लोग बसते हैं। वहां भी हमारे देश की तरह छोटे-छोटे देश हैं। ....हैं ना ? स्पेन, फ्रान्स, इटली, रशिया" करतार ने कहा—बिल्कुल सच। मित्रों ने अभिप्राय व्यक्त किया।

"दो महायुद्ध हुये जो इसी धरती पर खेले गयें। वे पड़ोसी ही थे या दूसरे कोई ?" पुतली ने पांव पसारते हुयें कहा।

"मगर हम तो परदेशियों को भी अपने देश की हालत बतला दें ऐसे लोग........?" करतार ने यह कहते हुये यशपाल की तरफ देखा।

"आप ऐसी बातें क्यों करते हैं। हर एक देश के अन्दर जासूसों के जाल बिछे रहते हैं।" पुतली ने नजर फिराते हुयें कहा।

"गुर्जर मंत्री माधव ने अपने निजी बैर का बदला लेने के लिये दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी को करण वाघेला पर चढ़ाई करने के लिये उकसाया और इससे गुजरात गुलाम बन गया। ऐसे कई गद्दारों के कारण भारत सदियों तक गुलामी की बेड़ी में जकड़ा रहा।" यशपाल ने उदासी से कहा।

"इस कमनसीब देश में देशद्रोहियों की कमी कभी नहीं रही। नाक की मक्खी की तरह बैठा होग्कोंग चीन के कब्जे में न आया। मगर वह भारत में नेफा और लद्दाख में आगे बढ़ने....... ।"

किन्तु अब तो हमारे जवान जागृत हैं। इंजिन ने सीटी बजानी शुरू की और उनकी बातें विलीन हो गयीं। मगर ट्रेन की रफ्तार बढ़ गयी।

हम जागृत हैं इसका नमूना यह जलपाईगुरी एकसप्रेस है। हमारा सिविल डिफेन्स.......

सिविल डिफेन्स! एक मजाक ही है करोड़पतियों ने लाख रु० दिये हों तो हम उन्हें कुछ नहीं कह सकते। ऊंट की चोरी और मूठ का दान। अबे.......जब बर्फ गिरती थी तो

(शेष पृष्ठ १२४ पर)

सन्त कबीरदास

ले० राजमोहन मिश्र

(गतांक से आगे)

सतत प्रज्वलित रहें। इस महल में सदैव जागरूक रहकर स्थित रहो, निःसन्देह अपने प्रियतम—ईश्वर के साक्षात्कार-दर्शन का अमूल्य अवसर प्राप्त करेंगे। ईश्वर की इस चरम अनुभूति की भूमिका पर पहुंचकर हृदय आनन्द के दिव्य प्रकाश से जगमगा उठता है। उसमें 'अनहद ढोल' बज रहा है—'अनहदनाद गूंज रहा है।

कबीर की सहज समाधि से परिचित होना जरूरी है, इसलियें यह भजन प्रस्तुत किया जाता है—

साधो! 'सहज समाधि' भली,
गुरु प्रताप जा दिनते जागी, दिन-दिन अधिक चली।
जहँ-जहँ डोलौं, सो परिकरमा, जो कछु करौं सो सेवा,
जब सोवौं, तब करौं दण्डवत्, पूजौं और न देवा,
कहौं सो नाम, सुनौं सो सुमिरण, खावँ पियौं सो पूजा,
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा।
आंख न मूदौं, कान न रूधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं,
खुले नैन, पहिचानौं, हँसि-हँसि सुन्दर रूप निहारौं।
शब्द निरंतर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी,
ऊठत बैठत कबहुं न छूटै, ऐसी तारी लागी।
कह 'कबीर' यह उन्मुनि रहनी, सो परगट कर गाई,
दुख सुख से कोई परे परम पद, तेहि पद रहा समाई।

कबीर कहते हैं— हे साधो ! साधु स्त्री–पुरुषो ! 'सहज समाधि' अर्थात् स्वाभाविक ध्येय-तन्मयता बहुत अच्छी है-अत्युत्तम है। गुरुकृपा से जिस दिन से यह 'सहज समाधि' जाग्रत हुई है। उस दिन से उसकी अविच्छिन्न अनुभूति हमें निरन्तर होती रहती है। मैं जहां कहीं भी डोलता फिरता हूं, आता–जाता हूं, वह सब ईश्वर की परिक्रमा करता हूं। मैं जो कुछ काम करता रहता हूं, वह प्रभु की अर्चना है-सेवा है। जब मैं सोता हूं—लेटता हूं, तब मैं दण्डवत् करता हूं-साष्टांग प्रणाम करता हूं। बस इतना ही करता हूं, किसी अन्य देव की पूजा नहीं करता। जो कुछ भी मैं बोलता रहता हूं, वह आपके नाम का गायन है और जो कुछ भी सुनता हूं, वह प्रभु का स्मरण है। मैं जो कुछ खाता-पीता हूं, वह आपकी पूजा है। धन और दरिद्रता–पूर्णता और रिक्तता में कोई भेद नहीं मानता। मैं द्वैतभाव नहीं रखता—सबको समदृष्टि से देखता हूं। मैं न तो आंखें बन्द करता हूं और न कानों को ही अवरुद्ध करता हूं तनिक भी कष्ट सहन करने की आवश्यकता नहीं, मैं मुक्त नेत्रों से उसके—ईश्वर के दर्शन करता हूं, उसे पहचानता हूं और हँस–हँसकर मनोरम रूप की अनुभूति करता हूं, उसी में मस्त हो उठता हूं। इस 'शब्द निरन्तर' अर्थात् सतत गतिशील 'अनहद नाद' में मन लग गया—तन्मय हो उठा है। सारी मलिन वासनाओं को मैंने छोड़ दिया है और वे बहुत दूर चली गई हैं। ऐसी तारी लग गई—एक ऐसा तार तम्य बन गया, एक ऐसी अदम्य गति शीतलता चल रही है जो किसी अवस्था में भी मेरा साथ नहीं छोड़ती, मुझसे दूर

नहीं होतीं, उठते-बैठते सदैव उसके साथ साक्षात्कार होता रहता है। 'कबीर' कहते हैं मैंने ऊपर जिस रहन-सहन और जीवन-प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया है, वह उन्मनी क्रियाकाण्ड है और इस सबको आचरण में उतार कर मैं सुख-दुःख से परे पहुंचकर परम पदपर प्रतिष्ठित होता हूं—लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति में मस्त हो उठता हूं।

कबीर ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को सामाजिक कट्टरता से से दूर रहकरपारस्परिक औदार्य का परिचय देने की हिमायत की है। कबीर ने कट्टरता को पथभ्रष्टता माना है। उनका कहना है :—

सन्तो! राह दोऊ मैं दीठा।
हिन्दू-तुरुक हटा नहिं माने, स्वाद सबन को मीठा,
हिन्दू बरत एकादसि साधै, दूध-सिंघाड़ा सेनी,
अन को त्यागे, मन नहिं हटकै, पारन करै स-गोती।
रोजा तुरुक नमाज गुजारै, विसमिल बांग पुकारै,
उनको भिस्त कहां ते होइहै, सांझै मुरगी मारै।
हिन्दू दया, मेहर को तुरकन, दोनों घट सों त्यागी,
वै हलाल, वै झटका मारैं, आगि दुनौं घर लागी।
हिन्दू-तुरुक की एक सह है, सद्गुरु इहै बताई;
कहैं 'कबीर' सुनौ हो सन्तो! राम न कहेउ खुदाई।

अर्थात् सन्तो! हिन्दू-मुसलमान दोनों की राह मैंने देखी है, दोनों के जीव-मार्ग से मैं परिचित हूं। हिन्दू मुसलमान दोनों में मत भिन्नता है। दोनों के अपने-अपने स्वाद हैं, और वे उन्हें मधुर प्रतीत होते हैं। हिन्दू एकादशी का व्रत करते

हैं और दूध-सिंघाड़े का सेवन। अन्न को त्याग देते हैं, परं मनोनिरोध नहीं करते। मुसलमान रोजा और नमाज के गुजारिश करते हैं और बिस्मिल्ला की बांग पुकारते हैं किन्तु क्या यह सब करने से उन्हें बहिश्त (स्वर्ग) मिल जायेगा? क्योंकि संध्या होते ही वे मुरगी मारते हैं। हिन्दुओं के लिए दया और मुसलमानों को रहम का विधान किया गया है—दया और रहम दोनों का स्वाभाविक गुण बताया गया है परन्तु इस गुण से विमुख होकर एक पशु को हलाल करता है और दूसरा झटका मारता है। दोनों घर में आग लगी हुई में—अर्थात् अशांति मची हुई है। हिन्दू और मुसलमानों की एक ही राह है। इसी की ओर सद्गुरु ने अंगुलि-निर्देश किया है।

इसके अतिरिक्त कबीरदास ने हिन्दुओं के माला-मुद्रा-धारण, ललाट पर चन्दन-लेपन, मूड़ मुंडाना या जटा रखाना, शरीर पर भस्म या राख लगाना, पानी गंगादि नदियों और पाषाण-मूर्ति का पूजन, कन्द-मूल-फलाहार, तीर्थ-व्रत-नियम आदि का विरोध किया है। उनका कहना है कि पढ़ने लिखने, संसार का भ्रमण करने, सन्ध्यातर्पण षटकर्म आदि से क्या लाभ हो सकता है—कौन सा हित साधन संभव है? यह सब ऐसे आचार हैं, जैसे बधिक हाथ में विषपूर्ण चारा (भोज्य पदार्थ) लिये घात में बैठा हो। कबीर का कहना है कि उपर्युक्त पाखण्ड पूर्ण आचरण भले ही न करता हो। किन्तु जो निर्विकार भाव और आत्मा की निर्मल दृष्टि से सर्वत्र

देखता है और जिसे साहब (प्रभु) के नाम का संबल उपलब्ध है, वही सच्चा है, उसी की साधना वास्तविक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर की निर्भीक वाणी ने समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन संघटित करने के प्रयास कियें। उन्हों ने अपनी वाणी सच्ची अनुभूति के रूप में प्रकट की और वे एक सच्चे सुधारक के रूप में समाज में प्रकट हुये। कबीर का जन्म संवत् १४५६ में हुआ और मृत्यु १५७५ में। इस प्रकार उनकी आयु १२० की होती है। उन्हों ने ७५ से १०० वर्ष तक जन-जीवन गायक के रूप में जो प्रशस्त वाणी प्रस्तुत की, उसे संकुचित दृष्टि के घरौंदे में बांध रखना संभव नहीं। कबीर जन-जागरण के अग्रदूत थे।

ज्ञान, योग और भक्ति-तत्त्व के गायकः—

संत कबीरदास

कबीर का जन्म योगी परिवार में हुआ था। इस परिवार ने नादानुसन्धान, आत्मदर्शन, लोकोत्तर आनन्दानुभूति की उच्च भूमिका तक पहुंचने के सक्रिय प्रयत्न भले ही न किये हों किन्तु वह योग के दार्शनिक स्वरूप से पूर्णतया परिच्चित था। इसके अतिरिक्त आसन, प्राणायाम का भी प्रचलन था। शारीरिक क्षमता और मानसिक चेतना के सम्पादन और धारण की दृष्टि से योग के आसन, प्रणायाम और मुद्राओं की साधना लोकप्रिय थी। शरीर को कार्यक्षम बनाने के लियें आसन और मनोबल की अभिवृद्धि के लियें प्राणायाम सर्वग्राह्य साधन हैं।

जनता में इनका संक्रमण आदिकाल से चला आ रहा है क्यों कि आदिनाथ महादेव ही योग के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। आसन, प्राणायाम, षटकर्म, मुद्रा आदि आज भी सुसाध्य और सुलभ हैं। योगी परिवार में जन्म लेने के कारण कबीरदास योग के दार्शनिक तथ्यों से पूर्णतः परिचित थे। योगाभ्यास के मुख्य ध्येय कुण्डलिनी शक्ति का जागरण, आत्म-प्रकाश का उदय, अनहद (अनाहत) नाद की अनुभूति और चित्तवृत्तियों को दबाने-रोकने का है। इन बातों को जानने के लिये मानव शरीर की आंतरिक रचना का ज्ञान अनिवार्य है। कहा जाता है कि जहां मेरुदण्ड कमर के साथ जुड़ा है, वहीं कुण्डलिनी जीवात्मा या स्वयंभू तत्त्व के स्रोत को तीन वृत्तों में लपेटकर सुषुप्त पड़ी हुई है। यह स्थिति जीवात्मा के लियें अत्यन्त बाधक है—जीवात्मा ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचने में असमर्थ है; फलतः मानव आत्मानन्द की अनुभूति से वंचित है। कुण्डलिनी शक्ति को जगाने और सुषुम्ना के द्वार को खोलने का प्रयास किया जाता है और तदनुसार साधना की जाती है। इस साधना के अनेक अंगोपांग है। आसन, प्राणायाम और इन्द्रिय निग्रह द्वारा मनोबल को दृढ़ीभूत कर उसे कुण्डलिनी शक्ति बनाने का दाइत्व सौंपा जाता है। यह बलवान और सुशिक्षित मन कुण्डलिनी शक्ति को उद्बुद्ध कर साधक का अलौकिक आनन्द- बाग में विचरण करने का सुअवसर प्रदान करता है।

कहा जाता है कि मानव-शरीर में ७२ हजार नाड़ियां हैं। इनमें से तीन नाड़ियां मुख्य हैं—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इड़ा नाड़ी मेरुदण्ड की दाहिनी ओर और पिंगला बाईं ओर अवस्थित है। सुषुम्ना कटि-प्रदेश से प्रारम्भ होकर मेरुदण्ड के अन्दर-अन्दर सहस्र दल कमल तक पहुंची है। इस कमल को शून्य चक्र भी कहते हैं। इसी शून्य चक्र में कुण्डलिनी शक्ति को पहुंचाना योगी का लक्ष्य है। सुषुम्ना नाड़ी में क्रमशः वज्रा, चित्रिणी तथा ब्रह्मनाड़ी हैं। योगाभ्यास द्वारा जाग्रत कुण्डलिनी विस्फुटित होकर प्रकाश के रूप में परिवर्तित हो जाती है और ब्रह्मनाड़ी द्वारा ललाट पर अवस्थित ब्रह्मरन्ध्र में पहुंच कर उसे समुज्ज्वल प्रकाश से परिपूर्ण बना देती है।

मेरुदण्ड की ब्रह्मनाड़ी के साथ पिरोये हुए ६ कमल हैं, जिन्हें चक्र कहा जाता है —

मूलाधार चक्र :— मेरुदण्ड के नीचे गुदा और लिंग के बीच मूलाधार चक्र की अवस्थिति है। यह चक्र चारह दलीय लाल कमल के रूप में है। इस चक्र को पृथ्वी तत्त्व का प्रतीक माना जाता है।

स्वाधिष्ठान चक्रः—यह चक्र नाभि के पास है। इसका रंग सिंदूरी है और इसके ६ दल हैं। यह जल तत्त्व का प्रतिनिधि है। यह अर्धचन्द्राकार है और इसका वर्ण चन्द्र के समान शुभ्र है।

मणि पूरक चक्र :— यह नाभि कमल के ऊपर मेरुदण्ड के भीतर विद्यमान है। यह दस दलों का कमल या दस आरों

का चक्र है। इसका वर्ण नील है। यह चक्र त्रिकोण है और अग्नि तत्त्व का उद्भाषक भी।

अनाहत चक्र :— यह चक्र हृदय प्रदेश के समीप स्थित है। यह अरुण वर्णाभ है और इस कमल के दल १२ हैं। यह षट्कोण आकार का है। यह वायु–तत्त्व का उद्बोधक है।

विशुद्धाख्य चक्र :— यह चक्र कण्ठ में अवस्थान करता है। यह सोलह दल का धूम्ररंगी कमल है और पूर्ण चन्द्राकार है। यह आकाश तत्त्व का द्योतक है।

आज्ञा चक्र :— यह चक्र भ्रू-मध्य में स्थित है। यह दो दल का श्वेतरंगी कमल है। यह चक्र विद्युत-प्रभा से भासमान है। यह महत् तत्त्व का स्थान है।

सहस्राधार चक्रः—इन चक्रोंके ऊपर मस्तक में सहस्राधार चक्र-कमल का अवस्थान है। इसे शून्य चक्र भी कहते हैं। कुण्डलिनी को जाग्रत बनाकर और उपर्युक्त चक्रों का भेदन कर इसी स्थान पर पहुंचाया जाता है। इस कुण्डलिनी या जीवात्मा का ब्रह्मरन्ध्र की ओर सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से ही उर्ध्व गमन होता है। जब कुण्डलिनी ऊपर की ओर ब्रह्म-स्थान की ओर अग्रसर होती है, तब उससे नाद की उत्पत्ति होती। इस नाद की व्यक्त स्थिति 'महाबिन्दु' है, जो प्रकाशमय है। यहीं महाबिन्दु इच्छा, ज्ञान और क्रिया के रूप में प्रकट होता है। योगियों की भाषा में इन्हें सूर्य, चन्द्र और अग्नि कहा जाता है तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी कहते हैं। नाद विन्दु वस्तुतः अखिल ब्रह्माण्ड व्यापी अनाहत नाद या अनहद नाद की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हैं। इड़ा और पिंगला दाहिनी और

बाईं नाड़ियों के घेरे में जीव श्वासोच्छ्वास के अधीन रहकर चक्कर लगाता रहता है। इसी को खोल देने की प्रक्रिया कला योग-साधना में निहित है। सुषुम्ना के आन्तरिक मार्ग के खुल जाने पर कुण्डलिनी उद्बुद्ध होकर उसी के अन्तरायतन से ऊपर की ओर प्रधावित होती है, अनाहत नाद एक लोकोत्तर आनन्द-गान अन्तर में गूंजने लगता है और उसकी अनुभूति में तन्मय होकर मन प्रकृतिस्थ होकर तद्रूप हो जाता है। यही योग की चरम परिणति है। इस अन्तः जन्य अनाहत-अप्रतिहत आनन्द-नाद में मनको लय करना ही योग का चरम उद्देश्य है। यही आत्मा-परमात्मा का मिलन-दृश्य है। यही ब्रह्मानुभूति है! योग-शास्त्र में समाधि के बोधक १६ शब्दों का उल्लेख किया है, जो एक ही स्थिति का चित्र उपस्थित करते हैं :—

राजयोगः, समाधिश्च, उन्मनी च मनोन्मनी,
अमरत्वं, लयस्तत्त्वं शून्यान्य परंपदम्।
अमनस्कं तथा द्वैत निरालम्बं निरंजनम्,
जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येक वाचकः।

अर्थात् राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्त्व, शून्याशून्य, परम पद, अमनस्क, (मनका तिरोभाव), अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन, जीवनमुक्ति, सहजा, तुर्या—यह १६ शब्द एक ही समाधि अवस्था का उद्बोधन करते हैं अर्थात् समाधि के अर्थ में उपर्युक्त किसी भी शब्द को प्रयुक्त किया जा सकता है।

अस्तु, योग-साधना की उपयुक्त उच्चतम भूमिका नाद ब्रह्म की अनुभूति तथा आत्म-साक्षात्कार तक पहुंचने के

लिये योगियों ने सोपान की रचना की जिसकी आठ सीढ़ि हैं। मनको शुद्ध-बुद्ध बनाने और शरीर को आंतरिक त बाह्य रूप से स्वच्छ सबल तथा आरोग्यमय बनाये रखने लिए अन्य साधनाएं बतलाई गई हैं। षट् कर्म भी एक आवश्यक विधान है। देह की आंतरिक निर्मलता के लिए षट् कर्मकी ६ पृथक क्रियाएं हैं, जिन्हें नेति, धौति, वस्ति, त्राट नौली और कपालभाति कहा जाता है। इन क्रियाओं से अं नाक, मुंह, गला, छाती, पेट आदि के अन्दर निरन्त क्रियाशील अवयव स्वच्छ और कार्य-दक्ष होते हैं। शरीर अन्दर किसी प्रकार का मल-विकार जमने नहीं पाता, औ मन भी निर्विकार होकर परम लक्ष्य में केन्द्रित होता है

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्या और समाधि का साधन करने पर ही कुण्डलिनी जागरण संभव है और तभी जीवात्मा नादब्रह्म अनुभूति करते हुये शून्य-कक्ष में पहुंचकर और आन के रसास्वाद में निमग्न होता है। योगियों की यह महती सिद्धि है।

योग साधना के अन्तर्गत इतना विराट कार्यक्र होने के कारण ही लोग इसे अत्यन्त दुष्कर और गोरख धन्धा कहते हैं। यह कला अध्ययन साध्य नहीं बल्कि मनन-चिन्तन और सक्रिय अभ्यास ही इसके वास्तविक रहस्य का ज्ञान करा सकते हैं। अतः दुःसाध्यता के भय से इस यौगिक कला को व्यावहारिक जीवन क्षेत्र से बहिष्कृत करने की जरूरत नहीं है। वस्तुतः यह आ

जीवन पद्धति है और साधक के मार्गदर्शन के लिये सद्गुरु की आवश्यकता बतलाई गई है। सद्गुरु की कृपा से यह कला सरलता से स्वायत्त की जा सकती है। सद्गुरु का कृपा के बिना योग से अभिमत सिद्ध करने का प्रयास आकाश कुशुम की खोज के समान है। किन्तु सद्गुरु का अनुग्रह होने पर यह सारा साधन संसार अनायास सिद्ध हो जाता है।

अस्तु, उपर्युक्त यौगिक पद्धति का प्रभाव कबीरदास पर स्पष्ट रूप से पाया जाता है, अतः इस योगचर्या के दार्शनिक रूप को समझ लेने पर कबीरदास के पदों और उनके भक्तिमय जीवन को समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं होगी।

कबीर को कुछ लोगों ने वेदान्ती माना है; कुछ लोगों ने योगी। दोनों ने अपने-अपने मतों की पुष्टि में उनके पदों की व्याख्या की है। उनके अनेकशः पद योग मार्ग की उनकी प्रवृत्ति का समर्थन करते हैं और उनसे आसन प्राणायाम आदि का स्वरूप बोध होकर उनकी आवश्यकता का संकेत मिला है। कबीर का कहना है:—

सो योगी जाके मन मुद्रा, रात-दिवस ना करै निद्रा,
मन में आसन, मन में रहना, मन का जप-तप मनसों कहना।
मन में खपरा, मन में सिंगी, अनहद बेन बजावै रंगी,
पंज-पजारि भसम करि बंका, कहैं 'कबीर' सोलह से लंका।

कबीर के कथनानुसार योगी वही है, जो योग की प्रक्रिया-कला के अनुष्ठान अभ्यास का संचालन अहर्निश अपने मनमें

करता रहता है। उसके मन में ही मुद्रा है, मन में ही आस भी होता रहता है। समाधि भी मनमें स्थित रहती है मन में खपरा और मन में सिंगी वर्तमान रहती हैं। तथा म में ही उसका अनाहत नाद भी निरन्तर गतिशील रहता है जो पंचेन्द्रियों को जलाकर उनकी सत्ता का समूलोन्मूलन क देता है और वासनाओं की लंका को दग्ध कर देता है, व सिद्धि पाने में समर्थ होता है।

झीनी-झीनी बीनी चदरिया
काहे का ताना काहें के भरणी,
कौन तार से बीनी चदरिया?
इंगला—पिंगला ताना—भरणी,
सुषमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कमल, दस चरखा डोलै,
पंचतत्त्व गुण तींनी चदरिया।
साईं को सीवत मास दस लागै
ठोक—ठोक के बीनी चदरिया।
सो चादर सुर-नर-मुनि ओढ़ी
ओढ़ि के मैली करि डारी चदरिया।
'दास कबीर' जतन ते ओढ़ी
ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।

यह पद भी योग के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। यह शारिरीक स्थिति को उपस्थित करने वाला रूपक है। कहा गया है कि एक चादर बुनी गई है, जो झीनी है। इस इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियां ताना, भरणी और ता

के रूप में संग्रथित हैं। मस्तिष्क, हृदय, गुर्दा आदि आठ कमल—जिन्हें योग में चक्र कहते हैं—पांच तत्त्व—पृथ्वी, जल,अग्नि, वायु और आकाश, दस इंद्रियों—पंच ज्ञानेंद्रियां—आंख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा—जो रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श का अनुभव कराती हैं, पंच कर्मेंद्रियां—मुंह, हाथ, पांव, लिंग और गुदा और तीन गुण—सत्व, रज, तम आदि के योग से यह चादर बनाई गई है—परिष्कृत की गई है। भगवान् ने इस चादर को इतने धैर्य और इतनी तन्मयता और सावधानी से तैयार किया है कि इसके निर्माण में पूरे दस मास लग गये। मातृ-कुक्षि में मानवीय जीवन-ज्योति का आविर्भाव होने के बाद उसके पिण्ड के सम्पूर्ण परिष्कृत होने और संसार में उसका अवतरण होने में दस मास लग जाते हैं। कबीर की भाषा में दस मास में प्रस्तुत यही शरीर रूपी चादर है और इसकी रचना में बड़ी कुशलता का परिचय दिया गया है। इसी स्वच्छ चादर को देवों, मनुष्यों और मुनियों ने ओढ़ा और नाना प्रकार की वासनाओं, इच्छाओं, ईर्ष्या-द्वेष-घृणा और दुर्व्यसनों के मल से लथपथ कर उसे मैली कर दिया। शरीर को नाना प्रकार के रोगों और विकारों तथा मलिनताओं से जकड़ दिया। वह अशुद्ध हो गया। यही कायारूपी चादर का मैला होना है। कबीरदास ने उसे बड़े यत्न से ओढ़ा—बड़ी ही सावधानी से उसकी देख-भाल की और अन्ततक उसे स्वच्छ बनाये रखा—तनिक भी मैल का स्पर्श होने नहीं दिया अर्थात् शरीर अन्ततक शुद्ध, नीरोग, कार्यक्षम, बलवान् और मजबूत बना रहा और बहुत दिनों

तक अपनी क्षमता और दिव्यता का परिचय कराकर अन्त में अनायास ही उसको त्याग दिया गया ।

यह सब इसलिये लिखा गया है कि कबीर की वाणी के वास्तविक रहस्य को हृदयंगम करने के लिये योग-पद्धति को जानना अनिवार्य है । जो लोग योग-प्रणाली से अपरिचित हैं, कबीर को समुचित रूप से समझ न सकेंगे। कबीर के कथनों में प्रयुक्त सहज समाधि, अनहद (अनाहत) नाद, उन्मनी आदि के प्रयोग योग के अंतिम अंग समाधि के बोधक हैं—पर्यायवाची हैं। ज्ञान के इस प्रकाशमय प्रदेश में तथा भाव-समाधि की अमृतधारा में निमग्न मन कबीर की लय योग-साधना के पथ के चिरसंबल हैं। इसी के प्रभाव में रहकर कबीर ने जो ज्ञान और भावमयी भक्तिधारा प्रवाहित की, जीवन के कर्तव्यों में योग को अपना कर प्रत्येक कार्य को योगमय बनाकर योग को जीवन का आवश्यक अंग बना देने का जो प्रयास प्रारम्भ किया; वह इतना सुगम, सुलभ और सहज-स्वाभाविक था, कि मानव-समाज को वह तनिक भी अटपटा नहीं लगा और वह उसकी ओर प्रवृत्त हुआ । लोक-जीवन के दैनिक और स्वाभाविक अनुष्ठानों के साथ योग का सुयोग कर कबीर ने योग की उपयोगिता को स्वीकार किया है। कबीरदास स्वतन्त्र वाणी के स्पष्ट वक्ता थे । इसी स्वतंत्रता की मुक्त छाया में उन्होंने जो रूपक मानव के समक्ष प्रस्तुत किये, वे उनकी कविता को शाश्वत सौन्दर्य से सराबोर कर उसे चिरस्थायी गरिमा प्रदान करते हैं। कबीर ने ज्ञान, भक्ति और योग के गूढ़ तत्त्वों की नई व्याख्या कर उन्हें लोक जीवन के साथ जोड़ने का आजीवन प्रयास किया। इस प्रकार कबीरदास ज्ञानी भी हैं, योगी भी हैं और भक्त भी हैं।

दुःख का कारण

ले० बुद्धिप्रकाश वाजपेयी पीएच. डी.

दुःख का कारण है—'अहंभाव' अथवा सरल शब्दों में 'अभिमान व अहंकार'। जब भी ब्रह्म में ऐसा संकल्प उदय होता है कि 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' अर्थात् मैं हूं, वैसे ही संसार और संसार रूपी दुःख का बीजारोपण हो जाता है, जो कि कालान्तर से वृक्ष बनकर नानात्व के प्रपंचरूप में फैल जाता है। हमें सुख-दुःख रूपी खट्टे-मीठे फल देने लगता है। अतएव दुःख का मूल कारण हमारा कर्त्तव्य अभिमान ही है।

देखिए, जब हम प्रगाढ़ निद्रा में सोये रहते हैं, तब कितने आनन्द से रहते हैं! हमें संसार की किसी बात की तनिक भी चिन्ता नहीं रहती। न यह पता रहता है कि नागेश हमारा शत्रु है जिसने हमें पांच हजार रुपयों की हानि पहुंचाई है, और न यह विदित रहता है कि गणपति हमारा अति प्यारा लड़का है। तब हमें न अपने मित्र का, न शत्रु का, न किसी प्रकार की मोह-ममता, ईर्ष्या-क्रोध इत्यादि संवेदनों का ही भान रहता है। हम अपने कारण शरीर के आनन्दमय कोष में अवस्थित होकर आत्मा के अद्वैत निजानन्द में रमण करते रहते हैं। किन्तु जैसे ही हम सुषुप्ति की अद्वैत अवस्था से अलग होते हैं और यह अनुभव करने लगते हैं कि "मैं जाग चुका हूं, बिस्तर पर पड़ा हूं", वैसे ही तत्काल हमारा वह अद्वैत आनन्द हमसे छिन जाता है। शायद ही कभी एक अस्पष्ट धुंधली सी स्मृति उस आनन्द की हो आती हो। और हम सोच उठते हैं कि 'आज तो बड़ी मीठी नींद सोये, बड़ा

आनन्द आया लेकिन केवल मात्र इस स्मृति से होता क्या है जबकि अहंभाव के जाग्रत होते ही वह आनन्द हमसे छिन गया और हमारे मन को विचारों ने आ घेरा कि अखबार वाले को भुगतान करना है, दफ्तर व कालेज जाने से पहले डाक्टर के पास दवाई लेने जाना है, इत्यादि-इत्यादि। ये सब विचार, संकल्प व चिन्तायें हमें तत्काल ही ग्रसित कर लेती हैं जैसे ही हमारा कर्त्तत्व अभिमान जाग उठता है।

अतः सिद्ध है कि दुख का कारण हमारा अपना ही 'अहं' है इस तथ्य की सत्यता का प्रमाण हमें तब और अधिक प्रबल रूप में मिलता है, जब कि हम यह देखते हैं कि—इस संसार में जो भी न्यूनाधिक सुख हमें प्राप्त होता है वह तभी—जब हमारा अहंभाव थोड़ी देर के लियें सो जाता है। मित्रों के साथ आनन्दानुभूति क्यों होती है? इसलिये कि उनके मध्य हम अपने अहंभाव को किंचित् समय के लियें भुला देते हैं; हम भूल जाते हैं कि हम न्यायाधीश हैं या मिल के हजारों मजदूरों के मालिक हैं, इस तरह से अपने अहं व व्यक्तित्व को भुला बैठते हैं कि बिल्कुल अभिमान शून्य बन बच्चों की तरह किलकारियाँ मारना शुरू कर देते हैं, हंसी-विनोद में फूल की तरह खिलखिला उठते हैं, तभी हमें मित्र-मंडली का सच्चा सुख सुलभ हो पाता है। अन्यथा अहंभाव को जाग्रत रख, अपने बड़प्पन, मान, मर्यादा का ध्यान रख, जो व्यक्ति गम्भीरता और शान के साथ मित्रमंडली में प्रवेश होगा क्या वह मित्रों के निश्छल विनोद

का आनन्द लाभ कर सकेगा ? कदापि नहीं। जितनी ही मात्रा में अपने बड़प्पन को त्याग कर यह अनुभव करेंगे कि हम सब मित्र बराबर हैं, एक हैं, इस तरह एकता की यह भावना जितनी ही जोर पकड़ेगी, उतना ही उस व्यक्ति के व्यवहार में सरलता आएगी और उतना ही उन मित्रों के बीच में उसे अलौकिक सुख उपलब्ध हो सकेगा। कतिपय लोगों को जब मित्रमंडली का तथा परिवार का यह सुख नहीं मिल पाता, तो उनके हृदयों में एक विचित्र सी बेचैनी एवं घबराहट होने लगती है, क्यों कि वे अपने अहं को लिये हुये इधर-उधर भटका करते हैं और कहीं भी ऐसी जगह नहीं मिलती जहाँ वे उसे अल्पकाल के लिये भी भुला सकें। तब ऐसी दशा में वे अपने अहं की भुलाने के लिये मद्यादिक अथवा आत्महनन का सहारा ढूँढ़ते हैं।

सभी लोग अच्छी तरह जानते हैं कि इस जगत में जो सबसे बड़ा सुख, सर्वश्रेष्ठ आनन्द माना जाता है, वह स्त्री-पुरुष के मध्य प्रेम का आनन्द। यह आनन्द इतना तीव्र होता है कि इसके लिये लोग संसार के महान् से महान् दुःख और कष्टों को झेलने के लिये उद्यत हो जाते हैं। आधुनिक चित्रपटों में, नाटकों, उपन्यासों व कहानियों में हम देखते हैं कि यही एक ऐसा अलौकिक सुख मानवों को इस दुःखद विश्व में सुलभ है जिसके लिये लोग संसार के समस्त धन ऐश्वर्य को, अनेक वर्षों की अर्जित मान प्रतिष्ठा को ठुकराने के लिये तैयार हो जाते हैं।

किन्तु क्या कभी किसी ने इस बात पर विचार किया कि इस तीव्र आनंद का कारण क्या है? कहां से हमारे मस्तिष्क में एकायक यह आनंद फूट पड़ता है कि उस वशीभूत हो, उसके नशे में मस्त होकर स्त्री-पुरुष संसार मूल्यतर से मूल्यतम वस्तुओंको भुला बैठते हैं? जन्म से बालक-बालिकाओं को माता-पिता पालते पोषते हैं, जिन एक-एक जिद्द को पूरा करने के लिये वे प्रतिक्षण अपने सु का बलिदान करते रहते हैं, लेकिन यह क्या बात है एक दिन उस बालिका के मन पर एक अनजान लड़के चार दिन की पहचान इतना असर कर देती है कि एकायक अपने माता-पिता के १६ वर्ष के त्याग और प्रेम ठुकराने के लिये तैयार हो जाती है?

गम्भीर चिन्तन हमें बतलाता है कि यह अलौकि शृंगार का आनंद इतना तीव्र इसलिये होता है कि इस हमारा अभिमान अधिक मात्रा में हम से अलग होता है स्त्री-पुरुष के मध्य घनिष्ठ प्रेम तभी प्रकट होता है जब दो ही व्यक्ति अपने अपने अभिमान को छोड़कर एक दूसरे पास आते हैं। संसार की किसी अन्य वस्तु से उपल आनंद में हमारा अभिमान इतनी अधिक मात्रासे चूर-चू नहीं होता है। एक विद्वान्, फौज का कमांडर जिसको ला फौजी रोज सलामी देते हैं, हजारों कामगारों को काम लगाने व हटाने वाला करोड़पति मिल मालिक और बड़े बड़ा मंत्री व गवर्नर भी जब रात्रि में अपनी पत्नी से मिल है तो वह भूल जाता है कि वह इतना विख्यात विद्वान्

अथवा करोड़पति है अथवा महान् अधिकारी है। जब अपने इस बड़प्पन को भुलाकर वह अपने अभिमान को बिल्कुल शून्य कर देता है. तभी उस विलक्षण शृंगार आनंद का लाभ कर पाता है। माता-पिता के प्रेम में, भाई-बहन के प्रेम में, मित्रों पड़ोसियों के प्रेम में व्यक्ति का अभिमान पूरी तरह विलीन नहीं हो पाता, इस कारण उनसे प्राप्त आनंद भी क्रमशः न्यून ही रहता है, जबकि वही धिक्कारने योग्य हो जाय और फिर हमारी सारी शान, हमारी सारी मर्यादा ही जाती रहें। तब सचमुच ही हमारा सब कुछ दान का धन हो उठेगा।

परन्तु परम सौभाग्य की बात है कि हमारी अवस्था ऐसी नहीं है, हमारा जीवन भिक्षुकों का जीवन नहीं है। हमारे पास भी एक ऐसी वस्तु है जो कि पूर्णतया हमारी ही है, जिस पर उनका तनिक भी अधिकार नहीं है और जिसे हम बिल्कुल अपनी ही कह सकते हैं। वह है—दुःख। परमात्मा यदि आनन्दस्वरूप है तो उस आनन्द का रसास्वादन करने का साधन हमारे दुःख में है। परमात्मा में यदि पूर्णता है तो उस पूर्णता की कुंजी, उस पूर्णता का मूल्यांकन हम जीवात्माओं की अपूर्णता तथा दुःखरूपी अमूल्य धन में है। तभी तो हम उन्हें दुःखमयी साधना के द्वारा पाते हैं। दुःख ही हमारा ऐश्वर्य है, यही हमारा कीमती धन है जो कि उस पूर्ण और अनन्त शक्तिशाली परमात्मा के सामने हमारी शान व मर्यादा रखता है और उनके आनन्द को प्राप्त करने का साधन बनता है। उनके प्रेम को, उनके आनन्द को हम तभी प्राप्त कर

सकते हैं जबकि हमारे पास 'अहं' का दुःख-धन हो। को जब उन्हें समर्पित करेंगे तभी तो उनके प्रेमानन्द की प्र होगी। हमें संसार में किसी के प्रेम का आनन्द कब मिल है, जब हम उसे अपना अभिमान देते हैं। और यदि अभिमान रूपी दुःख ही हमारे पास न हो तो निश्चय ही न संसार में प्रेम का आनन्द मिल सकेगा और न परमात्मा रति-प्रेम में दोनों व्यक्ति अपने--अपने शरीर के अभिमान पूरी तरह भुलाकर एक दूसरे के भीतर विराजमान उस चेत तत्त्व का दर्शन करने लगते हैं जिसके केवल क्षणिक साक्षात् मात्र से संसार का सकल द्वैत सिमट कर अद्वैतानन्द में ल हो जाता है। जब इस अल्पकाल के आत्मिक दर्शन में इत अगाध आनन्दानुभूति मानव को प्राप्त हो सकती है तो वे लो कितने धन्य होंगे जिन्हें सदैव उसी आत्मा का दर्शन ह होता रहता होगा और जिन्होंने देहाभिमान सदैव के लि भुला दिया होगा।

अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि निश्चय हमारे दुःख का कारण है हमारा अहं जिसे जितनी ही मा में जितने समय के लिए त्यागते हैं उतने समय के लिए उत ही मात्रा में हमें आनन्दानुभूति होती है। दूसरे शब्दों में ह कह सकते हैं कि जब हम किसी को कुछ देते हैं तभी उस हम कुछ पाते हैं। जब हम किसी मित्र को अपना अभिमा देते हैं, तभी वह हमें बदले में मित्रता का प्रेमानन्द देता है इसी प्रकार जब हम अपने बच्चों के सामने अपने बड़प्पन प्रतिष्ठा को त्यागकर उनके साथ खेलने व विनोद करने लग

हैं, तभी वह बच्चा सचमुच में हमारा अपना होता है, तभी हम कहते हैं कि पिता पुत्र को प्यार करता है। इसीलिए तो कहा जाता है कि प्रेम बिना कुछ दिए जी नहीं सकता। प्रेम में जितना ही एक मित्र अपने मित्र के लिए, एक भाई अपने भाई व बहन के लिए, एक मां अपने पुत्र के लिए, एक स्त्री अपने पति के लिए अपना सब कुछ दे देती है, अपने अहं-सर्वस्व न्यौछावर कर देती है, उतना ही वह प्रेम निखर उठता है, उतना ही वह प्रेम दिव्य बनता है और उतना ही वह प्रेम अधिक आनन्द वाला सिद्ध होता है।

अतएव अब सोचिए कि जब हमें उस आनन्दघन पूर्ण ब्रह्म परमात्मा से प्रेम करना है, उसे अपना बनाना है, उसकी शक्तियों को अपने भीतर विकसित करना है, तो हमें उसे प्रथम कुछ तो देना होगा! क्योंकि जभी हम जगत् की तुच्छ से तुच्छ वस्तु भी प्राप्त करना चाहते हैं तो उसके लिए कुछ न कुछ कष्ट अवश्य उठाना होता है। फिर जब इतनी महान् शक्ति को, इतने अपार आनन्दराशि को प्राप्त करना चाहते हैं, तो प्रथम उसके लिए हमें कुछ देना तो अवश्य पड़ेगा। लेकिन परमात्मा को देने के लिए हमारे पास क्या है? संसार की जो धन सम्पत्ति है, जड़-चेतन पदार्थ हैं, वे सब तो उसके ही हैं, उन्हीं के दिए हुए हैं, अतः उनका धन उन्हीं को दिया जावे इससे अधिक शर्म की बात और क्या होगी! इसलिए प्रश्न उठता है कि हमारे पास अपना क्या है? हमारी ओर से उनको यदि कुछ देना हो तो हम क्या देंगे? अर्थात् हमारे पास ऐसी कौन सी वस्तु है जो हमारी अपनी

ही हो, जिसे हम अपनी ही कह सकते हों ? यदि ऐसी कोई वस्तु हमारी अपनी नहीं है, तो क्या हम सब दाता के घर रह रहे हैं और हमारी अपनी कमाई कुछ भी नहीं है ? तो क्या हमारा जीवन भिक्षुकों का जीवन है जिसमें सब कुछ उन्हीं का हो ? यदि ऐसी ही बात वास्तविक हो तो निस्संदेह हमारी दशा तब प्रेम के आनन्द को ग्रहण करने के लिए अधिकार का पात्र ही न रहेगा। तब तो हमारी अवस्था बिल्कुल शून्य और जड़मय हो जायगी। अहं व दुःख के अभाव में तो हमें अपना भान ही न होगा और जब हमें अपना भान न होगा, तो आनन्द का रस ग्रहण करेंगे किसमें ? अतएव यदि आनंद की सत्ता होगी तो अहंरूपी दुःख की सत्ता भी अवश्य होगी, क्योंकि एक के अभाव में दूसरा नहीं रह सकेगा।

प्रेम की नारद जी ने भक्ति सूत्र में परिभाषा की है—"प्रतिक्षणवर्द्धमानम्" अर्थात् प्रतिक्षण प्रेम पहले क्षण की अपेक्षा अधिक होता जाता है। और परमात्मा का स्वरूप-भूत प्रेम सदैव पहले से अधिक प्रगाढ़ होता चला जाता है। इस कारण ही प्रेमस्वरूप परमात्मा को वेदांत ने रसोमयी ब्रह्म कहा है क्योंकि ब्रह्म का शाब्दिक अर्थ होता है सदैव वृद्धि और विकास वाला तत्त्व-वृहति बृंहयतीति तत्परं ब्रह्म (रहस्याम्नाय ब्राह्मण)। लेकिन उस पूर्ण ब्रह्म में रस व आनंद का विकास सदैव कैसे संभव हो सकता है यदि हमारे पास अपूर्णता रूपी दुःख अहं न हो। किसी भी वस्तु में विकास और वृद्धि तभी संभव होती है जबकि उसमें अधूरापन हो, अपूर्णता हो। यदि ब्रह्म है पूर्ण, तो उसके विकास को

सतत बनायें रखने के लिये हम जीवों की अपूर्णता है। हमारी अपूर्णता के आधार पर ही उस सदैव वृद्धि एवं विकासशील ब्रह्म की पूर्णता आधारित है। और इस अपूर्णता का नाम ही दुःख है। अतः आनंद की पूर्णता के साथ जीवों की अपूर्णतारूपी दुःख-अहं का सहअस्तित्व अपेक्षित है।

यह मनुष्य शरीर जीवात्मा के दुःख का सबसे कीमती हिस्सा है। ८४ लक्ष योनियों में प्रतिक्षण पग-पग पर कष्टों को वहन करते हुये उसे हमने प्राप्त कर पाया है। आधुनिक विकासवाद का सिद्धांत इस बात को प्रमाणित करता है इस दुर्लभ मानव तन को प्राप्त करने के लिये जीवात्मा सदैव प्रकृति से संघर्ष करता रहा है। उसने न जाने कितने अगणित दुःखों का भार सहन करने में पग पग पर उसे अपने भीतर की सुप्त शक्तियों को विकसित करना पड़ा है। उन विकसित शक्तियों के अनुभव द्वारा ही उसे अपनी पहचान हुई कि दुख के ऊपर ही उसका मस्तक है, मृत्यु के ऊपर ही उसका सिहासन है। इसीलिये पशुओं के लिये पशुता जितनी सरल और सहज है, मनुष्यों के लिये मनुष्यता उतनी सरल एवं सहज नहीं। कारण, मनुष्य को अपनी मनुष्यता के भीतर से जो कुछ अब पाना है वह सजग एवं जागरूक होकर ही पाना है, वह सोयी हुई अवस्था में अथवा भोग विलास में पाने की वस्तु नहीं।

धर्मोपदेश

स्वामी रामतीर्थ

(गतांक से आगे)

उस कमरे से उसे किसी वस्तु की आवश्यकता आ पड़ी और उसने बच्चे से वह वस्तु लाने के लिये कहा। उस अंधेरे कमरे में जाने का साहस बालक को न हुआ। उसने कहा—उस कमरे में एक बहुत बड़ा भूत रहता है, इसलिये वहां जाने में मुझे बहुत डर लगता है। पिता ने कहा—"नहीं भाई! भूत वूत कुछ नहीं।" परन्तु बच्चा अपनी जगह से तनिक भी न हिला। पिता अत्यत बुद्धिमान था, अतः उसने बालक की इस भ्रांत धारणा को दूर करने के लिये एक युक्ति खोज निकाली। उसने नौकर को बुलाकर कान में कुछ कहा। नौकर कमरे के बाहर जाकर पिछले द्वार से भूतवाले कमरे में घुसा और एक तकिया लेकर उसके एक कोने पर एक काले कपड़े का टुकड़ा ढक दिया, तदुपरान्त तकिये के एक कोने को उस कमरे की एक खिड़की के छेद में

प्रविष्ट कर ऐसे आकार में स्थापित किया, जिससे वह भयंकर दिखाई दे। उस तकिये को बाहर से दिखलाते हुए पिता ने पुत्र को उसे दिखाकर कहा यह भूत का कान है। बालक की कल्पना शक्ति बड़ी तेज थी। वह एकदम जोर से बोल उठा—"हां हां यह भूत का ही कान है। मैंने कहा था न, कि उस कमरे में भूत रहता है।" पिता ने कहा—"बेटा तेरा कहना सच है, परन्तु तुम बहादुर और साहसी बनो। यह लाठी तुम्हारे हाथ में है, चलो भूत को मार भगायें।" आप जानते हैं कि बालक बड़े बहादुर और साहसी होते हैं। बालक ने पिता की एक मजबूत लकड़ी लेकर उस पर जोर से प्रहार किया। उसकी आवाज हुई। उसके साथ एक पैनी आवाज भी सुनाई दी और नौकर ने उस अंधेरे कमरे में उस तकिये के अंश को जिसे बच्चा भूत मान बैठा था—अन्दर खींच लिया। यह देखकर बालक को अतीव आनन्द हुआ और वह साहस पूर्वक बोल उठा—कैसा भूत को मार भगाया! पिता ने उसे शाबाशी दी और उसकी पीठ ठोंकी। उसकी प्रशंसा की, उसे फुलाया और फिर कहा बेटा तू बहुत ही बहादुर है। परन्तु पिता जब पुत्र की इस प्रकार प्रशंसा कर रहा था, इसी बीच कमरे के दरवाजे के बीच की दरार में भूत के दो कान दिखाई दिये। बालक का जोश और उत्साह अत्यन्त बढ़ गया और वह भूत की तरफ दौड़ पड़ा। उस कल्पित भूत के सिर पर वह लाठी के प्रहार पर

प्रहार करने लगा और अन्दर से भूत की चीत्कार भी सुनाई दे रही थी। कुछ देर के बाद पिता ने कहा बेटा अब रहने दो भूत बेचारा मार खा कर रो रहा है। शाबाश, तुमने भूत को मार मार कर तकिया बना दिया है। बच्चे को इससे बड़ा आनन्द हुआ और उसने समझा कि यह सारी घटना सत्य है। उसके मन से भूत का भ्रम निकल गया और वह निर्भय हो गया। वह हर्षोन्मत्त होकर उछलने कूदने लगा, नाचने लगा और और गाते-गाते बाहर गया और तदुपरांत वह भूत वाले कमरे से पिता जो कुछ मंगाता वह लाकर दे देता। क्या कोई बुद्धिमान पिता इस प्रकार का उपाय किसी वयस्क पुत्र के लिये करेगा ? नहीं, कभी नहीं। यह उपाय तो छोटे बच्चों के लिए ही उचित है? अधिक आयु में इसका कोई महत्व नहीं। यदि अवसर आये तो हम भी प्रत्येक बालक के जो भूत का विचार और तरंगें होती हैं, उन्हें दूर कर सकते हैं।

अब आप समुचित ध्यान देना। उपरिकथित प्रश्न के सम्बन्ध में वेदान्त यह समाधान प्रस्तुत करता है कि कि जिस प्रकार भूत के कमरे के सम्बन्ध में बालक ने तकिये को लाठी प्रहार कर सच्चे भूत को नहीं भगाया था। भूत को मार भगाने का वास्तविक उपाय तकिये को लाठियां मारना नहीं था, अपितु बालक के विश्वास में परिवर्तन करना था। वह यह कि उस कमरे में भूत का अस्तित्व नहीं। बालक को विश्वास दिलाना

था कि भूत है ही नहीं। कमरे में भूत तो बालक की कल्पना से ही भरा गया था। इसमें मात्र कल्पना ही कारण भूत थीं और इस कारण भूत मिथ्या कल्पना को नष्ट करना ही एक मात्र उद्देश्य था। परन्तु वयस्क लोगों की कल्पना नष्ट करने का तो कोई दूसरा ही उपाय है। लोगों की मान्यता है कि हमारा अधः पतन हो गया है, हम स्वभावतः पापी हैं, हम घोर नरक के द्वार पर ही उपस्थित हैं, जो हमारे आने की प्रतीक्षा किया करता है, हमारे पाप की गठरी इतनी बड़ी है कि वह हमें कुचल सकती है, आदम के अपराध से हमारा स्वभाव पापात्मक हो गया है। हम स्वभावतः पापी हैं, हम संसारिक दीन और निर्बल प्राणी हैं (इस प्रकार स्पष्ट कहना पड़ता है, एतदर्थ कृपा करके आप राम को क्षमा करें।) बाइबिल का एक अंश लोगों को विश्वाश दिलाता है कि वह पापी है। बाइबिल के इस "प्राचीन सूत्र" ने ही बेचारे खष्टानों के आत्मा में, आपके प्रकाशमान हृदय मंदिरों में, आपके मनमें, आपके अविनाशी आत्मा की गुहा में, दुरात्मा स्वभाव वाले, नीच वृत्ति वाले, अधम और पतित भूत को घुसेड़ रखा है। इस दुनिया में लोग दीन प्राणी तथा दरिद्र जीव के समान हैं। वह बेचारे वायु, बवण्डर और उपद्रव की कृपा पर जीते हैं, वह इस दुनिया में केवल निर्बल हैं। मानव हृदय में ऐसे विचार प्रविष्ट करा दिये गये हैं। पहले भी जगत् के जीवों के हृदय में ऐसा भ्रमरूपी भूत भरा

गया था और तदुपरांत बाइबिल का "नवीन सूत्र" अस्तित्व में आया। राम किसी प्रकार के पक्षपात से यह बात नहीं कहता। प्राचीन सूत्ररूपी माता ने लोगों में जो अंध विश्वाश और भ्रांत धारणा भर दी थी, उसे दूर करने का काम नये सूत्ररूपी पिता ने किया। नये सूत्र में संत पाल ने लोगों के हृदय से इस भूत को निकाल फेंकने के संभव प्रयास कियें। जनता को इस भूत से दूर और मुक्त रखने के लियें यथा शक्ति प्रयास किये। उसने किस युक्ति से काम लिया? राम का कथन है कि यह कार्य संतपाल ने नहीं किया था, अपितु यह कार्य संत पाल के माध्यम से ईश्वर ने स्वयं किया और लोगों को समझाया कि कैसे करना चाहियें? यह बात लोगों को इस तरह समझाई गई कि यह सब पाप, अति पापी स्वभाव, मानसिक अधमता, घनांधकार की टक्कर और पातक तथा विनाश के कारणभूत भूत को वाप्टिज्म अर्थात् शुद्धि (मार्जन) करण नाम की एक विशेष विधि द्वारा निकाल बाहर किया जा सकता है—अर्थात् देवालय में जाकर खष्टान बनना, प्रार्थना करना और सुनना, भुने हुये सुअरों पर कृपा की याचना करना, महान् पादरियों (धर्मगुरुओं) का पोषण करना और उन्हें सहयोग देना, ईसा की पोषाक पहनना यह सभी क्रियाएं करने से आपका उद्धार हो सकता है और आपकां नाम अनन्त जीवन के ग्रंथ में लिख जाता है। राम का कहना है कि यदि कोई सच्चा खष्टान देवालय में जाकर

सच्चे अंतःकरण से प्रार्थना करके यह मानता है कि मेरा उद्धार हो गया है तो वस्तुतः उसका उद्धार होना ही चाहिये।

जिस प्रकार उस बालक ने तकिये के अंदर के भूत को लाठी मारने की क्रिया की और उस कमरे से भूत को मार भगाया उसी तरह आप यदि सच्चे खृष्टान हैं और आप को दृढ़ विश्वास हो गया हो कि हमारा उद्धार हो गया है तो सचमुच समझ लेना चाहियें कि आपका उद्धार हो गया है। जो स्वतंत्र विचारक और नास्तिक यह मानते हैं कि आज के खृष्टान श्रद्धाहीन हो गये हैं, उनके मत के साथ राम का मेल नहीं खाता। जो लोग खृष्टानों की श्रद्धा की अवहेलना करते हैं, उनके साथ राम सहमत नहीं। आपकी श्रद्धा यदि आपको मानसिक धैर्य प्रदान करती है, तथा आपके इस विश्वास को सुदृढ़ बनाती है कि हमारा उद्धार हो गया है, तो आपका उद्धार निस्संदेह हो गया है। परंतु साथ ही राम का यह भी कहना है कि यह दुनिया शैशवावस्था में नहीं बल्कि प्रौढ़ और वयस्क आयु पर पहुंच गई है। ऐसे विश्वासों से अब तक लाखों करोड़ों लोगों का उद्धार हुआ है, परन्तु अब तो आपके अंतररूपी कमरों में से भूतरूपी भ्रान्त धारणाओं को निकाल फेंकने का समय आ पहुंचा है। आप स्वभावतः पापी नहीं, आपके कमरे में भूत नहीं, आप किसी भी तरह क्षुद्र जीव या अधःपतित अवस्था प्राप्त अधम प्राणी नहीं, स्वानुभव और विचार करने से आप इस भूत को निर्वासित कर सकेंगे।

वेदान्त के सिद्धान्तानुसार अनुभव करें कि आप स पवित्र हैं, सदा विशुद्ध हैं, सदा पूर्ण रूप हैं, देवाधि महेश्वर हैं । इस पर आप विचार करें, विश्वास क स्वानुभव करें और तदनुसार अपना जीवन-निर्माण क यदि आप सीधे ढंग से हाथ लाकर नाक को पकड़ सकें, त सिर के पिछले भाग से हाथ बढ़ाकर नाक पकड़ने की क्य आवश्यकता है ? कुछ भी नहीं ।

वेदान्त का कथन है कि यदि आप में ऐसी श्रद्धा का उदय हो गया कि आप सदा मुक्त ही हैं, तो फिर आप विश्व के भी उद्धारक बन सकते हैं । आप यह देह नहीं, गुलाम नहीं, इस प्रकार यदि आपको निश्चय हो, अब आप मूर्ख बालक नहीं, अपितु प्रौढ़ आयु के मानव हैं, यदि ऐसा मानें और यह भी मानें कि आप नित्यमुक्त तथा अन्य को भी मुक्त करानेवाली शक्ति हैं, तो आप इस दुनिया के महान् उद्धारक ही हैं । अब आप निरर्थक और निकम्मी धर्मक्रियाओं में अपनी शक्ति का अपव्यय न करें, अपने उद्धार के लिये तकिये को लकड़ियां मारने की बालचेष्टा-जैसी धर्मक्रियाओं में अपनी शक्ति को व्यर्थ नष्ट न होने दें । अब आप अधिक समय तक बालक न बने रहें । "आप मुक्त ही हैं"-की अनुभूति करने पर आप मुक्त ही हैं । इस प्रकार समग्र खष्टान धर्म में उद्धारक तत्त्व वेदान्त ही है । वेदान्त सर्वोत्तम मार्ग है । समग्र कर्मकाण्ड की धर्मक्रियाएं कर लेने के पश्चात् स्वयं की 'मुक्ति' के निश्चय में यदि आप दृढ़ निष्ठावान बनेंगे, तभी आपका उद्धार होगा । अन्यथा नहीं । याद

रखियें आपके खष्टान धर्म में ओतप्रोत और व्यापक तत्त्व वेदांत ही है, जो आपको मुक्ति-पथपर अग्रसर करता है। बाह्य नाम-रूप और आचार को अनुचित महत्त्व नहीं देना चाहियें।

ईसाइयों की धार्मिक चढ़ाइयां हुई थीं और जिसे लेकर खून की नदियां बही थीं। इस युद्ध के कारणभूत जूडिया के खष्टान थे। इन युद्धों की एक भिड़न्त में वह खष्टान सेना में एक धर्मान्ध मनुष्य था, जिसे कीर्ति प्राप्त करने की महती आकांक्षा थी। उसने जनता के समक्ष घोषणा थी कि एक स्वप्न में एक देव ने आकर मुझको कहा है कि एक बार ईसा के शरीर का जिसके साथ स्पर्श हुआ था, वह भाला यहां हमारे पैरों के नीचें किसी स्थान पर गढ़ा हुआ है। उस भाले को आप खोज निकालें, तो उसकी सहायता से खष्टानों की निस्सन्देह विजय होगी। लोगों ने इस बात को सच मान लिया और समग्र सेना में उसकी चर्चा चल पड़ी। सैनिकों ने इस बात के सत्यासत्य पर तनिक भी विचार न कर उस भाले को प्राप्त करने के लिये चारों ओर खुदाई शुरू कर दी। प्रातःकाल से बहुत रात बीते तक यह उत्खनन-कार्य चलता रहा, फिर भी, भाले का कहीं पता न चला। उस सेना के योद्धा अब साहसहीन होकर भाले को प्राप्त करने के कार्य बंद करने की तैयारी में थे कि इतने में वह धर्मान्ध मानव यह कहकर चिल्ला पड़ा कि मैंने भाले की जगह खोज निकाली है। सेना के सिपाही उस स्थान पर गयें तो वहां उन्होंने एक पुराना और जंग लगा हुआ भाला देखा। उसने

कहा कि यह वही भाला है, जिसे ईसा के शरीर का स् हुआ है। उसने उस भाले को एक ऊंची जगह पर रख जिससे सभी लोग उसे देख सकें। यह देखकर खष्टान लो आनन्द और उल्लास से नाचने लगे। उनकी प्रसन्नता पार न रहा। मिट्टी से लथपथ पुराने भाले के विश्वास प्रेरित होकर जोर और जोश के साथ उन्होंने शत्रुओं पर पु आक्रमण किया और उसमें वह विजयी हुए। तदुपरान्त ज वह सब खष्टान युरोप वापस गये, तब लोग यह मानने लगे कि भाले के चमत्कार से ही यह विजय प्राप्त हुई है। पर इस घटना के कुछ समय के पश्चात् जब वह धर्मान्ध मान जिसने भाले की बात चलाई थी—बहुत बीमार हो गय मृत्युशय्या पर लेटा, तब अपने अन्तकाल में जो धर्मगुरु उस को आशीर्वाद देने आया था, उसके सामने उसने अपने पापाचार घोषित किये। उसने भाले की भी बात बताई और कहा— "यह बात सर्वथा मिथ्या थी। वस्तुतः वह भाला मेरे पितामह का था। जब वे पहले सेना में काम करते थे, तब इस भाले का उपयोग करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उस भाले को कपड़े में लपेट कर घर में रख छोड़ा था। इतना ही नहीं, पुरखे के भी पुरखे इस भाले का उपयोग करते थे। जब खष्टान लोग जेरुसलम जाते थे, तब उस कपड़े से लिपटे हुए भाले को मैंने अपने साथ लिया, परन्तु जब मैंने युद्ध में इसका उपयोग किया, तब मुझे प्रतीत हुआ कि युद्ध में उपयोगी नहीं। युद्ध में हमारी हार हुई और हम पीछे हट रहे थे कि इतने में विचार आया कि किसी प्रकार मुझे कीर्ति का

अर्जन तो करना ही चाहिये -नाम कमाना चाहिये। मैंने भाले की बात खोज निकाली और उसे लोगों में फैलाई। लोग मेरी बात सुनकर जब खुदाई करने लगे, तब मैंने उस पुराने और अनुपयोगी भाले को एक ओर खाई में रख दिया। फिर मैंने आवाज लगाई और लोग वहां आकर खोदने लगे, इतने में उनकी निगाह भाले पर पड़ी।

इतिहासकारी यह गुप्त तथ्य खोज निकाला कि उसका रहस्य प्रकट करते हुये बताया कि युद्ध में जो विजय प्राप्त हुई, वह भाले के चमत्कार के कारण नहीं, बल्कि श्रद्धा-विश्वास और उत्साह का अतिरेक ही उसके मूल में विद्यमान था। लोगों की आन्तरिक शक्ति से ही विजय प्राप्त हुई। लोगोंने श्रद्धा द्वारा अपने अन्दर धार्मिक उत्साह और जोश पैदा किया और विजय प्राप्त की। इसी प्रकार वेदान्त का भी कहना है कि हे मानव! यदि तुम यह मानते हो कि ईसा, बुद्ध, कृष्ण या किसी अन्य महात्मा के कारण तुम्हारा उद्धार होता है तो आप स्मरण रखें आपके उद्धार का वास्तविक कारण कोई महात्मा नहीं, बल्कि आपका आत्मा ही है।

मत-मतान्तर और श्रद्धा को विवेक द्वारा दूर करो। भाला विषयक बात में लोगों की साम्प्रदायिक वृत्ति संहित थी और लोगों में जो जोश और जनून दिखाई देता था, वह तो लोगों में तो लोगों में निहित श्रद्धा का ही परिणाम था। चैतन्यमयी श्रद्धा ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकती है, मत-मतान्तरों में यह सामर्थ्य नहीं।

वेदान्त का कथन है कि यदि यह चैतन्यविधायिनी श्रद्धा चैतन्यप्रद शक्ति ही खृष्टानों के विजयका कारण थी, तो क्यों आप उस चैतन्य प्रद श्रद्धा को सिद्ध कर अपने प्रिय आत्मा में अपने स्व-स्वरूप में नियोजित नहीं करते ? क्यों आप अपने अन्तर्निहित सत्यस्वरूप आत्मा पर उसे लागू नहीं करते ? क्यों आप जस चैतन्यप्रद अथवा जड़ श्रद्धा ईसा, बुद्ध, कृष्ण, अथवा अन्य किसी पर नियोजित करते ? क्यों आप अपने अन्तर्निहित आत्मा अथवा अन्तःवासी प्रभु में अपनी इस श्रद्धा की स्थापना नहीं करते ? आपकी ज्वलन्त श्रद्धा को उपयोग में लेने को इससे सरल और स्वाभाविक मार्ग और कौन हो सकता है ?

राम से बारंबार पूछा जाता है कि यदि वेदान्त ऐसा उत्तम है, यदि वेदान्त का सार यही है और इस वेदान्त का मूल स्थान भारत ही है तो भारत आज क्यों अधम और पतित दशा में पड़ा हुआ है ? इसका उत्तर यह है कि भारत के पतन का कारण यह है कि भारतीय जनना संप्रति वेदान्त के सिद्धांतका उच्चित रूप से पालन नहीं करती। भारतीयों की उपेक्षा और अमेरिकाकी जनता वेदान्तके सिद्धांतोंका अनुसरण अधिकाधिक रूप में करती है, इसीलिए वह उन्नत स्थिति में है। जगत को यह कहने का कोई अधिकार नहीं कि भारत कें पतन का कारण वेदान्त है। राम एक विनोदपूर्ण वार्ता द्वारा इसे प्रमाणित कर देगा।

भारत के एक गांव में एक लड़का पढ़ लिख कर अत्यन्त विद्वान बन गया। विश्व-विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते

के कारण उसके विचार-व्यवहार और रीति भांति पर युरोपीय प्रभाव का प्रवेश हुआ। आप जानते हैं कि भारतीय जनता के आचार विचार में युरोपीय रीति रिवाजों का अत्यन्त प्रवेश हुआ है। राम ऐसे अनेकों लोगों को पहचानता है, जिन्होंने अंगरेजी स्कूलों में शिक्षा पाई है। फिर भी, वह अंगरेजी वस्त्र धारण नहीं करते तथा बात बात में निष्प्रयोजन अंगरेजी भाषा का प्रयोग भी नहीं करते, क्योंकि उनकी पूर्व-पीढ़ी के लोग इस बात को अविनय मानते हैं। उपरिकथित विद्यार्थी जिस शहर में पढ़ता था, वहां उसने एक छोटी घड़ी खरीदी। तदुपरांत गरमी की तीन महीने की छुट्टी में वह जब अपनी दादी के यहां गया, तब वह युवक विद्यार्थी अपने साथ अंगरेजी पोशाक या कुरसी-टेबल आदि अंगरेजी उपकरण ले जाने का साहस तो कर न सका, क्योंकि पुराने विचार के लोग ऐसी वस्तुओं को घर में रखना अनुचित मानते हैं। परंतु चाहे जो हो, घड़ी तो साथ में ले ही जाना चाहिए, यह निश्चय कर उसने घड़ी ले जाने का साहस किया। सारा कुटुम्ब इस घड़ी का विरोधी था -दादी तो विशेष रूप से विरुद्ध थी। उसने कहा-'यह तो रात-दिन-टिक टिक आवाज ही करती रहती है। इसको तोड़कर बाहर फेंक दो। यह अपशकुन है। इसे घर में रखने से दुष्परिणाम उत्पन्न होगा और कोई विपत्ति आ पड़ेगी। उस विद्यार्थी ने उसे बहुत समझाया, परंतु उसके मन को किसी प्रकार का समाधान नहीं हुआ। दादी तो नहीं नहीं करती रही। फिर भी, विद्यार्थी ने तो अध्ययन के लिए उस घड़ी को

अपने पास ही रखा। एक बार ऐसा हुआ कि उस घर में चोरी हो गई और जेवर तथा रुपये पैसे चोरी हो चले गए। इस घटना से वृद्धा के भ्रम को प्रमाणभूत बना दिया। वह बोली–मैंने कहा था कि इस घड़ी को घर में रखने से कोई विपत्ति आयेंगी। देखो, चोर भी घड़ी को नहीं ले गए। वह जानते थे कि घड़ी को चुराले जायेंगे तो हानि होगी। अब भी ऐसी चीज को घर में क्यों रखे बैठे हो?” वह लड़का सिर फिरा था, अतः वृद्धा दादी के कथन का उसपर कोई प्रभाव न हुआ। उसने अपने अध्ययन कक्ष में घड़ी रहने दी। कुछ समय के पश्चात् लड़के के पिता की मृत्यु हो गई। अब तो वह वृद्धा बहुत डर गई और बोली–अरे झक्की लड़के! इस अमंगल वस्तु को घर से बाहर फेंक दे। इसे घर में रखने का साहस तू कैसे कर रहा है? फिर भी लड़के ने घड़ी को घर में रखा। कुछ समय के बाद उसकी मां भी मर गई। अब उस लड़कें की दादी की आकुलता की सीमा नहीं और घर में घड़ी का अस्तित्व उसके लिये असह्य हो गया। उसे विश्वास हो गया कि घड़ी में एक जन्तु है, क्योंकि अभी तक उसने कोई यन्त्रचालित वस्तु देखी न थी। घड़ी अपने आप ही चलती है और स्वयं ही टक-टक आवाज कर रही है, यह बात उसके मन में बैठ न सकी। उसके कुटुम्ब में जो कुछ विपत्तियां आईं उन सबका कारण उस घड़ी को ही वह मान बैठी। अन्त में उसने उस विद्यार्थी के कमरे में से उस घड़ी को चुपचाप ले लिया और अपने कमरे के एक कोने में बैठ कर एक पत्थर द्वारा तोड़ कर उसकें टुकड़े-टुकड़े कर दिये

इस प्रकार उसने घड़ी के साथ प्रतिशोध लिया। अब जरा कृपा करके ध्यान दीजिए। भारत में वृद्धाओं की यह स्थिति सुनकर कदाचित आप हँसेंगे, परन्तु अन्य बातों में आप भी उस वृद्धा के समान ही हैं। लोग एक दूसरी बातों का संमिश्रण कर देते हैं और इस निश्चय पर तत्काल पहुंच जाते हैं कि एक वस्तु दूसरी वस्तु का कारण है युरोपीय लोगों में खास कर ऐसे उलटे विचार भर गये हैं, इसलिए वह एकदम इस निर्णय पर पहुंच जाते हैं, कि भारत के पतन का मूल कारण वेदान्त ही है। इसी प्रकार दुनिया की अन्य कुछ बातों में भी अपने विचार बना बैठते हैं।

युरोप और अमेरिका की उन्नति का कारण ईसा नहीं, परंतु वास्तविक कारण तो यह है कि वह अज्ञात रूप में भी वेदान्त के सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं। भारत के पतन का वास्तविक कारण यही है कि लोग वेदान्त के मतानुसार जीवन यापन नहीं करते।

जगत् की उन्नति करने में माता कैसा महत्व पूर्ण काम करतीं है, इस सम्बन्ध में एक दो शब्द कहना चाहता है। दुनिया में जो-जो महानवीर पुरुष हो गए हैं, वह सब महान् माता के ही पुत्र थे।

—क्रमशः

रामचरित मानस
(रामायण)
टीकाकार —
योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

(गतांक से आगे)

दीप मनोहर, मणिमय नाना,
जाय न वरणि विचित्र विताना,
जेहि मंडप दुलहिन वैदेही,
सो वरणै, असमति कवि केही ।

अनेकशः मणिमय मनोहर दीप सुशोभित हैं । इ
प्रकार चित्र-विचित्र कारीगरी और कला कौशल से सं
वितान की मनोहरता का वर्णन करना संभव नहीं। जि
मण्डप में नववधू के रूप में सीताजी विराजमान होंगी, उस
सौन्दर्य-महत्ता का वर्णन कर सके, ऐसी बुद्धि-प्रतिभा कि
कवि के पास है ?

दूलह राम रूप गुण सागर,
सो वितान तिहुं लोक उजागर,
जनक भवन कै शोभा जैसी,
गृह-गृह प्रति पुर देखिय तैसी ।

जिस वितान (मण्डप) में रूप और गुण के सागर राम सुशोभित होंगे, वह निस्सन्देह तीनों लोकों में विख्यात होगा। जो शोभा जनक के प्रासाद में झलक रही है, वही श्री-शोभा जनकपुर के घर-घर में और नगरों में प्रकट हो रही है।

बसहि नगर जेहि लक्ष्मि करि कपट नारि वर वेश,
तेहि पुर के शोभा कहत, सकुचहिं शारद-शेष।

जिस नगर (जनकपुर) में साक्षात् ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी प्राकृत स्त्री का कपट—कृत्रिम वेश धारण कर निवास कर रही हैं, उस नगर की श्री-शोभा का वर्णन करते हुये वाग्देवी सरस्वती और सहस्रमुख शेष भी संकुचित हो उठेंगे।

पहुंचे दूत रामपुर पावन,
हरषे नगर विलोकि सुहावन,
भूप द्वार तिन खबर जनाई,
दशरथ नृप सुनि लिये बुलाई।

उधर विवाह का सन्देश लेकर गये हुये दूत राम के पवित्र नगर—अयोध्यापुरी में पहुंच गये और नगर का सौन्दर्य देखकर प्रसन्न हो उठे। उन दूतों ने राजभवन में समाचार पहुंचाया। यह सुनकर महाराज दशरथ ने उन्हें बुलवाया।

करि प्रणाम तिन पातीं दीन्हीं,
मुदित महीप आप उठि लीन्हीं,
वारि विलोचन बांचत पातीं,
पुलक गात, आई भरि छाती।

दूतोंने प्रणाम करके महाराज को जनक का पत्र दिया राजाने प्रसन्नतापूर्वक सिंहासन से उठकर स्वयं अपने हाथ में पत्र लिया। पत्र को पढ़ते हुये नेत्र सजल हो उठे, अंग-प्रत्यंग पुलकित हो उठे और हृदय भर आया।

राम-लखन उर, कर वर चीठी,
रहि गये कहत न खाटी-मीठी,
पुनि धरि धीर पत्रिका बांची,
हरषी सभा बात सुनि सांची।

अन्तःकरण में राम और लक्ष्मण विराजमान हैं, हाथ में पत्र है, जिसे वह हाथ में लिये ही रह गये, कुछ बता नहीं पा रहे हैं। तदुपरांत उन्होंने धैर्य धारण कर राज सभा को वह पत्र पढ़ सुनाया। सारी सभा सत्य बात सुनकर आनन्द मग्न हो उठी।

खेलत रहे तहां सुधि पाई,
आये भरत सहित हित भाई,
पूछत अति सनेह सकुचाई,
तात कहां ते पाती आई।

भरत अपने सम-वयस्क साथियों और भाई के साथ खेल रहे थे, वहां समाचार पाकर वे आ पहुंचे। वह अतीव प्रेमभाव और संकोचवश पूछने लगे— पिताजी! यह पत्र कहां से आया है?

कुशल प्राणप्रिय बन्धु दोउ, अहहिं कहौ केहि देश?
सुनि सनेह साने वचन, बांची बहुरि नरेश।

देव देखि तव बालक दोऊ,
अब न आंखि तर आवत कोऊ,
दूत-वचन-रचना प्रिय लागी,
प्रेम-प्रताप-वीर रस पागी।

हे देव! आपके दोनों पुत्रों को देखने के बाद अब आंखों के नीचे कोई नहीं आता-उनके सामने सब महत्वहीन-निरर्थक प्रतीत होते हैं।

सभा समेत राउ अनुरागे,
दूतन देन निछावरि लागे,
कहि अनीति ते मूंदहिं काना,
धरम विचारि सबहिं सुख माना।

दूतों का कथन सुनकर राजा दशरथ समेत सारी राज-सभा प्रेमाभिभूत हो उठी और वे दूतों को न्योछावर देने लगे। किन्तु दूतों ने इसे अनीति कहकर कान बन्द कर लिये। दूतों के इस धर्म पूर्ण व्यवहार से सभी प्रसन्न हो उठे।

तब उठि भूप वसिष्ठ कहँ, दीन पत्रिका जाय,
कथा सुनाई गुरुहिं सब, सादर दूत बुलाय।

तब राजा सभा से उठकर गुरु वसिष्ठ के पास गये और उन्हें पत्रिका दी। दूतों को बुलाकर गुरु को सारी कथा सुनाई।

सुनि बोले गुरु अति सुख पाई,
पुण्य पुरुष कहँ महि सुख छाई,
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं,
यद्यपि ताहि कामना नाहीं।

यह सब सुनकर गुरु वसिष्ठ अत्यन्त आनन्दित हो और कहने लगे–पुण्यवान मानव के लिये समग्र पृथ्वी ही सु से परिपूर्ण है। जैसे नदियां समुद्र में जा समाती हैं-यद्य उनकी उसे कामना नहीं रहती।

तिमि सुख-संपति बिनहिं बुलायें,
धर्म शील पहँ जाहिं सुभायें,
तुम गुरु विप्र धेनु सुर सेवी,
तस पुनीत कौशल्या देवी।

उसी तरह सब सुख वैभव बिना बुलाये धर्मशील मान के आसपास स्वभावतः एकत्र होते रहते हैं। तुम गुरु, ब्राह्मण, धेनु और देवताओं की सेवा करने वाले हो, उसी तरह कौशल्या देवी भी परम पवित्र व्रतधारिणी हैं।

सुकृती तुम समान जगमाहीं,
भयो, न है कोउ, होनेउ नाहीं,
तुमते अधिक पुण्य बड़ काके,
राजन राम सरिस सुत जाके।

हे राजन! आपके समान सत्कर्मशील-सदाचारवान इस जगत् में न तो पहले कभी हुआ है, न आज है और न भविष्य में होगा। आपसे अधिक पुण्यात्मा कौन है, जिसके राम सदृश पुत्र हैं।

वीर विनीत धर्म-व्रतधारी,
गुण सागर वर बालक चारी,
तुम कहँ सर्वकाल कल्याणा,
सजहु बरात बजाय निशाना।

सुन्दर वीर विनयशील और धर्मव्रतधारी, सर्वगुणसम्पन्न चार बालक आपके घर की शोभा बढ़ा रहे हैं, अतः आपका हर समय कल्याण है। आप डंका बजाकर बारात सजायें।

चलहु वेगि सुनि गुरु वचन, भलेहि नाथ सिर नाय,
भूपति गमने भवन तब, दूतन वास देवाय।

गुरु के यह वचन सुनकर-कि बारात सजाकर शीघ्र ही चलो-राजाने कहा-बहुत अच्छा देव! और फिर दूतों के लिये निवास की व्यवस्था कर वह राजभवन में गये।

राजा सब रनिवास बुलाई,
जनक पत्रिका बांचि सुनाई,
सुनि संदेश सकल हरषानी,
अपर कथा सब भूप बखानी।

राजा ने सारे रनिवास को बुलाया और जनक की पत्रिका पढ़कर सुनाई। यह संवाद सुनकर समस्त रानियां प्रसन्न हो उठीं। अन्य सब विवरण राजाने स्वयं सुनाया।

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी,
मनहुं शिखिनि सुनि वारिद वाणी,
मुदित अशीष देहिं गुरु-नारी,
अति आनन्द मगन महतारी।

प्रेम-प्रफुल्ल रानियां इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं; जैसे मोरनी बादलों का मधुर रव सुनकर हर्षित हो उठती है। गुरु-पत्नी प्रसन्न मन शुभाशीष देने लगी और माताएं आनन्द विभोर हो उठीं।

लेहिं परस्पर अति प्रिय पातीं,
हृदय लगाय जुड़ावैं छातीं,
राम-लखन कै कीरति करनी,
बारहिं बार भूपवर बरनी ।

रानियां उस प्रिय पत्रिका को परस्पर लेती हैं और उसे हृदय से लगाकर अपनी छातीं को शीतल करती हैं राम और लक्ष्मण के सुयश और महान कार्यों का वर्णन महाराज दशरथ ने पुनः रानियों के समक्ष किया ।

मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए,
रानिन तब महिदेव बुलाए,
दियें दान आनन्द-समेता,
चले विप्रवर आशिश देता ।

"यह सब मुनिवर वसिष्ठ के अनुग्रह का प्रसाद है"-यह कहकर राजा बाहर चले गयें । तत्पश्चात् रानियों ने ब्राह्मणों को बुलाया और उन्हें प्रसन्नता पूर्वक दान दिए । दान पाकर ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए चले गये ।

याचक लिए हँकारि, दीन निछावरि कोटि विधि,
चिरजीवौ सुत चारि, चक्रवर्ति दशरथ के ।

तदुपरांत याचकों को बुलाया और नाना प्रकार की निछावरें देकर उन्हें परितृप्त किया । चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के चारों पुत्र चिरजीवी हों ।

कहत चले पहिरे पट नाना,
हरषि हने गहगहे निशाना,

हमारे दोनों प्राणप्रिय बन्धु कुशल से हैं। बताओ, वह किस देश में हैं ? उनके यह स्नेह-रस-मग्न वचन सुनकर राजा ने पत्रिका पुनः पढ़ सुनाई।

सुनि पाति पुलके दोउ भ्राता,
अधिक सनेह समात न गाता,
प्रीति पुनीत भरत कै देखी,
सकल सभा सुख लहेउ विशेखी।

पत्र सुनकर दोनों भाई प्रेम-पुलकित हो उठे। उनमें इतना अधिक स्नेह उमड़ आया कि अंगों में समा नहीं रहा है। भरत का यह पावन प्रेम-भाव देखकर सारी राजसभा को परम सुख का अनुभव हुआ।

तब नृप दूत निकट बैठारे,
मधुर मनोहर बचन उचारे,
भैया कहौ कुशल दोउ बारे,
तुम नीके निज नयन निहारे।

तदुपरांत राजाने दूतों को अपने पास बैठाया और उनसे मधुर मनोहारी वाणी से पूछने लगे— भाई ! बताओ, मेरे दोनों राजपुत्र कुशलपूर्वक हैं ? तुमने उन्हें अपनी आंखों से अच्छी तरह देखा है ?

श्यामल गौर, धरे धनु-भाथा,
वय किशोर, कौशिक मुनि साथा,
पहिचानहु तुम, कहौ स्वभाऊ,
प्रेम-विश्व पुनि-पुनि कह राऊ।

वह श्याम और गौर शरीर हैं, धनु और निषंग से सुसज्जित हैं, किशोर आयुके हैं और मुनि विश्वामित्र के साथ हैं। क्या तुम उन्हें पहचानते हो? उनका स्वभाव तो बताओ-इस प्रकार महाराज दशरथ प्रेमवश दूतों से बारंबार पूछ रहे हैं।

जा दिन ते मुनि गये लिवाई,
तब से आज सांचि सुधि पाई,
कहौ विदेह कौन विधि जाने,
सुनि प्रिय वचन दूत मुसकाने।

जिस दिन से मुनि उन्हें अपने साथ ले गये हैं, उस दिन से आज ही उनका सच्चा समाचार मुझे मिला है। यह तो बताओ, जनक से उनका परिचय किस प्रकार हुआ? राजा कि यह प्रिय वाणी सुनकर दूत मुसकरा पड़े और कहने लगे-

सुनहु महीमति मुकटमणि, तुम सम धन्य न कोऊ,
राम-लखन जिनके तनय, विश्व-विभूषण दोऊ

हे महापतियों के मुकुट-मणि महाराज सुनिये। आपके समान इस पृथ्वी पर अन्य कोई धन्य नहीं है। आपका अहोभाग्य है, जिनके राम लक्ष्मण जैसे विश्व-विभूषण पुत्र हैं।

पूछन जोग न तनय तुम्हारे,
पुरुष सिंह तिहुं पुर उजियारे,
जिनके यश-प्रताप के आगे,
शशि मलीन, रवि शीतल लागे।

आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं। वह पुरुष-सिंह तीनों लोकों को प्रकाशमान् बना रहे हैं और उनके धवल यश और प्रताप के सामने चन्द्रमा निष्प्रभ और सूर्य शीतल प्रतीत होता है।

तिन कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे,
देखि रवि कि दीप कर लीन्हें,
सीय स्वयंवर भूप अनेका,
सिमटे सुभट एक से एका।

उनके लियें आप पूछ रहे हैं कि वे किस प्रकार से हैं, क्या सूर्य को कोई दीपक लेकर देखता है? सीता के स्वयंवर में अनेकशः राजा एकत्र हुयें थे, जो एक-से एक बढ़कर बलवान योद्धा थे।

शंभु शरासन काहु न टारा,
हारे सकल वीर बरियारा,
तीन लोक महँ जहँ भट मानी,
सबकै शक्ति शंभु धनु भानी।

किन्तु उनमें से शंकर के धनुष को कोई जगह से हिला भी नहीं सका: वह सब बीर बलवान नाना प्रयत्न करके परास्त हो गये। तीनों लोकों में जो भी मदोन्मत्त योद्धा थे, उन सबकी शक्ति को शिव धनुष ने निरर्थक बना दिया।

सकै उठाय सुरासुर मेरू,
सोउ हिय हारि गयउ करि फेरू,
जेहि कौतुक शिव शैल उठावा,
सोउ तेहि सभा पराभव पावा।

जो बाणासुर सुमेरु पर्वत को भी उठाने में समर्थ है, वह भी नाना प्रकार के प्रयत्न करके हार गया।

जिसने खेल ही खेल में कैलास पर्वत को उठा लिया था वह रावण भी उस सभा में पराभूत हो गया।

तहां राम रघुवंशमणि, सुनिय महा महिपाल,
भंजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पंकज नाल।

हे महाराजाधिराज सुनियें वहां रघुवंशभूषण राम ने उस शिव चाप को उसी तरह अनायास-सरलता से-तोड़ डाला —जैसे हाथी कमल की नाल को तोड़ देता है।

सुनि सरोष भृगुनायक आये,
बहुत भांति तिन आंख दिखाये,
देखि राम बल निज धनु दीन्हा,
करि बहु विनय गमन बन कीन्हा।

धनुर्भंग के समाचार से क्रोधाविष्ट परशुराम भी वहां आयें और राम-लक्ष्मण को नाना प्रकार की धमकियां देने लगे, किन्तु जब उन्हें राम की शक्ति का परिचय प्राप्त हुआ तब उन्हों ने उनकी बहुत विनय की और उन्हें अपना धनुष देकर वन को चले गयें।

राजन राम अतुल बल जैसे,
तेज निधान लखन पुनि तैसे,
कंपहिं भूप विलोकत जाके,
जिमि गज हरिकिशोर के ताके।

हे राजन् ! जैसे राम अतुलित बलधारी हैं, उसी तरह लक्ष्मण भी तेज के समुद्र-अनन्त तेजोमय हैं ! लक्ष्मण जब उन राजाओं की ओर देखते थे, तब वह उसी तरह कांपने लगते थे, जैसे सिंहकिशोर के ताकने पर हाथी।

समाचार सब लोगन पायें,
लागे घर-घर होन बधायें ।

इस प्रकार कहते हुए नाना प्रकार के वस्त्र धारण किये हुए याचक लोग चले गए। इसके बाद नगाड़ों की वृहद् ध्वनि गरज उठी। जब यह शुभ संवाद सब लोगों के कानों में पहुंचा, तब घर-घर में मंगलाचार होने लगे।

भुवन चारिदस भरा उछाहू,
जनक-सुता-रघुवीर विवाहू,
सुनि शुभ कथा लोग अनुरागे,
मग, गृह गली संवारन लागे।

जानकी और राम के विवाह का संवाद सुनकर चौदहों लोक आनन्द और उत्साह से भर गये। अयोध्या की जनता अतीव प्रेम-विभोर हो उठी और लोग नगर के राजपथ, भवन और गलियों की सजावट करने लगे।

यद्यपि अवध सदैव सुहावनि,
रामपुरी मंगलमय पावनि,
तदपि प्रीति कै रीति सुहाई,
मंगल रचना रची बनाई।

यद्यपि अयोध्या सदैव सुहावनि शोभामयी है क्योंकि वह राम की क्रीड़ास्थली होने से परम और मंगल मयी है। फिर भी प्रेमभाव के आकर्षण के वशीभूत होकर नगर निवासियों ने उसे मंगलमयी रचनाओं से सुशोभित किया।

ध्वज, पताक पट चामर चारू,
छावा परम विचित्र बजारू,

कनक कलश तोरण मणि-जाला,
हरद दूब दधि अक्षत माला।

सुन्दर ध्वजा, पताका, परदों और चवँरों से आच्छादित बाजार का अत्यन्त विचित्र दृश्य-दर्शन करा रहा है। इसके अतिरिक्त स्वर्ण-घट, तोरण, मणियों की पंक्तिबद्ध सजा, हरिद्रा, दूब, दधि, अक्षत, फूलमाला आदि हैं—

मंगलमय निज-निज भवन, लोगन रचे बनाय,
वीथी सींची चतुर सम, चौके चारु पुराय।

लोगों ने अपने घरों में मांगलिक रचना की और उन्हें सुसज्जित किया। गलियों को चतुरसम से सींचा और द्वार पर सुन्दर चौकें पुराई।

जहं तहं यूथ यूथ मिलि भामिनि,
सजि-नव- सप्त, सकल द्युति दामिनि।
विधु वदनी, मृगशावक लोचनि,
निज स्वरूप रति-मान विलोचनि,

यत्र-तत्र समूहबद्ध होकर कुलांगनाएं— जो सोलह श्रृंगार से सज्जित हैं, जिनकी कान्ति बिजली के समान है, जो चन्द्रमुखी और मृगलोचनी हैं तथा अपनी रूपराशि से रति और कामदेव के भी दर्प को तोड़नेवाली हैं—अपनी मनोहर वाणी से मंगल-गान करने लगीं। उनका मधुर स्वर सुनकर कलकण्ठी— कोविल भी लज्जित होती है।

भूप-भवन किमि जाय बखाना,
विश्व- विमोहन रचेउ विताना,
मंगल द्रव्य मनोहर नाना,

राजत बाजत विपुल निशाना,
कतहुं विरुद बन्दी उच्चारहीं,
कतहुं वेद-ध्वनि भूसुर करहीं ।

राजमहल का वर्णन कैसे किया जाये, जहां विश्व को मुग्ध कर देनेवाले मंडप की रचना कर दी गई है, नाना प्रकार के मनोहर मांगलिक द्रव्य शोभित हो रहे हैं, बहुत से डंके बज रहे हैं। कहीं बन्दी-भाट सुयश का गान कर रहे हैं, और कहीं ब्राह्मण वेद ध्वनि कर रहे हैं ।

गावहिं ब्राह्मण सुन्दरि मंगल गीता,
लै—लै नाम राम अरु सीता,
बहुत उछाह भवन अति थोरा,
मानहुं उमगि चला चहुं ओरा ।

सुन्दरी नारियां राम और सीता का नाम ले लेकर मांगलिक गीत गा रही हैं । उत्साह-आनन्द बहुत अधिक है और राजभवन बहुत छोटा है, इसलियें वह भवन की सीमा में न समाकर चारों ओर उमड़ चला है ।

शोभा दशरथ भवन कै, को कवि बरनैं पार,
जहां सकल सुर शीश मणि, राम लीन अवतार ।

शरथ के उस राजमहल की शोभा का वर्णन करके कौन कवि उसका पार पा सकता है—वह अपरिमित है जहां समस्त देवताओं के शिरोमणि राम का अवतरण हुआ है ।

भूप भरत पुनि लियें बुलाई,
हय गय स्यन्दन साजहु जाई,

चलौ वेगि रघुवीर बराता,
सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ।

फिर राजा ने भरत को बुलवाया और कहा कि तु जाकर घोड़े, हाथी और रथों को सुसज्जित कर रघुवीर की बारात में चलो । यह सुनकर दोनो भाई भरत शत्रुघ्न पुलकित हा उठे ।

भरत सकल साहनी बुलाये,
आयसु दीन, मुदित उठि धाये,
रचि रुचि जीन तुरंग तिन साजे,
बरन—बरन बर बाजि विराजे ।

भरत ने सभी साहनी-अश्वशाला-के अध्यक्षों को बुलाकर आदेश दिया और प्रसन्न मन दौड़ चले । उन सबने मनोहर जीनों की रजना से अश्वों को सुसज्जित किया । वह नाना रंगी अश्व सजावट से और भी शोभित हो उठे ।

सुभग सकलसुठि चंचल करनी,
अय इव जरत, धरत पग धरनी,
नाना जाति, न जाहिं बखाने,
निदरि पवन जनु चहत उड़ाने ।

वह घोड़े बड़े ही सुन्दर और चंचल गति के हैं और पृथ्वी पर इस तरह पैर रख रहे हैं, मानो जलते हुए लोहे पर रख रहे हों । वह अश्व अनेक जाति के हैं, जिनका वर्णन करना संभव नहीं । उनकी गति इतनी वेगवती है, मानो वायु को भी पीछे कर आगे बढ़ जाना चाहते हों ।

तिन सब छैल भये असवारा,
भरत सरिस वय राजकुमारा,
सब सुन्दर, सब भूषण धारी,
कर शर चाप, तूण कटि भारी।

उन अश्वों पर भरत के सम-वयस्क छैल-छबीले राजकुमार सवार हुए। वह सब सुन्दर और नाना आभूषणों से अलंकृत हैं। उनके हाथ में धनुष-बाण हैं और कमर पर बड़े बड़े तरकश बंधे हुए हैं।

छरे छबीले छैल सब, शूर सुजान नवीन,
युग पदचर असवार प्रति, जे असि-कला प्रवीन।

वे सब चुने हुए छैल-छबीले शूर-वीर, बुद्धिमान और नवयुवक थे और ऐसे प्रत्येक अश्वारोही के साथ तलवार चलाने की कला में सुदक्ष दो पैदल सैनिक चल रहे थे।

बांधे विरुद वीर रण गाढ़े,
निकसि भयें पुर बाहर ठाढ़े।
फेरहिं चतुर तुरंग गति नाना,
हर्षहिं सुनि-सुनि पवन-निशाना।

वीरता सुयश से समलंकृत वह रणधीर योद्धा नगर से बाहर निकल कर खड़े हुए। वे चतुर अपने अश्वों को नाना प्रकार की गतियों से फेर रहे हैं तथा पणव व नगाड़े की गर्जना सुनकर आनन्द-उत्साह से ओत प्रोत हो रहे हैं।

रथ सारथिन विचित्र बनायें,
ध्वज पताक मणि-भूषण लायें,

चवंर चारु किंकिनि धुनि करहीं।
भानु जान शोभा अपहरहीं।

सारथियों ने ध्वजा, पताका, मणि, आभूषण आदि से रथों को अलंकृत कर उन्हें विचित्र आकर्षक रूप प्रदान कर दिया है। उनमें चमर लगे हुए हैं, घंटियां मधुर ध्वनि कर रही हैं। वह सुन्दर रथ सूर्य के रथ की दिव्यता को दबा रहे हैं।

श्यामकर्ण अगणित हय होते,
ते तिन रथनि सारथिन जोते,
सुन्दर सकल अलंकृत सोहे,
जिनहिं विलोकत मुनि मन मोहे।

अश्वशाला में अगणित श्यामकर्ण अश्व थे। उन सबको सारथियों ने रथों में जोत दिया। सभी अश्व अलंकृत और सुहावने थे, जिन्हें देखकर मुनियों के मन भी मुग्ध हो रहे थे।

जे जल चलहिं थलहिं की नाईं,
टाप न बूड़ वेग अधिकाई;
अस्त्र-शस्त्र सब साज बनाई,
रथी सारथिन लिये बुलाई।

जो धरती के समान ही जल में भी चलते थे और वेगाधिक्य के कारण उनकी टाप जल में नहीं डूबती थीं। शस्त्रास्त्र का सब आयोजन पूर्ण कर लेने के बाद सारथियों ने रथारोहियों को बुलाया।

चढ़ि चढ़ि रथ बाहर नगर, लागी जुरन बरात,
होत सगुन सुन्दर सबहिं जो जेहि कारज जात।

रथ पर चढ़ चढ़ कर नगर के बाहर बारात एकत्र होने लगी। जो जिस काम के लियें जाता, उसे तदनुकूल शुभ शकुन होते।

कलित करिवरन परी अँबारी,
कहि न जाहिं जेहि भांति सँवारी
चले मत्त गज घंट विराजी,
मनहुँ सुभग सावन घन राजी।

गजराजों पर सुन्दर अंबारियां झूल रही हैं। उन्हें इस तरह अलकृत किया गया है जिसका वर्णन करना संभव नहीं। मदमत्त गजों के गले में घंटियां विराजमान हैं। उस गज समूह को देख कर ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो सावन महीने की घनावली सुशोभित हो रही है।

वाहन अपर अनेक विधाना,
शिविका सुभग सुखासन जाना;
तिन चढ़ि चले विप्रवर वृंदा,
जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा।

सुभग शिविकाएं (पालकियां), सुखासन—जिनपर आराम से बैठा जा सके तथा अन्य अनेक प्रकार के वाहनों पर ब्राह्मणवृन्द चल पड़ा। वे ब्राह्मण ऐसे थे, मानो सारे वैदिक छन्द ही साक्षात् शरीर धारण कियें हुयें-अर्थात् वे ब्राह्मण वेदमूर्ति थे।

मागध सूत बंदि गुणगायक,
चले यान चढ़ि जो जेहि लायक,
बेसर ऊंट वृषभ बहु जाती,
चले वस्तु भरि अगणित भांती।

मागध, बन्दी (भाट), सूत आदि यशोगान करने वाले लोग यथायोग्य वाहन पर चढ़कर चल पड़े। अनेक जाति के अश्वेतर (खच्चर), ऊंट, बैल आदि वाहन तरह-तरह की वस्तुओं से लदकर चल पड़े।

कोटिन कांवरि चले कहारा,
विविध वस्तु को वरणै पारा,
चले सकल सेवक समुदाई,
निज-निज साज समाज बनाई।

करोड़ों कहार कांवरे लादकर चल पड़े, जिनमें विविध वस्तुयें इतनी अधिक थीं जिनका बताना संभव नहीं। सारे सेवक समुदाय भी अपने-अपने अभीष्ट प्रसाधनों से सजकर और समूहबद्ध होकर चले।

सबके मन निर्भर हरष, पूरित पुलक शरीर,
कबहिं देखिये नयन भरि, राम लखन दोउ बीर।

सबके मन अपार आनन्द से परिपूर्ण हैं, शरीर पुलकायमान हो रहे हैं और यह इच्छा उमंगित है कि कब आंख भरकर दोनो वीरों—राम और लक्ष्मण को देखेंगे।

गर्जहिं गज घण्टा ध्वनि घोरा,
रथ रव बाजि हिंस चहुं ओरा,
निदरि घनहिं घुर्मरहिं निशाना,
निज पराव कछु जात न जाना।

गजराज गर्जना कर रहे हैं। उनके घण्टों की घोर (भारी) ध्वनि, रथों का विराट रव और घोड़ों की हिनहिनाहट चारों ओर व्याप्त हो रही है। घनी गर्जना के उच्च स्वर में डंके बज रहे हैं, अपना पराया कुछ पहचाना नहीं जाता।

महा भीड़ भूपति के द्वारे,
रज होई जाहि पषान पवारे,
चढ़ी अटारिन देखहिं नारी,
लियें आरती मंगल थारी।

महाराज दशरथ के द्वार पर इतना विशाल जन समूह एकत्र हो गया है कि वहां पत्थर भी पिस कर धूल बन गये। थालियों में मंगल आरती सजाये हुए नगर की नारियां छतों पर खड़ी हुई बारात की चहल-पहल देख रही हैं। —क्रमशः

रामतीर्थ
रामतीर्थ में
विज्ञापन देकर
लाभ उठाइये

पद्य कथा—

नए पैसे का जन्म

ले. :— महावीरप्रसाद अग्रवाल

झन झनकी झनकार मधुर-सी आती थी उस नीरव क्षण में।
मानो नृत्य बालिका कोई मग्न हो रही हो नर्तन में।
चंचल चपला-सी लगती थी उनकी चमक दमक विद्युत-सी।
सुन पड़ता था कभी कभी फिर कोमल कोकिल-सा सुस्वर भी॥
जाकर निकट प्रकट देखा तो मनमें भारी विस्मय छाया।
यह विराट परिषद् सिक्कों की सभाद्वार पर लिक्खा पाया॥
अनाहूत अभ्यागत बनकर मौन हुआ-सा जाकर बैठा।
आने दो-आने सिक्कों को ऐंठे-से वहां बैठे देखा॥
चम चम करते आने आते पेट फुलाये दो आने भी।
चपल चवन्नी हर्षित आई वहां अठन्नी भी आई थी।
पर पैसों की पूछ नहीं थी, एक छिपा बैठा कोने में।
क्या होगा बस यही देखने, मैं भी जा बैठा कोने में।
इतने में संचालक आये सबने जय जय शोर मचाया।
फिर परिषद् का हुआ कार्य, पहले गीत उन्होंने गाया॥
सब मिलकर—
हम जग के हैं भाग्य विधाता हम जग के भगवान।
काम हमारे बिना न होता हम हैं उच्च महान॥
कहीं दुअन्नी कहीं इकन्नी दीख रही संसार।
कहीं अठन्नी कहीं चवन्नी का चलता व्यवहार॥
हम चाहें तो प्रेमी में भी करवा दें तकरार।
सभी हमारे आगे झुकते राजा या कंगाल।

बड़े बड़ों का मिटा दिया है हमने सब अभिमान ॥ हम......
हाथ जोड़ कर सभी हमारा करते हैं सम्मान।
हमसे मानव मांगा करते निज इच्छित वरदान ॥
जिसपर हम रूठें रूठेगा उस पर सकल जहान।
जिस पर तूठें उसको मिलता जग में यश औ मान।
इसी लिये यह जग करता है सदा हमारा मान ॥ हम...
हुआ गीत जब खत्म सभी ने अपनी अपनी जगह सँभाली।
सभापतित्व करने को आई तभी अठन्नी हो मतवाली ॥
अठन्नी—आज सभी हम मिल कर बैठे जान रहे क्या आप ?
इसी लिये कि हम कह पायें अपने मन का ताप ॥
जिसको हो तकलीफ सोचकर हमको सभी बताओ।
फिर प्रस्ताव पास कर उसको पत्रों में छपवाओ ॥
समझाओ तब सबको ऐसे न्याय्य मांग हमारी।
मांगें पूरी करो हमारी करो न सोच विचारी ॥
चवन्नी—मेरे पीलेपन का सब जन करते हैं अपमान सदा।
सहा न जाता है अब मुझसे इनका यह अपमान महा ॥
अठन्नी—ठीक ठीक तुम इन लोगों से बायकाट अपना कर लो।
इसका मजा चखाओ इनको मान सभी इनका हर लो ॥
इकन्नी—तमक इकन्नी उठी जोर से मेरा भी कुछ होवे ध्यान।
इन पैसों से जल्दी से अब छुड़वायें सब मेरी जान ॥
अठन्नी—सचमुच इन पैसों के मारे हम सबका जी घबराया।
इन नीचों के संग साथ में मान न हमको मिल पाया ॥
चवन्नी—मैं हूं कोमल तन सुकुमारी इन कठोर पैसों से तंग।
इनसे जान छुटे अब जल्दी बतलाओ कोई वह ढंग ॥

कोमल कोकिल-कण्ठी स्वर ने सबको कर मद होश दिया।
इन पैसों से हमें बचाओ—सबने मिलकर घोष किया॥
शांत शांत फिर गूंजी वाणी सुना सभापति बोल रहे।
सभापति-आज सभा का मुख्य विषय ही पैसों से प्रतिकार रहे।
बहिन चवन्नी बोलो इसपर पैसों से बदला लेंगे।
आज सभा के सभी सभ्यगण इसपर ही भाषण देंगे॥
चवन्नी—मैं पैसों से मिलकर रहना अब न सह पाऊँगी और।
इनके तनकी बदबू से ही मुझको आती घृणा घोर॥
इनका रंग निकम्मा भद्दा और वेश भी अति मलीन।
दूर करो कैसे भी इनको मुझे न भाते भद्दे दीन॥
इकन्नी—यही उपाय समझ आता है जिसमें रह पायेगी शान।
बटुवे में पैसों की खातिर अलग अलग बस होवे स्थान॥
दुअन्नी—क्यों न इन नीचों का जगसे मिट ही जाये नाम निशान।
सोचो वह तरकीब कि जिससे रहे बांस न बंशी तान॥
धन्य धन्य कह उठे सभासद वाह वाह सुन्दर बात कही।
भेजो प्रस्ताव यह सुन्दर राष्ट्रपति के पास अभी॥
इधर डरा सा पैसा दुबका सिकुड़ सिकुड़ होकर छोटा।
लाल हुआ जाता था पल पल कोने में लोटा लोटा॥
देख मूढ़ता इन सिक्कों की पैसा मनमें घबराया।
कौन सुनेगा मेरी इनमें ? सोच सोच यों थर्राया॥
मैं— सचमुच उसकी कौन सुनेगा, कैसे अपनी व्यथा कहे?
जब आंखों पर पर्दा पड़ता कहां नीति आलोक रहे॥
पर क्या रहता दर्प किसी का, खाते अभिमानी मुहकी।
कीच उछाले जो दूजे पर छींटे पड़ते उसपर ही॥

परकी हाय जगाकर जीना, माने असिधार सोना।
अन्त सदा होता बद उनका अन्त पड़े उनको रोना॥
इधर सभी सिक्के यों कहकर उछलकूद कर शोर रहे।
उधर दूर से चमक दमक ले, आते से कोई दीखे॥

आगन्तुक–सावधान हो सावधान सब कैसा उधम मचाया है।
आसन छोड़ भगो अब अपना नया जमाना आया॥
चौंक उठे सब सुनकर ऐसा फीका सबका रंग हुआ
कौन ? कहां से यह आया है ? इससे रंग में भंग हुआ॥

आगन्तुक—मैं पैसा नया कहाता हूं॥
इस प्यार हीनता का बदला, इस धींगा मस्ती का बदला।
मैं आज तुम्हें देने आया। तुमको सबकुछ समझाता हूं, मैं.
तुमने समझा हम बड़े, और पैसे का कोई मोल नहीं।
जिसके दम पर तुम बड़े बने-उससे न तुम्हारा नाता क्यूं॥ मैं.
छोटे मोटे का भेद बुरा, सब एक रूप, पर अलग अलग।
सबसे मिलकर जीवन चलता मैं भेद भाव सुलझाता हूं॥ मैं.
देखा, सब हैं तब कांप उठे, प्रस्ताव रह गये धरे धरे।
उस छोटे पैसे से डरकर सब मोटे पैसे भाग गये॥
बस पाप जनित दुर्बलता ही मानव की हार कराती है।
सद्गुण से बनी सबलता ही मानव को विजय दिलाती है॥
मिट गयें सभी सिक्के पिछले जब पैसा नया चला देखो।
आने दो आने और अन्य, ना रहे यहां अब, देखो तो॥
सच है अपनों से मिलकर जो जीवन में ना रहना जाने।
मिट जाते वे बस एक दिवस सिक्कों में जैसे सब आने॥

विश्व विहार

ले.— कालूभाई वसिया

(गतांक से आगे)

वेदों का तत्त्व ज्ञान

वेदों का तत्वज्ञान ही हिन्दू सनातन धर्म का ज्ञान है। वेद चार हैं उनका तत्त्वज्ञान प्रत्येक सत्य को भिन्न भिन्न रूप में समझ कर उसके रहस्य के उद्घाटन की कला है। वेदों के कथनानुसार सत्य परम तत्त्व आत्मा का स्वभाव त्रिगुणात्मक है—इच्छा, क्रिया और ज्ञान। अतः वेदों में ज्ञान, उपासना, कर्म इन तीनों विषयों का विवेचन है। इन्हें तीन काण्ड—संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद के नाम से अभिहित किया गया है। उसे सरल ढंग से समझने के लियें षडदर्शनों की रचना की गई है और उसका विवेचन करने वाले १८ पुराण ९ स्मृतियां और महाभारत, गीता आदि हैं—इन सबों को मिलाकर हिन्दू सनातन धर्म के स्वरूप का सृजन किया गया। किन्तु वेद अपौरुषेय हैं क्यों कि वेद तो अर्थज्ञान है। ज्ञान नैसर्गिक तत्त्व है, उसे किसी ने उत्पन्न नहीं किया, इसी लियें वेदों को अपौरुषेय कहा जाता है। उसे श्रुति भी कहा जाता है, क्यों कि ज्ञान शब्द प्रथम अन्तरिक्ष से ब्रह्मा की अन्तरात्मा में ध्वनित हुआ था। इसीलिये वेद श्रुति कहलाते हैं।

वेदों का मूल तत्वज्ञान

वेदों के वास्तविक तत्त्वज्ञान में मात्र दो ही तत्त्व हैं-अग्नि और सोम। उनका परस्पर समन्वय-मिश्रण ही

जाने से विश्व की उत्पत्ति हुई है। अग्नि अर्थात् सत् और सोम का अर्थ है असत्। परन्तु सृष्टि के आरम्भ में कुछ भी नहीं था— मात्र एक प्राण वायु सर्वत्र व्यापमान था और उसी को सत्य, परम पुरुष ब्रह्म, आत्मा, ज्ञान, ईश्वर आदि अनेकशः नामों से पुकारा गया है। इस अद्वितीय तत्व में हलचल- आन्दोलन की प्रक्रिया गुप्त रूप से गुंफित है और इसी से समस्त सृष्टि का सृजन हुआ है।

वेदों के मुख्य देवता

जितने विश्व में सद्गुण हैं उतनी ही संख्या में वैदिक देवता हैं। परन्तु आर्य एक ही देव की विभिन्न गुण-रूप में उपासना करते थे। इन उपास्य देवों में मरुत, मित्र, इन्द्र, विष्णु, (सूर्य), ब्रह्मा, महेश, (शंकर) प्रमुख हैं।

चार वेदों के चार महावाक्य

चार वेदों के चार वाक्य हैं किन्तु चारों के शब्दार्थों में समानता है—

१-ऋग्वेद का महावाक्य प्रज्ञानं ब्रह्म है।
२ यजुर्वेद का अहं ब्रह्मास्मि है।
३-सामवेद का तत्त्वमसि है।
४-अर्थववेद का अयं आत्मा ब्रह्म है।

मूलवेदों के सनातन हिन्दू धर्म के तत्त्वज्ञान में एक तत्व का स्वीकार है। बाद में दर्शनशास्त्रों की रचना

की गई है और उनमें तीन बड़े तत्त्ववादों का निर्दे किया गया जिनके नाम हैं—१ आरम्भवाद, २ परिणामवा और ३·कारणवाद।

१–आरम्भवाद—अर्थात् जिसका आरम्भ नहीं होता औ होता है जैसे अणु नहीं थे और अणुसे ही विश्व का सृज हुआ। यह आरम्भवाद न्याय और वैशेषिक दर्शनकर्ता क्रमश गौतम और कणाद मुनि का है। वे अणुओं की तरह अनेक तत्त्वों द्वारा विश्व को सुगठित मानते हैं।

२–परिणामवाद—अर्थात् जैसे दूध का दही बन जाता है, उसी तरह सब कुछ परिणाम से बना है। यह मत सांख्य और योग दर्शन का है जिसके रचयिता कपिल और पंतजलि भगवान हैं। वे दो ही तत्त्वों—प्रकृति और पुरुष से विश्व की उत्पत्ति मांनते हैं। विकृति परिणामवाद और अविकृत परिणामवाद।

३—कारणवाद—जैसे स्वर्ण से आभूषणादि का निर्माण होता है। इसमें स्वर्ण कारण और आभूषण कार्य है। बिना कारण के कार्य कदापि संभव नहीं। यह मत पूर्व-मीमांसा और उत्तर मीमांसा के कर्ता जैमिनी का है जो इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं कि कर्म द्वारा ही ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है अतः कर्म का स्थान पहला है और ज्ञान का बादमें, वह कर्म को मुख्य मानते हैं। यही कारण है कि उनका दर्शन कर्ममीमांसा कहलाता है।

वेदान्तदर्शन का तत्त्वज्ञान

षड्दर्शनों का यह अंतिम दर्शन है और इसे उत्तर-मीमांसा या ब्रह्म सूत्र भी कहा जाता है। वेदान्त दर्शन में किसी प्रकार के उत्पत्तिवाद का निदर्शन नहीं। वह एक ही तत्त्व को मानता है और यह तत्त्व सदा निर्विकार, सदा एक रस, अपरिवर्तित और जैसे का तैसा रहता है। उसमें कभी रूपान्तर नहीं होता जो रूपान्तर और रचना घटना लक्षित होते हैं, वे निस्सार और मिथ्या हैं। इस वेदांत दर्शन या उत्तर—मीमांसा के कर्ता व्यास मुनि हैं।

वास्तविक—मूल वेदान्त ज्ञान की तीन शाखाएं हो गई हैं, जिन्हें केवलाद्वैत कहा जाता है।

मूल वेदान्त के तीन वाद

(१) केवलाद्वैत—केवलाद्वैत भगवान् शंकराचार्य का है। इसे विवर्तवाद कहा जाता है। यह एक ही तत्त्व को मानता है। उसका एक ही तत्त्व है—ब्रह्म या ज्ञान। यह ब्रह्म मैं स्वयं ही हूं—मानव आत्मा ही है।

'अहं ब्रह्मास्मि'—मैं ही ब्रह्म हूं। संसार में कहीं भी अन्य कुछ नहीं। जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह मिथ्या है, माया है। वेदान्त का परमवाद ज्ञान है।

२—विशिष्टाद्वैतवाद—सन् १७१७ ई० में दक्षिण-भारत में रामानुजाचार्य का उदय हुआ और उन्होंने ही विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना की। वे भी वस्तुतः एक ही तत्त्व को भगवान का शरीर कहकर विशेषण लगाते हैं, इसलिये उसे विशिष्टाद्वैत कहा जाता है। विश्व के सभी पदार्थ और चेतन जीव

ईश्वर के शरीर रूप हैं और ईश्वर शरीरी है। उसमें सां की प्रकृति नहीं और केवल वेदान्त की माया नहीं, अपि विश्व में जो कुछ अस्तित्व रखता है, उस सबका समावे ईश्वर में कर देता है। केवल एक ईश्वर का अस्तित्व है पर भी उसमें सब कुछ समाया हुआ है, अतः यह विशिष् द्वैत है। यह ज्ञान और भक्ति दोनों को प्रकट करता है, अ यह विशेष आकर्षक है।

३—शुद्धाद्वैत – इसके आद्य आचार्य श्रीवल्लभाचार्य महाराज सन् १४७९ ई० में प्रकट हुए थे। वे विश्व को भग वान का स्वरूप मानते हैं और उसी में सबका समावेश क देते हैं, अतः इसे विशाल पन्थ कहा जाता है। 'विश्वं विष्णु अथवा 'हरि एवं जगतं' और 'जगत् एव हरि'—यही इसक परम सिद्धांत है और 'श्री कृष्ण शरणं मम्'— यह अष्टाक्ष महामंत्र है। जैसे सोने से जेवर बनता है सही, परन्तु सोना सोना ही रहता है, विकृत नहीं होता, अविकृत रहता है, उसी तरह मैं और तू—ईश्वर और विश्व एक ही हैं। विश्व ने आकार धारण किया है, वह अविकृत परिणाम है, अतः इसे शुद्धाद्वैत कहा जाता है। इसे हवेली का पुष्टि संप्रदाय कहते हैं। इसकी एक बड़ी गद्दी श्री नाथद्वारा में है। श्री वल्लभाचार्य महाराज के पुत्र श्री विट्ठलदास जी को अकबर बादशाह ने भेंट स्वरूप गोकुल दिया था, अतः वह भी वैष्णवों का बहुत बड़ा तीर्थस्थान है। श्री० वल्लभाचार्य जी महाराज के वंशज गोसाईं जी महाराज कहलाते हैं।

गीता का तत्त्व ज्ञान

श्री गीता का बोध सर्वमान्य है विश्वव्यापी है। उसकी वन्दना सभी धर्म करते हैं। उसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का समास हो जाने से वह सनातन संगीत बना हुआ है। वह आत्मा के महत् चैतन्य को जाग्रत करनेवाला महान् अमृत रस है। गीता सब प्रकारके बंधनोंको तोड़ फेंकने वाली मुक्ति है। वह कर्मको प्राधान्यता देती है और कहती है कि बिना कर्म के ज्ञान और भक्ति का आविर्भाव नहीं होता। विश्व में तीन सत्त्व साथ-साथ रहते-हैं क्षर, अक्षर, ईश्वर। क्षर अर्थात् प्रकृति, अक्षर अर्थात् आत्मा और सबमें व्यापमान वह चैतन्य ही ज्ञान सत्ता या पुरुषोत्तम है। यही अभेद तत्त्व है और उसी का भजन-पूजन करना चाहिए। यही गीता का उद्‌बोधन है। निष्काम कर्म अहैतुक भक्ति और अभेद ज्ञान इन तीनों प्रवाहों का सम्मिलित नाम पुरुषोत्तम हैं।

द्वैतवाद

श्री० मध्वाचार्य का मत—द्वैतवाद के प्रणेता मध्वाचार्य ईसा की १२ वीं शती में हो गये हैं। शंकराचार्य के पुरा अद्वैत और रामानुजाचार्य के 'रंगीन अद्वैत के प्रति उनकी रुचि नहीं! उनके मतानुसार ईश्वर स्वतंत्र तत्व है। और अन्य सब कुछ परतंत्र तत्व हैं। इन सभी परतंत्र तत्वों को चाहिए कि वह ईश्वर का भजन करें। ईश्वर के भजन का अर्थ केवल ईश्वर का नाम लेना ही नहीं, अपितु शरीर मन, वाणी इन तीनों के द्वारा सेवा करना ईश्वर की श्रेष्ठ भक्ति है।

१—सत्य, प्रिय और हितकर वचन कहना वाणीमूल भक्ति है।

२—दान, रक्षा और सेवाको शरीरगत भजन और भ कहते हैं।

३-दया, प्रेम, श्रद्धा मानसिक भक्ति हैं। उत्तम का करना ईश्वर भक्ति का ही अनुष्ठान है। श्रेष्ठ बोध द्वैत मत में है।

द्वैताद्वैतवाद

श्रीमध्वाचार्य ने द्वैताद्वैतवाद की स्थापना की है। 'एकोऽ बहुस्याम्' ही उसका महावाक्य है। इसका अर्थ यह है कि जैसे एक ही आम से अनेक आम बन जाते हैं, वैसे ही एक में से अनेक होते हैं। आम से ही आम के रस का परिणाम प्राप्त करने-जैसा ही विश्वद्वैत और अद्वैत-दोनों रूपों में प्रकट होता है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन स्थिति के भेद करके किया गया है। सविकल्प स्थिति में अनेक रूपों में भासित होता है और निर्विकल्प स्थिति में समग्र विश्व एक परमात्ममय ही है। वह एक तत्त्व अन्तरात्म शक्ति द्वारा अनेक रूप धारण करता है। अतः इसे द्वैताद्वैतवाद माना जाता है। यह बड़ा ही गहन मत है उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता-प्रस्थान-त्रयी कहलाते हैं। इन तीनों का एक ही धर्म-मत माना जाता है।

अरविन्द का महामानव वाद

योगिराज अरविंद का कथन है कि विश्व में अखंड पूर्णता प्रवहमान है। इस पूर्णता के दो छोर हैं—एक

भौतिक छोर और दूसरा आध्यात्मिक छोर। भौतिक छोर मूल है और आध्यात्मिक छोर शिखर-सर्वोच्च स्थान है। भौतिक रूप में ईश्वर कुछ भी नहीं और आध्यात्मिक रूप में सबकुछ है। मानव जिस असन्तोष का अनुभव करता रहता है और तृप्ति का अनुभव करने के लिये प्रयत्नशील रहता है, वही पूर्णता की स्थिति पहुंचने का उसका प्रयास है—यही पूर्णता का विश्वास है। मानव महामानव बन सकता है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु में पूर्णत्व विद्यमान है। पूर्णत्व का विकार ही विश्व है, परन्तु पूर्णता एक ही वस्तु है। वही ईश्वर है, सभी जीव और पदार्थ पूर्ण तत्त्व के परमाणु हैं। पूर्णतत्व प्राप्त करना मानव का सच्चा धर्म है। विश्व में परिवर्तन का नियम महान् है। मानव का परिवर्तन महा रूप में होता है। यह सब अप्रतिहत इच्छा शक्ति के आधार पर संभव है। इच्छा का परिवर्तन ज्ञान में और ज्ञान का रूपान्तर ध्येय में होता है। इच्छा शक्ति और विचार शक्ति को केंद्रित कर ध्येय में लगाने से ध्येय रूप धारण कर लेता है। यह योग का मुख्य सिद्धान्त है।

महात्मा गांधी का तत्त्व दर्शन

महात्मा गांधी स्वयं कहते हैं कि मैंने कोई नई खोज नहीं की। परन्तु सत्य को अवगत करने के लिये मेरे प्रयास सदा चलते रहते हैं।

सत्य और अहिंसा आदिकाल से चले आ रहे हैं, अतः वे सच्चे हैं। सत्य की प्राप्ति के लिये मेरे प्रयोग

हैं। मैं सत्य को ईश्वर मानता हूं। सत्य गूढ़ सत्ता है। उसके सिवा अन्य कुछ भी सत्य नहीं।

प्रत्येक वस्तु में एक सर्व व्यापी सत्ता क्रियाशील है। वही सबका केंद्र है। व्यक्ति तथा समष्टि का एकत्व गूढ़ सत्ता है। उसी से विश्व की काया का निर्माण होता है। मानव एक छोटा सा चक्र है और विश्व बड़ा। मानव इन सभी चक्रों को पीछे छोड़कर मोक्ष प्राप्त करता है। सबकी उत्पत्ति और रक्षा करने वाली सत्ता गूढ़ है।

स्वामी विवेकानन्द का तत्त्व ज्ञान

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि विश्व के सभी पदार्थ एकता के सूत्र में गुंथे हुये हैं। पदार्थ और ईश्वर सब में एकता है। सब कुछ एक की ही अभिव्यक्ति हैं। वास्तव में भौतिक जगत् और आध्यात्मिक एक ही है। इस एक का नाम ब्रह्म है परंतु वह एक कैसे बन गया? यह कोई समझ नहीं पाता क्योंकि यह तत्व हमारी अल्प बुद्धि से परे है, परंतु वही वास्तविक है।

विनोबा का तत्त्व ज्ञान

विनोबा और गांधी के विचारों में सम्पूर्ण सादृश्य है, थोड़ी सी भिन्नता है। विनोबा आत्मा को सत्य मानते हैं। उनका कहना है कि आत्मा ही अस्तित्व की मूर्ति है। हृदय उसका स्थान है। आत्मा में तनिक घट–बढ़ नहीं होती। विकास होता है मन, बुद्धि और

शक्ति का। मनुष्य को जो-जो प्रेरणायें प्राप्त होती हैं, वह सब अव्यक्त (आत्मा) से आती हैं। अव्यक्त अर्थात् आत्मा। जो व्यक्त पर चिन्तन कर सकता है, उसी को अव्यक्त आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। विचार अखिल विश्व में अव्यक्त रूप से घूम रहे हैं। वे हृदय का स्पर्श करते हैं और वही अपना काम सबसे कराते हैं। मानव अपने रूप में कुछ भी नहीं करता। सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में सन्तोष समाधान रहे, यही सत्य है।

डा० राधाकृष्णन् का तत्त्व ज्ञान

भारत के राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् का तत्त्वज्ञान विनोबा जैसा ही है। उनका कहना है कि व्यष्टि और समष्टि का एक्य ही सत्य है।

श्री० जवाहरलाल नेहरू

श्री० जवाहरलाल नेहरू का कहना है कि विश्व क्या है? हम कौन हैं? और क्या कर रहे हैं, यह सब मेरी समझ में नहीं आता। परन्तु मैं मानता हूं कि कोई हमें प्रेरित करता और बल प्रदान करता है। परन्तु प्रकाश की अनुभूति नहीं होती। मैं मानता हूं कि कभी प्रकाशानुभूति होगी।

श्री. कृष्ण मूर्ति का व्यक्तिवाद

दक्षिण भारत में अवतरित महाव्यक्ति श्री० कृष्ण मूर्ति का कहना है कि हमारा समग्र ज्ञान विचारों का रूपान्तर है। वह सच्चा नहीं। सभी विचार भूत काल

के होते हैं, इस लिये उनमें कुछ नवीनता या सत्यता नहीं होती। मन भूतकाल का संचय है और सत्य सभी कालों से परे है, अतः मन और काल से ऊपर पहुंचे बिना सत्यानुभूति नहीं होती। सत्य गुरु से नहीं मिलता। कोई दे नहीं सकता। सत्य स्वज्ञान से ही प्राप्त होता है। विश्व का तत्त्व सर्वमय प्रेम है। उसी तरह तन ज्ञान से परे है। मन संबन्ध प्रधान है–सम्बन्ध बांधता है। सम्बन्ध प्रतिकार को जन्म देते हैं और प्रतिकार से संघर्ष उत्पन्न होता है। प्रेम में कोई संघर्ष नहीं क्योंकि प्रेम में कोई संबन्ध नहीं। प्रेम विश्व व्यापी है। वही विश्व व्यापी चैतन्य है। ब्रह्म को ईश्वर कहा जाता है। उसकी प्राप्ति व्यक्ति के विकास और व्यक्ति के स्वज्ञान से होता है। स्वज्ञान ही सर्वव्यापी प्रेम है और वही वास्तविक सत्य है।

थियोसोफीतत्त्वज्ञान

थियोसोफी का कोई धर्म नहीं, अपितु सभी धर्मों का समन्वयकर्ता तथा वैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक सत्य की खोज करनेवाला विश्व–बन्धुत्व विस्तारक महान् संस्थान है। सन १८७५ ई० में न्यूयार्क में मेडम ब्लेवेट्स्की नाम की रूसी महिला तथा अमेरिकन कर्नल आलकट ने मिलकर इस संस्था की स्थापना की थी। इसका प्रमुख केन्द्र मद्रास में है। मेडम ब्लेवेट्स्की महायोगिनी थीं। वे महात्माओं की खोज में तिब्बत गई थीं। और उन्हें तिब्बत के सीगात्से शहर के निकट स्थित श्वेत ऋषि-संघ का पता लग गया था। उस मठ के महात्मा कुतहुमी और महात्मा मोरिया ने

मेडम ब्लेवेट्स्की को गुप्त ज्ञान की दीक्षा दी थी। उसके अनुसार विश्व का मूल पावर आफ स्पिरिट है और शक्ति के आधार पर विश्व का सृजन हुआ है। आत्मा, मन, भावनाएं आदि की चार अवस्थाएं हैं। यह अवस्थाएं सूक्ष्म, सूक्ष्मतर सूक्ष्मतह और स्थूल है। इसी से सब कुछ उत्पन्न और विकसित होता है। आकारों का जीवन का और चेतन का भी विकास होता है। ईश्वर व्यक्ति नहीं, समष्टि है ब्रह्म और प्रकृति दोनों समष्टि रूप ईश्वर में हैं। उसमें सभी आकार और गतियां सदैव होती रहती हैं। विश्व ऐसे एक ही पुरुष का (तत्त्व का) रूपान्तर है।

ग्रीस का प्राचीन तत्त्वज्ञान

ग्रीस का प्राचीन तत्त्ववेत्ता एपिक्यूरस था। उसका कहना है कि विश्व में अन्धाधुन्धी के सिवा अन्य कुछ भी नहीं। सर्वत्र अराजकता (धांधली) व्याप्त है और अज्ञात तूफान या उत्पात विनाश की विभीषिका फैलाते हैं। समुद्रों में गगनचुम्बी लहरें उछलती हैं, ज्वालामुखी फटते हैं, विजली कड़कती है। उनका कोई नियामक नहीं। कहीं ज्ञानमयी व्यवस्था नहीं। जीवन विश्व रचना में एक आकस्मिक घटनामात्र है। सबका सृजन अज्ञान और तूफानों से हुआ है। निरन्तर चलते हुए संघर्षों के परिणाम स्वरूप मृत्यु को छोड़कर अन्यत्र कहीं विराम नहीं। जीवन के पूर्ण अन्त का नाम मोक्ष है। ईश्वर, आत्मा, मन, जगत मिथ्या है। हम स्वयं भी सत्य नहीं। 'मैं' का अहंकार भी मिथ्या है। जो कुछ सच्चा है वास्तविक है, वह अव्यक्त है—अननुभूत है। विश्व जब अस्तित्व में आया, तब कोई मानव नहीं था, अतः सभी बातें कल्पित हैं, मानसी तरंगें, और मिथ्या हैं और तर्क भी निर्मूल हैं। जन्म से पहले और मृत्यु के बाद की वास्तविक स्थिति को किसी भी ज्ञान से अवगत करना संभव नहीं और जो कुछ सत्य है, वह ज्ञानरहित है।

—क्रमशः

[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों के समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या का समाधान चाहते हों तो लिख भेजें—सम्पादक]

श्री सत्यनारायण शिवशंकर चतुर्वेदी
शिमला, (हिमाचल प्रदेश)

पत्र-१—प्रश्न-१—इस जगत में निन्दनीय कृत्य कौन हैं? और स्तुत्य कृत्य कौन हैं ? यह संक्षेप में बताइए।

प्रश्न—२-- आप के लेख सन् १९३७ ई० से अनेक वर्षों तक विभिन्न मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों में पढ़ता आ रहा हूं। कन्नड़, मराठी, हिन्दी, गुजराती तथा अन्य भाषाओं के पत्रों में आपके लेख देखने तथा पढ़ने को मिलते हैं। कई वर्षों से मित्रों के साथ उन लेखों को पढ़कर आनन्द का अनुभव करता आ रहा हूं और हमारे जैसे लाखों लोगों ने इन लेखों से लाभ उठाकर परम कल्याण के

मार्ग का अनुसरण किया है। आप बुरा न मानें, यदि मैं कहूं कि आपने भगवान का दर्शन किया है। यदि मेरा अनुमान सही है, तो कृपया संक्षेप में वह बतलाइये कि भगवान का स्वरूप और लक्षण क्या है और उससे आपको क्या लाभ मिला है।

प्रश्न—३—आज से ३० वर्ष पहले १२ हजार की जनसंख्या की सार्वजनिक सभा आपने आत्मदर्शन के विषय में श्रेष्ठतम भाषण दिया था। उस समय आपने अनेक दृष्टान्तों में एक दृष्टांत कबीर का भी दिया था। उस दृष्टान्त के सार का स्मरण मुझे २८ वर्ष तक रहा, किन्तु खेद की बात है कि मैं उसे भूल गया हूं, इसलिये पुनः मैं आपके मुखारविन्द या लेख से सुनना या पढ़ना चाहता हूं वर्तमान समय में मैं शिमला में हूँ, इसलिए आपके सत्संग का लाभ उठा नहीं सकूंगा। कृपया 'रामतीर्थ' मासिक में इस विषय पर प्रकाश डालें।

उत्तर—१— हिंसा, जुआ, वेश्यागमन, झूठ तथा छल छद्म का आधार लेकर दूसरों को फँसाना, धन का अपव्यय; तमो गुणी आहार का सेवन, बीभत्स साहित्य पढ़ना, अपवित्र स्थान में निवास करना, समाज तथा स्वयं के लिए अहितकारी और अधर्ममूलक कार्यों को निन्दनीय कार्य माना जाता है और इनके विपरीत सभी कार्य प्रशंसनीय माने जाते हैं-जैसे हिंसा के स्थान पर अहिंसा।

उत्तर—२— बचपन से ही मेरे जीवन की प्रवृत्ति योग वेदान्त, भक्ति तथा कर्मयोग की रही और वही अब भी

यथावत् चल रही है। इसमें कभी विच्छिन्नता नहीं आई आप तो अनेक उपाधियों (डिग्रियों) से अलंकृत कुशाग्र तथा बुद्धिवादी हैं। आज से १० वर्ष पहले इसी आशय का आपका पत्र आया था। उस पत्र में आपने मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और उस पत्र में व्यक्तिगत रूपसे आप को उत्तर दिया गया था। इस बार 'रामतीर्थ' मासिक का उल्लेख करके आपने प्रश्न भेजा है। आप तो वेदान्ताचार्य हैं। प्रथम तो भगवान के स्वरूप और लक्षण को जानना आवश्यक हैं। मन्दिर, मसजिद, मठ, आश्रम, चर्च (गिरजाघर) में भगवान का दर्शन, उपासना आदि करने की प्रथा है। जब तक भगवानके स्वरूप, लक्षण के संबन्ध में अज्ञान था तब तक मठ-मन्दिरों और तीर्थस्थानों में भटकता फिरा। किन्तु आज जबकि वेदान्त शास्त्र प्रतिपादित 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः-' अर्थात् बलहीन व्यक्ति आत्मा को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता—के वास्तविक तात्पर्य को अब मैं भली भांति हृदयंगम कर चुका हूं इसके अतिरिक्त पतंजलि ऋषि के अमोघ उपदेशात्मक वाक्य-तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्-समाधि पाद-३-अर्थात् प्रथम 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' के अभ्यास द्वारा अपने स्वरूप में अवस्थित होना चाहिए। यही उपर्युक्त सूत्र का अर्थ तथा भाव स्पष्ट प्रतिबिंबित हो उठता है। वह यह है कि बहिर्मुख चित्त की वृत्तियों को अन्तर्मुखी बना कर जब उनका तिरोधान किया जायेगा, तब उसे योग कहा जायेगा। जब ज्ञाता में ज्ञान और ज्ञेय दोनों का समावेश हो जायेगा और तभी साधक एक असंग चैतन्य में स्थित होता है।

आपका प्रश्न उच्च कोटि का है। चारों वेदों में चार महावाक्यों का उल्लेख किया गया है:—

प्रज्ञानं ब्रह्म—ऋग्वेद
अहं ब्रह्मास्मि—यजुर्वेद
तत्त्वमसि—सामवेद
अयं आत्मा ब्रह्म—अथर्ववेद

उपर्युक्त चारों महावाक्यों के तथ्यांशों के सादृश्य उनकी एकता को देखकर मानव की जिज्ञासा का समाधान होता है। द्वैत विचार से ही खोजने या जानने के लियें प्रवृत्त होते हैं, किन्तु जहां अद्वैत भाव होता है वहां खोजने या जानने का प्रश्न नहीं रहता। जैसे मिश्री का स्वाद स्वयं सिद्ध मधुर है यदि मधुरता के अस्तित्व से मिश्री के अस्तित्व को प्रथक करने पर वह मिश्री नहीं कहलायेगी, उसी तरह यदि मैं कहूं कि मैंने भगवान् का दर्शन किया है, यह मेरी अज्ञता या मूर्खता का ही परिचायक होगा। यदि मैं यह कहूं कि मैंने भगवद्दर्शन नहीं किया, तो भी आत्मा परमात्मा के तादात्म्य की हमारी अनुभूति यथावत् बनी रहेगी, हमारी उस सत् चित् आनन्दमयी स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। क्योंकि “यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह” वाणी और मन जिसे पा नहीं सके, जिसकी खोज में असफल हो गये हैं, उस परम ज्ञान का वर्णन करने में अन्तःकरण समर्थ नहीं। वह स्वयं सिद्ध अनुभूति है। यह अवर्णनीय है। इसका

वर्णन परा, पश्यन्ती, वैखरी आदि वाणी तथा लेखों द्वारा संभव नहीं। यह स्वयं अनुभूत योग है, अभ्यास और वैराग्य इसमें उत्तम हाथ बटाते हैं और सच्चिदानन्द के साथ साधक एकता की अनुभूति करता है। संसार के व्यवहारों में भी अपनी सच्चिदानन्दमयी भूमिका को भी वह अपने स्वभाव में ढाल देता है, फलतः उसके दैनिक जीवन क्रम में कभी व्यति क्रम नहीं होता। जहां दो अथवा अनेक वस्तुओं का अस्तित्व होगा, वहीं देखने या दर्शन करने की रुचि होगी। जिनके ज्ञान-चक्षु खुल गये हैं, जो अपने चर्मचक्षुओं से परे पहुच गये हैं। 'यत्र-यत्र मनो याति, सर्वत्र ब्रह्म दर्शनः" जहां-जहां मन पहुंचता है सर्वत्र-सभी स्थानों पर सभी स्थितियों में वह ब्रह्म के दर्शन या ब्रह्मानन्द की स्थिति में सुशोभित होता है। साधक के जीवन की गति इसी प्रकार निरंतर चलती रहती है। सांख्य योग के कथनानुसार—

ज्ञानं नैवात्मनो धर्मो, न गुणो वा कथंचित,
ज्ञानस्वरूप एवाऽऽत्मानित्यः सर्वगतः शिवः

अर्थात् आत्मा (शुद्ध चेतन) धर्म या गुण 'ज्ञान' नहीं है, अपितु वह सर्वव्यापक, शिव (कल्याण) स्वरूप ही है जब तक आत्मज्ञान के संबन्ध में अज्ञान रहता है, तब तक परमात्मा के दर्शन की अभिलाषा बनी रहती है, परन्तु जब जन्म-मृत्यु से रहित सत्-चित् आनन्द स्वरूप का बोध हो जाता है तब दर्शन का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। उसे चराचर विश्व में सर्वत्र ब्रह्मानुभूति स्वभावतः

होने लगता है। इस प्रकार जब मानव सर्वत्र ब्रह्मानुभूति करता है, तब उसकी प्रसुप्त आत्मचेतना सजग होकर उभर आती है, जिसका व्यवहार मानव के नित्य के व्यवहार में स्वाभाविक रूप से मूर्तिमान हो उठता है। उसे सर्वत्र सच्चिदानन्द के दर्शन होते हैं। निर्बल और दुखी लोग आत्मा-परमात्मा का सुयोग साधन कर भावी जीवन के लिए महान प्रेरणाएं प्राप्त कर सकते हैं और अपनी जीवन यात्रा को स्थिर रखने या और भी आगे बढ़ने के लिए उत्साहित होते हैं। वे प्रमाद, आलस्य, शैथिल्य रोग-विकारों के प्रभाव, निराशापूर्ण भावनाओं से मुक्त रहते हैं। और आनन्दमय तथा प्रकृतिस्थ होश हवास में रहकर साहस पूर्वक अपनी जीवन यात्रा में अग्रसर होते हैं। सरल स्वाभाविक जीवन मानव को ईश्वरानुभूति की ओर प्रेरित करता है और उसे ईश्वर साक्षात्कार की उच्च स्थिति पर पहुंचा देता है। वनस्पतियों की हरियाली, फलों के सौंदर्य, फूलों की सुगन्धि, पक्षियों के कलरव, समुद्र तथा नदियों की उत्तुंग तरंगों, बालकों के मधुर क्रीड़ा कलहास तथा कणकण में ब्रह्मदर्शन कर वह परम तृप्ति में डूब जाता है जीवन रस में मग्न हो उठता है। उसके विचार उन्नत और दिव्य होते हैं और वह शुद्ध-बुद्ध, निर्दोष तथा आनन्द-आरोग्यमय ईश्वर की महिमा का गान करता है। वह कहता है:- जिसमें से चेतन सृष्टि व्यक्त हो रही है, उद्भूत हो रही है, जिसमें स्थित है क्रीड़ा कर रही है और अन्त में जिसमें विलीन

हो जाती है, उस सत्य-ज्ञान की अनुभूति में मैं तन्मय हो हो जाता हूं। जो ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय है, जो दर्शक (देखने वाला), दर्शन (देखने वाला), और दृश्यमान वस्तु तथा कर्त्ता, कारण और क्रिया का उद्भावक है, उस ज्ञानस्वरूप के साथ योगयुक्त होकर मैं सुख-दुख से परे निर्विकार स्थिति पर पहुंच जाता हूं। वहां आशा निराशा के द्वन्द्वों की पहुंच नहीं हो सकती, विचार और भावनाएं तिरोहित हो जाती हैं और सत्य ज्ञान की अन्तः ज्योति जगमगा उठती हैं। साधक की यह अन्तश्चेतना उसके व्यवहारिक जीवन में भी निरन्तर प्रकट होती रहती है, जिसे देखा जा सकता है, समझा जा सकता है, किन्तु जिसका वर्णन करना—जिसे बताना संभव नहीं। "किमि कहि सकै मूक जिमि स्वादू"-जैसे मूक (गूंगे) के पास वाणी नहीं वह जैसे वस्तु के स्वाद का अनुभव कर सकता है, परन्तु बता नहीं सकता। यही वह परम स्थिति है।

उत्तर—३-एक बार कबीर साहब के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि जो निरन्तर निराकार ब्रह्म का प्रचार कर रहा है, उसके नाम का अर्थ भला कौन सा हो सकता है। कबीरदास के प्रति विशुद्ध प्रेम रखने वाले आप जैसे उनके किसी शिष्य ने उनसे पूछा—ज्ञानस्वरूप गुरुजी आपका नाम 'कबीर' क्यों रखा गया? आप कबीर शब्द का अर्थ समझाइयें।

कबीर साहब ने उत्तर दिया कि हे मुमुक्षु और परम तत्त्व की जिज्ञासा रखनेवाले शिष्य सुनो। कबीर शब्द में

तीन अक्षर हैं—'क' 'बी' और 'र'। 'क' का अर्थ है कक्का केवल ब्रह्म है 'ब' का अर्थ है बच्चा बीज शरीर और 'र' ररी सब में (खेचर, भूचर, चराचर में) रम रहा है। उसी का नाम कबीर है। मेरे इस शरीर का नाम कबीर मत समझो। यह शरीर किस क्षण परिवर्तित हो जायेगा, उसके नाम-रूप का लोप हो जायेगा, इसका तो भरोसा नहीं, किन्तु जो अगाध है, अगम्य है, अवर्णनीय-अकथनीय, जगद्वन्द्य निराकार-परब्रह्म है, वह यथावत् अक्षुण्ण रहेगा—स्थित रहेगा। सत्य वस्तु का ज्ञान होने तक आधार लेना पड़ता है। कबीर किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है। जैसे मेरे इस चैतन्य स्वरूप परब्रह्म का अस्तित्व विद्यमान है, वही स्थिति तुम्हारे शरीर की भी है। परन्तु हे बुद्धिमान् तथा गुणग्राही एवं सद्-गुण-सम्पन्न शिष्य! तुम्हें अभी उस स्थिति का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है।

युगुलकिशोर मुनीश्वर, कण्डला (कच्छ)

पत्र-२—प्रश्न-१-धर्मशास्त्रों में लिखा हैं और योगी-सन्त भी सनातनसे कहते चले आ रहे हैं कि सर्वत्र परमात्मा विद्यमान है। परमात्मा से अलग कोई वस्तु है नहीं। फिर भी समग्र संसार में इतने दुःख क्यों छा गये हैं ? मनुष्य दुःखों के जाल में क्यों फँसा हुआ है ? स्वामीजी, सार रूप में बतलाइयें।

प्रश्न-२-आप अन्य योगों की तुलना में अष्टांग योग को अधिक महत्त्व क्यों देते हो ? अभी तक आपको लोगों के सम्बन्ध में कौन सा अनुभव प्राप्त हुआ है ?

प्रश्न ३-वर्तमान नागरिक जीवन में चावल और का पर्याप्त अभाव है । ऐसी दशा में जीवन-यापन कि प्रकार किया जाये तथा आरोग्य; बुद्धि और शक्ति को कि तरह सुरक्षित रखा जाये ?

प्रश्न—४—किसी कारण वश जल का अभाव उत् होने पर शरीर को जल-तत्त्व की पूर्ति कैसे कर सकते हैं

उत्तर—१—तामस, राजस और सात्विक—इन तीन गुणों के आधार पर प्रकृति तमोगुण में प्रवेश करती है तब उसकी प्रवृत्ति में विकृति उत्पन्न हो जाती है। य विकृति ही क्रांति, हिंसा और ध्वंस के लिये कारणभू होती है। जब प्रकृति का प्रवेश रजोगुण में होता है, त संतोष और असन्तोषपूर्ण व्यवहार संसार में चलता और जब प्रकृति सात्विक गुण में प्रवेश करती है, त समाधान, और सन्तोष का द्वार खुल जाता है इन तीनों गुणों के प्रभाव में रहकर हम साधारण जन स परिवर्तित होते रहते हैं। परन्तु जो योगी हैं, महात्मा हैं, सत्पुरुष हैं, वे रजो-तमो गुण वश में कर लेते हैं और सात्विक गुण संपन्न होकर जीवन व्यतीत करते हैं प्रत्येक व्यक्ति स्वयमेव अपने लिये सुख-दुखमयी स्थिति का निर्माण करता है । आत्मा-परमात्मा केवल प्रका स्वरूप है; अतः बन्धन मुक्त है। लोकरूढ़ि, व्यसन, की क्षणिक वैभव बढ़ाने का जब प्रयत्न प्रारम्भ होता है तभी से रजो, तमो गुण का प्रादुर्भाव होने लगता है। त्याग, वैराग्य, योगाभ्यास, और सब में परमात्मा के दर्शन

किया जाये और जिस समय जो भी उपलब्ध हो, उसी में सन्तोष-समाधान से रहा जाये, तो संसार में सर्वत्र सुख छा जायें। किसी प्रकार का झगड़ा, झंझट, युद्ध और क्लेश का लेश भी न रह जायें।

प्रश्न—२—हमारे दृष्टिकोण से कर्मयोग, मंत्रयोग, भक्ति-योग, वेदान्त (राजयोग), अष्टांग योग (हठयोग) आदि अनेक प्रकार के योगों के बारे में समन्वय मान, समन्वय दृष्टि, समन्वय विचार है। क्योंकि जो व्यक्ति श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ है और जिसने यत्र यत्र मनो याति तत्र-तत्र ब्रह्म दर्शनः, की भावना से स्वयं को ओत प्रोत बना रखा है, वह निन्दास्तुति से परे रहता है। उत्पत्ति स्थिति और लय केवल रज्जु में सर्प के सदृश अज्ञान अवस्था में कल्पित रूप में भासमान होती है। अष्टांग योग के सम्बन्ध में विवेक पूर्वक विशद रूप से समझाने का प्रयास नहीं किया जाता, इसी लियें सर्वसाधारण के मनमें अष्टांग योग (हठ योग) के विषय में कुछ शंकाएं हैं, जिसे दूर करना हमारा धर्म है। हठ योग द्वारा स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर (मन) कारण शरीर (यह निद्रावस्था में काम करता है) तथा महा-कारण शरीर (जो दिव्य जीवन और महान् शक्ति का स्रोत प्राप्त करने के लियें आधार भूत तत्त्व) को बलवान् तेजस्वी और ओजस्वी बनाकरके आत्मज्ञान (अपने मूल स्वरूप का ज्ञान) प्राप्त कर सकते हैं। कर्म, उपासना और ज्ञान—यह तीन प्रकार के साधन हठ योग में हैं।

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, त स्थूल तथा सूक्ष्म कर्म हैं। मूर्छा प्राणायाम, महामुद्र शक्ति चालक मुद्रा, तथा प्रत्याहार की गणना उपास के अन्तर्गत है। धारणा, ध्यान, समाधि ज्ञानमार्ग है यह साधना त्यागी तथा संसारी दोनों के लिये है।

उत्तर—३ – बौद्धिक परिश्रम करनेवालों को अल परिमाण में आहार लेना चाहिये, किन्तु जो लोग शारीरिक श्रम करते हैं और जिनके शरीर से पसीना निकलता है उन्हें पर्याप्त आहार लेना चाहिये। जिस प्रदेश की हवा सूखी होती है वहां के निवासियों की शक्ति अधिक जीर्ण होती है और जो लोग सरोवर-तट, समुद्रतट, पेड़ पौधों से भरपूर सघन जंगलों के आस पास अथवा विशाल नदियों के तट क्षेत्रों में निवास करते हैं, वहां की हवा आर्द्र (जल मिश्रित) होने से वे लोग मन्दाग्नि से पीड़ित रहते हैं, उन्हें क्षुधा कम लगती है प्राकृतिक प्रभाव से उनकी भूख मन्द पड़ जाती है खुल कर नहीं लगती। परन्तु स्वाद, आदत तथा सामाजिक रूढ़ि के वशीभूत होकर सूखी हवा में रहनेवाले लोग तीन हिस्सा आहार (पाचन शक्ति, आयु और परिश्रम की तुलना में) अधिक लेते हैं और आर्द्र हवा के क्षेत्र में रहने वाले तिगुना अथवा कम से कम एक अथवा दो हिस्सा आहार अवश्य ही लेते हैं। आहार अधिक लेने से शक्ति, बुद्धि, आरोग्य और आयु की वृद्धि कदापि संभव नहीं, बल्कि वे क्षीणप्रायः होती जाती हैं। प्रमाण:

बद्ध (भोजन के समय डकारें आते ही और पेट में भारीपन महसूस होने से पहले ही स्वाभाविक रुचि में परिवर्तन होते ही पूर्णाहार मान लेना चाहिये) आहार ग्रहण करना चाहिये। मांस मछली और अण्डों की तुलना में कन्द, मूल, शाक-सब्जी, फलादि में आरोग्यवर्धक तत्त्व अधिक हैं। वे वानस्पतिक पदार्थ सप्त धातुओं को शुद्ध कर शारीरिक और मानसिक शक्ति को बढ़ाते हैं। नव प्रकार के धान्यों जैसे कुलथी, रागी, चौलाई, चना, उड़द, तूर, मूंग, मटर (वटाणा) आदि से शारीरिक बल में अधिक वृद्धि होती है। जीर्ण या खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त होती है। मल-विसर्जन सुचारु रूप से होता है। नींद गहरी आती है। बुद्धि बढ़ती है। इन्द्रियों की शक्ति में पर्याप्त वृद्धि होती है। मांसाहारी लोग मांसाहार को त्यागकर केवल तीनमास तक शाकाहार का प्रयोग कर इसके गुणों से परिचित हो सकते हैं।

योग और क्षुधा

आसन, प्राणायाम और मुद्राओं के अभ्यासियों की क्षुधा न तो बढ़ती है और न घटती है; बल्कि उचित और संतुलित रहती है। सेवन किये गये अन्न से अधिक मात्रा में जीवन तत्त्व (विटामिन्स) प्राप्त कर उन्हें सारे शरीर में पहुंचाने की शक्ति बढ़ती है। योगाभ्यासियों का आहार अधिक नहीं होता है। अल्पाहार में ही अधिक जीवनी शक्ति प्रदान कर सभी इन्द्रियों को

पहुंचाने की शक्ति योगाभ्यास में है। अल्पाहार ग्रहण करके भी योगाभ्यासी बलवान्, दीर्घायु, तेजस्वी, वृद्धावस्था में जवानी की शक्ति से सम्पन्न रोगरहित और सात्विक गुणों से भरपूर रहते हैं। शास्त्रों का कहना है कि एकबार भोजन करनेवाले योगी, दो बार भोजन करनेवाले भोगी और तीनबार भोजन करने वाले सदा रोगी रहेंगे। हठयोग में महान सिद्धि भरी हुई है। 'ह' सूर्य और 'ठ' चन्द्र की शक्ति को प्राणायाम द्वारा शरीर में प्रवेश कराना हठयोग है। सूर्य का तत्त्व उष्णता प्रधान और चन्द्रमा का मूलतत्व शीतल है। शरीर का समशीतोष्ण रहना आवश्यक है। प्राणायाम के माध्यम से सूर्य चन्द्र में निहित महान शक्तियां शरीर में प्रवेश करतीं हैं। जिस घर में सूर्य चन्द्र का प्रवेश नहीं होता, वहां वैद्य-डाक्टरों का प्रवेश होगा अर्थात् उस घर के लोग रोगी रहेंगे।

शीत्करी प्राणायाम और क्षुधा-संयम

पद्मासन अथवा सुखासन पर बैठकर दोनों नासारन्ध्रों को उंगलियों से बन्द रखें। जिह्वा (जीभ) को कौवे की चोंच के समान गोलाकार बना रखें, शनैः शनैः जिह्वा द्वारा पूरक करें। फिर यथा शक्ति कुंभक करने के बाद दोनों नासिका रन्ध्रों से रेचक करें। यह एक प्राणायाम हुआ। ४ मात्रा तक पूरक, १६ मात्रा तक कुंभक और ८ मात्रा तक रेचक करना चाहिए। प्राणायाम के आरम्भ

से अन्त तक मूलबन्ध, कुंभक के समय जालन्धर बन्ध करना चाहिए। प्रतिदिन प्रातः काल १२ और सायंकाल १२ प्राणायाम करने चाहिएं। किसी कारणवश अनावृष्टि अति वृष्टि से जब दुष्काल पड़ जायें और फलतः आहार का अभाव उत्पन्न हो जायें, उस समय शीत्करी प्राणायाम के अभ्यास का प्रभाव यह होगा कि अत्यन्त अल्पाहार से भी शक्ति सम्पन्न रहा जा सकेगा। जड़ आहार अत्यल्प हो अथवा कई दिनों तक उसकी उपलब्धि न हो, तो भी जल तथा हवा के बल से योगाभ्यासी लोग अपने शरीर के उचित पोषणतत्त्व खींच सकेंगे। उद्भिज योनि में उत्पन्न अनेक प्रकार की वनस्पतियां केवल हवासे सूक्ष्म तत्त्व ग्रहण कर फूलती-फलती हैं—जैसे कुमारी वनस्पति। अनेक प्रकार के रोग निवारण के लिए कुमारी वनस्पति का उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है, जो कुमार्यासव आदि नामों से प्रचलित है। इसी प्रकार शीत्करी प्राणायाम के समय योगाभ्यासी वायु-मंडल में व्याप्त प्राणशक्ति के सूक्ष्म तत्त्वों को ग्रहण करता है।

शीतली प्राणायाम द्वारा तृषा का निवारण

सुखासन में बैठ जाइयें। नासिका के दोनों छिद्र बन्द रखें। जीभ के अग्रभाग को दांतों के पीछे रखें। होठों को संकुचित (सिकुड़ा हुआ) रखते हुए दोनों होठों के मध्य भाग से शनैः-शनैः पूरक करें-अर्थात् दोनों होठों के मध्य-भाग के छिद्र द्वारा रेचक करें। अन्य सभी

विधियां शीत्करी प्राणायाम के समान हैं। शीतली प्राणायाम के साधन से तृषा का प्रशमन होता है और शरीर में शीतलता का संचार होगा। इस प्राणायाम के समय वायु मंडल में निहित आर्द्रता (सूक्ष्म जलतत्व) को ग्रहण कर सारे शरीर में पहुंचता है। फलतः तृषा का अनुभव नहीं होता। सैकड़ों ग्रंथियों का संगठन कर जिह्वा निर्माण हुआ है। प्राणायाम के माध्यम से यह ग्रन्थियां वायु में व्याप्त जल तत्त्व को ग्रहण करतीं हैं और शरीर के अंदर क्रियाशील प्रत्येक स्थूल-सूक्ष्म ग्रन्थि को पहुंचाती हैं। फलस्वरूप योगाभ्यासी को तृषा कम लगती है और जल का अभाव होने पर भी वे कई दिनों तक शक्ति सम्पन्न रह सकते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि से अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। यही योगाभ्यास या महत्त्व है।

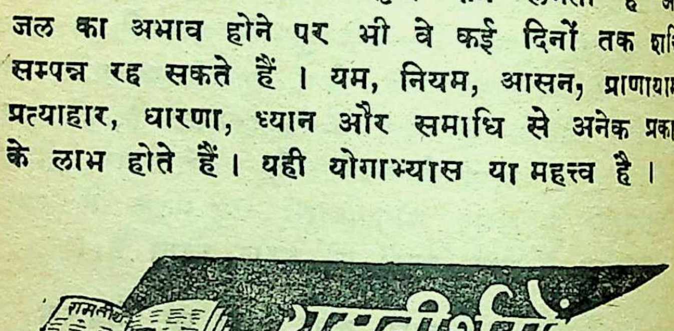

(कहानी)

मछेरन राजकुमारी

लेखिका—शोभा कमलापुरकर

दिल्ली की मछली मण्डी में मछेरे अपने अपने बोझों की बोलियां बोल रहे थे। ठेकेदार खुश था कि बाहर का माल न आने के कारण नगर में वस्तुओं के भाव चढ़ गये थे। इस अवस्था को अभी चार ही दिन हुए थे कि छः सात आने सेर बिकने वाली मछली रुपये या चौदह आने सेर बिकने लगी थी। पैकार सीधे मुंह बात तक नहीं करते थे। वे अपने माल को सोना चांदी समझ रहे थे। अपने माल के मुह मांगे दाम मांग रहे थे और जरूरतमन्द मुह मांगे दाम दे रहे थे। माल का बड़ा भाग बिक चुका था छनाद्न रुपया बरस गया तो एक कोने में से एक स्त्री आगे बढ़ी जिसकी गोद में बच्चा था और जिसके पास तीन मछलियां थीं। उसके सर पर एक मैली कुचैली चादर पड़ी हुई थी। उसके हाव-भाव बता रहे थे कि वह पर्दा करती है और इस समय भी अपना मुह छिपाने का प्रयत्न कर रही है।

ठेकेदार ने कहा "अरी बता तू इन मछलियों का क्या लेगी ?" उस स्त्री ने कहा "जिस तरह औरों की मछलियों का मोल कर लिया है इन मछलियों का भी मोल कर लीजिए। यह उत्तर उस स्त्री ने रुक-रुक कर, धीरे-धीरे बोलते हुए और शर्माते लजाते हुए दिया। ऐसा ज्ञात

हो रहा था कि उसे बड़ा कष्ट है और बाजार में आ
कुछ माल बेचने का यह उसका प्रथम अवसर है। ठेके
ने कहा "अव्वल तो तेरी दो मछलियां जो कुछ यहीं
"मोह" हैं यानी निरी कांटों की पोट, उनका ग्राहक
कौन होगा और दूसरे ये बकसी हुई भी हैं शायद पर
की पकड़ी हुई होंगी।" ठेकेदार का यह उत्तर सुनकर
पैकारों ने उन मछलियों के देखने के लिए हाथ बढ़ाये
किन्तु ठेकेदार ने उन्हें डांट दिया। कहा, "सुबह से इतना
माल बिका है और अभी पेट नहीं भरा।" उस स्त्री ने
कोई तर्क नहीं किया। केवल इतना ही कहा "जो कुछ
हैं सो यही हैं।" ठेकेदार ने त्योरियों पर बल डालकर
कहा "जा इधर बैठ जा। ये माल खत्म हो जाय तो तुझसे
बात करूं।" दूसरे पैकार देख रहे थे कि अच्छी-खासी तो
मछलियां हैं। दो ढाई रुपये से कम की क्या होंगी
लेकिन यह बेइमान और लालची ठेकेदार थोड़े से
पैसे देकर इस गरीब को टरका देगा। किन्तु कुछ कह
नहीं सकते थे क्योंकि बाजार में तो ठेकेदार की बात
ही चलती थी। उससे लोग डरते भी थे। जैसा दूसरे
पैकारों ने सोचा था वैसा ही हुआ। जब भीड़ कम हो
गयी और बाजार में बहुत ही कम ग्राहक रह गये तो
ठेकेदार ने उस स्त्री की ओर देखते हुयें कहा "ले ये
चार आने ले जा। इनका ग्राहक ही कौन होगा। कांटे ही
कांटे तो हैं। उस स्त्री ने इस समय साहस बटोर कर
कहा। "इससे आधी आधी मछली तो डेढ़ रुपये में
बिकी हैं और मेरी मछलियां कुल चार आने की हैं।

यह कीमत तो बहुत कम है ।" अब ठेकेदार ने जरा और अधिक रोब और गुस्से से कहा "बक बक मत कर । मुफ्त की चौवन्नी दे रहा हूं । बाहर निकल कर तो देख कोई चार पैसे भी नहीं देगा । मैं तो रहम खाकर इस बच्चे के लियें दे रहा हूं । चल बाहर जा ।" "मैं नहीं बेचतीं । मेरा माल वापस कर दीदिये" । उस स्त्री ने कहा । अब बाजार के सभी आदमी जा चुके थे सिर्फ गिनतीं के ही दो चार आदमी थे । ठेकेदार ने आगे बढ़कर नैस से कहा "जा यहां से दूर भाग । एक तो मैं तेरे साथ नेकी कर रहा हूं और तू उसका यह बदला दे रही है ।" स्त्री ने फिर नम्रता पूर्वक कहा "मेरा माल वापस कर दीजियें । मैं नहीं बेचती ।" ठेकेदार "चल चल बाहर चल । माल दे दो की बच्ची । मुफ्त की पावली मिल रही है और क्या यह मकान लेगी ।" "स्त्री मेरा माल वापस कर दीजिये ।" ठेकेदार "और बाजार में बैठने का और मछलियां रखकर बेचने की दस्तूरी कौन देगा ? लाचार पैसे और माल लेजा ।" उस गरीब के पास चार पैसे क्या एक पैसा भी नहीं था । कहा "अच्छा तो मुझे आपकी चौअन्नी भी नहीं चाहियें । खुदा के यहां ले लूंगी । इतना कहकर चलने लगी । ठेकेदार ने कहा "चल चल दूर हो । खुदा के यहां ही ले लेना ।" वह रोती हुई वहां से चल दी और मछलियां भी छोड़ दीं । सल्लो पैकार ये सब बातें देर से देख रहा था । उसे ठेकेदार पर बड़ा गुस्सा आ रहा था । वह भी उस स्त्री के पीछे-पीछे गया और अवसर

पाकर पूछा "ये नेक वख्त तू कौन है ? स्त्री
उत्तर दिया।

"मैं सुल्तान की बीबी हूं। वह आज दो हफ्ते से मोती झरे में पड़ा हुआ है। अब उससे दो कदम चलना भी मुश्किल है। मैं उसके लिये तीन आने रोज का नुस्खा कहां से लाऊँ। दो बच्चे और एक मैं हूं। सरकार से सिर्फ चार रुपया महीने वजीफे का मिलता है। बाकी यह मछली का सहारा था। दस-बारह रुपया महीना वह मछलियां कमा लेता था। परसों जब दवा के लिये एक पैसा भी न रहा तो मैं खुद डोर और कांटा लेकर दरिया पर चली गयी। कुछ मछलियां हाथ आ गयीं तो मैं समझी कि चलो आठ-दस दिन की दवाई के लिये दाम हो जायेंगे। मगर तकदीर ने यह गुल खिलाया।" अब सल्लो मियां आश्चर्य के स्वर में बोले "अरी तू भाई सुल्तान की नेक बीबी है। वह जो शहजादा है और काजी हौज के पास रहता है।"

स्त्री ने सर झुका कर कहा जी हां।

सल्लो—ले तू मुझ से ये तीन आने के पैसे ले जा और उस गरीब की दवाई लेती जा।

स्त्री—नहीं मेहरबान ! पैसे आप रखिये। खुदा के कलाम से जो कुछ मेरे साथ हुआ वह ठीक ही हुआ। मैंने जैसे किया उसका फल मुझे मिल गया। इतना कह

कर उस स्त्री ने एक ठंडी सांस ली और फिर कहने लगी मेरी उम्र कोई दस वर्ष की होगी। एक मछेरिन दो टोकरों में मछलियां लेकर एक बार किले में आई। वह अपनी मछलियां एक आने सेर बेंच रही थी। मैंने उसकी दो मछलियां छिपा लीं। उसने भी देख लिया था। लेकिन अपनी जुबान से मुझे चोर नहीं कह सकती थी क्योंकि मैं ठहरी शहजादी और वह ठहरी एक गरीब मछेरिन। उसकी हिम्मत ही क्या थी।

बहुत सर पटका बड़ी हाय तोबा मचाई। बड़ी बेगम से शिकायत की गई कि उसकी दो मछलियां किसी ने छिपा ली हैं। साहब आलम तक खबर पहुंची। जांच परताल की गई। मेरा भी बुलावा हुआ। मैंने साफ इन्कार कर दिया। मैंने कहा यह मछेरिन झूठी है या इसे अपनी मछलियों की गिनती ही याद नहीं रही है। अब क्या हो सकता था। बिचारी रोती हुई चली गई। हमने दोनों मछलियां बड़े मजे से खाईं। आज जब ठेकेदार ने मुझे बातें सुनाईं और मेरी मछलियां लेकर मुझे उनकी कीमत भी न दी तो मुझे अपना वह वक्त याद आ गया। भाई यहां तो लेने का देना है। जैसा मैंने किया उसका फल मुझे मिला। खुदा हर एक के साथ इंसाफ करता है। कभी वह मछेरिन मेरे किले से रोती हुई निकली थी तो आज वक्त कि यह मछेरिन ठेकेदार के यहां से रोतीं हुई निकल रही है। भैय्या तुम जाओ यह तो खुदाई इंसाफ है।

योगाभ्यास द्वारा—

रोगों से दूर रहें

ले० योगीराज उमेशचन्द्रजी

प्रथम जमीन पर चित लेट जाना चाहिये। समग्र शरीर को शिथिल (ढीला) कर देना चाहिये। मस्तक के ऊपरी भाग को जमीन पर सीधा रखना चाहिये। आंखें खुली हुई अथवा बन्द रहें और दोनों नासा पुटों से श्वास फेफड़े में भरकर दोनों पैर जमीन से ऊपर उठाने चाहिएं। जमीन से लगभग दो फीट पैर उठाने के बाद दोनों हाथ ऊंचे कर पैर के अंगूठे को पकड़ रखना चाहिये। इस आसन को उर्ध्व हस्त-पादासन कहा जाता है। आरम्भ में आठ दिन तक अँगूठे को पकड़ा जा न सकेगा। आठ दिन के अभ्यास के बाद सरलता से अँगूठों को पकड़ा जा सकेगा। जब तक श्वास को रोका जा सके, तब तक श्वास अंगूठों को पकड़ रखना चाहिए और तत्पश्चात् पैर तथा हाथ जमीन पर उतार देने चाहिए। तदुपरांत दोनों नासा-पुटों द्वारा रोकी हुई श्वास को बाहर निकाल देना चाहिए।

अर्ध मत्स्येन्द्रासन करने की विधि

बायें पैर की एड़ी को दाहिनी जानु के मूल के पास तथा दाहिने पैर के तलुवे को बायें पैर के घुटनों के पास जमीन पर दृढ़ स्थापित कर इसी पैर के घुटने को बायें पार्श्व में रखना चाहिए। बायें हाथ से पैर के अंगूठे को

पकड़ रखना चाहिए। छाती को फूली हुई रखना चाहिए श्वास चालू रखना चाहिए। शिर बायें कंधे की ओर रखना चाहिए। इस प्रकार थोड़ी देर तक बैठने के पश्चात् इसी प्रकार दूसरे पैर से भी करना चाहिए। इस आसन को अर्धमत्स्येन्द्रासन कहते हैं। इस का अच्छी तरह अभ्यास हो जाने के पश्चात् और हाथ-पैर ठीक ठीक मोड़ देने की टेव पड़ जाने के पश्चात् पूर्ण मत्स्येन्द्रासन करना चाहिये, तब तक न करना चाहिए। कदाचित् एक महीने के बाद भी पूर्ण मत्स्येन्द्रासन का अभ्यास न हो सके, तो सदैव अर्धमत्स्येन्द्रासन करने का ही अभ्यास जारी रखना उचित होगा।

भस्त्रिका प्राणायाम (नं० १)

पद्मासन, स्वस्तिकासन अथवा सिद्धासन लगा कर बैठना चाहिए। दाहिने हाथ के अँगूठे द्वारा दाहिने नासा-पुट को दबा रखकर बायें नासा-पुट से दस बार श्वास भीतर खींचना और बाहर फेंकना चाहिए। ग्यारहवीं बार श्वास फेफड़े में भर कर यथाशक्ति कुम्भक करने के पश्चात् दाहिने नासा-पुट की राह श्वास धीरे-धीरे बाहर निकाल देना चाहिए। और तुरन्त ही दाहिने नासा-पुट से दस बार श्वास भीतर खींचना और बाहर फेकना चाहिए। दाहिने नासा-पुट की राह दस बार श्वास खींचते फेंकते समय बायें नासा-पुट को अनामिका तथा कनिष्ठिका उंगलियों से दबा रखना चाहिए। दस बार घर्षण होने के बाद दाहिने नासा-पुट से श्वास भर

लेना चाहिए । और यथाशक्ति कुम्भक करने के बा नासा–पुट की राह श्वास शनैः—शनैः बाहर निकाल देना चाहिए । इस प्रकार बारी-बारी दोनों नासा पुटों से दस-दस बार घर्षण और दो बार अन्तर कुम्भक कर लिया जाता है, तब एक भस्त्रिका प्राणायाम (नं० १) सम्पन्न हुआ माना जाता है । घर्षण करते समय नासा-पुटों में से साधारण आवाज होनी चाहिये ।

पूर्ण पद्मासन

पद्मासन में बैठकर दाहिने हाथ को पीठ के पीछे से ले जाकर दाहिने पैर के अँगूठे को पकड़ लेना चाहिये । कदाचित् पेट बड़ा होने के कारण अंगूठों को पकड़ा जा न सके, तो दोनों हाथ के पंजों को मिलाकर पकड़ रखना चाहिए । तत्पश्चात् श्वास फेफड़ों में यथा शक्ति भरकर मस्तक को जमीन से लगा देना चाहिए जब तक श्वास का अवरोध किया जा सके, तब तक मस्तक को जमीन से लगाये रखना चाहिये और मस्तक को वास्तविक स्थिति में ले आने के पश्चात् धीरे धीरे श्वास को भीतर से बाहर निकाल देना चाहिये । इस प्रकार एकबार करने पर एक पूर्ण पद्मासन सम्पूर्ण हुआ कहा जाता है ।

विपरीत करणी (ऊर्ध्व सर्वांगासन) कैसे करना चाहिये

प्रथम जमीन पर हाथ पैर लम्बे फैला कर चित

लेट जाना चाहियें। तदुपरांत श्वास फेफड़े में भरकर दोनों पैर ऊपर उठाने चाहियें। दोनों हाथों से कमर को पकड़ रखना चाहिये; पैर सीधे उठे रहने चाहियें। पैर ऊपर ले जाने के पश्चात् श्वास यथाशक्ति रोकने के पश्चात् चालू रखना चाहिये। आंख की दृष्टि पैरों के अंगूठों पर स्थिर रखनी चाहियें। दाढ़ी (ठुड्डी) को कण्ठ-कूप में लगा देना चाहिये। मेरुदण्ड कमर और पैर सम-रेखा में रखने चाहिये। इस आसन कोविपरीत करणी या उर्ध्व सर्वांगासन कहा जाता है।

भस्त्रिका प्राणायाम (नं० २)

पद्मासन या सुखासन में बैठकर दाहिने हाथ के अंगूठे द्वारा दाहिने नासा-पुट को दबा रखकर बायें नासा पुट की राह श्वास फेफड़े में भरना चाहियें और तुरंत अनामिका तथा कनिष्ठिका उँगलियों द्वारा बायें नासा-पुट को दबा रखकर दाहिने नासा-पुट की राह श्वास फेफड़े से बाहर निकाल देना चाहिये। इस प्रकार दस बार श्वास भीतर खींचना और बाहर फेंकना चाहिये। (एकबार श्वास को अन्दर खींचकर बाहर निकाल दिया जाता है, तब एक घर्षण सम्पन्न माना जाता है।) ग्यारहवीं बार बायें नासा-पुट की राह श्वास लेकर यथाशक्ति कुम्भक करने के पश्चात् दाहिने नासिका छिद्र की राह धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकाल देना चाहियें और तुरंत ही दाहिने नासा-पुट से पूरक तथा

बायें नासा-पुट से रेचक करना चाहिये। इस प्रकार दस बार घर्षण करने के पश्चात् तुरंत दाहिने नासा-पुट से पूरक करके यथा शक्ति कुम्भक करने के पश्चात् बायें नासा-पुट में से जब शनैः शनैः रेचक किया जाता है, तब एक भस्त्रिका प्राणायाम (नं० २) सम्पन्न हुआ माना जाता है।

यह प्राणायाम करते समय रोगी को विशेष ध्यान रखने की बात यह है कि घर्षण सामान्य गति से होना चाहिये। ऐसा करने से फेफड़ों को अधिक जोर का आघात (धक्का) नहीं लगता और धीरे-धीरे उनकी मालीश जैसी होती रहती है। फेफड़ों को मजबूत बनाने में यह घर्षण-कार्य अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है। जैसे-जैसे फेफड़े बिशाल और मजबूत बनते जायेंगे, वैसे २ श्वास-रोग की विभीषिका कम होती जायेंगी। इस लेख में आसन तथा प्राणायाम करने की केवल विधि ही बताई गई है। परिमाण और अवधि का दिग्दर्शन दूसरे लेखांक में कराया गया है। प्राणायाम की सम्पूर्ण जानकारी (तीन बन्ध, मात्रा और रेचक पूरक तथा कुम्भक आदि की जानकारी) लेखांक तीसरे में है और जिस लक्षण वाले को जिस उपचार की आवश्यकता है व क्रमबद्ध लेखांक द्वितीय में बताया गया है। इसी प्रकार लेखांक तीसरे और चौथे में क्रमबद्ध यौगिक उपचारों का वर्णन किया गया है।

भारत के प्राचीन आयुध

ले० डा० गोपाल प्रसाद 'वंशी'

ऋग्वेद में आयुधों का स्थान-स्थान पर वर्णन मिलता है—"स्थिरांवः संत्वायुधा परान्दे वीलू उत प्रतिस्कम।" उस समय ऋषि यज्ञ रक्षार्थ आयुध रखते थे।—"ऋषि आम स्वायुधाम" —वैदिक समय में सूर्मी, पं.पृ और धनु, आदि कई आयुध काम में आते थे।

सूर्मी ऐसा आयुध था, जिसके एक बार चलाने से ही लगभग सौ मनुष्यों की मृत्यु हो सकती थी। नालिक भी आधुनिक बन्दूक के समान एक नालिका वाला हथियार होता था, जिसमें कई प्रकार की चीजें भरकर चलाई जाती थीं। द्रुघण और परशु लगभग एक ही प्रकार की चीजें होतीं थीं, जिसे हम फरसा कहते हैं। चक्र, गदा, मुग्दर और पिनाक आदि की बहुत सी महत्व पूर्ण कथाएं हम अपने धर्म-ग्रंथों में पाते हैं। विष्णु का चक्र, हनुमान की गदा, यमराज का मुग्दर और पाश तथा शिव का पिनाक प्रख्यात हैं। 'असि' के अन्तर्गत खड्ग और तलवार जैसे सभी आयुध आ जाते थे। नाराच ऐसा तीर होता था, जो समूचा लोहे का बना होता था।

तीरों द्वारा शोषण और प्रशमन आदि कार्य किये जाते थे। तीरों द्वारा रणभूमि में आग लगाई जा सकती थी तो दूसरा पक्ष तीरों द्वारा आग को बुझा भी सकता था। एक दूसरी ओर से चलाये गये तीरों का

प्रवाह तीरों से काटा भी जा सकता था। धनुर्विद्या शस्त्र विद्या का प्रमुख अंग थी। यहां तक कि ऋग्वेद में धनुर्वेद नाम का एक पृथक प्रकरण है। गुरुओं के आश्रम में रहकर विद्यार्थी विद्या के साथ साथ शस्त्र विद्या भी ग्रहण करते थे। एकलव्य, अर्जुन, लव और कुश जैसे पराक्रमी बालकों की शस्त्र विद्या सम्बन्धी अनेक कथाएं भारत में बच्चा-बच्चा जानता है।

भारत के अन्य भागों की अपेक्षा राजस्थान में नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों का विशेष तौर पर निर्माण किया गया। उदयपुर, जयपुर, अलवर, सिरोही, बूंदी और जोधपुर में शस्त्रास्त्र बनाने के कारखाने थे और सिकलगीर लोग राज्याश्रय में रहकर अपनी कला का उपयोग करते थे। तलवार, छुरी, कटार, खाण्डा, बल्लम बर्छी, भाला, ढाल, जिरह, बन्दूक, तीर कमान आदि शस्त्रास्त्र राजस्थान में मुख्यतः बनाये जाते थे। बनावट की दृष्टि से इन आयुधों को पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है धार, ओट, चोट, अणी और अवसान। धारवाले आयुधों में किर्च, खड्ग, खांडा जफार तकिया, आरादम, मोतीपुड़ा, ऊना, गिलोटा, दाव, कुकड़ी चप, तेगा, सूर्देट और दमतमाचा आदि तलवार के ही अनेक रूप हैं। ये सभी हथियार प्रहार के काम आते थे।

असि (तलवार) भारत का प्राचीनतम हथियार है। तलवार की उत्पत्ति के विषय में कहा जाता है कि देव

और दैत्यों में एक संग्राम हुआ था, जिसमें दैत्यों ने विजय प्राप्त की थी। देवताओं ने जाकर ब्रह्मा की स्तुति की और कहा कि सुरों को असुरों से बचाइयें। ब्रह्मा ने हिमालय पर एक बलि यज्ञ किया जिसमें तलवार की उत्पत्ति हुई। यही तलवार ब्रह्मा ने शिव को प्रदान की और उन्हों ने इससे असुरों का संहार किया।

अब तलवार के स्वरूपों के विवेचन की ओर दृष्टिपात कीजिए—भारतीय तलवारों के फल नोकदार, ऊपर से किंचित् चौड़े तथा नीचे से पैने होते हैं। पतले और हल्के फलवाली तलवार सुन्दर होती है।

किर्च का फल संकरा और सीधा होता है, दस्ता पहनारदार और सादा भी होता है। खड्ग का फल लम्बाई में कम और चौड़ाई में अधिक होता है।

खांडे का फल भारी और अधिक चौड़ा होता है जो झटके से प्रहार के काम आता है।

'जफर तकिया' का फल छोटा और दस्ता चपटा होता है, जिसे सुरक्षा के लियें तकियें के नीचे लगाकर सोया जा सकता है। 'आरादम' के फल में करौंत की तरह दांत पड़े होते हैं। 'ऊना' का फल संकरा होता है। यह दिल्ली का बना हुआ प्रसिद्ध होता है। 'मोतीपूड़ा' के फल में चिराई होती है, जिसमें मोती फंसे होते हैं। जो तलवार चलाते समय नीचे ऊपर दौड़ते हुये सुन्दर प्रतीत होते हैं। 'दाव' का फल भुजाली और खड्ग की तरह छोटा और नीचे चौड़ा

होता है तथा दस्ते के पास संकरा होता है। नेपाल के गोरखों की कुकड़ी का दस्ता छोटा और फल बांकदार होता है। 'तेगा' के फल में खम विशेष होती है। 'सुर्देट' की धार बिल्कुल सीधी होती है, और 'सुर्देट' में कोड़ी से अनी तक खम होता है। 'दमतमाचा' का फल छोटा होता है।

पहले ही बताया जा चुका है कि ये सब धारवाले हथियार तलवार के ही नाना रूप हैं, जिनमें किंचित मात्र भेदभाव होने से उन्हें भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। इनके फलों के भिन्न-भिन्न घाट हैं, जिन्हें घाट सिरोही, घाट हुसैनी, घाट पूर्वी और घाट पश्चिमी नामों से पुकारा जाता है। इसी प्रकार दस्तों के भी भिन्न भिन्न नाम या शैलियां हैं—आलमगीरी, जोधपुरी किरणशाही, रावशाही, छीकेदार और पनाहदार आदि। यें दस्ते लोहे के या हाथी दांत के बने होते हैं, जिन पर नाना प्रकार के अलंकरण का काम किया होता है। विशेष रूप से सुनहरी तारों की जड़ाई, जिसे "तह निशां कोफा"-कहा जाता है, लोहे के दस्तों पर अधिक मिलता है।

अणी वाले हथियारों में छुरी, कटार, विछुवा; खंजर, पेशकब्ज, शाहपशन्द, कमा, तीर, भाला, बर्छी, बल्लम, और सांग की गिनती है। छुरी का फल सीधा, छोटा और नोकदार किंचित् खमदार होता है। कटार के फल में दोनों तरफ धार होती है तथा दस्ते की जगह दो लोहे

की ताड़ियां होती हैं, जो बीच में भोगली नाम की पकड़ने की चीज से मिलायी जाती हैं। कटार को भोगली के स्थान से मुट्ठी में पकड़ कर भोंक दिया जाता है। जिस छुरी का फल नोक पर बिच्छू के डंक के समान मुड़ा होता है वह बिछुवा कहलाती है।

खंजर में पुश्त नहीं होती और नोक पर खम होता है-धार भी दोनों तरफ होती है। इसका भी फल छुरी जितना ही लम्बा होता है। कमां और छुरी का भेद बहुत सूक्ष्म होता है और पहचानना अति कठिन होता है। पेशकब्ज का फल छुरी कटारादि से दुगुना या तिगुना अधिक लम्बा होता है तथा धार एक ही तरफ होती है। पुश्त पर कणा निकला होता है। और फल में खम नहीं होता। दस्ता सींग, लकड़ी या धातु का होता है। जिसे पकड़कर भोंक दिया जाता है। भाला, बर्छी और बल्लम के फल बहुत छोटे होते हैं, जिनमें विशेष अन्तर एक दूसरे में नहीं होता, भाले का फल चपटा एवं बल्लम का लम्बा और गोल होता है। ये फल सात-आठ फुट लम्बे बांस के दस्ते में लगे होते हैं। जिन्हें दूर से फेंक कर भोंका जाता है और पास से भी।

'सांग' का फल भी भाले जैसा ही होता है। परंतु फल और छड़ दोनों समूचे लोहे के बने और भारी होते हैं इसी लियें निशान पर लगते ही शरीर में आर-पार हो जाता है। बर्छी, बल्लम, भाला और सांग चारों ही प्राचीन आयुध हैं जो धनुष में रख कर चलाये जाते

हैं। इनका फल भी छोटा और कितने ही आश का जैसे तिकोना, चन्द्राकार, दुफला इत्यादि होता है बाण विष में बुझाये हुयें भी होते हैं और उनके द्वा कितने ही प्रकार की मारक क्रिया प्रसिद्ध है।

जागनोल कुदाली के आकार का और वैसा ही हथिया होता है। केवल इसका फल चोंच के आकार का औ तीखा होता है। 'जिरह बख्तर, को अन्य कोई हथियार नहीं काट सकता पर जागनोल इसी काम में आता है क्योंकि इसका तीखा फल जिरह की कड़ियों में घुसकर उसे काट देता है। ओट के अन्दर वे चीजें आ जातीं हैं जिनसे बचाव का काम सुगम होता है। जैसे ढाल, जिरह, कोटा टोप, चहलता, दस्ताना आदि।

ढाल—यह गैंड़े, कछुए, भैंस या मगर की खाल या फौलाद की होती है जिस पर शस्त्रास्त्रों का प्रहार कोई काम नहीं कर पाता। ढालों को सुन्दर बनाने के लिये उसे कितनी प्रकार की कारीगरियों से अलंकृत किया जाता है। फौलाद की ढालों सुनहरी या रुपहरी कोफ्त के काम से सजाया जाता है या कभी कभी इनमें जवाहिरात की जुड़ाई का प्रयोग किया जाता है। ढालों के पीछे पिस्तौल भी लगाई जाती है। गोली निकलने के लिये ढाल के नीचे सूराख रख दियें जाते हैं। शत्रु नहीं समझ पाता कि ढाल जो बचाव के लिये काम में लाई जा रही है पिस्तौल युक्त है और अचानक उससे गोली निकल कर शत्रु को समाप्त कर देती है।

जिरह—इसे लोहे की कड़ियों से गूथ कर वस्त्र की तरह मुलायम बनाया जाता है जिसे शरीर पर कमीज की तरह पहनने के पश्चात् धार वाले शस्त्रास्त्रों से बचाव होता है। जिरह के साथ पैजामे भी कड़ियों के होते हैं। दस्ताना कोठा और टोप फौलाद या सादे लोहे के होते हैं जो हाथ, छाती और शिर पर पहनने के काम में आते हैं। गैटिस घुटनों पर बांधे जाते हैं। कन्धे पर छोल लगायें जाते हैं, जिससे कन्धों पर प्रहार से बचाव सुगम होता है। टोप ऐसा भी होता है जिसमें सारा चेहरा ढँक जाता है और इसकी एक सूराख से योद्धा बाहर देख सकता है और सांस भी ले सकता है चहलता रुई से भरा हुआ सिलाई किया हुआ लबादा होता है जिसमें सब जगह कीलें जड़ी रहती हैं और छाती और बाजुओं पर लोहे के फलक जड़े रहते हैं जिससे इन हिस्सों का विशेष रूप से बचाव हो जाता है। नीचे जिरह पहन कर ऊपर से चहलता पहना जाता है जिससे जिरह पर कोई असर तुरंत न पहुंच सके। जिरह, कोठा, टोप, चहलता आदि सभी कवच पहनने के पश्चात् मनों वजन योद्धा के शरीर पर लद जाता है। जिरह बख्तर का प्रयोग बन्दूक के आविष्कार के साथ साथ समाप्त हो गया है। चोट वाले आयुधों में मुग्दर, गदा घूंसा, दण्ड और फरसा होता है। मुग्दर गदा इतने साधारण हथियार हैं कि प्रत्येक इनसे परिचित होता है। यह बहुधा सिर पर चोट करने के काम में आते हैं।

घूंसा-हाथ की उंगलियों में पहना जाता है जो लो का होता है और मुट्ठी भर घूंसे कि तरह चोट करने के काम में आता है। यह घूंसा खा लेने के बाद शायद कोई पास आना तो संभव ही नहीं हो सकता।

फरसा-अर्ध चन्द्राकार या कुदाली के आकार की धार वाला हथियार होता है जो लकड़ी के दस्ते में लगा होता है और चोट के काम में आता है। वैसे यह धार वाले आयुधों में गिना जाता है। पर इससे चोट दी जाती है प्रहार द्वारा, इसलिये चोट वाले आयुधों के अन्तर्गत इसकी गणना उपयुक्त हो सकती है।

नागफास—प्राचीन पौराणिक हथियार है जो मोटे लोहे के एक ही तार के तीन गोलों से बना होता है जिनका छोर लोहे के दण्ड में होता हुआ नीचे निकला होता है। नागफांस के बीच के गोले को शत्रु की गर्दन में डाल दिया जाता है। जब वह अपने दोनों हाथ बराबर के दो गोलों में रखकर गर्दन से बीच का गोला निकालने का प्रयत्न करता है कि तुरंत तार के नीचे छोर को खींच लिया जाता है और शत्रु की गर्दन के साथ उसका हाथ भी उन गोलों में फंस जाता है।

बघनखा—बाघ के नखूनों से निर्मित या उसी तरह का लोहे से निर्मित एक हथियार होता है; जिससे जिस्म को चीर दिया जाता है।

मुगल विजेता बहादुर होने के साथ सुरुचिपूर्ण

भी थे, इसलिये उनके समय में शस्त्रास्त्रों को भी कारीगरियों से अलंकृत किया गया । कहीं कहीं तो ये आयुध उपयोग की वस्तु न होकर केवल कारीगरी या सजावट की वस्तु बना दिये जाते थे । काम, जड़ाई आदि कर उसे अमूल्य और सुन्दर बना दिया जाता था । आयुधों के दस्ते कीमती पत्थरों और धातुओं से बनायें जाते थे । इन कलाओं के उत्थान से इस प्रकार के काम करने वाली जातियों के निर्माण हुये जो नित्य अपने कौशल का परिचय देती थीं और पुरस्कृत होती थीं । शाही सिलेहखानों में म्यानगर, सिकलीगर कोफ्तगर कितने ही वर्ग काम करते थे । मुगल सम्राट और उनके सामन्त शस्त्रास्त्र पहचानने की कला में निपुण होते थे ।

बन्दूक और पिस्तौल में सबसे पहला आकार पत्थर कला नाम से चालू हुआ जो पत्थर के टुकडे की रगड़ से आग पैदा कर बारूद के जरिये गोली चलाता था । गोला बारूद की जानकारी के कारण ही मुसलमान भारतीयों पर विजय पा सके ।

पत्थर कला के बाद टोपीदार और कारतूसी बन्दूकों का ईजाद हुआ । अंग्रेजों के आगमन और मशीन युग का प्रारम्भ होते ही ये सभी पुराने हथियार म्यानों में बन्द कर खूंटियों में टांग दिये गयें या अजायब घरों में देखने की वस्तु रह गयें और इन शस्त्रों को धारण कर चलने वाला व्यक्ति कठपुतली के समान हास्य का पात्र बन गया ।

जलपाईगुरी एक्सप्रेस

(पृष्ठ १६ का शेष)

हमारे जवानों कें पास ओढ़ने के लियें कम्बल तक न थे इसीलियें तो हमारे देश के लोगों को चाहिये कि ज्यादा दें।

पर सब मामाशाह नहीं होते और.......और सेना में सारा देश भर्ती नहीं हो सकता समझे ! पुतली की आवाज में रोष था ।

अरे भई लोग शहरों में रहते हैं, वहां सोने तक को स्थान नहीं फिर भी लोग यहां रहने को तैय्यार होते हैं । यशपाल ने बयान दिया ।

देश भर में सभी कुशल लेखकों से हिमालय के बारे में विचार मांगे गयें । इसके बादएक कमेटी बनायी गयी जिसने एक राय कायम की और दिल्ली में सारी योजना को फाइनल टच दिया गया ।......

पाकिस्तान और हिन्द कें बीच में दुपट्टे के जितना प्रदेश हिन्द का हिस्सा है। पाकिस्तान या चीन इस पर कब्जा करने की कोशिश न करें । इसलियें असम में सैन्य व्यवस्था रखी गयी है। और यहीं उसे बसाया गया है । इसलियें इस प्रदेश में कौन रहेगा ।

फ्रान्स देश ने लिबिया में एक फ्रेंच फारेन लीजेन्ड की रचना की इसमें कोई भी मनुष्य कैसे गुनहगार यहां सुख चैन से रह सकता है । लेकिन एक सैनिक की तरह......

आखिर गुनाहगार भी मनुष्य ही है। चोरी, लूटपाट, खून वगैरह वगैरह आवेश में ही होते और संयोग से।

इसीलियें सरकार ने असममें प्रत्येंक मनुष्य को पांच एकड़

जमीन पानी के पास, रहने के लियें छोटे छोटे मकान देकर उनको जीवन की नयी राह दिखायी।

असम की धरती पर नये शहर बसाने का प्रबन्ध किया। इसलियें आज देश के बड़े-बड़े शहरों से कैदी आसाम की ओर भेजे जा रहे हैं। मगर यह बात गुप्त रखी गयी है। ऐसी ट्रेनों पर स्पेशल पहरा रखा जाता है। इसीलिये ही नार्थ इस्ट फ्रंटियर एजेन्सी के रेल्वे गार्डों और रेल्वे मास्टरों ने इसका गुप्त नाम रखा है.......जलपाईगुरी एक्सप्रेस।

जलपाईगुरी एक्सप्रेस......असम में कैदियों को ले जाने वाली गाड़ी। भगवान अगस्त्य की काष्ठ पादुका से दबी हुई धरती दूसरी तरफ फूली है। इसलिये गारो, जयंतिया, पटकोई पर्वत बड़े-बड़े हैं। ब्रह्मपुत्र मस्ती से बहते हुयें आगे बढ़ती है। तिस्ता प्रदेश में लकड़ी के बिना चला नहीं जा सकता। सांप के बच्चों को अलग करने के लियें लकड़ियों की जरूरत होती है। दूर चेरापूंजी, नैनीताल, तैतालिस सौ फुट की ऊँचाई से चार सौ इन्च पानी डालता हैं। मृदंग और मणिपुर नाच......

यह दुनियां....... चाय के बगीचे, बांस के जंगलों में; हिमालय की तराई, नीलगिरी पहाड़ों की और नागकन्या उलूपी की दुनियां।

वह सिलहट जिला पाकिस्तान ने अपने साथ मिला लिया है और अब सिल्चर और गोहाटी के अनाथ मैदानों में कदम जमाने के लियें तहमत पहने बंगाली घुस रहा है। पहाड़ों में नागा लोग फिरते हैं। अमरिकी मिशनरी और पोप के अनुयायी ये बाईबिल शराब......नृत्य और डबल रोटी। इन

चार चीजों से खासी प्रजा का जीवनस्तर बदल रहा है।

किन्तु इन सब बातों से पुतली को क्या मतलब?

एक दिन समाचार आया कि विनोबा नामका एक आदमी पदयात्रा कर रहा है। लूटपाट, डाका, खून..... सब छोड़ दो। बिचारी जनता को आराम से रहने दो। शरण ले लो, तुम्हें क्षमा मिल जायेगी।

डाकू, ठग सब बुड्ढे के साथ हो लिये। पुलिस थाने में उसके साथ आयें। तब उनकी आशाने उनको ठगा। हालांकि किसी को फांसी न मिली किन्तु जेल के मेहमान बन गये। जेलें भर गयीं। तब सरकारने एक योजना बनाथी। हर एक को पांच एकड़ जमीन मिलेगी और आर्थिक सहायता मिलेगी.......दूर आसाम की धरतीं पर नगर बसाने की योजना बनाई गई।

जेल में क्या है? यहां क्या करेंगे? स्वतंत्रता और मुफ्त जिंदगी का सुनहला मौका फिर न मिलेगा? रेलगाड़ी में बैठ जाओ। हररोज आधी रात को हावड़ा स्टेशन पर एक ट्रेन मिलेगी, 'जलपाईगुरी एक्सप्रेस'।

यशपाल, करतार और पुतली गहरे मित्र बन गये थे। सचमुच देखा जाय तो तीनों में से कोई भी गुनहगार न था। पुतली एक डाकू की लड़की थी, यह उस पर इल्जाम था। यशपाल पर झूठा आरोप लगाया गया था कि वह चोर है। कहा जाता है कि करतार ने एक औरत के मामले में छूरी निकाली थी।

जलपाईगुरी एक्सप्रेस एक सप्ताह में कई मनुष्यों को लेकर आती थी। परंतु आज के मुसाफिर युवा अति, सुडौल, गठित शरीर, चेतना से भरपूर और मुख्य चीज थी मुक्त हवा ...स्वतंत्रता ...।

पुतली, यशपाल और करतार ... दोनों की ही तरफ आकर्षण अनुभव कर रही थी। यह केवल जलपाईगुरी एक्सप्रेस का ही परिचय न था। बल्कि जब युवक और युवतीं मिलते हैं तो एक दूसरे के लिए आकर्षण अनुभव करते हैं। तब स्थल और समय यह कामरूप देश की धरतीं पर क्या महत्व रखता है ....।

पांच-पांच एकड़ जमीन बांटी गई। बुलडोजर चलाये गए और धरती सरल बनी। दिये हुए वचन के मुताबिक उन्हें मदद मिली। जीवन सांसें लेने लायक बना। लाल मिट्टी की इस धरती पर जिंदगी लहलहाने लगी। छोटी-छोटी नहरें बहने लगीं। पानी का सुख हो गया। क्योंकि कम नसीब भिखारी के पास की तरह यह विशाल धरतीं अपने में थोड़ा भी जल समा न सकती थी।

लेकिन सिर्फ दो बारिसें ही बीती न थी कि नेफा पर फिर से गड़बड़ी के समाचार आने लगे। क्या तंवाग के पीछे युद्ध करने का समय आ गया? क्या दुश्मन संपूर्ण तैयारी करके आयें हैं?

मेक मोहन रेखा को पारकर हमारे वतन की भूमिपर जहां दो दीवाली भी न बीतीं थी कि आक्रमण हुआ और फिर जाड़े की ऋतु समाप्त हो गई। हिमाचल

प्रदेश का बर्फ पिघल कर बहने लगा । ब्रह्मपुत्र ला शरम छोड़कर वह उठी ।

ऐसे समय पर पुतली पर स्वतंत्रता का पू नशा चढ़ा हुआ था । यशपाल और करतार के साथ वह भी मिलिट्री ट्रेनिंग केम्प में जाती । प्रथम अपचार शस्त्रों को चलाना, खाना परोसना, उनके थैले भरना सीखने लगी । किन्तु दूसरी युवतियां रानी बेला, मैना सब उससे जलतीं क्योंकि पूरे केम्प के पांच सौ आदमियों में दो ही सुन्दर थे, यशपाल और करतार और वे दोनों ही पुतली पर जान छिड़कते थे । दोनों मित्र उसे पाने की कोशिश करते । मगर कभी न झगड़ते ।

पुतली मदमस्त जवानों की हां में हां मिलाती, चैतन्य की मशाल में जो जागृति की ज्योति के लिये खून दे रहे थे । स्वतंत्राता के सामने परतंत्रता अपनी आंखें दिखाती हुई खड़ी है । जर, ज़मीन और जोरुओं के झगड़े कें बाद जबान पर यही आता था कि:— मुझे स्वतंत्रता दो या मृत्यु ।

जवान... ! बोलने और जीवन जीने की स्वतंत्रता 'पुतली'... एक दिन यशपाल ने कहा ।

'क्या ?'

क्यों न हम अपनी इस मुलाकात को जीवन-बंधन में बांध लें ।' पादरी के समक्ष हम शादी कर लेंगे । क्या पता युद्ध में मौत मिले ।

'तुम मुझे भाते हो । तुम मुझे जंचे हो । मेरे प्रेम की मोहर....परन्तु

—क्रमशः

आप सदा कैसे सुखमय रह सकेंगे।

आपके पास धन-दौलत कम हो अथवा अधिक हो, सत्ता बड़ी हो या कीर्ति बड़ी हो किन्तु आपका शरीर तथा मन की सुलभ साध्य एवं त्रासदायक बीमारिओं से व्यस्त जीवन विताते होंगे तो सुख-सम्पत्ति के लाभ से वंचित रहना पड़ेगा। इन स्थूल-सूक्ष्म जटिल व्याधियों से छुटकारा पाने के लिये 'उमेश योगदर्शन' प्रथम खंड अवश्य पढ़िये। अनेक आकर्षक मनोरंजक योगासनों की छबियों से सुसज्जित, हरेक पृष्ठ में महत्त्वनीय इलाजों का जैसे क्रोमोपेथी, हायड्रोपेथी, मालीश, यौगिक थेरेपी, आहार, सायकालोजी आदि का दिग्दर्शन आधुनिक वैज्ञानिक ढंगसे किया गया है। उमेशयोग दर्शन ग्रंथ एक बार पढ़ने से आपके मन में जीवन के सच्चे मूल्य का पता लगेगा। बारम्बार पढ़ने की इच्छा बढ़ती रहेगी अन्त में सारा जीवन अपने पास रखने की इच्छा बढ़ जायेंगी।

भाषाः हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी।

पृष्ठसंख्या ४०० से अधिक। कागज बढ़िया, बाईंडिंग आकर्षक।

कीमत : १५-०० रु. डाकव्यय २-५० रु.

पैसा पहले से भेज सकते हैं अथवा वी. पी. पीः से मंगा सकते हैं।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर, (मध्य रेल्वे) स्टेशन
के पास (पूर्व) स्वामी नारायण मंदिर के पीछे,
बम्बई १४ फोन— 442899

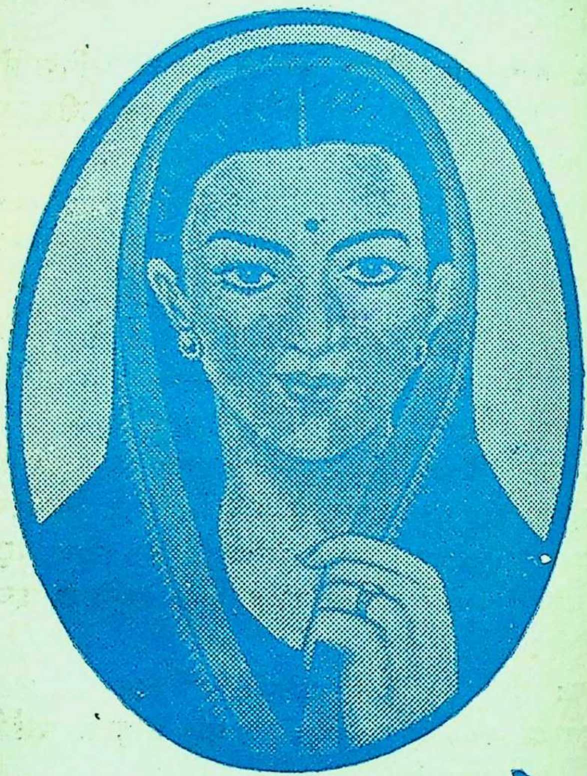

पुरुष ध्यान दें

फिर से देखिये! यह सिर्फ महिलाओं के लिए है। जिस डिब्बे पर महिला का यह चित्र हो, वह सिर्फ महिलाओं का है। जाने-अनजाने किसी भी आदमी को इस में मत बैठने दीजिए। ऐसा करना जुर्म है, आप की भूल से गलत लोगों का हौसला बढ़ेगा। अपने महिला-वर्ग की सुरक्षा में रेलवे का हाथ बटाइए।

पश्चिम रेलवे

RAMTIRTH SEPT. 1966 Regd. No. MH.577

राम तीर्थ

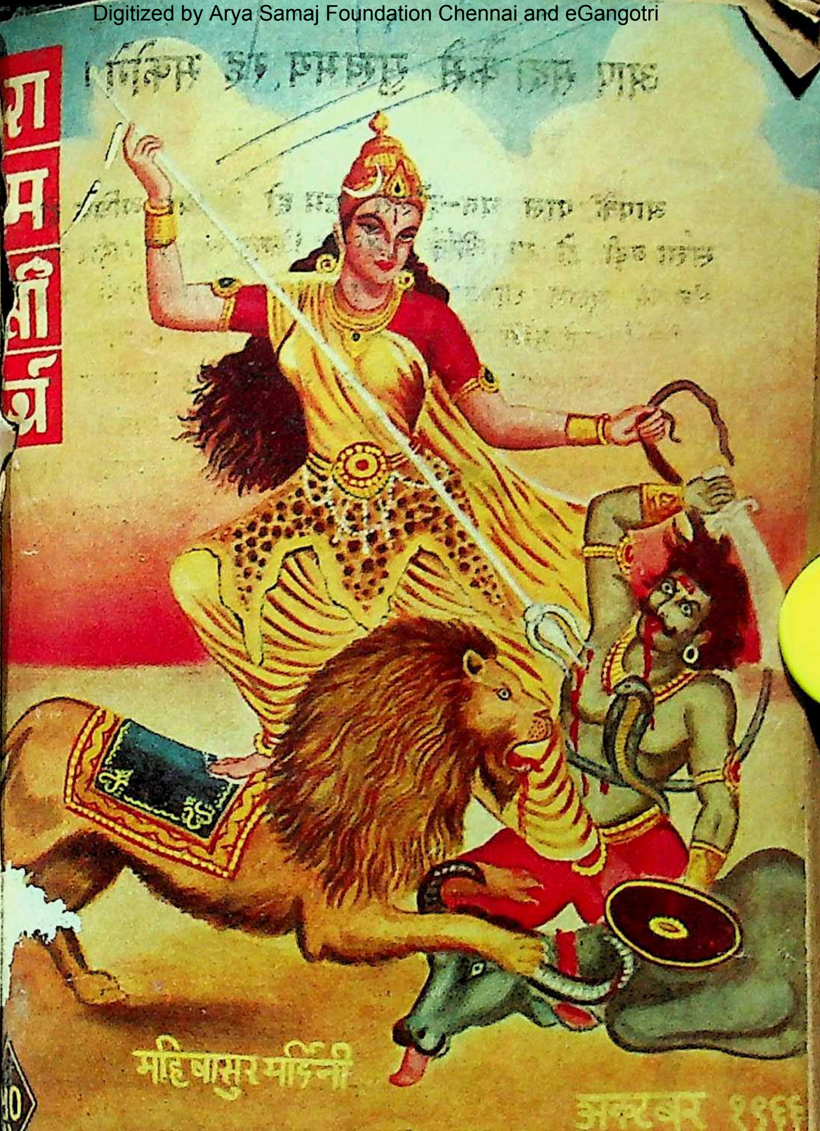

महिषासुर मर्दिनी

अक्टूबर १९६६

RAMTIRTH (HINDI) MONTHLY OCTOBER 1966

श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर, बम्बई-१४ (भारत).

आप सदा कैसे सुखमय रह सकोगे।

आपके पास धन-दौलत कम हो अथवा अधिक हो, सत्ता बड़ी हो या कीर्ति बड़ी हो किन्तु आपका शरीर और मन की सुलभ साध्य एवं त्रासदायक बीमारिओं से व्यस्त जीवन बिताते होंगे तो सुख-सम्पत्ति के लाभ से वंचित रहना पड़ेगा। इन स्थूल-सूक्ष्म जटिल व्याधियों से छुटकारा पाने के लिये 'उमेश योगदर्शन' प्रथम खंड अवश्य पढ़िये। अनेक आकर्षक मनोरंजक योगासनों की छबियों से सुसज्जित, हरेक पृष्ठ में महत्त्वनीय इलाजों का जैसे क्रोमोपेथी, हायड्रोपेथी मालीश, यौगिक थेरेपी, आहार, सायकालोजी आदि का दिग्दर्शन आधुनिक वैज्ञानिक ढंगसे किया गया है। उमेशयोगदर्शन ग्रंथ एक बार पढ़ने से आपके मन में जीवन के सच्चे मूल्य का पता लगेगा। बारम्बार पढ़ने की इच्छा बढ़ती रहेगी अन्त में सारा जीवन अपने पास रखने की इच्छा बढ़ जायेंगी।

भाषाः हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी।

पृष्ठसंख्या ५०० से अधिक। कागज बढ़िया, बाईडिंग आकर्षक।

कीमत : १५-०० रु. डाकव्यय २-५० रु.

पैसा पहले से भेज सकते हैं अथवा वी. पी. पीः से मंगा सकते हैं।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर, (मध्य रेल्वे) स्टेशन
के पास (पूर्व) स्वामी नारायण मंदिर के पीछे,
बम्बई १४ फोन— 442899

(प्रकाशन तिथि १-१०-६६)

मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और
पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

सम्पादक-
योगीराज
उमेशचन्द्र जी

रामतीर्थ

वर्ष-७ अंक- ७
अक्टूबर १९६६

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक 442899
विज्ञापन
तार-प्राणायाम दादर

लेख	लेखक	पृष्ठ
वैदिक प्रार्थना	संकलित	४
विजयादशमी का पावन पर्व	सम्पादकीय	५
वनस्पति संसार	डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'	१७
जीवन ज्योतिक्षीणक-तम्बाकू	कान्ती जैन	२४
जलपाईगुरी एक्सप्रेस (कहानी)	मनसुखलाल जवेरी	३४
विश्व विहार	कालूभाई वसिया	४१
रामचरित मानस	टी· योगीराज उमेशचन्द जी	५२
धर्मोपदेश	स्वामी रामतीर्थ	६५
मैं बाजी हार गया (कहानी)	एम. आर. गुप्त	७९
मातृ देवो भव (नारी जगत्)	राज मोहन मिश्र	८७
मधु प्रमेह का निवारण	योगीराज उमेशचन्द जी	९५

लेख	लेखक	पृष्ठ
स्वानुभव	भजनलाल नन्दकिशोर राय	१०३
अभिमन्यु (कविता)	लक्ष्मीचन्द जैन 'सरोज'	१०
पूज्य गोवंश	म. मं. स्वामी गंगेश्वरानन्द जी	११
पारस की खोज (कहानी)	हरीश 'मधुर'	११
प्रश्नोत्तर	सम्पादकीय कलम से	१२

मुख पृष्ठ का परिचय

महिषमर्दिनी जगदम्बा के दर्शन कीजिए।

रामतीर्थ का दीपावली विशेषांक

सुज्ञ पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि प्रतिवर्ष
भांति इस वर्ष भी राम तीर्थ मासिक का नवम्बर १९६६
अंक दीपावली विशेषांक के रूप में प्रकाशित होगा।
विद्वान लेखकों से साग्रह निवेदन है कि वे तद्विषयक
रचनायें १२ अक्टूबर १९६६ तक भेजने की कृपा करें
विज्ञापन दाताओं को ज्ञात ही है कि रामतीर्थ मासिक
कोने कोने में जहां कहीं भी हिन्दू रहते हैं वहां पहुँचता
और भारत में तो उसकी प्रचुर मांग है अतः रामतीर्थ में
पन देकर अपने व्यवसायकी उन्नति करें। दीपावली
में अपने विज्ञापन देकर अपने व्यवसाय को चार चांद लगायें

—व्यवस्थापक

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४०
रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके लिये विन्सेन्ट
स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

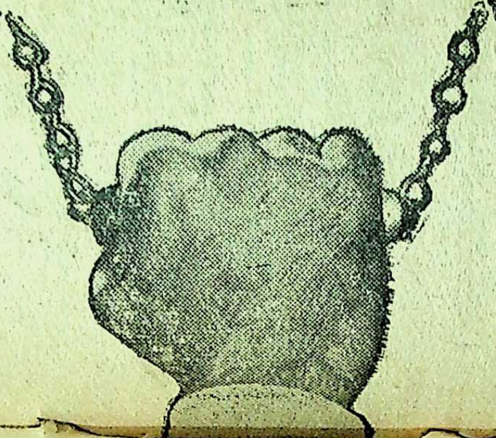

प्रतिक्रियाका सिलसिला

झूठे ख़तरे का परिणाम है देरी।

रेल के डिब्बे में खतरे की जंजीर का बहुत महत्व है। इसे बिना सोचे-विचारे खींचने से बहुत-सी रेल गाड़ियां समय पर नहीं पहुंच सकेंगी और पूरे टाइम-टेबल में गड़बड़ी पैदा हो सकती है।

खतरे की जंजीर तभी खींचिये ...जब सचमुच खतरा

मध्य रेलवे

भद्रंकर्णेभि श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

सम्पादक - रामतीर्थ योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ७] बअक्टूबर १९६६ [संख्या ७

वैदिक-प्रार्थना

तस्माद् विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥

ऋ. वे. पु. सू. १०/९०-५

भावार्थ—उस पुरुष से यह विराट्-ब्रह्मांड रूप देह बना है, जिसको आधार बनाकर वह पुरुष स्वयं उसमें प्रकट हुआ है। वह पुरुष प्रकट होकर सारे ब्रह्मांड के भुवनों में और देहों में व्याप्त हो गया ॥

व्यष्टि-समष्टि में विजय-सफलता का प्रेरक—

विजय दशमी का पावन पर्व

विजयदशमी: भारत का अत्यन्त प्राचीन और गौरवमय त्यौहार है। कहा जाता है कि इसी शुभ तिथि को राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी और उसके पंजे से जगन्माता सीता को छुड़ाया था अथवा मानव ने दानवीय शक्तियों को परास्त कर मानवता को उसके अत्याचारों से सुरक्षित बनाया था। कहा जाता है कि जनता ने अपौरुषेय शक्ति से संपन्न उसी महान मानव की विजय स्मृति में विजयदशमी का पर्व मनाना प्रारम्भ किया। भारत में इस तिथि को अपराजेय-विजयवाहिनी माना जाने लगा और लोग इसी दिन को अपने अपने विजय अभियान का मुहूर्त मानने लगे। प्राचीन काल में भारतीय राजा इस दिन पड़ोसी राज्य में विजयवाहिनी को अग्रसर करते थे और अपना अभीष्ट सिद्ध करते

थे। तब भारत में खण्ड राज्य थे। सभी एक दूसरे से स्वतन्त्र थे और आपस में लड़ते हुए निर्बल और असहाय बने रहते थे। यही कारण है कि संकुचित सफलता के घेरे में बंधे रहकर उन्होंने जो आत्म-विनाश किया, उसी के अभिशाप से वे इतने निर्बल और दीन-हीन बन गये कि विदेशियों को उन पर विजय प्राप्त करने और अपनी शासन-सत्ता स्थापित करने के पर्याप्त अवसर मिल गयें। यह स्थिति कितनी दयनीय है। मानव का मानव के द्वारा शोषण और अपमान उस के द्वैतभाव के द्योतक हैं। यह द्वैत या भेदलक्षी विकार अनन्त रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है और असन्तोष, अराजकता और अंधकार का सृजन कर रहा है।

फिर भी जगत् में सदा से द्वैत के विरुद्ध अद्वैत का, भेद-भिन्नता के विरुद्ध एकता और आत्मीयता का, अशिव के विरुद्ध शिव का, अन्धकार के विरुद्ध प्रकाश का, दानवता के विरुद्ध मानवता का, संकटों के विरुद्ध साहसका द्वन्द्वयुद्ध होता चला आ रहा है। यह परस्पर विरोधी तत्त्व आदिकाल से टकराते चले आ रहे हैं। यह देवासुर संग्राम मानव-हृदय तथा समष्टि में अहर्निश चलता रहता है और भविष्य में भी चलता रहेगा।

निस्सन्देह वर्तमान भौतिक विकास के उत्तरोत्तर उत्कर्षने मानवके परस्पर एकताके सूत्रमें संगठित होनेके लिये बाध्य कर दिया है क्योंकि मानव अब अधिकाधिक रूपमें एक-दूसरे के निकट होते जा रहे हैं। यांत्रिक कला ने काल और स्थल की दूरी को बहुत छोटा बना दिया है और लोग

स्वभावतः व्यक्तिगत स्वार्थों के साथ समष्टिगत कल्याण-साधन में भी लगे हुये हैं। समाजवादी व्यवस्था का अधिकाधिक विस्तार होता जा रहा है।

हम भारतीयों को भी विजय-दशमी के विजय-पर्व पर आत्म-निरीक्षण करना चाहियें और आत्मस्थ होकर अनाचारों के विरुद्ध रण-हुंकार करनी चाहियें। आज हमें संग्रहवृत्ति, काला बाजार, मिलावट आदि रावण-वृत्तियों के साथ डटकर लोहा लेना है। जबतक यह पैशाचिक वृत्तियां मानव को मनमानी करने के लियें प्रेरित करती रहेंगी, जबतक व्यक्तिगत हित समष्टिगत हितों पर प्रहार करते रहेंगे, जब तक गरीबी और अभाव मानव के स्वाभाविक विकास के मार्ग को अवरुद्ध करते रहेंगे, जबतक स्वार्थी तत्त्व मानव की समष्टिगत अस्मिता तथा चेतना को कुचलते रहेंगे, जबतक अन्धाधुन्ध अराजकता के तत्त्व उभरते रहेंगे, जबतक मानव की जीवनी शक्ति और चैतन्यमयी प्रतिभा परतन्त्रता और परावलम्बन के पाश में जकड़ी रहेगी, तबतक सुख, शांति, सद्भावना, एकता, पवित्रता, सदाचार आदि का प्रवर्तन संभव नहीं। यह सब द्वैतभाव और भेदभावना के विकार हैं। इनमें फँसकर मानव अत्यन्त जड़ बन गया है और उसके समक्ष अपूर्णता, कठिनाई और नाना प्रकार के संकट खड़े हो गये हैं। सर्वत्र विशृंखला, विच्छिन्नता, आदर्श तथा लक्ष्य भ्रष्टता दृष्टिगोचर हो रही हैं। भाषावाद और प्रान्तवाद की प्रवृत्तियां भारत के राष्ट्रीय सामर्थ्य को छिन्न-भिन्न बना रही हैं। परस्पर विरोध भावापन्न जातियां, संस्कृतियां, आचार-विचार

देश की जड़ को खोखला बना रही हैं। इस अवसर से लाभ उठाकर विदेशी लोग अपने स्वार्थ-साधन के लिये परस्पर संघर्ष के बीज बो रहे हैं। सारा देश भिखारियों और बेकारों से भर उठा है। सभी लोग प्रतिद्वन्द्वी को पीछे धकेल कर स्वार्थ-साधन में संलग्न हैं।

ऐसी दशा में इस देश को ऐसे लोकनेता की आवश्यकता है, जो भेदभावना और द्वैत के मूल को उच्छिन्न कर जन-मन को समन्वय की भावना से प्लावित कर दे। सर्वत्र समानता का आदर्श स्थापित हो और 'प्रेयस'—जो कुछ भी अधिकार या अनधिकार रूपमें मिले, उसे समेट कर अपना कोष बढ़ाओ—के स्थान पर श्रेयस-त्यागमय मनोवृत्ति को प्रोत्साहन प्रदान करे। प्रेयस सदैव कर्तव्यरहित अधिकार की रक्षा के लिये चिन्तित रहता है, किन्तु श्रेयस को यह विश्वास रहता है कि यदि वह कर्तव्यपरायण है, तो उसका अधिकार स्वयमेव उसके पीछे लगा रहेगा।

यदि हम सचमुच ऐहिक अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि कर जगत् को चकित कर देने की महत्त्वाकांक्षा रखते हैं, यदि हम विविध क्षेत्रों में स्वावलम्बन प्राप्त कर वास्तविक मुक्ति का अनुभव करना चाहते हैं, यदि हम अपने भाग्यविधाता बनने के स्वाभिमान को अन्तर में धारण करने के उत्साह से ओत-प्रोत हैं, तो हमें अपनी जीवन-प्रवृत्ति में परिवर्तन करना पड़ेगा और कर्तव्य-प्रेम, समष्टि रूप से उन्नत स्थिति पर पहुंचने की अभीप्सा, अदम्य साहस और सामर्थ्य, शुभ संस्कार, अप्रतिहत पुरुषार्थ, आत्मविश्वास,

महत्वाकांक्षा और धैर्य आदि गुणों का व्यापक प्रवर्तन और विकास अत्यावश्यक है । मानव में यह धारणा-शक्ति सतत प्रबल रहनी चाहिये कि भले ही विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़े, किन्तु हम कर्तव्य कर्म से विचलित नहीं हो सकते । भय और आतंक उसे कर्तव्य-निष्ठा से च्युत नहीं कर सकते । सूर्य भले हिम-खण्डों की वर्षा करने लगे, चन्द्रमा आग उगलने लगे, ध्रुव चलायमान् हो उठे, वायु अपने प्रबल प्रवाह-वेग से हिमालय उड़ा ले जायें, फिर भी संकल्प-बद्ध तेजस्वी मानव का सामर्थ्य किसी अवस्था में भी कम नहीं होता—उसकी निर्माण-शक्ति कभी कुंठित नहीं होती । उसका अन्तःकरण शक्ति और पुरुषार्थ का अजस्र उद्गम अहर्निश बना रहता है ।

यदि हम भारतवासी सचमुच सफलता और विजय की आकांक्षा रखते हैं, तो व्यक्तिगत विकास-साधन के साथ देश-भक्ति और राष्ट्रीय भावों और विचारों से ओतप्रोत रहना आवश्यक है । हमें अपने देश-बान्धवों के प्रति आंतरिक प्रेमभाव परिलक्षित करना पड़ेगा और सबके साथ अपनी आत्मा को एकीभूत कर देना पड़ेगा । व्यक्ति और राष्ट्र के बीच 'अहं' की दीवार नहीं रह सकेगी । देश तथा जन-हित के लिये अपने प्राणोत्सर्ग करना भी पुण्य का परम प्रतीक है, एतदर्थ कटिबद्ध रहकर पारमार्थिक वीरवृत्ति से सदैव उल्लसित और उत्साहित रहना अत्यावश्यक है । क्षुद्र अहंभाव से विरत होकर समग्र राष्ट्र के साथ तादात्म्य-भाव उद्बुद्ध होने के पश्चात् अपने अंतःकरण में जिन विचारों

और भावों का स्फुरण होगा वे समग्र देश के बन जायेंगे—सबके मर्म का स्पर्श कर सर्वत्र प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे हम सब को, सर्वात्म, सर्वतोभद्र और सर्वग्राह्य भावों को लेकर प्रसन्नता और निर्भीकता के साथ अपने गन्तव्य पथ में अग्रसर होना चाहिये। यदि हम कन्धे से कन्धा मिलाकर शक्तिशाली शिव-संकल्प के साथ समष्टि के मंगल के लिये कार्य करेंगे, तो उससे निस्सन्देह मंगलमय परिणामों का उदय होगा और समस्त जन-गण स्वस्थ, चैतन्यमय, आरोग्यपूर्ण, निर्विकार और सशक्त होंगे। सबके अन्तःजन सामर्थ्य का परस्पर आदान-प्रदान—संक्रमण होगा और सबकी रग रग में अदम्य जीवनी शक्ति का संचार हो उठेगा—सर्वत्र अविच्छिन्न प्राण--शक्ति का प्रवाह दौड़ने लगेगा "मैं राष्ट्र का साकार स्वरूप हूं, सार्वभौम या समष्टि हूं ऐसे विराट्व्यापी शिव संकल्प—मंगलभाव के प्रकाश का प्रस्फुटन कीजिये और कल्पना कीजिये कि भारत-भूमि हमारा शरीर है, हिमालय हमारा मस्तक है, हमारी जटाओं में गंगा का उद्गम-क्षेत्र विद्यमान है और वहीं से गंगा की धारा भूमि को रसाल तथा हरी-भरी बनाती हुई आगे बढ़ती है। पूर्व तथा पश्चिम दिशाएँ हमारी भुजाएं हैं और अपने दिगन्तव्यापी बाहुपाश में मानवमात्र को आबद्ध कर लेने—समेट लेने के लिये हम उन्हें फैलायें हुये हैं। मेरा प्रेम विश्वव्यापी है।

हम सब एक ही भारतमाता की संतान हैं। एक साथ रहते हैं, हँसते और खेलते हैं, उठते-बैठते एक ही प्रकार से

भोज्य पदार्थ और वस्त्र ग्रहण करते हैं। यद्यपि नाना रूप-नामों में हमारी अभिव्यक्ति हो रही है, फिर भी हमारी अनुभूति स्वयंभू और शाश्वत है। हम सब के विचार समान हैं, चित्त और मन एक हैं, इच्छाएँ और वासनाएँ एक हैं। सर्वत्र एक-सी प्रवृत्ति, एक-सी हलचल होती रहती है, हम सब में समान ज्ञान की एक-सी झलक उद्भासित हो रही है, सब एक साथ मिलकर यज्ञ-कार्य में—जीवन के दैनिक कर्तव्यों में तन्मय हैं।

इस प्रकार की विराट् अनुभूति के लिये मानव में तदनुकूल चरित्र-निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता है। आज भारत में प्रजातन्त्र-मूलक पंचायत-राज्य चल रहा है, किन्तु इतनी सफलता तभी सम्भव है, जब मानव की अद्वैत एकता केन्द्रीभूत होगी और यह अनुभव होगा कि मानव विराट् विश्वात्मा का स्वयं एक केंद्र है और सर्वव्यापी एकता का एक स्वरूप है। ऐसे सत्य-ज्ञान-सम्पन्न और ऐक्यानुभूति से परिपूर्ण व्यक्ति ही पंचायतों द्वारा जन-कल्याण कर सकते हैं। अतः जो लोग उर्ध्वगामी विचारों से ओतप्रोत रहना चाहते हैं, जो सफलता और उन्नति के उत्तुंग शृंग पर पहुंचने के इच्छुक हैं, जीवन-संग्राम में विजयी होने की आकांक्षा जिनके मानस-क्रोड़ में क्रीड़ा कर रही हैं, उन्हें भाग्यवाद की विडम्बना से ऊपर उठकर पुरुषार्थ का आश्रय लेना चाहिये। मानव स्वयं अपना प्रेरणा-स्रोत है, सामर्थ्य का संवाहक है,

शक्ति का केन्द्र स्थल है, आत्म-ज्योति का संधारक और विस्तारक है, उत्साह और उल्लास का संचित कोष है, वह रचनात्मक शक्ति से समन्ततः परिपूर्ण हैं, आत्मविश्वास का मूल और पुरुषार्थ का गौरवमय प्रतीक है। वह चाहे तो अपनी दिव्यता से भूमण्डल को भर दे। परमात्माने मानव के अन्तर की गहराई में शक्ति का अक्षय और अनन्त वैभव भर दिया। इस शक्ति का विकास-साधन संभव है। संकटों से संघर्ष करने और उनपर विजय प्राप्त करने के लिये मानव में प्राकृतिक शक्तियां गुंफित हैं। इन शक्तियों का समुचित सदुपयोग करने से मानव जीवन-संघर्ष में विजयी होता और उसके कण्ठ से विजय-गान फूट पड़ता है।

भारतीय संस्कृति अध्यात्ममूलक है। उसकी नस-नाड़ियों में आध्यात्मिक रस प्रवहमान है और भाव-विचार आध्यात्मिक चेतना से दीप्तिमान हैं। आध्यात्मिक रूप में मनुष्य मात्र एक लोकोत्तर चैतन्य से उर्जस्वित हो रहा है। शरीर-रचना सादृश्य भी उसकी मौलिक एकता का परिचायक है। समुदाय या समाज बनाकर रहने की उसकी इच्छा उसकी एकात्म भावना को प्रकट करती है। खान-पान, व्यवहार भी कुछ रुचि भिन्नताओं को छोड़कर प्रायः एक ही प्रकार का है। जीने के लिये सब को कुछ न कुछ खाना ही पड़ेगा, वस्तु-भेद है, परन्तु आहार की मांग सब को एक ही प्रकार की है। रुचि-भिन्नता बाह्य भिन्नता है, भूख अभिन्न है, एक है। आवश्यकता मूल है, रुचि डाल-पत्ते। मनुष्य रुचि

के अनुसार आवश्यकता-पूर्ति के साधन जुटाता रहता है। यह उसके दैनिक जीवन का कर्तव्य है, धर्म है।

इस प्रकार कर्तव्य से प्रेरित होकर मानव सफलता-प्राप्ति के लिये एक विराट् हलचल के सूत्र में संगठित होकर विभिन्न क्षेत्रों में फैलकर कार्य-कुशलता का परिचय दे रहे हैं। अपने दैनिक कर्तव्य-कर्म में तन्मय रहकर वे विकास-पथपर प्रवृत्त होते हैं और कर्तव्य तथा व्यवहार प्रवणता के अनुसार सफलता प्राप्त करते हैं। क्षेत्र और अवसर मानव के विकास को वेगगामी बनाते हैं और मानव पूर्ण-विकास की स्थिति पर पहुँच जाता है।

मानव में इतनी मौलि एकता का दर्शन होने पर भी रुचि-भिन्नता ने उसे द्वैत की जंजीरों से जकड़ दिया है और अब सर्वत्र भेदभाव का साम्राज्य स्थापित होता जा रहा है। भौतिक स्वार्थ परायणता इस भेदभाव की खाईको नित्य गहरा और चौड़ा बनाती जा रही है। भोग्य वस्तुओं की असीम लालसा ने मानव को अत्यन्त निष्ठुर बना दिया और वह एक संकुचित घेरे में बन्द-सा हो गया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, पाखण्ड आदि के दलदल में फँसकर वह एकांगी बन गया है। आज मानव अपने एकांत स्वार्थ-साधन में प्रवृत्त है, उसकी यह प्रवंचना उसके अंतर्निहित द्वैत और भेदभाव की साक्षी है। कालाबाजार और मिलावट की प्रवृत्ति उनके मानवविरोधी अनाचार की उद्घोषणा कर रही

है। इतना होने पर भारतीय राष्ट्र की पवित्र भूमि आज अनाचार-भ्रष्टाचार प्रवृत्त और विध्वंसक तत्त्वों का अखाड़ा बन गई है। भ्रष्टाचार मूलक प्रवृत्ति को दबाने के विध्वंसक शक्तियों का आवेशमय उभार एक भयंकर रण-घ हुंकार के रूप में प्रकट हो रहा है। फलतः जनता भय और आतंक से बेचैन होकर लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाती है। भ्रष्टाचार और विध्वंस दोनों के प्रति विशेष दिलचस्पी नहीं। वह दोनों की कुरूपता और कुप्रभावों से ग्रस्त है। वह इन दोनों व्याधियों से सुरक्षित रहने के लियें नाना प्रकार के शांति प्रया कर रही है। राष्ट्र के शांतिवादी जननायक इन दोनों वि तक तत्वों से त्राण पाने की दिशा में चलने के लिए बा हो रहे हैं। वे इन दोनों समाज विरोधी तत्वों का साम करने के लिए कटिबद्ध हो रहे हैं।

मानवमात्र जगत् में कुछ भावनायें, कुछ चाहें और कु आवश्यकतायें लेकर पैदा होता है। कुछ तृष्णायें और उनकी पूर्ति के प्रयत्न सर्वत्र गतिशील हैं। यह एक स्वाभाविक स्थिति है। यह प्रक्रिया तृष्णाओं, इच्छाओं, अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमित रहकर नियन्त्रित रहती है तो उस व्यवस्था से अधिकाधिक या प्रायः समग्र जनगण लाभान्वित होगा और सबकी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति होगी। किन्तु यह तभी सम्भव है, मानव की तृष्णाओं को तभी नापा जा सकता है जब मानव के मन को विशेषरूप से शिक्षित और विकसित किया जायेंगा, जब उसे एक विशेष अपेक्षित दिशा

की ओर मोड़ा जायेगा मानव के अन्तर्निहित उज्ज्वल तत्व को जब सजग बनाया जायेगा, तभी भ्रष्टाचार प्रवृत्ति, काला बाजार मिलावट,—और तज्जन्य विध्वंस वृत्ति को मिटाना सम्भव है। विध्वंस पर काबू पाने के लिये यह अत्यावश्यक है कि भ्रष्टाचार का—आर्थिक और सामाजिक भ्रष्टाचार को मिटाने को समग्र जनता कटिबद्ध हो जायें। आज जनता जनार्दन या राम को इस भ्रष्टाचार रूपी रावण का सामना करना पड़ेगा। तभी हम तमांश पर उज्ज्वलांश का विस्तार कर सकेंगे और तभी इन आसुरी तत्वों पर राम की विजय होगी। उसी अवस्था में मुक्त वायु-मंडल में विचरण करेंगे, तभी भारत राष्ट्र विश्व में सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, स्वावलम्बी, समर्थ और अजेय राष्ट्र के रूप में सुशोभित होगा।

भारत के भावी निर्माण को यदि हम सचमुच सर्वांगपूर्ण, सुव्यवस्थित, आत्म नियंत्रित बनाना चाहते हैं, तो देश की मनोभूमि को हमें तदनुसार तैयार करना चाहिये और ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जो प्रत्येक मनुष्य को स्वभावतः आयोजित कार्यों को आगे बढ़ाने और जनता को क्रमशः श्रम, शक्ति, सामर्थ्य और बुद्धि प्रतिभा का यथोचित प्रयोग करने की ओर प्रवृत्त करे, देश को आत्मनिर्भर बनायें, सबको आवश्यक सुविधा प्राप्त कराने का आश्वासन हो। यह आश्वासन अटल, अविचल, चिरस्थाई हो। यह सब जनता को आश्वस्त करनेवाला हो। निर्यात के लिये कुछ अत्यावश्यक वस्तुयें ही जमीन से उपजानी

चाहियें। जनताकी दैनिक अनिवार्य आवश्यकताओंकी पूर्ति निश्चित आश्वासन पाकर अपने कर्तव्य-कार्य में अधिकाधिक तन्मयता के साथ संलग्न रहें। उनके मन और बुद्धि निश्चित भाव से अपनी प्रतिभा और आत्म-शक्ति का प्रयोग करें। यही आत्म-निर्भरता की गारण्टी है। देश स्वतन्त्र हो और जनता वायु मंडल में आत्म निर्माण करती हुई आत्म निर्भरता के आनन्द का अनुभव कर सके। यही वातावरण जनता में आत्म-विश्वास को जागृत करेगा और पूर्ण शांति और संतोष के साथ अपने कार्यों में सिद्धहस्त होगा।

अन्त में हम परम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह ह भारतवासियों को सद्बुद्धि, सद्भावना, कार्य-क्षमता, सौज प्रदान करें, जिससे इस विजय दशमी के सुअवसर पर उत्सा और उमंग के साथ राष्ट्रीय समृद्धि तथा स्वावलम्बन और एक संकल्प, एक महत्वाकांक्षा के साथ अग्रसर हों और प्रत्येक क्षेत्र में विजय और सफलता प्राप्त करें। राष्ट्र की र रग में नवजीवन का संचार हो और वह पूर्ण सामर्थ्य और पूरे उत्साह के साथ समागत संकटों युद्धों, अभावों और कठिनाइयों का सामना करने लियें कमर कसे रहे। राष् के स्वाभिमान और उसकी गरिमा पर तनिक भी आघात न हो और वह विजय, विनयी, सौजन्यशील होकर जगत् के समक्ष ऊंचा सिर करके खड़ा हो सके।

* * *

वनस्पति-संसार

ले०— डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकृति शक्ति का एक भंडार है। इसके वृक्ष, पौधे और वनस्पतियां, सब वैज्ञानिक दृष्टि से एक न एक कार्य को पूरा करते हैं। जीवन से यदि स्फूर्ति और आत्मा को अलग कर दिया जाय, तो जीवन का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है। उसी प्रकार यदि हम अपने जीवन से प्रकृति के वनस्पति-संसार को अलग कर दें जैसा कि कभी हो नहीं सकता, तो निःसंदेह हमें हानि होगी और उसके साथ शक्ति की भी बड़ी दक्षिणा देनी पड़ेगी।

वृक्ष के प्रत्येक भाग से, जीवन में हम कुछ न कुछ सहायता प्राप्त करते हैं। इसकी जड़ें, पत्तियां, तने और शाखाएं हमारी रोज की आवश्यकताओं को पूरा करतीं हैं। संसार में प्रत्येक वस्तु एक दूसरे पर निर्भर है। इसके बिना न हम बढ़ सकते हैं, न उन्नति ही कर सकते हैं।

अभी हाल ही में एक आविष्कार हुआ है जिसके द्वारा संसार से भूख का समूल नाश हो सकता है और हमें प्रतिदिन शक्ति और अग्नि को प्राप्त करनेवाले माध्यम जैसे कोयला, तेल और लकड़ी से छुटकारा मिल सकता है। यह आविष्कार बर्लिन में हुआ था। एक दल जिसके अध्यक्ष हैं ओटो एच० वारबर्ग जिन्होंने १९३१ में संसार का सबसे महान पुरस्कार—'नोबल पुरस्कार' प्राप्त किया

था और डा० डीन वर्क, जो कि बर्लिन की राष्ट्रीय स्वास्थ्य परिषद् के सदस्य हैं, इस विषय पर बर्लिन में अनुसंधान कर रहे हैं ।

उन्होंने यह अनुसन्धान किया है कि हरी वनस्पति सूर्य की चमक की शक्ति को किस प्रकार और कैसे भोजन में परिवर्तित करती है । यूरेनियम तत्त्व का भास १९३१ में में हुआ था, पर इसका पूरा अनुसन्धान आगे चलकर हुआ । उसी प्रकार इस अनुसन्धान का भविष्य भी हमारी दृष्टि के सामने नाच रहा है ।

हमारा सब भोजन वनस्पति-संसार की सहायता से होता है । हम जो कुछ भी भोजन रूपी शक्ति प्राप्त करते वह शक्ति हमें पेड़ों इत्यादि से ही मिलती है । शक्ति अ करने के लिये जो कुछ भी हम खाते हैं, वे सब वस्तुएं पौधों के अन्दर प्रतिदिन होनेवाली रासायनिक क्रिया निर्भर है । इस रासायनिक क्रिया की शक्ति को ही हम अपने अंदर ले जाकर शक्ति का समावेश करते हैं । यह बात तो हुई वनस्पतियों के सम्बन्ध में और यही बात हमारे सामने तब आ जाता है, जब हम किसी जीव-धारी का मांस खाते हैं । उस जानवर के मांस की क्रियाओं से हम अपने शरीर में स्फूर्ति और दृढ़ता लाते हैं । उस पशु या जानवर में, जितनी भी रासायनिक क्रिया से प्राप्त पुष्टकारी तत्त्व होते हैं, उन्हें खाकर हम अपने शरीर में भी उन तत्त्वों का समावेश करते हैं ।

हम जितनी भी शक्ति पाते हैं, वह साधारणतः हरे पेड़-पौधों से प्राप्त होती है। बहुत लोगों का विश्वास है कि "सारा मांस घास का रूप मात्र है।" अर्थात् हम अपने अंदर, घास रूपी हरी वनस्पतियों के द्वारा उसमें होनेवाली रासायनिक क्रिया के द्वारा, अपने मांस में एवं अपनी शक्ति में वृद्धि करते हैं। सारा ब्रह्मांड इस हरी घास से ही भरा पड़ा है। इसी तथ्य के द्वारा वैज्ञानिकों का यह मत है कि नक्षत्रों में भी जीवन है, क्योंकि वहां पर वनस्पति—संसार का पूरा विवरण प्राप्त हो चुका है—केवल पहुंचने की देर है। इसी सत्य के बलपर हम कह सकते हैं कि संसार की प्रत्येक शक्ति, पेड़-पौधों के द्वारा ही प्राप्त होती है।

वृक्ष हमें केवल खाने की ही वस्तुयें नहीं देते हैं, वरन् हजारों लाखों वर्षों के बाद, अपने अंदर एक रासायनिक क्रिया के द्वारा जलनेवाली वस्तुयें जैसे कोयला, लकड़ी इत्यादि भी हमें प्रदान करते हैं।

वनस्पति-संसार हमारी तीन महान आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। उनके नाम हैं, प्रोटीन, शक्कर और चर्बी, जिनके बिना मनुष्य का जीवित रहना दूभर हो जाय। इनके उत्पन्न करने में जो क्रिया पेड़ पौधों के अन्दर होती है, उस क्रिया को 'प्रकाश समन्वय' कहते हैं।

जो क्रिया पेड़-पौधों के अन्तस्तल में होती है, वह इस प्रकार है:—"हरे पेड़ वायु मंडल से, कार्बन डिआक्साइड

लेते हैं और पृथ्वी से जल। पेड़ की पत्तियों में एक प्रकार का हरा पदार्थ रहता है, जिसे 'क्लोरोफिल' कहते हैं। यह पदार्थ सूर्य की शक्ति को, कार्बन डिआक्साइड और जल की सहायता से, एक रासायनिक पदार्थ कार्बोहाइड्रेट या स्टार्च में परिवर्तित करता है। इस क्रिया में प्राणवायु का प्रादुर्भाव होता है, जो स्वतंत्र दशा में प्राप्त होती है, और स्टार्च के अन्दर सूर्य की शक्ति निहित रहने से, यह शक्ति पेड़-पौधों के काम आती है।"

अनुसंधान एवं गणित की सहायता के द्वारा यह मान लिया गया है कि प्रत्येक वर्ष १५०० करोड़ टन कार्बन करीब करीब २५० करोड़ टन हाइड्रोजन से मिलकर, सूर्य-शक्ति की रासायनिक क्रिया ४,००० करोड़ टन प्राणवायु स्वतंत्र रूप में संसार को प्रदान करती है।

जब पेड़-पौधे शक्ति की आवश्यकता महसूस करते हैं, ये अपना कुछ स्टार्च शक्कर में परिवर्तित करते हैं और जब यह क्रिया समाप्त हो जाती है, तो यह प्राणवायु से मिलकर ताप तथा अन्य शक्तियों में परिवर्तित हो जाती है। यही रासायनिक शक्ति वनस्पति संसार की शक्ति प्रदान करती है।

जितने भी वानस्पतिक पदार्थ हैं, उन सब में 'स्वतंत्र शक्ति' रहती है और यह शक्ति प्राणवायु की सहायता से ताप, रासायनिक गति, प्रकाश और विद्युत शक्ति को उत्पन्न कर सकती है। जैसा कि प्रो० यूजीन राबी-

ोविच का कथन है —"ये क्रियाएं जीवन की मुख्य ाराएं हैं, जिनके विना हृदय में धड़कन नहीं उत्पन्न ी सकती, कोई भी पौधा ऊपर बढ़ नहीं सकता, कोई ीधा तैर नहीं सकता, कोई भी बाह्य स्पर्श स्नायु द्वारा यात्रा नहीं कर सकता और कोई भी विचार ानव मस्तिष्क में उठ नहीं सकता।"

यह क्रिया जिसमें वे पदार्थ जो वानस्पतिक नहीं हैं, ानस्पतिक पदार्थों में बदल जाते हैं, यह तथ्य रासा-यनिक इंजीनियरिंग का एक "महत् पद" है। सन् १७७२ में एक ब्रिटिश रासायनिक, जोसफ प्रिसटले ने यह ज्ञात किया था कि 'प्रकाश-समन्वय' में प्राणवायु स्वतंत्र होती है। उन्नीसवीं सदी के प्रथम 'प्रकाश-समन्वय' के बारे में सारा वैज्ञानिक जगत् जानता था, परन्तु उस समय उन्हें यह ज्ञात नहीं हुआ था कि इस क्रिया का एक गुणक कार्बो-हाइड्रेट है। यह लगभग तीस साल बाद ज्ञात हुआ कि इस क्रिया में कार्बो-हाइड्रेट की मात्रा भी वितरित होती है।

एक जर्मन रासायनिक, जूलियस राबर्ट वान मेयर ने सन् १८४५ में यह ज्ञात किया कि किस प्रकार प्रकाश शक्ति, रासायनिक शक्ति में परिवर्तित होती है।

'जो प्रकाश सूर्य से धरती की ओर, एक पुंज के रूप में आता है, इस चलायमान शक्ति को प्रकृति अपनी इकाइयों के द्वारा अपने अन्दर स्थाई रूप में जमा करती रहती है। इसे प्राप्त करने के लिए पृथ्वी

को अपना धरातल, बहुत से जीवधारियों एवं पदार्थों से ढकना पड़ा । ये पदार्थ, सूर्य का प्रकाश शीघ्रता से या देर से लेकर और फिर इस ली हुई शक्ति को निरन्तर रासायनिक क्रिया में जोड़ते रहते हैं । इकाईवाले पदार्थ पेड़-पौधे हैं जिनके द्वारा यह कार्य सम्पादन होता है । वनस्पति-संसार एक प्रकार का खजाना है, जिसमें गर्म सूर्य की किरणें अचल होकर स्थिर हो जाती है, और फिर यह पूंजी भविष्य में काम आती है ।

डा० आटो वार वर्ग बहुत समय तक प्रकाश-समन् को ही इसका मूल मानता रहा । १९२३ में उस यह ज्ञात किया कि एक कार्बन डिआक्साइड का प-माणु, कितने प्रकाश के पैकेट (जिसे अंगरेजी में 'क्वाण्टा' कहते हैं) लेकर शक्ति के रूप में परिवर्तित होता है । आगे चलकर उसने पूर्णरूप से ज्ञात किया कि प्रकाश शक्ति, पेड़ों के द्वारा कार्बो-हाइड्रेट का उत्पादन करती है और इसके लिए एक 'क्वेण्टम' प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है । अब यह प्रश्न रह जाता है कि वह कौन सी वस्तु है, जो सबसे प्रथम इस शक्ति को लेकर नवीन शक्ति में परिवर्तित करती है।

यदि हम इस शक्ति को जानने में एकबार भी सफल हुए तो हमारी नजरों के सामने एक महत्व शक्ति का पर्दा खुल जायगा । हमारे सामने, फिर हरे पेड़-पौधों का, फैक्टरी के रूप में उत्पादन हो सकेगा और इस प्रकार हमें शक्ति का प्रचुर लाभ हो सकेगा।

'प्रकाश समन्वय' हरे पेड़-पौधों के द्वारा ही एक ऐसा माध्यम है, जिससे भोजन की जटिलता कम हो सकती है। केवल यह क्रिया ही जीव जगत् के लिए शक्ति का साधन है कोयले, लकड़ी, पीट आदि के रूप में। यदि आदमी इस क्रिया को पूर्णतः हस्तगत कर सका, तो निस्संदेह संसार में भूख और अकाल का नाम न रह जायगा और हमारे सामने सुख-समृद्धि हाथ बांधे खड़ी रहेगी।

* * * *

जब शराब मनुष्य में प्रवेश करती है तो बुद्धि को बाहर निकाल देती है।

निद्रा रोगी की माता, भोगी की प्रियतमा और आलसी की बेटी है।

निद्रा योग एक ऐसा अथाह सागर है जिसमें हम सब अपने दुःखों को डुबो देते हैं।

जीवन ज्योति क्षीणक—तम्बाकू

लेे०— कान्ती जैन

नवम्बर सन् १४९२ में कोलम्बस ने क्यूबा-द्वीप खोज में अपने दो मल्लाह भेजे। उन लोगों ने वाप आकर उसे कई आश्चर्यजनक बातें सुनाईं, उन आश्चर्य जनक बातों में से तम्बाकू का व्यवहार भी एक था उन लोगों ने कोलम्बस से कहा– "क्यूबा के जँगली लो कुछ पत्ते इकट्ठे करके मरोड़ते हैं और मरोड़े हुए का एक सिरा मुंह में रखते हैं तथा दूसरे सिरे आग लगाकर नाक और मुंह से धुआं छोड़ते हैं तम्बाकू के इस्तेमाल का यह पहला सीन था, सभ्य जाति ने देखा।

तम्बाकू का व्यवहार असभ्य जातियों से सर्वप्र अमेरिका के यूरोपियन यात्रियों ने सीखा फिर इस प्रचार यूरोप में हुआ। मुगल बादशाद जहांगीर समय में यूरोपवासियों से इसका व्यवहार भारतीयों सीखा।

ऐसा मालूम पड़ता है कि सन १४९४ में कोलम्बस ने अमेरिका के जंगलियों को तम्बाकू सूंघते भी देखा था रूसी फकीर 'पेन' ने जो कोलम्बस के साथ था लिखा है–"ये पत्तियों का चूर्ण बनाते और सूराखदा लकड़ों के द्वारा उसे सांस के साथ खींचते हैं। लकड़ का सिरा नाक के भीतर और दूसरा चूर्ण रखते हैं।"

सन १९०३ में जब स्पेनवाले पारागाय के तट पर तरे तब वहां के निवासी उनका सामना करने के लिए ोल बजाने, पानी फेंकने, पत्तियां चबाकर, पत्तियों का क स्पेनवालों पर फेंकने लगे। ये पत्तियां तम्बाकू थीं। तम्बाकू चबाने से उनका यह उद्देश्य था कि सका जहरीला रस आगन्तुकों को अंधा कर दे। शुरू लोग विपक्षियों का नाश करने के लिए तम्बाकू ाते और बारूद की भांति उसका उपयोग करते थे।

पाठक! यदि आप तम्बाकू खाते पीते या सूंघते हैं तो खाने-पीने या सूंघने के पूर्व थोड़ा ठहर जाइयें और विचारियें कि जिसे जंगली असभ्य तक घातक चीज समझते थे, उससे हमारा क्या भला हो सकता है?

तम्बाकू में नाकटाइन नामक विष होता है, जो सूखी पत्तियों को भट्टी पर चढ़ाकर निकाला जा सकता है। आधा-सेर तम्बाकू का जहर चार सौ आदमियों को मार डालने के लिए। काफी होता है। एक सिगार का विष यदि एक बार ही पिया जाय तो दो मनुष्यों की जान लेने के लिए पर्याप्त है। एक बूंद नाकटाइन सारे कमरे की हवा को दूषित कर देगी। तम्बाकू से जीवहत्या के लिए एक प्रकार का जहर तैयार किया जा सकता है। साठ वर्षीय काऊंट बेकर ने अपने साले की हत्या करने के लिए तम्बाकू के तेल का प्रयोग किया था।

तम्बाकू का जहर इतना तेज होता है कि त्वचा ऊपर गीली पत्तियों का लेप लगाने से ही भ लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यदि सिगार दिया जाय और उसकी पत्तियों का पेट पर लेप कि जाय तो जी मचलाने लगेगा। कै करने के लिए य तरकीब निकाली गई थी। डरपोक सिपाही बीमा बनने की गरज से अपनी बांह के नीचे तम्बाकू त्तियां दबाए हुए पाए गए हैं। जिस चीज का लेप इतना भयानक उस वस्तु का धुंआं या कैसा विषैला होगा, यह आप स्वयं समझ सकते तम्बाकू के धुंयें में नाकटाइन के अलावा प्रूसिक-ए कारवोनिक-एसिड आदि अन्य विष भी पाए जाते हैं।

उड़नेवाला विष सांस के द्वारा शरीर में जित जल्दी-जल्दी प्रवेश कर सकता है उतनी जल्दी किसी रास्ते से नहीं। कारण यह कि फेफड़ों के आ पास एक ऐसी कोमल त्वचा होती है जो गैसों जल्दी-जल्दी ग्रहण करती रहती है। हर तीसरे मि शरीर का रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में आ है। इससे फेफड़ों की उस कोमल त्वचा (Muc Membrane) में तम्बाकू का जहर पहुँचते ही रक्त में मिलकर तीन मिनट के भीतर ही शरीर विषैला कर देता है। खाने और सूंघने के समय तम्बाकू का संपर्क उस कोमल त्वचा के साथ होता

तब उसके विषमय द्रव्य का शोषण मामूली त्वचा पर किए गयें लेप से भी अधिक जल्दी होने लगता है।

कमरे के फर्श पर एक बूंद नाकटाइन गिरा देना मरे की समस्त वायु को विषमय कर देने के लियें ाफी है, तम्बाकू पीने से सिर्फ पीने वाले का ही वास्थ्य नहीं बिगड़ता वरन पास में बैठे लोगों के वास्थ्य को भी उससे धक्का पहुँचता है। क्योंकि म्बाकू का जहरीला धुंआ हवा में मिलकर उनके शरीर भी पहुंचता रहता है।

पहले-पहल तम्बाकू खाने से जी मचलाने लगता और सिर में चक्कर आने लगते हैं। तम्बाकू के जहरीलेपन का यह एक अच्छा सबूत है। शरीर में तम्बाकू का जहर अधिक मात्रा में पहुंच जाने से जी मचलने लगता है, दस्त आते हैं, शरीर में पीलापन दौड़ जाता है, आंखें निकल आती हैं, शरीर शिथिल हो जाता है, हृदय ठीक तरह से काम नहीं करता और सांस लेने में बाधा होती है। जो लोग तम्बाकू के आदी नहीं हैं उनपर कम मात्रा में ही ये प्रभाव दिखाई पड़ेंगे।

अभी तक किसी ने तम्बाकू पीना सीखते हुयें लड़के के हृदय को चीरकर परीक्षा नहीं की है, परंतु छोटे जीवों के शरीरों में यंत्रों द्वारा तम्बाकू पहुंचाकर उनकी परीक्षा की गई है। परीक्षा में मस्तिष्क पीला और रक्त शून्य पाया गया, आमाशय में उभरे हुए लाल धब्बे

हो रहे थे, रक्त बहुत पतला था, और फेफड़े पड़ गयें थे। दिल में रक्त जमा हो गया था और बहुत ही धीरे-धीरे काम कर रहा था और ब से कांप रहा था। जिन बालकों की शरीर-वृद्धि रही हो। तम्बाकू, सिगरेट या सिगार पीना उनके लिये बहु ही हानिप्रद है। तम्बाकू पीने वाले लड़के ठिगने रह जाते हैं तथा उनका शरीर विकास को प्राप्त नहीं होगा।

बहुधा यह आपत्ति की जाती है कि यदि तम्बा ऐसा ही प्रबल विष है तो उसका व्यवहार करने सभी इन्सान मर क्यों नहीं जाते? इसका उत्तर है कि एक जो शरीर में ऐसा गुण है कि वह स्थिति के अनुकूल बन जाता है। इस कारण वह भयानक विष भी बरदाश्त कर सकता है। दू तम्बाकू का व्यवहार थोड़ी मात्रा में किया जाता है वस्तुतः तम्बाकू खानेवाले तम्बाकू के ही विष से म हैं; हां, विष को अपना पूरा असर ऊपर दिखाने थोड़ा वक्त जरूर लगता है।

इग्लैंड के मशहूर वैज्ञानिक और चिकित्सक डा० रिचर्डसन ने तम्बाकू पीने से निम्नलिखित हानि बताई हैं:-

(१) खून बहुत पतला हो जाता है और लाल कणों में परिवर्तन हो जाता है।

(२) पक्वाशय की कार्यकारिणी शक्ति क्षीण हो जा है इससे निर्बलता आती और जी मचलाता है।

(३) दिल और फेफड़े कमजोर हो जाते हैं वे नियमित रीति से कार्य नहीं करते।

(४) ज्ञानेन्द्रिय में क्षीणता आती है। आंखों की पुतलियां फैल जाती हैं और आंखों के नीचे काला पीला दिखाई देता है। कानों से साफ सुनाई नहीं देता, कई प्रकार की आवाजें सुनाई देती हैं।

(५) मस्तिष्क के पोषण और मल निकलने में बाधा पहुंचती है।

(६) शरीर की नाड़ियां शिथिल पड़ जाती हैं अतः रस-पिंडों से रस पैदा करने के लिये, जिन पर उनका पूरा प्रभाव रहता है, पर्याप्त शक्ति नहीं रहती।

(७) चेहरे की रंगत बिगड़ जाती है। वह काला पड़ जाता है। गले की कौड़ी बढ़ जाती है और उसमें जख्म पैदा हो जाता है। मसूढ़ों में छेद हो जाते हैं, वे सिकुड़ जाते हैं तथा कमजोर पड़ जाते हैं। मुह से बास आती और दांतों में मैल जमकर वे जल्दी गिर जाते हैं।

(८) फेफड़ों में बाधा पहुंचती है, उनमें उत्तेजना होती और कफ बढ़ता है।

नाकटाइन से रक्त-कणों को जो हानि पहुंचती है वह अणुवीक्षण यंत्र द्वारा किसी पुराने तम्बाकू पीनेवाले के रक्त में देखी जा सकती है। इसके विषय में डा० रिचर्डसन कहते हैं:—

"तम्बाकू का व्यवहार करनेवालों की बाहरी त्वचा प्रायः जर्द और सूझी हुई मालूम पड़ती है। अणुवीक्षण यंत्र से देखा गया है कि तम्बाकू सेवन करनेवालों के रक्त कणों का गोली सा आकार नष्ट हो गया है वे चपटे हो गये हैं, उनके सिरे निकल आये हैं और आपस में एक-दूसरे को रहने के बजाय अलग अलग हो गए हैं। तम्बाकू का बिष श्वास पर प्रभाव डालता है, पाचन-शक्ति को बिगाड़ देता है, स्वाद और प्राण की शक्ति को क्षीण कर देता है, रक्त को बिगाड़ता है, मस्तिष्क में विकार उत्पन्न करता है, दिल की नाड़ियों को उत्तेजित करता है, पुट्ठों को बरबाद कर देता है यकृत की गति में रुकावट डालता है, दृष्टि को निर्बल करता है और प्रत्येक मांस-तंतु और इंद्रिय को हानि पहुंचाता है। तम्बाकू सेवन का अर्थ जीवन ज्योति को क्षीण करना, ज्ञान-शक्ति को नष्ट करना, आयु को घटाना और शरीर का अन्त करना है।'

उक्त चिकित्सक के शब्दों में- 'स्त्री-पुरुषों के बड़े समुदाय को बचपन से ही तम्बाकू का पूर्ण-प्रेमी बनाओ। उसके बाद उन स्त्री-पुरुषों को विवाह-सूत्र में बांध दो और देखो कि उनके द्वारा कैसी अयोग्य संतानें उत्पन्न होती हैं।"

अब हम तम्बाकू से पैदा होनेवाले रोगों का सविस्तार वर्णन करते हैं—

तम्बाकू पीने से गले में घाव हो जाते हैं, उसके विषैले धुंयें से मुह और गले की चिपचिपी झिल्ली पर अरुणता और नीरसता उत्पन्न होती है । धूम्रपान प्रेमियों का कहना है तम्बाकू से गला साफ होता है । यदि गले में घाव हो गया हो तो तम्बाकू से कुछ देर के लिए साफ हो जाता है । परंतु तम्बाकू से गले के घाव को आराम नहीं होता बल्कि बढ़ता है।

तम्बाकू और दिल :— दूषित वायु में सांस लेने से फेफड़ों का रोग तथा क्षय रोग हो जाते हैं । तम्बाकू का विषमय धुंआ रक्त तथा फेफड़ों में प्रवेश करके क्षय— रोग उत्पन्न कर देता है । युवकों में क्षयरोग बहुधा तम्बाकू पीने से ही हो जाता है ।

तम्बाकू दिल की बीमारी का एक कारण है :— नाड़ी से दिल की दशा का परिचय मिलता है । तम्बाकू पीनेवाले की नाड़ी से यह स्पष्ट व्यक्त होता है कि उसका दिल निर्बल हो गया है । उसकी गति में विकार उत्पन्न हो गया है। दिल भी तम्बाकू के बुरे असर से बचा हुआ नहीं है । इसके सेवन से अक्सर दिल धड़कने की बीमारी हो जाती है ।

तम्बाकू और अजीर्ण:— बहुत सारे लोग समझते हैं कि तम्बाकू से पेट के रोग दूर होते हैं । परन्तु वास्तव में इससे प्रायः अजीर्ण रोग हो जाता है । तम्बाकू के व्यवहार से आमाशय की क्रिया शिथिल पड़ जाती है और आमाशय में इससे पाचक रसोत्पादन बहुत कम होता है । तम्बाकू के

सेवनसे भूख शांत हो सकती है। यद्यपि शरीर को भोजन की आवश्यकता रहती है किन्तु तम्बाकू के अचेतन प्रभाव से भूख मर जाती है, इससे पचनेंद्रिय की दशा बिगड़ जाती है और अजीर्ण जैसा रोग घर दबाता है।

तम्बाकू कॅंसर का एक कारण है:— तम्बाकू से बहुधा कॅंसर रोग हो जाता है। खाने-पीने से गाल, ओंठ और जीभ में कॅंसर रोग प्रकट होता है। कॅंसर एक असाध्य रोग है। भारत में यह रोग प्रायः तम्बाकू खाने से और विदेशों में मिट्टी के हुक्के से तम्बाकू पीने से हो जाता है।

तम्बाकू से लकवा हो जाता है:— तम्बाकू के सेवन से शरीर की नाड़ियां और पुट्ठे कमजोर हो जाते हैं। नाड़ियों और पुट्ठों की अशक्तता ही लकवे की बीमारी बन जाती है।

नसों की कमजोरी:— जो लोग तम्बाकू खाते-पीते या सूंघते हैं, उनकी वात-रज्जु अधिकतर निर्बल हो जाती है। जल्दी उत्तेजित हो उठना, सहज ही भयभीत हो जाना, हाथ कांपना इत्यादि का आविर्भाव होता है। तम्बाकू के सेवन से थोड़ी देर बाद ऐसा मालूम होता है कि नाड़ियों में शक्ति आ गई है। परन्तु वास्तव में बात उलटी ही है। तम्बाकू का व्यवहार अप्राकृतिक है और मनुष्य के शरीर के संगठन के अनुकूल नहीं है।

तम्बाकू का प्रभाव औलाद पर भी पड़ता है :— अमेरिकी चिकित्सक डा० पिडला का कथन है—'जो इन्सान तम्बाकू के व्यसन में लिप्त रहकर अपने स्वास्थ्य तथा अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास करने पर कमर

कसता है उसके दुर्गुण के प्रभाव का अंत उसके शरीर के साथ ही हो जाय तो कोई बात नहीं है। किन्तु ऐसा नहीं होता है। तम्बाकू के व्यवहार का प्रभाव संतान पर भी पड़ता है। तम्बाकू बाजों की औलाद की रोगी प्रकृति, असामयिक-मृत्यु, नाटा-कद, क्षय और उन्माद आदि रोग उनकी (माता-पिता की) तम्बाकू जनित निर्बलता और अस्वस्थता के पर्याप्त प्रमाण हैं।

इस लेख में वर्णित रोगों के अलावा और भी अनेक रोग मानव शरीर को तम्बाकू के कारण जर्जरित करते हैं। तो भी हमें आशा है कि यह छोटा सा लेख यह सिद्ध करने में सफल हो सकेगा कि तम्बाकू सेवन किसी भी दशा में लाभदायक नहीं। जो युवक तम्बाकू खाने-पीने की आदत डाल रहे हैं उनको इसके दोष जानकर सावधान हो जाना चाहिये।

तम्बाकू के दुर्व्यसन से छुटकारा पाने का उपाय यही है कि उसे एक बारगी छोड़ दो। शनैः शनैः छोड़ना केवल मन बहलाव है और धीरे-धीरे छोड़ने का पथ बड़ा दुस्तर है। यह समझना गलत है कि एकदम तम्बाकू छोड़ देने से जान के लाले पड़ जावेंगे। चाहे इसमें कुछ तकलीफ और असुविधा मालूम हो परंतु इससे जीवन के लिए कोई भय नहीं है।

* * *

गुजराती कहानी

जलपाइगुरी एक्सप्रेस

[मूल लेखकः— मनसुखलाल जवेरी : अनुवादकः—

(गतांक से आगे)

'क्या'

'चारित्र्यशील और संपत्तिवान तो देश भर में अप
जाने पहचाने लोगों का रक्षण करते हैं।'

'और हम उनकी रक्षा के लिए स्वेच्छा से आये हैं

'लेकिन अगर हम जल्द शादी कर लें तो..?'

'मगर उस दाढ़ी वाले आकर्षक ऊंचे
और मेरा बहुत खिंचाव है...।

'तो मैं भी दाढ़ी रखना शुरू कर दूं?'

'अगर तुम दाढ़ी बढ़ाओगे तो एक बकरे की
लगोगे। और तुम्हें दाढ़ी आती ही कहां है? तुम
एक लड़के जैसे लगते हो। लेकिन इस भूमि पर शादी
आग्रह क्यों?

'क्योंकि मैं आर्य हूं और मनुष्य तथा प्राणी
बहुत फर्क है। परंतु अब कल निश्चित है ना
पुरुष ने स्त्री से याचना की।

परन्तु दूसरे दिन पुतली पादरी के समक्ष हाजिर
थी। थोड़ी देर तक इन्तजार की और फिर
लेकर पुतली की तलाश में निकला। कई जवानों
समाचार दिया कि उन्होंने तिस्ता के पूर्व की
पुतली और करतार को देखा था।

जीप को छोड़ वह तिस्ता की ओर भागा। थोड़े समय बाद उसकी आंखों ने जो दृश्य देखा वह अति विभत्स था।

एक वृक्ष की शाखा पर दो मनुष्यों के खाकी कपड़े लटक रहे थे। दूर....दूर...करतार और पुतली....यशपाल सोच भी न सका और दूसरे ही क्षण रिवोल्वर उसकी कमर बेल्ट से अलग था। परंतु....परंतु...ऐसे समय [illegible]। वह चुपचाप लौट पड़ा। थोड़े समय बाद ही पुतली केम्प में आई और यशपाल से कहा कि वह उसके साथ शादी करने को तैयार थी।

'शादी क्या मतलब है इसका?' आगे यह कुछ न बोल सका। उसका गला भर गया। वह इतना ही बोल सका, पुतली...मैं..मैं...तुझे चाहता हूं।

पुतली आगे बढ़कर उसके सिर के बाल सहलाने लगी पर यशपाल ने घृणापूर्वक उसे अलग कर दिया। अचानक यशपाल को समग्र तन बदन से जकड़कर उसके होंठ चूमकर पुतली चली गई। जाते जाते टेबल पर एक चिट्ठी भी रख गई। थोड़े समय पश्चात् होश संभालते हुए उसने चिट्ठी को हाथ में लिया और पढ़ा...।

करतार सिंह चीनियों का जासूस है...।

'योग्य समय आ पहुंचा है...।

यशपाल ने जल्दी ही केम्प कप्तान को खबर दी। शाम को जब जांच पड़ताल की गई तब पुतली और

करतार गायब थे ।

एक जीप में चार जवानों के साथ यशपाल कप्तान ने उनका पीछा किया । पैर के निशान करतार को देखते ही यशपाल ने उसपर गोली च दी । पुतली ने हाथ ऊपर कर अपने आपको शरण में दिया ।

आखिर नीच हमेशा नीच ही रहते हैं । उन व्यवहार कभी नहीं सुधरता ।पुतली ने होंठ दबा लिये।

'बोल......वेश्या....बोल, कौनसा संदेश पहुचाया है'

'करतार जासूस का । यह मैंने ही बताया था। चीनि को बिलकुल गलत संदेश पहुंचाकर हम कैम्प की ओर रहे थे ।

'Same old Story । Double game ।' मूर्ख औरत हम क्या तुम्हारे जाल में इतनी जल्दी फँस जायेंगे ? तू जासूस है ना ? तूने ही तो अपनी देह करतार को सौंपी थी चलो जीप में बैठो । हरामजादी ! यशपाल ने पुतली तमाचा लगाते हुए कहा ।

जीप चली । स्त्री की आंखोंमें से आंसुओं की धारा निकली । पुतली कप्तान के पास याचना कर रही थी 'आप कृपया मेरा समाचार हेडक्वार्टर्स में पहुंचा दीजिये । मई की चौबीस तारीख को जलपाईगुरी एक्सप्रेस जब आसाम के थोड़ी दूरसे गूजरेगी तो चीनी वहां हमला करेंगे। आज से

दो दिन बाद हजारों पैरेशूट चाईनीज केम्प में उतरेंगे जिससे कि हमारा ध्यान उस तरफ केंद्रित हो। मगर हम दोनों तरफ बल एकत्रित करें तो हम जीत सकते हैं, आखिर........ ... आखिर......यह भूमि अपनी है।

'केप्टन......केप्टन......इस स्त्री की जीभ खींच लो। इस देशभक्तनी को जिन्दा जला दो। यह भूमि अपनी ही है कहनेवाली इस जासूस, वेश्या के हाथ पैर काटकर फेंक दो। ......नीच......हरामखोर.......थू......कहते हुये यशपाल ने पुतली पर थूका।

'केप्टन......केप्टन......यह महत्व के समाचार सुन लो। इस समय पाकिस्तान की तरफ से कोई हमला न होगा। इसलिये गौहाटी स्पेशल डिवीजन को तिस्ता के केम्प पर और जलपाईगुरी एकसप्रेस के रास्ते पर रखना......।'

पुतली केम्प में लाई गई और जंजीरें उसके हाथों में जकड़ दी गई। एक तंबू में वह उदास नयनों से बैठी थी और जवान उसे देखकर पूछते 'क्यों पुतलीबाई चलोगी ?'

केप्टन ने हेडक्वाटर्स से संपर्क किया और बातें बतलाई। जलपाईगुरी एकसप्रेस पर हल्ला होगा और जैंतिया पर्वत पर दुश्मनों के पेराशूट सैनिक उतरेंगे तब पाकिस्तान की सीमा से कोई हरकत न होगी। इन बातों का हेडक्वाटर्स की ओर से भी समर्थन मिला। क्योंकि हरएक देश में जासूस रहते हैं।

जलपाईगुरी एक्सप्रेस

मई......चोबीस की रात को......जलपाईगुरी एक्सप्रे चली आ रही है।

जैंतिया पर्वत शांत हो गया है...। शांति...... शांति... अचानक किया हुआ हमला सफल न हुआ। एक तो यह मायके वतन की भूमि थी ...जागृत गौहाटी डिवीज़न, संपूर्ण तैयारी और हृदय में सुलगतीं ज्वाला जैसी राष्ट्र भावना......दुश्मनों के दांत खट्टे हो गये।

× × × ×

धीरे धीरे दुश्मनों के शव सड़ने लगे। गीधों की महफिल देखकर 'ची सीट' करते हुयें दूसरे पक्षी घबरा कर भाग गये। काले कौवे बगुलों की टोली भी गीधों को देखकर जल उठी।

× × + ×

जहां से जलपाई गुरी एक्सप्रेस शुरू होतीं है वहां एक दाढ़ीवाला आदमी भीख मांगा करता है। भारत के सर्वोच्च खिताब उसके मैले कपड़ों पर लटक रहे हैं। यह वही कपड़े हैं जो उसने उसी दिन पहने थे जब पुतली ने उसे प्रेम की मोहर दी थीं।

मैं भी दाढ़ी बढ़ानी शुरू करूं।

तुम दाढ़ी बढ़ाओगे.......तब तो तुम बकरे की तरह लगोगे। और तुम्हें दाढ़ी आती ही कहां है। तुम्हारा मुह तो लड़की की तरह है।

बेचारा यशपाल! पुतली की तलाश में भटक रहा है।

आसाम को बसाने की योजना बनाने वाले लेखक को उसने पत्र लिखा। प्यारे भैया... देश को जागृत करने वाले भाई....अपने विकसित दिमाग से ऐसी तरकीब सोच कि मेरी पुतली मुझे मिल जाये। उससे कहना की करतार बुरी तरह घायल हुआ था पर बच गया। उसे आजीवन कैद की सजा हुई।

पुतली कहीं चली गई है...और यशपाल उसकी खोजकर रहा है। सारे देश पर अब आक्रमण का भय खत्म हो गया है। क्योंकि तैयार पड़ोसी के घर का दरवाजा कौन खटखटा सकता है।

रहने दो ......उसका मन तो गुनहगार का था ना। आपको इन बातों में कभी भी मजा न आयेगा जब तक आप जलपाईगुरी में सफर न करें।

आसाम नगर बस गया है किन्तु यशपाल का दिल सदा जल रहे स्मशान के समान बन गया है। किन्तु जलपाईगुरी एक्सप्रेस के डिब्बे में प्रत्येक रात को एक आदमी भीख मांगा करता है......।

एक दिन एक आदमी यशपाल को आसाम के नगर में ले गया। वहां पुतली यशपाल को देखकर दौड़ी आई और उसके बाहुओं में समा गई। तुम अब तक कहां थीं? मैं पागल न हो जाऊं इसलिए मुझे भीख मांगने भी न दी। पुतली! तुम मुझे छोड़कर जाओगी तो नहीं और इस तरह जलपाईगुरी एक्सप्रेस मुलाकात दो दिलों के मिलन में बदल गई।

* धर्मोपदेश *

(प्रथम खण्ड)

स्वामी रामतीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी तथा चुने हुए धार्मिक (वेदान्त परक) प्रवचनों का संग्रह। मानव जन्म सार्थक कर नित्य सुख प्राप्त करने के लिये अतीव सुन्दर सुयोग्य रूप से स्वामी रामतीर्थ जी ने देश--विदेशों में पर्यटन करके अपने स्वानुभव को बताया है। हरेक घरमें नित्य पठन पाठनकर सुख--शांति का लाभ लीजिये।

पृष्ठ संख्या ३८४ कीमत ४--०० डाक व्यय अलग।

द्विरंगी आसन चित्रपट

बहुरंगी आसन चित्रपट में नित्य उपयोगी १७ आसनों का संग्रह है। रोगों से मुक्त होकर सदा सुदृढ़ शरीर बनाए रखने के लिये आकर्षक चित्रपट अवश्य मंगवाइये। आसनों के नाम तथा लाभ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं। डाक व्यय के साथ ३-०० रु.

प्राप्तिस्थान

श्री. रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

विश्व विहार

ले.— कालूभाई वसिया

(गतांक से आगे)

चीन का प्राचीन तत्त्वज्ञान

चीन में ईसवी सन् से पूर्व छठी शताब्दी में लिओत्से नामक महान तत्त्वज्ञानी (दार्शनिक) हो गये हैं। इनका दर्शन भारत और ग्रीक के साथ कुछ अंशों में मिलता-जुलता है। उसके दर्शन का एक ही शब्द 'ताउ' है। 'ताउ' शब्द ब्रह्म शब्द जैसे विशाल अर्थ का उद्बोधक है। वही विश्व का कारण और मूल तत्त्व है।

ताउ आकाश से ऊंचा और उससे भी परे और पहले का है। काल से पहले भी उसका अस्तित्व था वह सनातन अविकारी और सर्वव्यापी है। ताउ शब्द का मूल अर्थ है आकाश मार्ग। वह व्यक्ति नहीं, परंतु अस्ति-नास्ति—सबका मूल है-उसके दो भिन्न-भिन्न दृश्य हैं। विश्व में कुछ भी इच्छा के बन्ध में रहकर नहीं होता। सब स्वयमेय होता रहता है।

ताउ से एकता का सृजन होता है और एकता से द्वैत की उत्पत्ति होतीं है तथा द्वैत में से एकता का जन्म होता है। एकता के आधार पर सारी प्रवृत्ति चलतीं रहतीं है। ताउ किसी वस्तु विशेष का नाम नहीं। नामकरण करने से वह सीमित बन जाता है। फिर भी उसके बिना कुछ होता नहीं। निष्क्रियता में से क्रिया का उद्भव आकाश में होता है और आकाश-

पृथ्वी का सुमेल होता है। इसी सुमेल से सारी होती है। जहां मानव में मृत्यु का प्रवेश हो, ऐसी नहीं रहती, उसे ताउ कहते हैं।

ईरान का दर्शन

ईरान में ईसा की तीसरी शताब्दी में मानेस नाम का महान तत्त्व वेत्ता था। वह विश्व के मूल कारण को सर्वव्यापी सूक्ष्म तत्त्व के रूप में मानता था, अतः उस मतको सूक्ष्मतत्त्ववाद कहते हैं। सूक्ष्म तत्त्वके दो रूप हैं- और मन अथवा स्थूल और सूक्ष्म। इन्हीं दो तत्त्वोंसे विश्व सृष्टि हुई है। वस्तु का स्थूल रूप अमंगल मूलक सूक्ष्म रूप मंगल का द्योतक है। इसका नाम मानेसवाद है।

द्वि—विश्व

द्वि—विश्व या दो विरोधी तत्त्वों को बहुत से मानते हैं। उसे वैज्ञानिक समर्थन प्रदान करनेवाले अमेरिका स्थित केलिफोर्नियो-विश्वविद्यालय के नोबल पुरस्कार विजेता प्रो० डा० एमिलो सेग्री हैं। उनका कथन है एक विश्व की मान्यता भ्रांतिपूर्ण है। विश्व एक नहीं बल्कि दो हैं। यदि ऐसा न होता, तो कहीं भी सं नहीं होता। विश्व में प्रत्येक वस्तु के अन्दर परस्पर विरोधी और सुसंगत इस प्रकार दो तत्त्व या गतियां हैं वे परस्पर टकराती हैं, फलतः सबका सृजन होता है सभी वस्तुएं, सभी विचार, और विधान संघर्षों से अस्तित्व धारण करते हैं। एक अकेला सृजन में स

नहीं हो सकता । एक में संघर्ष या टक्कर नहीं होती। एक में सुख और आनन्द भी संभव नहीं। एक का कोई मूल्य नहीं, कोई महत्त्व नहीं। एक शून्य है। विश्व शून्य नहीं, एक नहीं, बल्कि युगल—जोड़ों से सुगठित है और एक के सामने उसका विरोधी दूसरा विद्यमान है।

मूल योगवाद

योग के अर्थ अनेक होते हैं। एक जुड़ना-उसके साथ एकाकार हो जाना-अर्थात् सत्य के साथ जुड़ना-तादात्म्य बोध करना। दूसरा अर्थ है पूर्णता में मिल जाना-पूर्ण बन जाना। अद्वैत मत के अनुसार समग्र इन्द्रिय-ज्ञान से पृथक हो जाना-परे पहुंच जाना ही सच्चा योग है। योग का यही उद्देश्य भी है। आत्मा को पूर्णत्व की स्थिति पर प्रतिष्ठित करने के लिए मन को दबा देने की जरूरत है। सभी मानसिक गतियां नष्ट हो जाने के पश्चात् ही भिन्नता दूर होती है।

एकाग्रावस्था द्वारा ही परम सत्य (ईश्वर) को प्राप्त किया जा सकता है। सभी योगी, बौद्ध योगी, खष्टान योगी, हिन्दू योगी आदि का उद्देश्य एक ही है, मात्र तात्त्विक अन्तर है। एक योगी आत्मा के अस्तित्व को नष्ट करने के प्रयास करता है और दूसरे प्रकार का योगी परमात्मा में मिल जाने की साधना करता है। योग का आधार अन्तर्ज्ञान है—वह सर्वेश्वरवाद की उपज है। जो योगी अपने आत्मा से ईश्वर को प्राप्त करने की इच्छा रखता है, वह प्रकटीकरण की बात को

जान नहीं सकता । अपनी आत्मा में सभी साधनो उपलब्धि संभव है उसे गुरु या शास्त्र की आवश्यक नहीं । वेदान्त और योगशास्त्र की मान्यता है कि मा जिसकी खोज में लगा हुआ है, वह ईश्वर स्वयं ही है तन और मनका विस्मरण कर देने से अपने आपको पहचाना जा सकता है—आत्मज्ञान प्राप्त या जा सकता है और परम चैतन्य में लीन होकर स्वरूपानन्द अनुभव किया जा सकता है । योग का महान उपास प्लोटिनस मिश्र में ईसा की तृतीय शताब्दी में हु था । उसमें रोमनों की सभ्यता और ग्रीक का तत्त्व ज्ञा और अरबों की संस्कृति का मिलन हुआ था । वह वेदां ज्ञान की तरह "सब कुछ मैं हूं" और "सब कुछ मुझ है"-ऐसी विशाल भावना रखता था । यह भावना ज्ञा का छोर है । पूर्वीय देशों के योगियों के तत्त्व ज्ञान निर्व्यक्तित्व के विचारों की मान्यता अधिक है औ पश्चिम के योगियों में व्यक्ति वमूलक विचारों प्राधान्य है । दोनों की अवलोकन दृष्टि भिन्न-भिन्न है निर्व्यक्तित्व की दृष्टि के अनुसार सर्वस्व ईश्वर है, अत उसके साथ हम सब एक रूप हैं, इस सत्य की अनुभूति कर लेना अंतिम ध्येय है, फलतः इस ज्ञान का उद्भव हुआ कि संसार की सभी वस्तुओं से पृथक रहना चाहिए । जगत् मिथ्या है । जो इन्द्रियातीत है, वही वास्तविक सत्य होता है, अतः अदृष्ट प्राप्त करना और दृष्ट को छोड़ देना धर्म है । विश्व व्यापी सत्ता दृ

नहीं, द्रष्टा है । श्रोतव्य नहीं, श्रोता है । ज्ञातव्य नहीं, ज्ञाता है। यही ब्रह्म या आत्मा है ।

सापेक्षवाद

सापेक्षवाद के संस्थापक जर्मन यहूदी आइन्स्टीन थे। उन्होंने ब्रह्माण्ड में झांककर प्रकृति विराट् शक्ति को पकड़ लिया था और यह प्रमाणित कर दिया कि विश्व सब कुछ सापेक्ष है । विश्व में सत्य-जैसी कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं, बल्कि सत्यांश जैसा कुछ है। विश्व में सब-कुछ एक दूसरे के आधार पर स्थित है। मानव का सारा ज्ञान और सत्य भी सापेक्ष है। मात्र एक प्रकाश की गति निरपेक्ष है। प्रकाश की गति एक सेकेण्ड में एक लाख छियासी हजार मील की है। कुछ दूरवर्ती तारों के प्रकाश को पृथ्वी तक पहुंचने में १० लाख वर्ष लगते हैं, अतः आकाश समय का माप है और समय आकाश का माप है, अतः दोनों सापेक्ष हैं और एक दूसरे पर अवलम्बित हैं, परन्तु पदार्थों की गति के दो पहलू हैं। सापेक्षता ऐसी है और यही वास्तविक सत्य है। आइन्स्टीन का मस्तिष्क आठ औंस का था। किसी पैगम्बर का मस्तिष्क भी इतना महान नहीं होगा। अतः आइन्स्टीन ने प्रमाणित किया है कि विश्व का लोकपदार्थ गतिवान है। वह अपनी गति के परिमाण में अन्य प्रत्येक के साथ संबद्ध है। यह सापेक्षता अकेले पदार्थ की गति को लागू नहीं होतीं, बल्कि गति की दिशा को भी लागू होती है। अतः पदार्थ की गति और दिशा दोनों सापेक्ष हैं। उसके साथ पदार्थ का कद भी जुड़ा हुआ है, जिससे घटना

और परिमाण एक दूसरे के आधार पर अस्तित्व रखते हैं। देखने वाले मनुष्य और उसके देखने का परिमाण इन्हीं से जगत् का निर्माण होता है। परंतु इसमें स्वतन्त्र तत्त्व एक ही है दूसरा तुलनात्मक रूप है।

सापेक्ष शब्द एक अर्थी नहीं, अपितु द्वि-अर्थी है। अतः द्वैत भी नहीं, अद्वैत भी नहीं। विश्व में सब एक दूसरे के आधार पर अस्तित्व रखते हैं। एक नहीं, तो दूसरा भी नहीं।

अब तक मान्यता थी कि प्रकाश आकाश में उत्पन्न होता है, परंतु यह मिथ्या है। प्रकाश आकाश को उत्पन्न करता है। आकाश वर्तुलाकार है, अतः आकाश में उड़ते हुए रज कण, सूर्य, ग्रह, सभी अनंत की परिधि पर उड़ रहे हैं, अतः जिस तरह आकाश सापेक्ष है। उसी तरह समय भी सापेक्ष है। भूत, वर्तमान और भविष्य– यह सापेक्ष में तीन विन्दु हैं, तथैव सभी वस्तुयें और उसके माप (परिमाण) सापेक्ष हैं। लम्बाई चौड़ाई आदि सभी माप सापेक्ष हैं। यदि कोई वस्तु प्रकाश की गति से गति करे, तो वह वस्तु शून्य बन जाती है। शून्य तथा प्रकाश में लंबाई-चौड़ाई नहीं होती। लंबाई-चौड़ाई वस्तु की अपेक्षा में है अतः काल और देश के परिमाण भी सापेक्ष हैं। इसी प्रकार सभी वस्तुयें और भावनायें सुःख दुःख आदि प्रेम, ज्ञान सब कुछ सापेक्ष ही है। द्रव्य और शक्ति भी भिन्न नहीं, बल्कि संयुक्त हैं और एक दूसरे में रूपान्तर प्राप्त

कते हैं । छटांक पदार्थ के नाश से १० हजार हार्सपावर की बिजली उत्पन्न होती है । गति के चक्कर से इलेक्ट्रोन्स पृथक प्रवाहित होने लगते हैं । इसी को विद्युत प्रवाह कहते हैं ।

प्रकाश का गठन परमाणुओं से हुआ है । वह न्यूटन के नियम से दुगुना फटता-फैलता है, परन्तु सबसे बड़ी त यह कि बिन्दुओं के बीच का अन्तर सीधी रेखा नहीं बल्कि फैली हुई रेखा है और विद्युत-चुम्बकी तरंगें तथा गुरुत्वाकर्षण दोनों संयुक्त तथा अविभाज्य हैं ।

सापेक्षवाद के नियमानुसार विश्व में प्रत्येक पदार्थ की गति सापेक्ष होती है । प्रत्येक गतिमान पदार्थ के आस पास और उसमें चलती प्रत्येक क्रिया के गुण धर्म मानो न हों, इसी प्रकार अनुभूत किये जाते हैं । गतिमान पदार्थ के समय का माप भी न्यूनाधिक है—होता है । वेगवती गति करते हुये पदार्थ का समय धीमा पड़ जाता है । गतिमान पदार्थ के—द्रव्य के समूह का माप भी उसके वेगपर आधार रखकर बढ़ता है । यह परिवर्तन अत्यन्त सूक्ष्म होता है । परन्तु जैसे—जैसे वेग प्रकाश के वेग के निकट पहुंचता जाता है, तदनुसार उसका माप भी अधिकाधिक तेजी से बढ़ता जाता है । प्रकाश कण—फोटोन को भी द्रव्य होता है और वह भी सूर्य के गुरुत्वाकर्षण के बल से चलित होता है । विश्व का समग्र ज्ञान सापेक्ष है । जो दिखाई देता है वह भी एक दूसरे को लेकर दिखाई देता है ।

सापेक्ष का अर्थ है दूसरे की अपेक्षा करनेवा सापेक्ष शब्द नाम नहीं, विशेषण है। वह द्वैत नहीं, अद्वैत भी नहीं। एक है, तो दूसरा भी नहीं अतः दोनों संयुक्त हैं।

चतुर्थ प्रमाण की खोज

प्रत्येक वस्तु को उसकी मोटाई, चौड़ाई और लंबाई इन तीन परिमाणों से मापा जाता है, परंतु आइंस्टीन ने देश और काल दोनों का एक चतुर्थ परिमाण निकाला है। देश का परिमाण यह है कि वस्तु को ग्रह से दूसरे ग्रह पर ले जाया जाये, तो उसके रूप परिवर्तन हो जाता है।

काल का परिमाण यह है कि ठोस वस्तु जो कि समय ठोस थी, वही दूसरे समय में तरल या वायु बन जाती है, अतः काल बदलते ही उस पर दू प्रकार का प्रभाव हो जाता है। इस प्रकार काल और देश दोनों मिलकर एक चतुर्थ परिमाण वस्तु के मा को लागू होता है।

शब्द ब्रह्म

शब्द ही ज्ञान, शब्द ही प्रेम और ईश्वर है। शब्द अविनाशी तत्त्व है और उसी से सबका सृजन हुआ है सापेक्ष-निरपेक्ष शून्य, विश्व—लय, प्रलय,—यह शब्द ही हैं। शब्दों के सिवा अन्य किसी का अस्तित्व नहीं शब्द उठता है, प्रशमित होता है, अतः वह हांफता है संकुचित होता है और फूलता है। यह क्रिया निरन्तर

चलती रहती है और उसी से सबकी रचना होती है-सबका सृजन होता है । ध्वनियों के आन्दोलनों से हिमालय जैसे पर्वतों की सृष्टि होती है और सूर्य मंडल वाष्प बनकर उड़ जाते और शून्य बन जाते हैं । णु बम का विस्फोट १०० दिन में सूर्य में पहुंचता है र सूर्य के धब्बों में परिवर्तन करता है। सूर्य से टकरा ह विस्फोट प्रतिध्वनि रूप में पुनः १०० दिन में वी पर वापस पहुंचता है और समुद्र में ज्वार तथा पृथ्वी में भूकम्प की सृष्टि करता है। शब्द से विभिन्न आकारों का निर्माण होता है । शब्द को नादब्रह्म भी कहा जाता है। सब कुछ शब्द का जाल तथा शब्द की माया है । शब्द के सिवा विश्व में अन्य कुछ भी ठोस नहीं । ज्ञान शब्द सर्वप्रथम ब्रह्मा को सुनाई दिया था, इसीलिये वेद श्रुति कहलाते हैं और प्रार्थना को संगीत कहा जाता है । समग्र दृश्य अदृश्य जगत् शब्दमय है—शब्दरूप है ।

मार्क्सवाद—वस्तुजड़वाद

वस्तु-जड़वाद की राजधानी मास्को है। इसके संस्थापक जर्मन दार्शनिक कार्ल मार्क्स थे । कार्ल मार्क्स के गुरु जर्मन दार्शनिक हेगल का कहना था कि जगत् का मूल मन है। मन में सब समाया हुआ है और इसी के द्वारा सबकी उत्पत्ति होती है। कार्ल मार्क्स ने कहा—यह झूठ बात है । मन वास्तविक नहीं, बल्कि भौतिक वस्तुओं का विकास है। मुख्य वस्तु है और विकास-

नियम के आधार पर वस्तु से ही सृजन होता है वस्तु ही विकास प्राप्त कर मन, विचार, बुद्धि सब सृजन करती है। विश्व में मात्र वस्तु ही सत्य है समग्र दृश्यमान विश्व वस्तु के विकास का परिणा है, आत्मा, मन आदि मानसिक क्रिया प्रतिबिम्ब हैं। यह सब गतिमान क्रिया के अंग हैं, मूल सत्य नहीं। वस्तु ही विश्व का विकसित रूप है। ईश्वर आत्मा आदि असत्य हैं। उनका अस्तित्व ही नहीं, ऐसी दशा में उनकी खोज कैसे की जा सकती है? ईश्वर, आत्मा मात्र सुविध पूर्ण शब्द हैं वह वस्तु से स्वतंत्र कभी रह नहीं सक विश्व में सभी वस्तुएं बढ़ती हैं—विकसित होती है और एक दूसरे पर आधार रखतीं हैं, अतः सापेक्ष हैं विश्व में कुछ तत्त्व बढ़ते जा रहे हैं और कुछ मिटते जा रहे हैं। वस्तु का विकास धीरे-धीरे होता रहता है परंतु जब वह विकास सीमा के बिन्दु पर पहुंच जाता है, तब उसकी विकास क्रिया भंग हो जातीं और उसमें से नयें तत्त्वों का जन्म होता है। विकास के कारण आन्तरिक संघर्षण हैं।

मार्क्स के सिद्धांत

१—विकास का नया रूप ही पुनर्जन्म है, अन्य बातें धार्मिक पाखण्ड हैं।

२—मानव समाज वस्तुप्रकृति का अंग है, वस्तु से उत्पन्न हुआ है और वस्तु के आधार पर विकसित है। ईश्वर आत्मा के आधार पर कदापि नहीं।

३—सर्वांगीण शारीरिक विकास से आध्यात्मिक नैतिक विकास प्रकट होता है।

४—जगत् के दुःख का कारण असमानता है। सभी दुःखों और कष्टों का जन्म स्वामित्व के अधिकार और पूंजीवाद से होता है। उसके नाश का उपाय क्रांति है।

५—मात्र ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त नहीं होती, बल्कि क्रिया से ही ज्ञान और मुक्ति की उपलब्धि संभव है।

६—धर्म और गुरु मानव आत्मा को पराधीन रखते हैं। वे सड़ गये हैं। उन्हें हटा देना चाहिये।

७—व्यक्त-अव्यक्त सभी रूपों में जीवन एक समान है और एक ही रूप में विद्यमान है, अतः सबको समान अधिकार देना तथा मैत्री-भ्रातृ भाव का व्यवहार रखना चाहियें।

८—सुख का वीज व्यक्ति में नहीं, समष्टि के कल्याण कार्य में हैं। अकेला मानव जीवन को स्थिर रखने में समर्थ नहीं हो सकता, अतः एकाकी सुख इष्ट नहीं।

९—विश्व में मूल एक ही वस्तु है। उसमें एकता और एकतानता व्याप्त हो रही है। उसकी सुसंगति ही सुख है।

१०—मन की आध्यात्मिक कल्पना से आकाश-कुसुम चुनने की अपेक्षा भूमिवर्ती कंकड़ बीनना अधिक उत्तम है, क्योंकि वे कभी काम आ सकते हैं।

यही विशुद्ध मार्क्सवाद है। यह विश्व में वस्तु को सत्यात्मक मानता है। वह धर्म-प्रचार को दाम्भिक कार्य कहता है। उसके मतानुसार धर्म एक सड़ी-गली वस्तु बनकर रह गया है। वह मानवीय आत्मा को पराधीनता में जकड़ रखनेवाला और विचार का वन्य स्वरूप है।

—क्रमशः

रामचरित मानस

(रामायण)

टीकाकार –

योगीराज

श्री उमेशचन्द्रजी

(गतांक से आगे)

गावहिं गीत मनोहर नाना,
अति आनन्द न जाय बखाना,
तब सुमन्त द्वय स्यन्दन साजी,
जोते रवि—हय निन्दक बाजी ।

वे नारियां तरह-तरह के मनोहर गीत गा रही है अयोध्या में उस समय इतना आनन्द उमड़ पड़ा, जिस वर्णन करना असम्भव है । इसी समय मन्त्री सुमन्त्र ने रथों को अच्छी तरह सजाकर उनमें ऐसे घोड़े जुतवाये जो सूर्य के घोड़ों को भी निष्प्रभ बना रहे थे।

दोउ रथ रुचिर भूप पहं आने,
नहिं शारद पहं जाहिं बखाने,
राज समाज एक रथ साजा,
दूसर तेज-पुंज अति भ्राजा ।

वह दोनों सुन्दर रथ राजा दशरथ के पास लाये गये, जिनकी सराहना वाग्देवी सरस्वती भी नहीं कर सकती। एक रथ को राजसी उपकरणों से पूर्णतया सुसज्जित किया गया। और दूसरा भी अतीव तेज-पुंज और समलंकृत था।

तेहि रथ रुचिर वसिष्ठ कहं, हरषि चढ़ाय नरेश,
आपु चढ़े स्यन्दन सुमिरि, हर, गुरु, गौरि, गणेश।

उस तेजोमय सुन्दर रथ पर महाराज ने वसिष्ठ को बैठाकर आप भी शंकर, गुरु, गौरी और गणेश का स्मरण कर रथारूढ़ हुयें।

सहित वसिष्ठ सोह नृप कैसे,
सुर-गुरु संग पुरन्दर जैसे,
कर-कुल रीति- वेद विधि राऊ,
देखि सबहिं सब भांति बनाऊ।

वसिष्ठ सहित महाराज दशरथ इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, जैसे देवगुरु-बृहस्पति के साथ पुरन्दर-इन्द्र शोभायमान होते हैं। सब कुलाचार और वेदोक्त विधि-विधान संपन्न कर और पूर्ण रूपसे सब तरह से सुसज्जित देखकरः-

सुमिरि राम, गुरु आयसु पाई,
चले महीपति शंख बजाई,
हरषे विबुध विलोकि बराता,
बरषि सुमन सुमंगल दाता।

राम का स्मरण कर और गुरु का आदेश पाकर महाराज ने शंख बजाकर प्रस्थान किया। बारात देखकर देवगण प्रसन्न हो उठे और मंगलमय प्रसूनों की वर्षा करने लगे।

भयो कोलाहल हय-गय गाजे;
व्योम बरात बाजने बाजे,
सुर नर नारि सुमंगल गाईं,
सरस राग बाजहिं शहनाईं।

चारों ओर कोलाहल हो उठा, हाथी—घोड़े गरजने ल आकाश और बारात में बाजे बजाये जाने लगे। देवनारिय और मानवीय नारियां मंगल गान करने लगीं और अप मधुर राग से शहनाइयां बजने लगीं ।

घंट-घंटि ध्वनि बरणि न जाहीं,
सरव करहिं पाइक फहराहीं,
करहिं विदूषक कौतुक नाना,
हास कुशल, कल गान सुजाना।

घटों और घंटियों की ध्वनि का वर्णन किया नहीं सकता। पैदल चलनेवाले नाना प्रकार के खेल दिखा रहे हँसी-मजाक में कुशल और मनोहर गायन में प्रवीण वि षक नाना प्रकार के कौतुक कर रहे हैं।

तुरग नचावहिं कुंवर वर, अकनि मृदंग निशान।
नागर नट चितवहिं चकित, डगहिं न ताल बंधान।

मृदंगों और डंकों के स्वर की ताल पर राजकुम अपने घोड़ों को नचा रहे हैं। उनका ताल-स्वर कहीं भं नहीं होता। कला कुशल नट आश्चर्य-चकित भाव यह दृश्य देख रहे हैं।

बनै न बरनत बनी बराता,
होहिं सगुन सुन्दर शुभदाता,

चारा चापु वाम दिशि लेई,
मनहुं सकल मंगल कहि देई ।

बारात का बनाव वर्णनातीत है। सुन्दर शुभदाता शकुन हो रहे हैं। बाईं ओर नीलकण्ठ चारा ले रहा है। मानों सने समग्र मंगलमयता प्रकट कर दी।

दाहिन काग सुखेत सुहावा,
नकुल दरश सब काहू पावा;
सानुकूल वह त्रिविध बयारी,
स-घट स-बाल आव वर नारी।

दाहिनी ओर काग खेत में सुशोभित है। नेवले का दर्शन भी सबको प्राप्त हुआ। अनुकूलता पूर्वक त्रिविध (शीतल-मन्द-सुगन्ध) वायु बह रहा है। जल पूर्ण कलश और और बालक सहित सुन्दर स्त्रियां भी सामने से आयीं।

लोवा फिरि-फिरि दरश दिखावा,
सुरभी सम्मुख शिशुहिं पियावा,
मृगमाला फिर दहिने आई,
मंगलगन जनु दीन दिखाई ।

लोमड़ी बार—बार दिखाई दे जाती है। गाय सामने बछड़े को दूध पिलाती हुई मिली। दाहिनी ओर फिर मृगों का झुंड आ पहुंचा, जिसने मानो समग्र मंगलों का दर्शन करा दिया।

क्षेमकरी कह क्षेम विशेखी,
श्यामा वाम सु-तरु पर देखी,

सम्मुख आयौ दधि अरु मीना,
कर पुस्तक दो विप्र प्रवीना,।

क्षेमकरी चिड़िया ने विशेष रूप से योग क्षेम का सन्दे
दे दिया । श्यामा भी बायीं ओर सुन्दर वृक्ष पर सुशोभि
दिखाई दी। सामने दही और मछली आ पहुँचे और हाथ में
पुस्तकें लिये दो ब्राह्मण भी आयें।

मंगलमय कल्याणमय, अभिमत फल दातार,
जनु सब सांचे होन हित, भयें सगुन एकबार।

मंगलमय, कल्याणमय और अभिमत (इच्छित) फल देनेवाले सभी शकुन मानो अपनी सत्यता का प्रकट करने के लिए एक ही साथ हो गए।

मंगल सगुन सुगम सब ताके,
सगुण ब्रह्म सुन्दर सुत जाके,
राम सरिस वर; दुलहिन सीता,
समधी दशरथ—जनक पुनीता,
अस जिय जानि सगुन सब नाचे,
अब कीन्हें विरंचि मोहिं सांचे।

उस सुकृति के लिए सभी मंगलकारी शकुन सुगम हैं। जिसके घर में स्वयं सगुण ब्रह्म पुत्र बनकर अवतरित हुआ है। जहां राम वर हैं और सीता वधू हैं और पुण्यात्मा दशरथ और जनक समधी हैं। ऐसा महत्तम व्याह-विधान जानकर सारे मंगल शकुन एक साथ नाच उठे यह विचार कर कि विधाता ने आज सचमुच हमें अस्तित्व का महत्व प्रकट करने का अवसर दिया है।

यहि विधि कीन बरात पयाना,
हय-गय गाजहिं, हनहिं निशाना,
आवत जानि भानु-कुल-केतू,
सरितन जनक बँधाए सेतू,
बीच-बीच वर वास बनायें,
सुरपुर सरिस संपदा छायें।

इस प्रकार उस बारात ने प्रस्थान किया, जिसमें घोड़े, हाथी गर्जना कर रहे हैं, डंके बज रहे हैं। सूर्यवंश के केतुरूप दशरथ आते हुए जानकर जनक ने नदियों पर पुल बनवा दियें। मार्ग में स्थान-स्थान पर सुरम्य वास स्थान भी बनवायें, जो सुरपुर के समान स्वर्गीय समृद्धि से परिपूर्ण थे।

असन, शयन वर वसन सुहायें,
पावहिं सब निज निज मन भाये,
नित नूतन सुख लखि अनुकूले,
सकल बरातिन मंदिर भूले।

जहां बारातियों को रुचिकर भोजन, सुन्दर शय्या और वस्त्रादि सब मनोनुकूल प्राप्त होता था। नित्य नवीन सुख प्राप्त कर वह बराती लोग बहुत प्रसन्न हुए और अपने घरों की सुख सुविधा सब भुला बैठे।

आवत जानि बरात वर, सुनि गहगहे निशान,
साजि गजरथ पदचर तुरग, लेन चले अगवान।

नगाड़ों की आवाज सुनकर और बारात को आना जानकर गज, रथ, पैदल, घोड़े आदि सजाकर बारातको लेने चले।

कनक कलश भरि कोपर थारा,
भाजन ललित अनेक प्रकारा,
भरे सुधा-सम सब पकवाने,
नाना भांति न जाहिं बखाने ।

स्वर्ण कलशों में नाना प्रकार दूध, ठण्डाई, शर्बत पेय पदार्थ तथा थालों, परातों आदि अनेक प्रकार भाजनों में भरकर नाना प्रकार अवर्णनीय अमृतोपम पक वान भरकर —

फल अनेक वर वस्तु सुहाई,
हरषि भेंट हित भूप पठाये,
भूषण वसन महामणि नाना,
खग मृग हय गय बहु विधि जाना ।

सुन्दर सुपक्व फल तथा अन्य अनेक प्रकार की वस्तु राजा ने प्रसन्न मन भेंट स्वरूप भेजीं । भूषण, वस्त्र, बहु मूल्य रत्न, पशु-पक्षी, हाथी-घोड़े तथा—

मंगल सगुन सुगंध सुहायें,
बहुत भांति महिपाल पठायें,
दधि, चिउरा उपहार अपारा,
भरि भरि कांवरि चले कहारा ।

अनेक प्रकार के मंगल द्रव्य और शकुनवन्त सुहाव वस्तुएं राजा जनक ने पठाईं । दही, चिवड़ा आदि अगणि उपहार की वस्तुएं कांवरों में भरकर कहार ले चले ।

अगवानन जब दीख बराता,
उर आनन्द पुलक भर गाता,

देखि बनाव सहित अगवाना,
मुदित बरातिन हने निशाना।

अगवानी के लियें आये हुये लोगों ने जब बारात देखी, तब उनके अंग प्रत्यंग पुलक और आनन्द से परिपूर्ण हो गयें। अगवानी करनेवालों को नाना वेशभूषा में सज्जित देखकर बारातियों ने प्रसन्न होकर डंके बजायें।

हरषि परस्पर मिलन हित, कछुक चले बगमेल,
जनु आनंद समुद्र दुइ, मिलत बिहार सुबेल।

वह प्रसन्न मन परस्पर मिलाप के लिए कुछ वेगगति से आगे बढ़ चले, मानो दो आनंद-समुद्र अपनी सीमाओं को तोड़कर मिलने आ रहे हों।

बरषि सुमन सुर-सुंदरि गावहिं,
मुदित देव दुन्दुभी बजावहिं,
वस्तु सकल राखी नृप आगे,
विनय कीन तिन अति अनुरागे।

पुष्प वर्षा कर सुर-सुन्दरियां गा रही हैं और देवगण प्रसन्न होकर दुंदुभी बजा रहे हैं। अगवानी के लियें आयें हुए लोगों ने सभी वस्तुएं राजा दशरथ के आगे रखीं और अतीव प्रेम के साथ विनयावनत हुए।

प्रेम समेत राउ सब लीना,
भै बकसीस जाचकन दीना,
करि पूजा मान्यता बढ़ाई,
जनवासे कहँ चले लेवाई।

राजा दशरथ ने सभी वस्तुएं प्रेमपूर्वक स्वीकार की उपहार बांटे गए और याचकों को दिए गये। नाना प्र से पूजा करकें और बारात का सम्मान और गौरव बढ़ा जनवास के लियें लिवा ले चले।

बसन विचित्र पांवड़े परहीं,
देखि धनद धनमद परिहरहीं,
अति सुन्दर दीन्हेंउ जनवासा,
जहँ सब कहँ सब भांति सुपासा।

चित्र-विचित्र वस्त्रों कें पांवड़े डाले जा रहे हैं, जि देखकर कुबेर का धनाभिमान नष्ट हो जाता है। जनवा भी बहुत सुन्दर दिया गया, जहां सबको सब तरह से आर और सुभीता था।

जानी सिय बरात पुर आई,
निज महिमा कछु प्रकट जनाई,
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई,
भूप पहुनई करन पठाई।

सीता को जब मालूम हुआ कि बारात नगर में आ पहुंची है, तो उन्होंने भी अपनी कुछ महिमा प्रकट की। उन्होंने मन-ही मन स्मरण कर सब सिद्धियों और रिद्धियों को दशरथ का आतिथ्य करने के लिए भेजा।

सिधि सब सिय आयसु अकनि, गईं जहां जनवास,
लिए सम्पदा, सकल सुख, सुरपुर भोग विलास।

सीताका आदेश शिरोधार्य कर सभी सिद्धियां समस्त सुख सम्पदा, तथा देवलोक के भोग विलास के प्रसाधन लेकर जनवास में पहुंचीं।

निज-निज वास विलोकि बराती,
सुर सुख सकल सुलभ सब भांती,
विभव—भेद कछु कोउ न जाना,
सकल जनक कर करहिं बखाना।

अपने-अपने वास बारातियों ने देखे—जहां देव दुर्लभ सुखसामग्री सब तरह से सुलभ थी—उन्हें इस वैभव भेद का कुछ भी ज्ञान न हुआ। वह सब जनक की भूरि—भूरि सराहना करने लगे।

सिय महिमा रघुनायक जानी,
हरषे हृदय हेतु पहिचानी,
पितु आगमन सुनत दोउ भाई,
हृदय न अति आनंद समाई।

सीता की यह महिमा राम को मालूम हो गई। उनका यह प्रेम-भाव देखकर वह प्रसन्न हो उठे। पिता का आगमन सुनकर दोनों भाइयों के हृदय सागर में आनंद का ज्वार उमड़ आया और उसमें समा नहीं रहा है।

सकुचन कहि न सकत गुरु पाहीं,
पितु दर्शन लालच मनमाहीं,
विश्वामित्र विनय बड़ि देखी,
उपजा उर संतोष बिशेषी।

वह संकोचवश गुरु से कह नहीं पा रहे हैं, किन्तु में पितृ दर्शन का प्रलोभन भरा हुआ है। दोनों भाइयों यह विशद विनम्र-भाव देखकर विश्वामित्र मनमें सन्तुष्ट हुए।

हरषि बन्धु दोउ हृदय लगाये,
पुलक अंग, अंबक जल छाये,
चले जहां दशरथ जनवासे,
मनहुं सरोवर तकेउ पियासे,

उन्होंने प्रसन्न होकर दोनों भाइयों को हृदय से लिया। वे भाव गद्गद् हो उठे और उनकी आंखों में प्रेमा उमड़ आये। उनके अंग पुलकित हो वे जनवासे की ओ चल पड़े, जहां दशरथजी विराजमान थे, मानों प्यासा सरोव की ओर जा रहा हो।

भूप विलोके जबहिं मुनि, आवत सुतन समेत,
उठे हरषि सुख—सिन्धु महं, चले थाह—सी लेत।

राजा दशरथ ने जब देखा कि मुनि विश्वामित्र पुत्रों सहित आ रहें हैं, तब वह अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में उठ खड़े हुए, मानो सुख-सिन्धु की थाह पाने के लिए गहराई में आगे बढ़ते ही जा रहे हैं।

मुनिहिं दण्डवत कीन महीशा,
बार-बार पद-रज धरि शीशा,
कौसिक राउ लिए उर लाई,
कहि अशीष पूछी कुशलाई।

राजाने मुनिवर को दण्डवत् प्रणाम किया। वह मुनि की पद-धूलि को बारंबार शिर पर धारण करने लगे। विश्वामित्र ने राजा को हृदय से लगा लिया और आशीष देकर कुशल पूछी।

पुनि दण्डवत् कीन दोउ भाई,
देखि नृपति उर सुख न समाई,
सुत हिय लाय दुसह दुख मेटे
मृतक शरीर प्राण जनु भेटे।

पुनः दोनों भाइयों ने पिता को दण्डवत् किया, जिसे देखकर राजा के हृदय में सुख नहीं समाया-असीम आनन्द हुआ। उन्होंने पुत्रों को हृदय से लगाकर दुःसह दुख को दूर किया, मानों निर्जीव शरीर में अचानक नयें प्राण का संचार हो उठा हो।

पुनि वसिष्ठ - पद सिर तिन नायें,
प्रेम-मुदित मुनिवर उर लायें,
विप्र वृन्द वन्दे दोउ भाई,
मनभावतीं अशीषें पाई

फिर उन दोनो भाइयोंने वसिष्ठके चरणोंपर सिर झुकाया। प्रेम - विभोर मुनिवर ने उन्हें हृदय से लगा लिया। फिर उन दोनों ने ब्राह्मणों का वन्दन किया और मनचाही आशीष प्राप्त कीं।

भरत सहानुज कीन प्रणामा,
लियें उठाय लाय उर रामा,
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता,
मिले प्रेम - परिपूरित गाता,

अनुज-शत्रुघ्नसहित भरत ने रामको प्रणाम किया। रा दोनों भाइयों को उठाकर हृदय से लगा लिया। दोनों भाइयो देखकर लक्ष्मण प्रसन्न हो उठे और प्रेमपूर्वक गले मि

पुरजन, परिजन, जातिजन, याचक मन्त्री, मीत,
मिले यथाविधि सब हि प्रभु, परम कृपाल विनीत।

तदुपरान्त परम कृपामय और विनम्र स्वभाव रा पुरजनों, कुटुम्बियों, जातिबन्धुओं, याचकों, मंत्रियों, मि आदि सबसे यथा विधि मिले।

रामहिं देखि बरात जुड़ानी,
प्रीति कि रीतीं न जाति बखानि,
नृप समीप सोहहिं सुत चारी,
जनु धन धरमादिक तनु धारी,।

रामको देखकर बारातका हृदय शीतल शान्त हुआ। इ प्रेम भाव का वर्णन नहीं किया जासकता। राजा दशरथ आस पास चारों बच्चे इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं मानो धन-धर्मादि चारों पदार्थ साक्षात् शरीर धारण कि बैठे हों।

सुतन समेत दशरथहिं देखी,
मुदित नगर नर- नारि विशेषी,
सुमन बरसि सुर हनहिं निशाना,
नाक- नटी नाचहिं करि गाना,

दशरथ को चारों पुत्रों सहित देखकर जनकपुरके नर नारी अत्यधिक प्रसन्न हो उठे। देवगण फूलों की वर्षा कर नगाड़े बजा रहे और इन्द्र लोक की नृत्यांगनाएं गीत गा-गा कर नाच रही हैं।

—क्रमशः

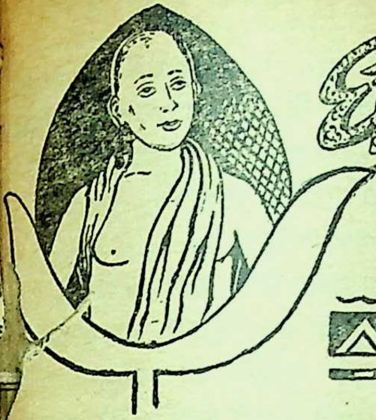

धर्मोपदेश

स्वामी रामतीर्थ.

(गतांक से आगे)

जगत् में माताएं ही ऐसी हैं जो समग्र विश्व का उद्धार कर सकती हैं, अपने देश का उत्थान-पतन करने में समर्थ हैं और प्रकृति लहरों में ज्वार भाटा उत्पन्न कर सकती हैं। महान माता के पुत्र ही हमेशा महान पुरुष सिद्ध हुये हैं। यदि बालक को बाल्यावस्था से ही इन संस्कारों से सुसंस्कृत बनाया, इन सब महान सत्यों के साक्षात्कार के बीज यदि बाल्यकाल से ही बोयें जायें, तो ऐसे बालक भविष्य में कृष्ण या ईसा बन सकते हैं।

माता ही बालक को स्वाभाविक रूप से बना या बिगाड़ सकती है। आपने एक स्पार्टी की माता के संबन्ध में सुना होगा, जिसने युद्ध-भूमि में जाते हुयें अपने पुत्र को कहा था कि "तू या तो तलवार लेकर अथवा तलवार खाकर वापस लौटना। तू मृत या जीवित अवस्था में लौटकर मेरे पास आना, लेकिन पराजित होकर तो कदापि नहीं आना।"

भारत में एक रानी ने अपने पराजित पति को नग घुसने न देने के लिये नगर के द्वार बन्द करा दिये उसने कहलाया था कि—हे राज द्रोही ! तुम अब यहां लौट जाओ । तुम अब मेरे पति नहीं रहे, क्योंकि तु अपने आपको पराजित बनाया है।

इसी प्रकार भारत की एक अन्य रानी ने अपने पु को संपूर्ण स्थिति पर पहुँचा हुआ देखने की प्रति थी, जिसका उद्देश्य अपने पुत्रों को जन्म-मृत्यु बन्धनों से मुक्त करने का था । अपने स्वरूप की अनु करनेवाली सन्तानों का जन्म-मरण नहीं होता । मनुष्य सदा ईश्वरनिष्ठ होते हैं।

उसे अपनी समग्र प्रजा को नर-नारायण बना देने इच्छा हुई थी । यह एक माता की प्रतिज्ञा थी इस प्रतिज्ञा को सिद्ध करने में वह सफल भी हुई उसके सभी पुत्र नर शरीर धारी नारायण बने । कृष्ण और बुद्ध जैसे तत्ववेत्ता और त्यागी बने उन्होंने समग्र जन-समाज पर साम्राज्य स्थापित किया उसने अपनी समग्र प्रजा को जन्म मृत्यु के बन्धन मुक्त कर दिया था । एक नारी ने ही यह सब कि था, परन्तु उसने एतदर्थ कौन सी पद्धति अपनाई थी जब उसके पुत्र छोटी अवस्था के थे । तब वह वेदांत के गीत सुनाती । पुत्रों को गोद में लेकर खेल समय भी वेदांत के गीत गाकर सुनाती तथा दूध पिलाने बैठती, तब भी देवी ज्ञान रूपी दूध

पिलाती । बालकों को पालना झुलाते हुये जब गीत गाती, तब भी उत्तम वेदांत—संगीत उन्हें सुनाती।

इस प्रकार हमें समझ लेना चाहिये कि वह रानी अपने पुत्रों को कैसा संगीत सुनाती होगी। रानी के सातों पुत्र अन्ततः संसार त्याग पूर्वक विरक्त हो गये [illegible] और जीवन मुक्त अवस्था में ही देश-विदेश का भ्रमण करते रहते थे। उनके द्वारा देश विदेश में वेदांत का विस्तार हुआ । उस रानी को एक आठवां पुत्र भी था। उसे पहले सात पुत्रों के समान सुसंस्कृत बनाया नहीं गया था, क्योंकि पिता के लिये यह बात रुचि कर नहीं थी कि यह एक पुत्र भी राज्य छोड़कर चला जाये और पूर्णतः मुक्तावस्था का परम हंस बन जायें। अतः माता वेदांत के मुक्त संगीत सुनाकर उसका पालन—पोषण कर न सकी। फिर भी पुत्र के जीवन में दुःख शोकादि बाधक न बन सकें, एतदर्थ माता को अपनी प्रतिज्ञा का कुछ अंशों में पालन करना आवश्यक था। इस आठवें पुत्र को लालन-पालन के लिये एक दासी के हाथ सौंपा गया, परन्तु जब उसकी माता मृत्यु शय्या पर पड़ी, तब इस पुत्र को उसने अपने पास बुलाया और वेदांत के मुक्ति-संगीत को एक कागज में लिखकर एक रत्नजड़ित सोने की तावीज में मढ़ाकर पुत्र के हाथ में बांध दिया और कहा कि वह इस तावीज को पवित्र रखे। इसके अतिरिक्त उसने उस कागज के सम्बन्ध में बताया कि उसके मनन-

निदिध्यासन करने से प्रत्येक प्रकार के दुःख शो
से दूर रहकर तुम मुक्ति मार्ग के पथिक बनोगे।
आपत्काल को छोड़कर तुम कभी इस ताबीज को
खोलना। कुछ समय के पश्चात् माता और पि
दोनों स्वर्गस्थ हो गयें और वह कुमार राज-सिंहा
पर बैठा। उसने अनेक वर्षपर्यन्त राज्य किया।

एक दिन उसके बड़े भाई अपने पिता की राजधा
में आ पहुंचें और उन्होंने राज्यासनासीन अलर्क ना
अपने बन्धु को सन्देश भेजा कि वह राजसिंहासन
सौंप दे, क्योंकि बड़े भाई के नाते वही राजसिंहा
के सच्चे उत्तराधिकारी हैं। अलर्क के पास जब
सूचना पहुंची, तब वह अत्यन्त भय-विह्वल हो उठा
उसे अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं रहा। अपना रा
वैभव, सत्ता, प्रताप सब चला जायेगा, इस भय से
रो उठा रात्रि में जब वह अपने शयन कक्ष में सो
गया, तब अपने हाथ में माता के हाथों बांधे गये ताबी
पर उसकी दृष्टि पड़ी तथा माता के अन्तिम समय
शब्द भी उसके समक्ष स्फुरित हो उठे। उसने उस
ताबीज को खोला और उसमें लिपटे हुये कागज
उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से पढ़ा।

"तुम शुद्ध हो, तुम अविनाशी हो, सर्वज्ञान स्वरूप और
सर्वशक्ति रूप हो। तुम सर्वशक्ति के नियन्ता, सर्व-
सौन्दर्यदायक और इस विश्व में सब आनन्दरूप हो। य
कभी नहीं मानना कि तुम यह शरीर हो। इस जगत्
की वस्तुओं पर तुम कभी आधार नहीं रखना, इन सबसे

परे ऊपर प्रतिष्ठित रहो। स्वस्वरूप का ध्यान करो उसी का विचार करो। अपने शत्रु और मित्र तुम स्वयं ही हो।"

तावीज के अन्दर बन्द इन महद् वाक्यों से अलर्क को अपने वास्तविक स्वरूप की अनुभूति हुई। उसकी चिंता, उद्वेग और भय पूर्णतः तिरोहित हो गये। आनन्द और उल्लास से उसका रोम-रोम प्रफुल्लित हो गया। उसने कागज में लिखा हुआ गीत पुनः पुनः पढ़ा- उसका बारम्बार पारायण किया। उस गीत के अर्थ और महिमा तथा माता की शुभेच्छा के प्रभाव से वह उद्बुद्ध हो उठा और आत्म-साक्षात्कार की उपलब्धि की। उसके भय-शोकादि भाग गये। जगत् की शुद्ध आशा तृष्णाओं को उसने अन्तिम प्रणाम किया। उसे ऐसा आत्म-विश्वास प्राप्त हुआ, ऐसी आत्मानुभूति हुई और पवित्रता तथा शक्ति से वह ऐसा भरपूर हो उठा कि यह सब पूर्ण वेग से प्रगट हुआ। वह सोना भी भूल गया और एकदम अपने बाहर जाने के वस्त्र पहनकर अपने ज्येष्ठ बन्धुओं से मिलने के लिये चल पड़ा और वहां पहुंचकर वीर घोषपूर्वक उसने पुकाराः—"बन्धुओ! आओ-आओ, मुझे इस भार से मुक्त करो, इस मस्तक को उत्तप्त बना देनेवाले मुकुट—जिसके अन्दर अखिल जगत् का भार है- को आप ले लें और मुझे इस भार से मुक्त कर दो। राजसिंहासन पर बैठकर देश पर शासन करने की कामना रखनेवाले आप सब और मैं एक ही हैं। तुम में मैं हूं

और मुझमें तुम्हारी ही सत्ता विद्यमान है। हममें-तु
किसी प्रकार का भेद नहीं । एक ही आत्मदेव सब
समान रूप से विलसित है अलर्क की यह दिव्यवा
सुनकर और उसके मुखमण्डल पर निःस्पृहता और पवित्र
की आभा प्रतिबिम्बित देखकर उसके भाइयों को आत्मा
हुआ । उन्होंने कहा कि भाई ! हम यहां राज्य लेने नहीं
आयें हैं, क्योंकि हम तो समग्र ब्रह्माण्ड पर राज्य
रहे हैं । हमारी तो मात्र यही इच्छा थी कि तुम्हारा
सच्चा जन्म सिद्ध अधिकार है, वह तुम्हारे अन्दर
निहित है और वह तुम्हें प्राप्त हो और इसी उद्देश्य
हम यहां आयें थे ।

उन्होंने बन्धु को बोध दिया—"बन्धु, अब इन्द्रि
तुम को प्रतारित कर नहीं सकतीं । तुम मात्र इस भू-मण्ड
के ही राजा नहीं, वरन् सूर्य—चन्द्रादि ग्रहों और सम
मानवों के तुम अधीश हो, अनंत और अविनाशी आ
हो । तुम इस विश्व—ब्रह्माण्ड के अनेक सूर्यों के
हो और सब प्रकाशों के प्रकाश ।" अलर्क को
सबका अनुभव हुआ और उसने पुनः वापस जाक
शासन—सूत्र ग्रहण किया । परन्तु वह स्वयं नाटकी
रंगमंच के सूत्रधार कें रूप में ही व्यवहार करता था
वह यही मानता भी था कि मैं नाटक का सूत्रधार हूं
वह राजा ज्ञानी था, अतः शोक-मोहादि उसका स्पर्श
कर नहीं पाते थे। उसने महान राजा के रूप में शासन
चलाया और अखिल भू-मण्डलपर सर्व श्रेष्ठ विजयी राजा सि

हुआ। वह विजय की खोज करने नहीं गया था, बल्कि विजय ने ही खोज कर उसे प्राप्त किया था।

शाश्वत आनन्द और अखण्ड शांति तुम्हारे पीछे पीछे चलनेवाले अनुचर तो हैं ही, साथ ही तुम्हीं आनन्द और शांति के स्वरूप हो। तुम अपने केन्द्र—मध्य—बिन्दु मूल के ज्ञान की प्राप्ति करो, उसकी अनुभूति करो और सदा, सर्वकाल उसी में स्थित रहो।

हजरत मूसा का दण्ड

अमेरिका के 'ओल्ड फेलोज हाल' में भाषण देने के पश्चात् राम से एक प्रश्न पूछा गया और उसका उत्तर उपनिषद्—पठन से मिल जाता है।

प्रश्न था कि आप भौतिक पदार्थों में आसक्ति न रखने, वासनाओं से विमुख रहते और हमेशा वैराग्य का क्यों उपदेश देते रहते हो? वेदांत हमें समग्र जगत् से संबन्ध विच्छेद करने तथा भौतिक वस्तु की वासना का दमन करने का उपदेश देता है। और मानव-जाति के लिये हमारे हृदय में जो प्रेम है, उसे नष्ट कर डालता है।

उपनिषदों का उपदेश है—जब मानव वास्तविक-सुख की अनुभूति अथवा आत्म—साक्षात्कार करता है, तब उसके कर्मपुण्य रूप बन जाते हैं और पुण्य उनमें से अनायास ही प्रवाहित होने लगता है, ऐसा नियम है। जो आत्मानन्द की अनुभूति नहीं करता, वह मानव अन्य को सुखी नहीं बना सकता। यदि तुम स्वयं ही

गरीब हो, भूखों मरते हो, तो भूख से पीड़ित औ गरीबों को किस प्रकार तृप्त कर सकते हो ?

शिष्यः—कृपा करके बताइयें, कि आनन्द क्या वस् है ? यह मैं जानना चाहता हूं ।

गुरुः—यह आनन्द अपरिच्छिन्न वस्तु है । किसी भी परिच्छिन्न वस्तु में सुख नहीं । जब तुम परिच्छिन्न और अल्प हो, तब तक तुम्हें सुखानुभूति संभव नहीं अपरिच्छिन्नता ही सुख है और यही मात्र आनन्द है इस अपरिच्छिन्नता को—इस अनन्त को हम कैसे जा सकते हैं ? इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का भी विचार करने की आवश्यकता नहीं, परंतु राम का कहना है कि इन शब्दों पर आप ठीक—ठीक ध्यान दें। उनका बारबार विचार करते रहें और तनिक भी भूल किये बि उनका स्मरण करते रहें । आशा है कि एक समय ऐ आयेगा, जब आपके मुख से यह उद्‌गार निकलते रहें कि अपरिच्छिन्नता ही सुख है, परिच्छिन्नता में सुख नहीं, अतः आपको पूर्णतया समझ लेना चाहियें कि यह अपरिच्छिन्नता क्या है ? अंगरेजी भाषा में होल शब्द है जिसका अर्थ है—अखण्ड-पूर्ण । आप होल (पूर्ण) हैं, यह पूछने से यह समझ में आता है कि क्या तुम पूर्ण निरोगी या भले चंगे हो ? यह शब्द बड़ा ही मजेदार और अर्थ निर्देशक है ।

जब तक आप अपने आपको एक साढ़े तीन हाथ लम्बी और १५० पौण्ड वजन की वस्तु मानते रहें

जबतक आप स्वयं को हाड़, मांस और रक्त का एक थैला-जैसा मानते रहेंगे, तबतक आप परिमित, परिच्छिन्न, क्षयोन्मुख स्वभावसम्पन्न और एक विभक्त अंश जैसे ही हो । अखण्ड नहीं, अपितु खण्ड—जैसे साधारण परिच्छिन्न पदार्थ हो । आप पूर्ण तथा नीरोगी, तन्दुरुस्त ा सुदृढ़ नहीं । यदि आप समुद्र में से थोड़ा पानी कर एक छोटे से गड्ढे में भर रखें, तो वह पानी वहमान न रहने से गन्दा और दुर्गन्धपूर्ण बन जायेगा । इसी प्रकार जो भी व्यक्ति यह मानता है कि मैं स्वयं परिमित, अल्प, देश काल से परिच्छिन्न और एक छोटे से वर्तुल (घेरे) में हूं, तो वह पूर्ण नीरोगी और सुखी रह नहीं सकता, वह किसी भी तरह सुख का अधिकारी नहीं बनता । जिस क्षण आपको अपनी दृष्टि सीमित भासित होगी, जिस क्षण आप "हम अल्प हैं" की बुद्धि को नष्ट कर देंगे । और यह अनुभव करेंगे कि हम सबमें—सर्वव्यापी हैं, विश्वरूप हैं, अनाद्यनन्त एक रूप हैं, तभी आप अखंड स्वरूप बन सकेंगे और आपकी शारीरिक व्याधि, उपाधि और चिन्ता का नाश हो जायेगा ।

रोग-निदान संमोहन शक्ति या वशीकरण विद्या इस सर्व का रहस्य यही है । आप अखण्ड स्वरूप का संकल्प करें, क्योंकि आप अखण्ड स्वरूप ही हैं । यह सत्य है । इस सत्य में आप निष्ठा प्राप्त करें और अनुभव करें कि हम सर्वस्वरूप, सर्वशक्तिमान और दिव्यस्वरूप हैं ।

शिष्य—अपरिच्छिन्नता का स्वरूप कैसा है ?

गुरु—अपरिच्छिन्नता तीन प्रकार की है— काल परिच्छिन्नता, देश की परिच्छिन्नता, और वस्तु की च्छिन्नता । अखण्ड अनन्त अपरिच्छिन्न बनने का यह होता है कि जो आत्मा देश-काल वस्तु में भी है और इन तीनों की सीमा से परे भी है, उस अनुभूति की जाये ।

जब इस अखण्ड स्वरूप का अनुभव करने मानव अखण्ड रूप के सिवा और कुछ भी नहीं देख कुछ भी नहीं सुनता और अन्य कुछ भी नहीं जान तभी वह अखण्ड और अपरिमित धारण करता जबतक आपके मन में आपके सिवा अन्य वस्तु का अस्तित्व है; तबतक तुम परिच्छिन्नता और वान् हो ।

अपने अखण्ड स्वरूप कें सिवा अन्य कुछ भी सुन देखना और जानना ही अल्पता और परिच्छिन्नता

विश्वव्यापी दृष्टि प्राप्त कर प्रेत को देखना, की बातें सुनना, भी परिच्छिन्नता ही है । यद्यपि अखंड स्वरूपानुभूति के पथ पर चल रहे हैं, फिर आप अंतिम स्थान पर नहीं पहुंचे, जहां मानव अपने अनन्त स्वरूप के सिवा अन्य कुछ भी न सुनाई देता है और न कुछ भी भासित होता है। अपरिच्छिन्नता ही अमरता है, और परिच्छिन्नता मृत्यु है ।

शिष्य—तब भगवन् ! यह अपरिच्छिन्न (ब्रह्म) किस देश—काल में रहता है ?

गुरु—यह (परब्रह्म) अपनी महिमा में ही निवास करता है बल्कि यह कहना चाहिये कि अपनी महिमा में भी नहीं ।

तात्पर्य यह है कि यह अनन्तता जबकि देश, काल और वस्तु से परे है। तब आप देश, काल और वस्तु से परिमित रहकर अपरिमित तत्त्व की अनुभूति कैसे कर सकते हैं ? अपरिमितता कहां रहती है ? यह प्रश्न करना ऐसा ही माना जायेगा, जैसे कोई कहे कि एक तोला समुद्रीय तरंगें हमें ला दो। समुद्र की तरंगें तोला या सेर-बटखरों से तोली नहीं जा सकती । इसी प्रकार यह अपरिच्छिन्न अनन्त तत्त्व किस तरह, कब और क्योंकर आदि शब्दों से मापा नहीं जा सकता है। इसे परिमित बनाया जा नहीं सकता है। यदि इसे मापा जा सकता—परिमित किया जा सकता और पूर्णतः जाना जा सकता, तो अपरिमितता कहा नहीं जा सकता ।

राम से जो आज प्रश्न पूछा गया है, वह यह है कि वेदांत सभी कामनाओं और आसक्ति को त्याग देने का बोध देकर जन समाज में द्वेष भाव का विस्तार कर रहा है, परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है । "प्रेम और मोह का त्याग करें," ऐसे जो वेदांत के वाक्य हैं, उन पर समुचित विचार कर देखें । आप कहेंगे कि "यदि प्रेम का परित्याग कर दें, तो प्रेम प्रभु का प्रतीक होने

से हम प्रभु को ही त्याग रहे हैं। आपके देश- रिका में प्रेम का अर्थ काम और मोह होता है। लोग प्रेम को विशुद्ध अर्थ में समझते ही नहीं।

लोगों का कहना है कि अमुक मानव तो अमुक के में-प्यार में -पड़ा हुआ है, परन्तु वस्तुतः देखा जावे उसे प्रेम माना ही नहीं जा सकता। यह तो आसुरी कर्म मा जाता है। राम को अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा सत्य के प्र अधिक सम्मान भाव है। हमारी विषयासक्ति ही हमें त हमारे प्रेममूलक पदार्थों को परिमित बना देता है और प्रेम करने वाले तथा प्रेम मूलक पदार्थ—इ॰ दोनों की अधो होती है। वेदान्त आपको ऐसे ही मोह, राग और विषयास से विरत होनेका उपदेश देता है। वह सत्य और शुद्ध प्रेम त्याग का उपदेश नहीं करता।

हम एक बालक का उदाहरण लें। बालक क्या प्रेमी है? नहीं — नहीं, वह तो प्रेमस्वरूप ही है इसी उद्देश्य वेदान्त का कथन है कि आप प्रेमी नहीं, :अपितु प्रेम स्वरू ही बनें। वह कौनसी वस्तु है जो बालकको लौह चुंबक समान आकर्षक बना देती है। वह वस्तु-तत्व यह है कि बालक प्रेमी नहीं प्रेम स्वरूप है। उसके मनमें आसक्ति स्वार्थ या किसी प्रकार का मेरा — तेरा का भाव नहीं हो इसलिये वेदान्त का कथन है कि "आप एक बार प्रेमस्वरू बनें। उसके फलस्वरूप आप चुंबक जैसे आकर्षक और अख स्वरूप बन जायेंगे।

लोग स्वयं नीरोगी होने और अन्य को नीरोगी ब तथा अन्य के रोग निवारण की बातें करते रहते हैं, पर

कृपा करके आप स्वार्थी उद्देश्य और साधनोंका परित्याग करें, क्योंकि यही तुम्हें परिच्छिन्न बनाते हैं। प्रत्येक वासना को पार्थिव प्रेम कहा जायेगा प्रत्येक इच्छा शारीरिक प्रेमके साथ संबद्ध है,। प्रत्येक तृष्णा मोह है, इनका आप त्याग करेंगे, तो विशुद्ध स्वरूप बन जायेंगे। यह विशुद्धि यदि आपने प्राप्त कर ली, तो फिर आपका शरीर नीरोगी होना ही चाहिये तथा आपकी बुद्धि को भी पूर्ण विकसित स्थिति पर पहुंच जाना चाहिये। यदि आप इस विशुद्धि को-- पवित्रता को प्राप्त कर लेंगे तो आपको उस वास्तविक त्याग--भावकी भी उपलब्धि होगी, जिसका वेदान्त वारंवार उपदेश करता है, क्योंकि विशुद्धि ही सच्चा त्याग है।

आप इस विशुद्धि को प्राप्त करो। बालक क्या विशुद्ध नहीं। वह प्रत्येक वस्तु के प्रति निःस्पृह भाव रखता है। देखिये, एक छोटासा स्वच्छन्दी बालक बड़े से बड़े मानव के कन्धे पर बैठ कर उसे घोड़ा बनाता है और बड़े बड़ों के दाढ़ी-- मूछ के बाल खींचता है! उसमें कितनी अधिक आकर्षण शक्ति है? इतनी अधिक आकर्षण शक्ति होने का कारण क्या है? इसका कारण अन्य कुछ नहीं, अपितु उसकी विशुद्धि ही है। विशुद्धि ही बालक में इतनी अधिक शक्ति केन्द्रीभूत करती है। विशुद्ध शक्तिके बल पर ही बालक इतना अधिक रमणीय और मोहक प्रतीत होता है। और इसी उद्देश्य से वेदान्त उपदेश करता है कि आप ऐसे ही त्याग भावापन्न बनें, फिर देखेंगे कि आप वैसे ही प्रेमस्वरूप बन गये हैं। और साथ ही स्वाभाविक रूप से ही आपके माध्यमसे लोक-

कल्याण की भावना का स्फुरण होगा। हम जन-स
का कल्याण करने के लिये तत्पर होते हैं, परन्तु यह
सम्भव है जब पहले हम स्वयं ही कल्याण स्वरूप बनें।

सर्प अपनी त्वचा (कैंचुली) उतार फेंकता है, क्यों
उसे अपनी त्वचा के लिये ममता या आसक्ति नहीं होती।
प्रकार यदि आप वेदान्त सिद्धान्त की भावना सिद्ध कर लें
और इस प्रकार अपने देहाध्यास को निकाल फेंकेंगे, मा
यह देह कभी रही ही नहीं।' 'मैं दिव्य स्वरूप सर्वमय औ
वासुदेव रूप हूं" ऐसा अनुभव करो। यदि आप
साक्षात्कार करेंगे कि "इन्द्रियों और अहंकार के साथ
कोई सरोकार नहीं, तो आप निस्सन्देह अपरिमित
आकर्षण स्वरूप बन जायेंगे। वेदान्त का उपदेश है कि
आप ऐसा स्वानुभव कर सकेंगे, यदि आप पूर्णतः पवित्र
जायेंगे, तो आपको महान् आकर्षण शक्ति प्राप्त होगी और
आकर्षण शक्ति के प्रभाव से आप प्रेम के घन और स
स्वरूप बनेंगे और लोक कल्याण की वृत्ति आप में
आप स्फुरित होती रहेगी।

—क्रमश

रामतीर्थ
रामतीर्थ में
विज्ञापन देकर
लाभ उठाइये

(कहानी)

मैं बाजी हार गया

लेο— एम. आर. गुप्त

उस दिन अचानक सिर भारी हो गया और दर्द होने लगा। और दर्द भी ऐसा—रह-रह कर टीस सी होती थी। खाने पीनेमें कुछ गड़बड़ी हो गयी होगी। ठीक कारण तो मुझे आजतक ज्ञात न हो सका। सोचा किसी वैद्य से कुछ गोलियां क्यों न ले ली जांय। किसी डाक्टर के पास जाकर बैठे-ठाले सुई क्यों भुकवाई जाय और अगर सुई भोकी तो दो चार रुपये का नुसखा बना देना उसके लिये क्या बड़ी बात होगी। वैद्य के यहां शायद दो-चार आने से ही काम चल जाय। इसी विचार से एक वैद्यजी की दूकान पर जा पहुंचा।

वैद्यजी के इशारा करने पर मैं कुर्सी पर तो बैठ गया किन्तु वैद्यजी को मैंने अपने से भी अधिक अन्यमनस्क देखा। वे सिर पर हाथ रखे एक तरफ़ को देखने लगे और लगभग दो मिनट तक यों ही देखते रहे। मैं सोचने लगा यह भी कैसे वैद्य हैं जो किसी रोगी के आने पर यह भी नहीं पूछते हैं कि वह क्यों आया है और उसे क्या तकलीफ है। मन में कुछ खिन्नता तथा उद्विग्नता भी हो रही थी लेकिन श्री वैद्यजी की मुखाकृति देखते हुये कुछ कहने का साहस ही न हो रहा था। दो मिनट के पश्चात् वैद्यजी ने सिर पर से हाथ हटाकर ठुड्डी से लगा लिया और फिर किन्हीं विचारों में खो से गये। इधर झुंझलाहट के साथ सिर की टीसें बढ़ रही थीं तो उधर बुदबुदाहट के साथ मुंह की सांसें बढ़ रही थीं। देखते-देखते

वैद्यजी की आंखों से दो बड़े गोल आंसू लुढ़क पड़े और उ हथेली को गीला कर दिया। मैंने सोचा "कहां आ फंसा मैं तो अपने सिर दर्द को ही झींक रहा था वैद्यजी तो मा होता है हृदय की चोट खाये हुये हैं। वैद्यजी से पूर्व परि भी नहीं था और उनकी दुकान में भी पहली ही बार गया था पूछूं भी तो क्या पूछूं। गया तो था अपना दर्द बताने और पूछने लगूं वैद्यजी का दर्द, यह कैसे होता। वैद्यजी के चेहरे पर और दवाखाने में कुछ अजीब सी मुर्दनी छाई हुई थी ऐसा आभास मिल रहा था जैसे किसी का क्रियाकर्म करके अभी अभी मरघट से लौट रहे हों। लेकिन ऐसा पूछ ही कैसे सकता था। अजीब असमंजस में मन फंस गया। न उठ चले आने का साहस था और न अधिक चुप बैठे रहने धैर्य। सिर दर्द की टीसें कुछ और भी तेज होती जा रही थी

लगभग पांच-सात संकटापन्न मिनटों के पश्चात् वैद्य ने बड़े ही क्षीण तथा करुण स्वर में मर्माहत हृदय से पू जब उन्होंने एक अंगौछे से अपनी आंखें पोंछ कर साफ क लीं। "मैंने आपको पहचाना नहीं।" मैंने कांपते स्वर उत्तर दिया—"इस दुकान में तो मैं पहली ही बार आया हूं मुझे तो अब हर सूरत पहचानी भी अन-पहचानी सी लगने लगी है। स्मरण शक्ति भी धोखा दे गई है। आ घर पर आये होंगे, अब मैं किसी को घर पर नहीं मिलता घर पर मिलूं भी कैसे? अब वह घर नहीं रहा, जंगल हो गया है जंगल। जंगल भी ऐसा जो उजाड़ और वीरान हो जिस घर से दूकान आने को मन नहीं करता था वही घ

अब काट खाने को मुंह फाड़ रहा है । सब ने ही साथ छोड़ दिया। रानी ने भी उसी दिन पिंजड़ा खाली कर दिया। लेकिन एक मैं अधम हूं कि इस पिंजड़े को खाली नहीं कर रहा हूं । वैद्य जी के एक-एक शब्द में वेदना भरी हुई थी । और मेरे सिर के दर्द की तरह भरी हुई ी उनमें टीस । चेहरे के भाव भी तेजी से बदल रहे थे । फिर गंभीर हो गये और उनकी आंखों में आंसू छलछला ठे । मैं सोचने लगा क्या वैद्यजी ने कोई मैना पाल रखी थी जो पिंजड़ा खाली कर गई। वह उड़ गयी कि मर गयी कि उसे बिल्ली खा गयी। आखिर उसको क्या हो गया ? जिसके लिये वैद्यजी इतने विह्वल हैं और प्यार में रानी कह कर बुला रहे हैं। लेकिन एक पक्षी के मरने पर इतना अफसोस, इतना दुःख । जो आये हुये मरीजों से बात भी नहीं करते हैं और जिसकी याद में हर समय आंखें गीली और चेहरा उदास रहता है। फिर सोचा-हो न हो कहीं वैद्यजी की .... न रही हो । और वैद्यजी समझ रहे हों कि यह भी कोई पूर्व परिचितों में से हैं जो इस समय मुझे घर में न पाकर दूकान पर ही सहानुभूति प्रदर्शित करने चले आये हैं। मैं भी कहां सिर की दवा खोजने आया। यदि वैद्यजी से पहले से परिचित होता और उनके परिवार के विषय में कुछ जानता होता तो कोई बात भी पूछता किन्तु जब वैद्यजी मुझे अपने सहानुभूति प्रदर्शकों यानी हमदर्दों में समझ रहे हैं तो यह कहते भी तो नहीं बनता था कि मैं सिर पीड़ा की गोलियां लेने आया

हूं। बड़ी उलझन में जान पड़ गई। लेकिन इसी समय मित्र सुरेश उधर से आ निकले। यों तो सुरेश का जब भी मैंने देखा हंसता हुआ ही देखा और जब भी मिलते थे दूर से ही हंसकर नमस्ते करते थे। लेकिन वैद्य जी की दूकान पर वह ऐसा मुंह लटका कर ऐसी रोनी सूरत बना कर आये कि मुस्कराकर कहना दूर, कोई किसी को नमस्ते भी न कर सका। यहां कि वैद्यजी से नमस्ते का आदान-प्रदान तक न हुआ। उन्होंने भी बोझिल तन-मन से कुर्सी को बोझिल बना दिया। फिर वही श्मशान जैसी शांति और मरघट जैसी मुर्दनी मैं कभी उनकी तरफ देखता तो कभी वैद्यजी की तरफ कभी मुह नीचे लटका लेता। ऐसे समय पर मित्र से करना भी धृष्टता थी। अपनी शराफत का भंडा भी नहीं करना चाहता था। फिर लगभग ५ मिनट अवस्था में बीत गया। मित्र के घर पर आज सवेरे चाय पीकर आया था और परिवार में प्रत्येक व्यक्ति भला-चंगा भी देखा था। इसलिए उधर तो किसी दुर्घट की संभावना ही नहीं थी। और अगर वैद्यजी के घर इतनी बड़ी कोई दुर्घटना घट गयी है कि जिसके प्रति सांत्व तथा सहानुभूति के दो शब्द कहने मेरे मित्र वैद्यजी की दुकान पर पधारे हैं तो उन्हें वे दो शब्द कहने चाहियें। आखिर इस चुप्पी का क्या अर्थ है और फिर इस चुप्पी की कोई सीमा भी होनी चाहिये। शायद मेरे मित्र ने भी मुझे वैद्यजी की दूकान पर बैठे देख यही सोचा हो कि मैं भी अपने

सहानुभूति का प्रदर्शन करने वैद्यजी के पास आया हूं। उन्हें यह क्या पता था कि यहां सिर में टीस उठ रही है और मुझे वैद्यजी की सहानुभूति की आवश्यकता है।

आखिर सौभाग्य से कहिये या दुर्भाग्य से वैद्यजी ने ही फिर मरघटिया शांति को भंग करते हुये और दीवार पर ंगे एक महिला के चित्र की ओर संकेत करते हुए सजल त्रों तथा रूंधे कंठ से केवल इतना ही कहा "सुरेश भैया" 'वैसे मैं बाजी हार गया।' सुरेश! भैया 'मैं बाजी हार गया' और बच्चों की तरह वैद्यजी फूट-फूट कर रोने लगे। मेरे मित्र ने बड़ी ही करुण वाणी से वैद्यजी को समझाते हुयें कहा—"भगवान की इच्छा के सम्मुख मनुष्य की भी नहीं चलती है। आपने क्या नहीं किया। अब तो इस दुःख को सहन ही करना होगा। भगवान को यही मंजूर था। इतना कहने के पश्चात् मेरे मित्र फिर खामोश हो गये और वैद्यजी की नकल करते हुए ठुड्डी को हथेली पर रखकर बैठ गयें। समझाने को मेरे मित्र समझा तो रहे थे वैद्यजी को, वैद्यजी की समझ में आया हो या न आया हो लेकिन मैं अवश्य समझ रहा था—"भगवान की यही इच्छा थी कि तेरे सिर में दर्द हो और तू वैद्यजी के यहां दवाई लेने जाय। और दवाई न मिलने पर तू अपने दर्द को सहन कर ले।" वैद्यजी ने जो कहा वह भी पहेली की भाषा में कहा और मित्र ने कहा वह भी एक पहेली की भाषा में कहा। इन पहेलियों का उत्तर मैं न खोज सका। कुछ बात समझ में आती तो कदाचित् मैं भी एक दो शब्द कहता और अधिक देर तक बैठने में भी जी

न ऊबता किन्तु हर बात एक पहेली बन कर रह गई थी। घड़ी ने टन-टन करके सात बजा दिये। देहरादून में भी सर्दियों में लोग ७ बजे शाम से ही दूकान बंद करने लगते हैं फिर आज कुछ सर्दी भी अधिक थी। वैद्यजी की दूकान छोड़कर किसी अन्य वैद्य अथवा डाक्टर की दूकान से दवा लेने की आशा दुराशा मात्र थीं। झख मार कर मन को यही समझाना पड़ा–भगवान को ही जब तेरा सिर-दर्द मंजूर है तो फिर तू उसकी दवा क्यों तलाश करता है। खैर–मेरे मित्र ने जब पड़ोसी की दूकान बंद होती देखी तो मुझे चलने का संकेत करते हुए ठीक पौन-घंटा बैठने के पश्चात् जैसे आये थे वैसे ही दूकान के नीचे उतर भी गये।

थोड़ी दूर तक उदासीन अवस्था में चलने के पश्चात् चाय की एक दूकान खुली मिली। मेरे मित्र सुरेश ने कहा–"आओ यहां कुछ चाय पी लो बड़ी सर्दी अनुभव हो रही है" मैंने अपनी सूरत को मित्र से भी अधिक गमगीन बना रखी थी बिना कुछ हीला–हवाला किये मित्र के पीछे-पीछे चला गया। रेस्ट्रां में बैठ कर और चाय का आर्डर देने के पश्चात् मेरे मित्र ने मुह खोला "भाई गुप्ता मैंने तो तुम्हें आज ही वैद्यजी की दूकान पर देखा है। इसके पूर्व कभी उनके मकान पर भी नहीं देखा। तुम्हारी यह जान-पहचान वैद्यजी के साथ कब से है।" मैंने चाय का घूंट लेते लेते हुए कहा जब से मेरे सिर में दर्द है। भाई यह क्या बात हुई ? क्या तुम मेरी तरह उनसे अपनी सहानुभूति प्रकट करने नहीं गये थे ?" और मेरा सिर–दर्द तुम्हारे लिए एक पहेली है। 'अरे यार

तो तुम क्या सिर-दर्द की वैद्यजी से गोलियां लेने गये थे'' सुरेश ने चाय की प्याली मेज पर रखते हुये कहा। मैंने कहा "समझे तो लेकिन बहुत देर के बाद। मेरे सिर में अचानक टीस मार दर्द होने लगा था इसलिये मैं वैद्यजी की दूकान पर दवाई लेने चला गया था वहां मैंने देखी श्मशान जैसी शांति और वैद्यजी को देखा सशरीर करुणा की मूर्ति। [illegible] अपनी पीड़ा न बता सका व न दवा ही मांग सका। एक बार उस मरघटिया शांति को भंग करते हुए वैद्यजी ने सकरुण स्वर से यह अवश्य कहा था-''रानी भी पिंजड़ा खाली कर गई।'' मैं तो यही समझा था कि कोई मैना पाल रखी होगी वह पिंजड़े से उड़ गई या फिर वह अपनी मौत मर गई या किसी बिल्ली ने उसे खा डाला होगा।" सुरेश जो अब तक चाय पीकर गरमा गया था और इधर-गरम गरम पीने से मेरा भी दर्द हल्का हो गया था मुस्करा कर कहने लगा-"अरे यार मैं तो तुम्हारी वजह से ही इतनी देर बैठा रहा कि तुम पहले आये थे पहले उठते, लेकिन तुमने तो पूरे ७ बजे तक उठने का नाम ही न लिया। मुझे क्या मालूम था कि तुम दर्द-सिर लिए बैठे हो। चेहरा तुम्हारा मैंने जरूर उतरा हुआ सा देखा परन्तु वैद्यजी की सहानुभूति के लिये तुम्हारा वह रूप-रंग मैंने स्वाभाविक ही समझा लेकिन मेरे यार गुप्ता वैद्यजी की मैना, जिसे वे रानी के नाम से पुकारते थे अकेले ही पिंजड़ा खाली नहीं कर गई वैद्यजी की नव विवाहिता प्रिय पत्नी भी घर खाली कर गई है। और विधि का विधान देखा इधर पत्नी की प्यारी सारिका

ने भी दम तोड़ दिया। ५० वर्ष की आयु हो जाने प ५ वर्ष पूर्व वैद्य जी ने दूसरी शादी की थी। औरत इ सुन्दर तथा सुशील थी कि वैद्यजी उस पर जान छिड़ थे। आशा थी कि इस पत्नी से सन्तान होगी, घर में प्रस होगा लेकिन भगवान को यह सब मंजूर नहीं था" मैंने अप पूर्ण शंका समाधान के लिए इतना और पूछ लिया "य बाजी हार जीत की बात वैद्यजी क्या कर रहे थे?" "मेरे मन में तो एक बार यह भी शंका उठी थी कि कहीं वैद्य जुवा का दाव तो नहीं लगाकर हार बैठे।" सुरेश ने बता तुम जुवा ही समझ लो लेकिन रुपयें-पैसे का तो न दोनों ने मृत्यु का जुवा खेला था। वे एक दूसरे को इत चाहने और प्रेम करने लगे थे कि कोई किसी से पीछे मरने तैयार न था। उनकी यह प्यार की बाजी थी। स्त्री के बीमा होने पर वैद्यजी दवा-दारू और सेवा करने में कुछ कोर-कस नहीं रखी। तन मन तो पहले ही लुटा चुके थे और औरत के बीमार पड़ जाने पर धन भी लुटा दिया। स्त्री के प्राण अ शरीर छोड़ने लगे तो उसने धीमी सी आवाज में वैद्यजी के कान में कहा-"मैंने बाजी जीत ली।" यानी देखो मैं तुमसे पहले जा रही हूँ। उसी स्त्री का फोटो तो वैद्यजी ने अपने दवाखाने में टांग रखा है जिसे देखकर अनायास ही वे दुःखित तथा द्रवित होकर कह बैठते हैं—"मैं बाजी हार गया।"

* * *

'मातृ देवो भव'

ले. राजमोहन मिश्र

मातृजाति की महिमा की उद्घोषणा करते हुये जिस समय उपर्युक्त सूत्र 'मातृ देवो भव'–प्रकट हुआ, वह उपनिषद्-काल था। मातृ जाति के प्रति भारतीयों की यह द्धा-भावना आदिकाल से अविच्छिन्न चली आ रही है। त्री को अत्यन्त पूज्य और सम्मान की दृष्टि से देखा जा रहा है और परिवार तथा समाज में उनका उच्च स्थान अक्षुण्ण है। मानव जब शिशु रूप में संसार में अवतीर्ण होता है, तब सर्वप्रथम वह अपनी माता के ही दर्शन करता है। माता की आनन्दमयी गोद में वह अपनी सुखमयी जीवन-लीला का श्रीगणेश करता है। माता का दुग्ध-पान करने में ही उसका समग्र सुख समाया रहता है। वह माता में ही अपने समस्त आनन्द को केन्द्रीभूत मानता है। जीवन के निर्धारित लक्ष्य पर पहुंचने के लियें मानव-शिशु को जिस विशाल सोपान पर चढ़ाना पड़ता है, उसकी पहली सीढ़ी है मां की गोद। वस्तुतः मानव शिशु को माता की गोद जितनी आनन्ददायिनी और आह्लादक होती है, उतनी अन्य कोई वस्तु नहीं होती। वह संसार का सारा ऐश्वर्य और आनन्द माता की गोद में गुंफित मानता है। माता की गोद में पहुंचकर बालक किलकारियां मारने लगता है। यह मुक्त और विशुद्ध आनन्द शिशु के अन्तरतमसे उद्गत होता है। अज्ञात आनन्द का यह स्पन्दन बालक के

रोम-रोम को पुलकित बना देता है। इस आनन्द क्रीड़ा—भूमि (माता की गोद) में बैठ जाने के बाद उस लिए ज्ञान, शक्ति और वैभव के सभी साधन निरर्थक है इन सबकी ओर वह आंख उठाकर भी नहीं देखता। इ प्रकार हम देखते हैं कि मानव के जीवन का प्रारम्भ मा (नारी) के सान्निध्य से ही होता है—उसकी गोद से ह होता है।

इसके बाद कालान्तर में जब वह मानव शिशु अवस्था को पार कर और जीवन सोपान की सीढ़ियां चढ़ते हु वयस्क अवस्था पर पहुंच जाता है, तब एक अन्य ना के घनिष्ठ संपर्क में आता है, जिसे पत्नी कहा जाता है अब उसे माता की विशेष चिंता नहीं रहती और व एक दूसरे ही प्रेम साम्राज्य का अधिपति होता है। कि भारतीय संस्कृति में माता को जितना गौरव प्रदान किय गया है, उतना पत्नी को नहीं। 'मातृ देवो भव' कहक हमारे पूर्वजों ने मातृ जाति-नारी-को जितना आदरास्प माना है, उतना अन्य किसी को नहीं।

अस्तु, 'मातृ देवो भव' कहकर नारी को भगवती ज दम्बा की प्रतिमूर्ति कहा गया है और उसे अत्यन्त दया मयी और कल्याणमयी माना गया है। धरातल में आई नारी चाहे जिस योनि में हो; उसमें कल्याणी जगन्माता के संस्कार स्पष्ट प्रकट होते हैं।

यहां तद्विषयक एक द्रष्टांत देना आवश्यक है। कहा जाता है कि एक स्त्री एक गांव से दूसरे गांव जा रही थी।

उसके साथ उसके दो जुड़वां बच्चे भी थे। गोधूलि का समय हो गया था और निशा का अंधकार अपना पर्दा फैलाने की तैयारी कर रहा था। रास्ते में जंगल की तरह सघन झाड़ियों का झुरमुट भी मिलता था। वह स्त्री जब उन झाड़ियों के बीच पहुंची, तब उसने देखा कि एक एक विशालकाय रीछ उसके सामने खड़ा है। उसके होश उड़ गये। वह आतंकित हो उठी। रीछ ने एक झपाट लगाई और स्त्री चीत्कार करती भूमिपर गिर पड़ी। रीछ उसके दोनों बच्चों को लेकर भाग खड़ा हुआ और जंगल में घुस गया। यह देखकर उस स्त्री का मातृत्व मौन और निष्क्रिय रह न सका। वह रीछ के पीछे २ दौड़ पड़ी। वह सहायता की पुकार कर रही थी और साथ ही रीछ पर पत्थर-प्रहार भी। रीछ इस पत्थर प्रहार को सहन न कर सका और स्त्री की ओर झपटा। जैसे ही वह स्त्री को अपनी ओर खींचने लगा, कि गुर्राहट के साथ एक जोर का तमाचा उसके जबड़े पर पड़ा। रीछ ने देखा कि एक सिंहिनी आंखों से अंगारे बरसाती हुई उस पर दूसरा घातक प्रहार करने के लिए उद्यत है। बच्चों को वहीं छोड़कर रीछ भाग खड़ा हुआ। बच्चों की माता स्त्री ने भी यह आकस्मिक घटना देखी और एक सिंहिनी को सामने देखकर अचेत होकर वहीं लुढ़क पड़ी। सिंहिनी दोनों बच्चों को अपने साथ ले गई। चार दिन तक ये बच्चे सिंहिनी की मांद में रहे। अंत में शिकारियों ने सिंह और सिंहिनी को मारकर बच्चों को मुक्त किया।

उस चौथे दिन भी बच्चे केवल जीवित ही नहीं थे हंस खेल भी रहे थे । सिंह और सिंहिनी को मारना पड़ा ? वस्तुतः सिंह दम्पती विशेषतः सिं बच्चों की रक्षा में कटिबद्ध थी और उन्हें बिना बच्चों को उनके घर पहुँचाना असम्भव था। अब प्रश्नों का समाधान करना शेष है एक तो यह सिंहिनी ने मानव—बालकों को रीछ के पंजे से छुड़ाया ? और दूसरा यह कि वह बालकों को अपने सा क्यों ले गई ? सम्भवतः स्त्री के करुण विलाप को सुन सिंहिनी का मातृत्व द्रवीभूत हो उठा । और उन बच्चों को अपने साथ इसलिये ले गई कि उस अचेत स्त्री पास उनका अरक्षित पड़ा रहना खतरनाक था। इस स्पष्ट है कि नारी—भले ही पशु योनि में हो, उस मातृत्व की भावना पूर्णतया विद्यमान रहती है। ए अन्य घटना भी ऐसी ही है, जिसमें अपने पालित मान बालक की रक्षा के लिए सिंहिनी ने अपना जीवन उत्स कर दिया। ऐसी भी अनेक घटनायें पढ़ी-सुनी गई हैं कि मादा-भेड़ियों ने मानव शिशुओं का पालन किया।

भारतीय समाज ने नारी के इसी मातृरूप की वन्द की है। परिवार तथा समाज को सुगठित बनाये रखने के लिए भारतीय नारी में जो मातृत्व की भावना पाई जाती है वही उसे त्याग और बलिदान की ओर प्रवृत्त करती है यह उसका स्वाभाविक गुण बन गया है । वह परिवार में एकता और सौमनस्य की प्रेरणा करती है । नारी

सौजन्य की प्रतिमा कहा गया है। नारी अपने इस सौजन्य को प्रकट करती है और अपनी बुद्धि प्रतिभा से परिवार तथा समाज में सुव्यवस्था स्थापित करती है।

नारी में इन्हीं महान् गुणों की अवतारणा होने के कारण नारी शक्ति के रूप में मानव की उपास्य बन गई। मानव की हृत्तंत्री बज उठी। और वह उसके गुणों का गान करने लगा। मानव ने महत्तम ज्ञानदेवी शक्तिदेवी और लक्ष्मी देवीके रूपमें नारी का आह्वान किया और हृदयमें उसके प्रति अनन्य पूज्य और आदरभाव धारण किया। मानव की यह स्वाभाविक अभिव्यक्ति है इस में कृत्रिमता का लेश नहीं।

कहा जाता है ही स्त्री का स्वभाव 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि होता है—अर्थात् स्त्री का स्वभाव वज्र से भी अधिक कठोर होता है तथा फूल से भी अधिक कोमल होता है। अपने कर्तव्य—कार्यों में जहां वह वज्र से भी अधिक कठोर होती है, वहां व्यवहार में वह कुसुम–फूल से भी अधिक कोमल है। नारी ही ज्ञानदेवी (सरस्वती) बनकर हमारी बुद्धि·प्रतिभा को बढ़ाती है और उसे अर्थपूर्ण बनाने में सहयोग करती है। नारी ही शक्ति—बनकर मानव में चैतन्य का संचार करती है और बल—विक्रम के रूप में परिवर्तित हो जीवन रण में मानव को आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा प्रदान करती है। मानव अपने जीवन—लक्ष्य के प्रति निरंतर उद्यत रहता है। नारी की ओर से प्रोत्साहन पाकर मानव जब

एक महान तेज से दीप्त हो उठता है और एक महान शक्ति धर बनकर वह दैनिक प्रवृत्तियों में अपनी कर्म कुशलता का परिचय देते हुए व्यवहारिक जीवन का सुयंत्रित संचालन करता है, जब मानव इस प्रकार शक्ति का अधिष्ठान बनता है, तब नारी उसके यहां लक्ष्मी के रूप में सुशोभित होती है।

'मातृ भूमिः, पुत्रो अहं पृथिव्याः' कहकर धरती को भी माता का गौरव प्रदान किया गया और उसे नाना प्रकार के संमान्य संबोधनों से पुकारा गया है। अपनी जन्मभूमि को मातृभूमि कहा गया है। माता के साथ ही मानव इस शस्य श्यामला भूमि के भी सतत् सान्निध्य में रहा है। उससे नाना प्रकार के फल, वनस्पति, खनिज और अन्य बहुमूल्य पदार्थ प्राप्त कर निहाल होता आ रहा है। इसीलिए भारत-भूमि को भारत माता के नाम से पुकारा जाने लगा। असंख्य कवियों और लेखकों ने भारत-माता का गुण-गान करते हुए उसके चरणों में श्रद्धा के फूल चढ़ाये हैं। भारतीय नारियां भी इसी भारतमाता-धरती माता की प्रतिकृति हैं और उसकी चैतन्यमयी या सजीव मूर्ति हैं—चलती फिरती प्रतिमाएं हैं अर्थात् धरती ही मूर्तिमान नारी बनकर कर्म क्षेत्र में अवतीर्ण हुई है। धरती की सहनशीलता, क्षमा और सौजन्यभाव नारी में प्रत्यक्ष देखे जाते हैं।

यही कारण है कि मानव ने नारी के चरणों पर श्रद्धा के जो भाव-पुष्प चढ़ाये हैं, वह उसकी आंतरिक भक्ति

के प्रतीक हैं। पिता के प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रकट करना तबतक अपूर्ण है, जब तक माता के प्रतिपूर्ण भक्ति का परिचय न कराया गया हो, क्योंकि आदिमाता धरती ही पोषण प्रदान करने के लिए मानव को अपनी गोद में ले लेती है। पिता सूर्य जीवन दाता होकर भी दूर-बहुत र पर रहता है। मानव धरती माता के ही नित्य सान्निध्य रहता है अतः इस अखिल संसार की आधार भूत शक्ति माता ही है।

कहा जाता है कि जैसे विना आशा के मनुष्य की आयु निरर्थक है—उसका कोई अस्तित्व नहीं, लता के विना जैसे फूल का उद्भव असंभव है, पृथ्वी का आधार पाये विना जैसे मकान का निर्माण संभव नहीं, उसी तरह माता के बिना परिवार में सुव्यवस्था और एकमति की आशा नहीं की जा सकती। विश्व-रचना में माता की अनिवार्य स्थिति ही मातृत्व की विजय है। मानव मातृत्व की इस महिमा का गान निरंतर अथक रूप से करता आ रहा है।

मार्कण्डेय पुराणांतर्गत दुर्गा सप्तशती में देवगण भगवती जगदम्बा की स्तुति करते हुए कहते हैं-

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां, भवनेष्वलक्ष्मी पापात्मनां, कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः, श्रद्धा सतां कुलजन प्रभवस्य लज्जा तां त्वां नताः स्म परिपालय देविविश्वम् ।

अर्थात् जो सुकृतियों के घरों में स्वयं श्री-शोभा (लक्ष्मी) के रूप में सुशोभित है, जो पापियों के घर में अलक्ष्मी (दरिद्रता) बनकर रह रही है, जो कृतविद्या जनों

के हृदय में बुद्धि के रूप में प्रतिष्ठित है, जो सज्जनों श्रद्धा है और जो कुलीनों में लज्जा के रूप में अ अस्तित्व प्रकट करती है, उन देवी जगदम्बा जगत् पालि को हम बारंबार नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्री को माता के रू पूज्यमान कर भारतीय मानव ने संसार की मलिन वासनाओं को अपने से दूर रखा है। स्त्री भी मातृत्व के भा से सराबोर रहकर स्वच्छन्द जीवन से बची रही है। भातीय जीवन में जो पवित्रता, स्थिरता और अनुशासन प्रवृत्ति पाई जाती है, उसके मूल में यही सशक्त भा विद्यमान है। भारतीय मनीषियों ने माता के त्याग, मा की भावुकता, माता की अविचल निष्ठा, माता के हृदय उद्भूत देवदुर्लभ अमृतमाधुर्य से परिपूर्ण जीवन रस दुग्ध, माता की आंतरिक शीतलता और उसकी अवि स्नेह—वर्षा का निरन्तर यशोगान किया है। इन कवियों मर्मस्पर्शी भावों से भरी हुई दिव्य वाणी मानव के अन्तःकरण को सदा से रसप्लावित करती चली आ रही है। गुणग्राही मानव ने कृतज्ञ भाव से माता के चरणों पर भाव पुष्प बिखेरे हैं, वह उसकी अदम्य मातृभक्ति प्रमाण प्रस्तुत करता है और मातृजाति के प्रति उसके अन्तःस्थ आदरभाव की भी अभिव्यक्ति करता है माता की सरलता, ऋजुता (कोमलता), ममता, त्याग, कर्तव्यपरायणता. सौम्यता आदि गुणों ने उसे जगत्पूज्य देवी बना दिया है। हमारे विचार से मातृजाति-नारी-भागवती जगन्माता की पावन प्रतिमा है और जगत् में पवित्रता का दिव्य भावों का उद्रेक करने के लिए ही उनका अवतरण हुआ है। हम भी माता के अनन्य उपकारों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं और श्रद्धाभाव से उनके चरणों पर नतमस्तक होते हैं।

यौगिक उपचार-आसन चिकित्सा:—

मधु--प्रमेह और उसके उपाय

लेखक:— योगीराज उमेशचन्द्रजी

इससे पहले मधु-प्रमेह के लिये मसाज तथा सूर्य-किरण चिकित्सा के सम्बन्ध में यथोचित रूप से लिखा जा चुका है। इस लेख में खाद्य वस्तुओं तथा यौगिक चिकित्सा का समुचित दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

खाद्य-वस्तुयें

जिन खाद्य-पदार्थों में शक्कर का अधिक भाग है, उनका यथा सम्भव अत्यल्प मात्रा में उपयोग करना चाहिये। विशेष रूप से पेय पदार्थों में अत्यन्त लोकप्रिय बन जाने वाले काफी, चाय, लेमन, आइसक्रीम आदि का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। मिठाइयों का त्याग तो नितान्त आवश्यक है। हरे फल अनुकूल होंगे। शाक-भाजी, शक्कर डाले बिना गरम दूध, चावल, गेहूँ, मूंग की दाल, और छाना हुआ ठण्डा या गरम पानी पीना हितकर है।

रातके समय उदरगत अवयवों—आमाशय, छोटी आंत, बड़ी आंत, किडनी आदि को आराम पहुंचाना चाहियें अर्थात् सुपाच्य (जो जल्दी पच जायें) वस्तुयें सोने से ४ घण्टे पहले लेनी चाहियें। एक-एक कौर को कमसे कम ३० से ४५ बार चबाकर गले के नीचे उतारना उचित होगा। ऐसा करने से लार का खाद्य के साथ संमिश्रण होकर पाचक रस अधिक मात्रा में बन सकेगा।

टेववालों के लिये उपाय

बहुतेरे लोगों की ऐसी हमेशा की टेव पड़ जाती सवेरे चाय या बीड़ी पिये बिना उन्हें दस्त ही नहीं होता। प्रकार की टेववाले लोगों को मैं विशेषरूप से बता चाहता हूं कि आपको जीवन के शेष दिन सुख और आ सम्पन्न रहकर व्यतीत करने हैं, तो तुरन्त ही इस टे छोड़कर इसके स्थानपर उन्हें निम्नलिखित उपाय का आयो करना चाहिये। वजनदार शरीर तथा वात और पित्त प्र वालों को सवेरे चाय के स्थानपर एक प्याला गरम पा एक मध्यम चम्मच शुद्धमधु मिलाकर अथवा निरा गरम पीकर नित्य नियम के अनुसार मल-त्याग के लिये ज चाहिये।

पित्त प्रकृति वालों को ६-८ औंस सामान्य गरम ज नीबू निचोड़कर पी जाना चाहिये और तदुपरान्त शौ लिये जाना चाहियें। फिर भी, यदि मन न माने तो गेहूं काफी अथवा सोयाबीन की काफी में जरा सी सेकरीन या डालकर पी जाना चाहियें। अत्यन्त पवित्र और जल्दी ऐसा भोजन लेने की विशेष हिमायत इसलिये की जाती है मधु प्रमेह के रोगियों का प्रत्येक अवयव शिथिल शक्तिहीन होता है। संधियां (जोड़) और सप्तधातु अशुद्ध होती हैं। इतना ही नहीं, अपितु उनका कोई वि अवयव जो भोजन किया जाता है, उसके कुछ भाग को दूषि और दुर्गन्ध पूर्ण पदार्थ में परिवर्तित कर गुप्तेंद्रिय द्वारा बा निकालता रहता है। इसलिये प्रत्येक खाद्यवस्तु का

सावधानी के साथ और नियमित रूपसे ऊपर लिखे अनुसार सेवन किया जायें, तो वे अवयव विरोधी और दूषित रसों को तैयार किये बिना अनुकूल रस का निर्माण करेंगे। गाय का या बकरी का दूध अति उत्तम है। भैंस का दूध शरीर में निरर्थक चरबी की वृद्धि करता है और बुद्धि को मन्द कर देता है। सूखे फल (मेवे) अल्प परिमाण में खाये जायें, तो कोई हर्ज नहीं। शाक-भाजी और हरे फल अधिक मात्रा में खाने चाहियें। केला, आम, रामफल, शरीफा, अमरूद, बेर आदि फल खाने न चाहियें। परमात्माने हमारे आरोग्य के अनुकूल विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न फल उत्पन्न किये हैं, तदनुसार इन फलों को यदि समझ-बूझकर लिया जाये, तो वे अधिक लाभप्रद होंगे।

यौगिक चिकित्सा

वज्रासन करने की विधिः— पहले दोनों पैरों को मोड़कर कमर के निचले भाग में जमीन पर रखना चाहियें। दोनों हाथों के पंजों को दोनों घुटनों पर रखना चाहिये। फेफड़ों को फुला रखना चाहियें। आंखें खुली रखनी चाहियें। हाथ की कुहनियों को कुछ चौड़ा रखना चाहिये। शरीर को साधारणतया तना हुआ रखना चाहियें और तदुपरांत दोनों नासा-पुटों की राह फेफड़े में यथेच्छ श्वास भरकर शक्ति के अनुसार श्वास को अवरुद्ध करने के बाद दोनों नासा-पुटों में से श्वास बाहर निकाल देना चाहियें। वायु को फेफड़े में भर रखना और पेट को जरा दबा रखना चाहिये।

यह आसन १० दिन तक दो मिनट, १० से २० दि ५ मिनट और उसके बाद ५ से ८ मिनट तक करना चाहि

सुप्त वज्रासन

पहले वज्रासन लगाकर बैठना चाहिये । तत्पश् हाथ के सहारे लेट जाना चाहिये । **लेट** जाने के पश् कुछ देर तक दोनों हाथों को कुहनियों **से** मोड़ कर शिर नीचे स्थापित करना चाहिए और कुछ समय तक छा ऊंची कर लेटे रहना चाहिये । हाथ जानुओं पर रखने चाहि श्वास-क्रिया वज्रासन के अनुसार चलती रहे । यह आ ६ दिन तक १।। मिनट, ६ से १२ दिन तक तीन मि १२ से १८ दिन तक ४ मिनट और तदुपरांत ५ मिनट बढ़ानी चाहिये ।

सर्वांगासन (हलासन) नं० २

पहले जमीन पर लेट जाने के बाद, दोनों हाथ कमर बगल में सीधे रखने चाहिये । पैर दोनों एक दूसरे से सटा रखने चाहियें । आंखें खुली रहनी चाहियें । श्वास फेफड़े कुछ भर लेनी चाहियें । तत्पश्चात् दोनों पैरों को जमीन धीरे धीरे ऊपर उठाना चाहियें । जिनका शरीर वजन हो अथवा शरीर में अधिक अशक्ति हो, ऐसे लोगों को चाहि कि वे पैरों को जमीन से दो हाथ ऊँचे उठा ले जायें और कु समय तक वहां रोक रखने के बाद पैरों को भूमि पर र दें और श्वास को फेफड़े से बाहर निकाल दें । इस प्र प्रति दिन चार से पांच बार पांच दिन तक करने के पैरों को और भी अधिक-पहले से अधिक—ऊंचे ले जाने

प्रयास करना चाहिये। पैरों को ऊपर ले जाने के बाद थोड़ी देर तक वहीं रोक रखना चाहियें। इस प्रकार ५-६ दिन तक नित्य के ४-६ बार तक अभ्यास करने के पश्चात् पैरों को शरीर के पिछले भाग में ले जाने का प्रयास करना चाहियें। जिनका पेट बड़ा होगा, उनके पैर कदाचित पीछे की जमीन का स्पर्श कर न सकेंगे, परन्तु जैसे-जैसे पेट की चर्बी कम होती जायेगी, वैसे-वैसे पैर अच्छी तरह जमीन को छूने में समर्थ होते जायेंगे। इतना ही नहीं, अपितु अधिक समय तक पैरों को जमीन के साथ लगाये रखने में कठिनाई न होगी। पैरों को जमीन पर रखने के बाद दोनों हाथों के पंजों को मस्तक पर रखना चाहियें। श्वास स्वाभाविक गति से चालू रखना चाहियें।

इस आसन का अभ्यास भली भांति हो जाने के पश्चात् नित्य ३ से १० मिनट तक बढ़ाना चाहियें। इस आसन में विशेष ध्यान रखने की बात यह है कि पैरों को जमीन से शरीर के पीछे लगाये रखते समय घुटने मुड़ने न चाहियें तथा शरीर हिले-डुले बिना स्थिर रहना चाहिये। पेट के नीचे के प्रत्येक अवयव को तना हुआ रखना चाहियें।

पाद-पार्श्वासन

प्रथम भूमिपर चित लेट जाना चाहियें। दोनों हाथों को दोनों कन्धों के सामने सीधा रखना चाहियें। श्वास फेफड़ों में भरकर दोनों पैर जमीन से कमर तक ऊपर उठाने चाहियें और बायीं ओर ले जाकर जमीन पर रखने चाहियें। तत्पश्चात् श्वास को तुरन्त फेफड़ों से बाहर निकाल कर पुनः फेफड़े

में भर लेना चाहियें और पैरों को वहां से उठाकर दाहिनी ले जाकर भूमि पर रखना चाहियें । श्वास बाहर निकाल फिर भर लेना चाहियें और पैरों को वहां से उठाकर म कर लेना चाहियें । इस प्रकार सीधी लाइन में रखे गये को जब एक बार बायीं ओर और दूसरी बार दाहिनी और तीसरी बार पूर्व-स्थिति में रखा जाता है, तब पाद-पाइर्वासन सम्पूर्ण हुआ माना जाता है ।

दो दिन तक ३ बार, २ से ६ दिन तक ५ बार, ६ से दिन तक ७ बार, १६ से ३० दिन तक १० बार और महीने के पश्चात् अनुकूलता के अनुसार १० से १२ बार यह आसन किया जा सकता है ।

एकपाद पवन मुक्तासन

प्रथम जमीन पर चटाई या गरम कम्बल बिछाकर जाना चाहियें । तत्पश्चात् पेट यदि बड़ा हो, तो श्वास बाहर निकाल कर और पेट छोटा हो, तो श्वास भर दाहिने पैर को मोड़ना चाहिए और घुटने को दोनों हाथ द्वारा पकड़ कर पेट के मध्य-भाग को इस प्रकार दबाना चाहिए जिससे किडनी आदि मुख्य भागों पर साधारण दबाव पड़े श्वास को बाहर अथवा अन्दर जितने समय तक रोका सके, उतने समय तक पैर का दबाव पेट पर पड़ते रखना चाहियें और तत्पश्चात् पैरों को ज़मीन पर रखते ही श्वास को अन्दर खींचना या बाहर निकाल देना चाहिए। यही क्रिया बायें पैर से भी करनी चाहियें । पारी-पारी एक के बाद दूसरे

पैर को पेट पर लाकर रखा जाता है। इसका नाम एक पाद पवन मुक्तासन है।

पवन मुक्तासन

उपर्युक्त आसन की अपेक्षा इस आसन में भिन्नता यह है कि एक पाद पवन मुक्तासन करते समय एक के बाद एक पैर से पेट पर दबाव डाला जाता है और पवन मुक्तासन में दोनों पैरों को एक साथ घुटनों से मोड़कर पेट पर दबाया जाता है। शेष श्वास आदि के नियम एक पाद पवन मुक्तासन के समान ही पालन करने चाहियें।

समय का परिमाण

चार दिन तक एक पाद पवन मुक्तासन चार बार करना चाहिये। चार से १२ दिन तक एक पाद पवन मुक्तासन ३ बार और पवन मुक्तासन चार बार, १२ से २२ दिन पर्यन्त एक पाद पवन मुक्तासन चार बार और पवन मुक्तासन ६ बार। २२ दिन के पश्चात् अनुकूलता के अनुसार एकपाद पवन मुक्तासन ४ से ६ बार और पवन मुक्तासन ६ से १० बार तक किया जा सकता है।

आकर्ण धनुरासन

पहले किसी अनुकूल आसन (सिंहचर्म, मृगचर्म, कम्बल खादी का वस्त्र आदि) पर बैठ जाना चाहियें। पैर लम्बे फैला कर और सटे हुए रखने चाहिएं। दाहिने पैर को बायें पैर की जानु पर रखना चाहिए। कमर, छाती तथा मस्तक समरेखा में रहने चाहियें। इसके बाद श्वास फेफड़े में भरकर दाहिने पैर के अंगूठे को बायें हाथ के मध्य में तर्जनी तथा अंगूठे से

पकड़ना चाहियें तथा दाहिने हाथ के मध्य में तथा अं से बायें पैर का अंगूठा पकड़ कर दाहिने पैर को हाथ खिंचाव द्वारा बायें कान तक लाना चाहिये। जब तक श्वा को रोका जा सके, तब तक कान के पास पैर को रोक रख चाहिए। तत्पश्चात् दाहिने पैर को शीघ्रता पूर्वक हाथ छोड़ देना चाहिये और उस पैर को सीधा फैला देना चाहि इसी प्रकार बायें पैर के अंगूठे को दाहिने हाथ की उंगलि से पकड़ कर दाहिने कान तक ले जाना चाहियें और जब तक श्वास को अवरुद्ध किया जा सके, तब तक पैर को कान के पास रोक रखने के बाद तुरन्त ही छोड़ देना चाहिये। करते समय स्वयं अपने को देखनेवालों को यह अनुभव हो चाहिए कि धनुष से बाण छूटते समय जो दृश्य आंखों के सामने आ उपस्थित होता, वही दृश्य वे प्रत्यक्ष देख रहे हैं हमारे शरीर की कार्यशक्ति और स्थिति स्थापकता ऐसी ही होनी चाहिये। शिर को झुकायें बिना कान के पास पैर के अंगूठे को ले जाने का प्रयत्न करना चाहिये। एक के बाद ए —इस प्रकार दोनों पैरों से जब पारी-पारी किया जाता है तब यह आसन सम्पूर्ण माना जाता है।

यह आसन ५ दिन तक ४ बार, ५ से ६ दिन तक ६ बार, फिर आवश्यकता तथा शक्ति के अनुसार संख्या में वृद्धि करते जाना चाहियें।

इस प्रकार उपरोक्त उपचार पद्धति का अनुसरण करने से मधु-प्रमेह के रोग से सदैव के लिये छुटकारा पाया जा सकता है।

यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा

स्वानुभव

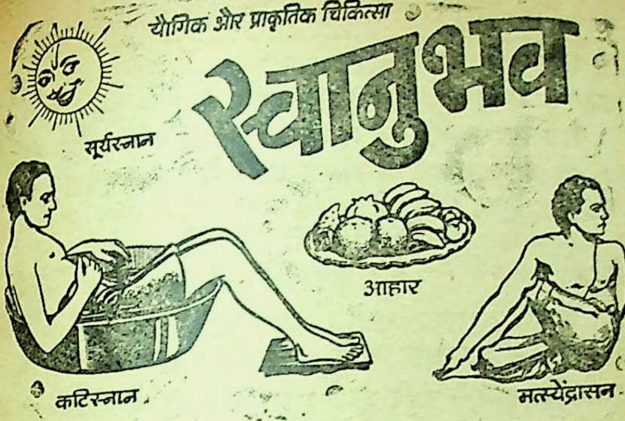

व्यभिचारी था सदाचारी कैसे बना ?

जैसी सोबत वैसी असर (संगत का प्रभाव) इस कहावत के अनुरूप मेरा जीवन बचपन व्यभिचार के फंदे में फस गया था। कालेज जीवन मेरा व्यभिचार मय बन गया था। महान मुश्किल के सामने होकर एम० ए० तक पढ़ा। उपाधि प्राप्त करनेके पश्चात् जब मैं नौकरी ढूंढ़ने लगा। तदर्थ पता लगा कि पहिचान और विश्वास चाहियें। यह दोनों बातें मेरे पास नहीं थी। बहुत परेशानी भुगतनी पड़ी। घरवाले अपमान करने लगे। सहन नहीं हो सका। एकांतमें बैठकर बीते हुए व्यभिचारी जीवन की यादी अंतःकरण से प्रतिबिम्बित होने लगी। निष्ठुर, कठोर अल्पजीवी, श्वान के जैसा पतितकर्मी आदि अनेक निष्ठुर बातें मुझे सताने लगीं। अब नौकरी के लिये अल्प समय में व्यवस्था न होने पर अन्न-वस्त्र तथा निवास स्थान का अभाव होगा। मुझे मानसिक चिंता घेर गई। एक पेड़ के नीचे शांत निद्रा लेने के विचार से लेट गया। स्वप्न आया। युवक डरो मत धीर धरो। संगत बदलो। योग का आश्रय स्वीकारो। तुम्हारा भला तुम्हारे पास है। उठो आगे बढ़ो।

यह अंतर से आत्म संदेश स्वप्नावस्थामें मुझे मिला। मैं उठकर आगे बढ़ा। पेड़ वल्लियों के मध्य भाग में था। योगाभ्यास के बारे में भाषण होता था। मन था। मन में कुसंस्कार के अंकुर उठते थे। बलपूर्वक २ घंटे तक सुना। आशा कि किरणें पल्लवित होने लगीं।

भाषण के बाद मेरे समीप में बैठे हुयें सत्संगी मुझे लगे क्या करते हो। मैंने कहा नौकरी ढूढ़ता हूं। सत्संगी कहा बारम्बार आया करो। पहचान बढ़ने पर नौकरी जायगी। योगाभ्यास करो। सात्विकगुण सम्पन्न रहेगा और नौकरी ढूंढ़ने की जरूरत नहीं तुम्हें नौकरी आयेंगी। इस बात पर मुझे विश्वास नहीं बैठा। जीवन परेशान होने से यह भी करके देखेंगे ऐसा समझकर योगाभ्यास के वर्ग में जाता था और सत्संग में भी जाता एक दिन एक सत्संगी ने कहा जवाबदारी के साथ करने नौकरी है। तुम सत्संगी और योगाभ्यासी हो, लेन-हिसाब-किताब के बारे में पूर्ण विश्वाससे कामकर बताओ तो चलो मेरे साथ। सूद में रुपया (व्याज-बटाव) लेन-करने का धंधा था। स्वराज्य के पहले की बात है। महीने २५०रु० की तनख्वाह की नौकरी मिली। जब से आज तक योगाभ्यास और सत्संग करता हूं। १९२४ में लाहौर में महीने के लिये योगीराज माधवजी लाहौर पधारे थे योगाभ्यास की शिक्षा देते थे। और योग-वेदांत के बारे भाषण करते थे। योग-ज्ञान प्रवृत्तक कार्यालय नाम से गुज-रात में संस्था चलाते थे, कीर्ति, धन, सन्तान तथा आत्मज्ञान संपादन की प्रेरणा मुझे लाहौर के सत्संग तथा योगाभ्यास से प्राप्त हुई। मेरे अनेक मित्रों को भी लाभ हुआ है। वर्तमान समय में मेरी उमर बड़ी है। किन्तु थकावट नहीं लगती है। जवानों के समान ८ टे काम करता हूँ।

सर्व हितेच्छु
भजनलाल नन्दकिशोर राय एम. ए.

अभिमन्यु

ले. लक्ष्मीचन्द जैन 'सरोज' एम० ए० साहित्यरत्न

मां दो क्षण को करो कल्पना, मैं अभिमन्यु वीर कुमार।
और सुभद्रा सी जननी तुम, मुझे समझती प्राणाधार॥
याद करो उस धर्म-युद्ध को, जिसका उज्ज्वलतम इतिहास।
कौरव-पाण्डव दल के नेता, जूझ रहे कर लिये विनाश॥
शर-शय्या पर भीष्म पड़े जो, करते धर्माधर्म विचार।
दोनों दल के नेता मिलते, पूज्य बुद्धि का ले उपहार॥
मैं भी जाता साथ तुम्हारे, पिता-पार्थ ग्रीवा का हार।
देते आशीर्वाद पितामह, किये प्रशंसा का उच्चार॥

पहिला वर्ग प्रजा का पालन, करना वत्स ! सदा हरबार।
शरणागत का संरक्षण कर, दुष्ट-दमन करना हरबार॥
धर्म मार्ग पर निर्भय बढ़ना, कीर्ति कलश ले बलिहार।
प्राण भले ही जावें पर प्रण, भूल न टूटे, सुनो कुमार॥
क्षत्रिय वह जो सह न सके निज, आंखों-आगे अत्याचार।
स्वयं दूसरों की रक्षा हित, खड़ा रहे लेकर तलवार॥
इसी समय आ एक दूत जब, कहता सबका कर सत्कार।
कल विपत्ति संशप्तक मिलकर, युद्ध करेंगे, हों तैयार॥

वृद्ध बाप का कुल कलंक सा, सेनानी पद निज उर धार।
चाह रहा जयद्रथ मन ही मन, आगा-पीछा भूल विचार॥
यह सुन पूज्य पिता हर्षित हो कहते स्वागत शतशत बार।
युद्ध भूमि में रणचण्डी का, कर दूंगा उनसे शृंगार॥
तुम कुछ क्रोधित होकर कहतीं सिंधुराज जयद्रथ वह नीच

जिसने वन में बहिन द्रोपदी, को चाहा था लाऊं
यह सुन मैंने सोचा अच्छा, अवसर आया है अब
भीम-नकुल सहदेव तात ले, मैं जूझूंगा उसके

तीव्र बाण से युद्ध-भूमि में, कर दूँगा उसका उपचार।
और मुदित होकर पाऊंगा, माताओं का मुदित दुलार॥
कल आवेगी खूब काम यह, मेरे शस्त्रों की शित धार।
जोशीले जयद्रथ को बल से, कर देगी क्षण में छार॥
जब चल देते पिता कृष्ण संग, संशप्तक करने संहार।
धर्मराज तात को तब ही, मिलता है यह कुसमाचार॥
वीरवन्द्य आचार्य द्रोण ने, लेकर गिरिवर सा आकार।
सेना की सुन्दरतम रचना, की कौशल से चक्राकार॥

चक्रव्यूह की रचना सुनकर, हो जाते सबके मुख
सत्य समस्या कैसे सुलझे, जब न पार्थ-कृष्ण धीमा
तब मैं कहता मेरे रहते, भूल न हों यों चिंतित
चक्रव्यूह भेदन कर सकता, लड़ सकता निजबल को
पर न निकलना आता मुझसे, यही खेद कुछ मुझको
किन्तु न चिंता करें तनिक भी,प्राण दिये यदि बचती
बहुत ठीक है साधुवाद शत, जो कुछ तुमने कहा
किन्तु तुम्हें कैसे जाने दें, सत्य अकेले प्राणाधार

अभिमन्यू तुम सा न धरा पर और पाण्डवों का युवराज।
फिर भी जाओ जननि-वधूसे, झट मिलकर आओ सिरताज।
श[illegible] सैन्य में आगे बढ़ना, सत्य सुशर सी ले खरधार।
हम भी साथ तुम्हारे अंगी, रक्षक होंगे पालन हार॥

“जयश्री पाने जाऊं रण में, आज्ञा दो मां कर प्रस्थान।
चक्र-व्यूह का भेदन करके, लौटूं सकुशल दो वरदान॥
वीर सुता और वधू हो, वीर-मात बनना जब इष्ट।
लाल लाडले तू मत जा यह, कैसे कह दूं होगा कष्ट?॥

चिंता मैं क्यों करूं कि जब हैं साथ तुम्हारे तीनों तात।
पवन-अनल अरु वरुण देवसे, चेतनतामय जिनके गात॥
सहर्ष जाओ युद्ध भूमि में, चक्र-व्यूह कर आओ पार।
वधू उत्तरा सी जयश्री तुम, लाओ अन्य शीघ्र सुकुमार॥
ध्वस्त धरा के जीवन से हों, कष्ट कण्टकों के सब शूल।
ब्रह्मा-विष्णु-महेश देवता, हों सुखदायक मंगल मूल॥

प्राण प्रिये! दो सत्य विदा तुम; सत्य रोजसी हंसमुख फूल।
चक्र-व्यूह का सिन्धु अगम पर, करो कामना पाऊं कूल॥
सहर्ष जाओ प्रिय रण में तुम; हृदय सदा सा तेरे साथ।
शीघ्र लौटना जयश्री से बढ़, लेकर प्रमुदित आनननाथ॥

विदा और वरदान लिये मैं, जाता रण में लेकर तात।
प्रवेश करता चक्र-व्यूह में, शूरों के बल को दे मात॥
सत्य तीव्रतम शर-वर्षा से, ढक देता नीलाम्बर नाप।
अरि दल कातर होकर कहता, बालवीर या जीवित शाप॥
बढ़ता जाता पवन प्रलय सा, और कर्ण को लेता जीत।
तत्क्षण मेरे तात विजय ध्वनि, कर तलाते अपनी प्रीति॥

इसी समय पर दैवयोग से, रह जाते सब पीछे तात।
और देखते मैं बढ़ता हूं, किन्तु न सुन पाते वे बात॥
सप्त महारथि मिल जुल कर जब, करते हैं मुझ पर आघात।

दूर सुनाई देता मुझको, ' धर्म युद्ध में यह व्या
अंगराज जब देता मेरा, शर वर्षक सुन्दर धनु
तब सत्वर ही कृप विक्रम कर, देता रथ रक्षक सिर
गुरु द्रोण के तीव्र तीर जब, देते तोड़ सत्य तरक
दुःशासन की वज्र मुष्टि तब, गदा भयंकर करती

शल्यमहारथी क्षुधित सिंहसा, करता मुझपर कई प्रहार।
अश्वत्थामा तब बढ़ आता, करने लगता अति हुंकार॥
सत्य सभी को खूब छकाता, तनिक न कर बल का शोर।
स्वर्ग भेजकर वीर सहस्रों, बतला देता कितना जोर॥
सत्य हिमालय सा बनकर मैं, सहता रहा वार पर वार।
और जूझता अन्तिम क्षण तक, आखिर गिर पड़ता लाचार।
उसी धरापर जिसके हित था सच पाना अभीष्ट अधिकार।
युद्धि-भूमिमें निर्णायक थी, धार्मिक बल की बस तलवार।

कहां एक मैं अल्प आयु का औ तेरा मानव सुकुमा
वहीं सातवें बयो वीरवर, जीवित पा न सके पर पार
मरने से पहले सुन लेता, पाण्डव दल का हाहाका
और देखता निज नयनों से, जो बहती आंसू की धार
धीरे धीरे मां तुमको मैं, तथा पिता-मामा को भू
चल देता तज अग्नि-शिखा सा ऊपर कहीं खोजने कू
सभी लौटते किन्तु नहीं मैं, जब हो जाती काफी शाम
समाचार मरने का सुनकर, अश्रु न लेते तब आराम
और वधू तो तत्क्षण होती, लिये वेदना संज्ञाहीन।
जैसे प्रियतम की आत्मा में, चाह रही होना तल्लीन॥

चारों तात छिपाते मुख को, पछताते मल मलकर हाथ।
सत्य-धर्म और न्याय-दैव ने, जैसे छोड़ दिया हो साथ॥
पूज्य पिता विचलित हो उठते, जबकि कृष्ण थे उनके साथ।
कहते दिव्यायुध में मुझसा, तनय कहां अब मेरा नाथ॥
धर्मराज सा धर्म-निष्ठ हो, करता था जीवन-व्यापार।
बन्धु भीम सा बलशाली हो, कहता था यह तो अधिकार।

सत्यव्रती सहदेव बना था, जो जीवन में शत शतबार।
ओर नकुल सा नीतिवान था, जो अभिमन्यू धीरकुमार॥
प्रीति क्षेत्र में आप सरीखा, सदा लियें था जो सुविचार।
सुन्दरता में कामदेव सा, रूप लियें था जो सुकुमार॥
चला गया हा छला गया मैं कहां गया प्राणों का प्राण।
सभी गुणों की सुखद राशि सा, कहां गया त्राणों का त्राण।

सखे! व्यथित हो तुम मत इतने, कहते स्वयं कृष्ण भगवान।
भागिनेय मम सत्य स्वर्ग में, अमर रहेगा यह आख्यान॥
जबतक नभमें रवि-शशि होते, काल-कलासे नित गतिमान।
जबतक भारत दोनों जीवित, याद करेगा हिन्दुस्तान॥
यह कथा मां तुम बहा रही हो, सचमुच आनन्दाश्रु अपार।
अब न कल्पना की तुम माता, और न मैं अभियन्यूकुमार॥

पूज्य गोवंश की हत्या शीघ्रातिशीघ्र बंद की जा

ले० महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्दजी उदासीन

सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः
साम वेद १-५-२-१-

गायें सदा पावन तथा विश्व की धारक व पोषक हैं। इतना ही नहीं अपितु वे सदा विश्व देव हैं ।

आप्यायध्वमघ्न्या । यजुर्वेद १-१

गायों का वर्द्धन करो साथ ही इस तरीके से उनकी देख-रेख हो जिस से उनकी नसल सुधार एवं वे निरोग रहें वे भूल कर भी हिंसा के योग्य नहीं । अतएव अघन्या शब्द का वेद में प्रयोग पच्चीस बार प्रयोग हुआ है, केवल गाय का ही नहीं अपितु अन्य पशुओं के संरक्षण की भी भगवान से प्रार्थना की गई है—

'यजमानस्य पशून पाहि' यजुर्वेद १-१

ऋग्वेद ८-१०१-१५ में तो गाय को रुद्रों (क्षत्रियों) की माता, वसु (वैश्यों) की कन्या ब्राह्मणों की बहन, तथा अमृत का खजाना कहा है और आज्ञा की है कि उस निरपराधी गायों कोई भी हत्या न करें ।

अथर्व वेद में तो सर्वादरणीय परम पूज्या गोमाता की जो अवज्ञा करता है उस गोघाती पर शस्त्र प्रहार तक का आदेश किया है ।

'यो नो गां हंसि तं त्वा सी सेन विध्यामः, अथर्व १-१६-४

जो हमारी गौमाता को मारता है उस तुझ को हम गोली से उड़ायेंगे ।

महात्मा गान्धी

(१) मेरा सारा प्रयत्न गोवध रोकने के लिए है, जो गाय को बचाने के लिए प्राण होम देने को तैयार नहीं वह हिन्दू नहीं।

२४-४-२१

(२) मेरे विचार के अनुसार गौरक्षा का सवाल स्वराज्य के प्रश्न से छोटा नहीं कई बातों में मैं स्वराज्य के सवाल से भी बड़ा मानता हूं, मेरे नजदीक गोवध और मनुष्य वध एक ही है। २५-१-२५

लोकमान्य तिलक

(३) स्वराज्य मिलते ही कलम की एक नौक से एक मिनट में ही गौहत्या बन्द की जायेंगी।

महामना पं. मदनमोहन मालवीय

(४) मुझे ले लो, मेरे प्राण ले लो, पर गाय को छोड़ दो, उसने आपके एक बालक को भी भय नहीं पहुंचाया है।

लाला लाजपतराय

(५) गौ रक्षा इस देश के नर नारी सब के लियें बड़ा भारी कर्तव्य है। दूध-घी पर ही भारत का जीवन निर्भर है। जब से गाय, बैल बड़ी निष्ठुरता से मारे जाने लगे हैं, तब से हमें चिन्ता हुई है कि हमारे बच्चे कैसे जियेंगे ?

श्री गुरु गोविन्दसिंह

(६) यही आश पूर्ण करो तुम हमारी;
मिटें कष्ट गवन छुटे खेद भारी।

आयशा हजरत (मोहम्मद साहब की धर्म पत्नी)

(७) फरमाया रसूल अल्लाह ने कि गाय का दूध शिफा और घी दवा और उसका मांस–नितान्त मर्ज (रोग) है

मुल्ला मोहम्मद बाकर हुसैनी

(८) गाय को मारने वाला, फलदार वृक्ष काटने वाला, और शराब पीनेवाला कभी नहीं जीयेगा।

अल्लामा जलालुद्दीन सियुती (अल रहमत)

(९) गाय के गोश्त में बीमारी है, उसके दूध में दुआ और घी में शफा है।

हकीम अलमलखां

(१०) न तो कुरान और अरब की प्रथा ही गौ की कुर्बानी का समर्थन करती है।

रफी अहमद कीदवई साहब

(११) गौवध निषेध का प्रश्न अब दीर्घकाल तक स्थगित नहीं रखा जा सकता, जन तन्त्र के सिद्धांतानुसार जनता की मांग को स्वीकार करना ही चाहिये।

सर जान उडरफ कलकत्ता के माननीय विचारपति

(१२) गौ मांसाहारियों के स्वार्थ के लिये गाय और बैलों पर आक्रमण किया जाता है, परन्तु उन के स्वार्थ के लिये दूसरों का स्वार्थ क्यों नष्ट किया जाय। थोड़े से मांसाहारियों के लिये गोहत्या जारी रहे और जिस का दूध का स्वार्थ है, वे सच्ची चिल्लाहट मचा कर ही रह जाते हैं, यह आश्चर्य है।

पूर्वोक्त सूक्तियों से यह प्रमाणित हुआ कि गौवध निषेध वेद सम्मत तथा भारत के राष्ट्रनायक महात्मा

गांधी आदि नेताओ द्वारा समर्थित है। ईसाई मुस्लिम बन्धु भी अविलम्ब गोवध बंदी के लिये हमारे से कहीं अधिक उत्सुक हैं।

डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद भूतपूर्व राष्ट्रपति महोदय ने भी यथा समय गौवध बन्दी पर बल दिया—

भारतीय संविधान ४८वीं धारा में गौवध निषेध का स्पष्ट उल्लेख है, फिर भी समझ में नहीं आ रहा कि गौवध बन्दी करने में हमारी सरकार क्यों विलम्ब कर रही है? १९ वर्ष स्वराज्य प्राप्ति को हो गये अबतक कोई प्रभावशाली कदम सरकार ने इस ओर नहीं उठाया।

कुछ गो भक्तों के सतत् प्रयास से गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा सात प्रांतों में और आठवें महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में गौवध बन्दी का कानून बना। सुप्रीम कोर्ट के फैसले ने उसे भी लंगड़ा बना दिया—

प्रसन्नता की बात है कि जम्मू, कश्मीर प्रान्त मुस्लिम बहुल होने पर भी गौहत्या के पक्ष में नहीं हैं। वहां पहले से ही गौवध बन्दी कानून बना हुआ है, जो अबतक प्रचलित है, गोघाती को जेल की कड़ी सजा का दण्ड, वहां के कानून की विशेषता है।

पुराना मैसूर, हिमाचल प्रदेश भी गौवध के कलंक से रहित हैं, स्वराज्य प्राप्ति से पूर्व ही सरकार का कानून वहां बना हुआ था।

भारत के तपस्वी, महात्मा जो हिमालय में ध्यान मग्न थे, गौ माता के आर्तनाद ने उनके ध्यान को भंग किया, उन्होंने

देहली में प्रधान मंत्री एवं गृह मंत्री के घर तथा संसद् के सामने अनशन किया और धरना दिया। अबतक सन्त गिरफ्तार कियें गयें और असह्य जेल की यात सहन कर रहे हैं।

श्री मौनीबाबा

एक महात्मा ने काशी जी में अनशन प्रारम्भ कर है, पता चला है कि वे जल भी ग्रहण नहीं करते।

परम गोभक्त श्री रामचन्द्र वीर, देहली, हिंदू सभा में आमरण अनशन कर रहे हैं, यदि समय रहते शास कोई सन्तोष जनक कदम नहीं उठाया तो इन महात्माओं जीवन खतरे में पड़ जायेंगा, कदाचित् उनके प्राणान्त हो तो ८० % भारत की जनता के हृदय पर असह्य आघात जिसके फलस्वरूप देशमें भयंकर अशांति फैलने का भय है।

केन्द्रीय मंत्री मण्डल की घोषणा पर लोगों की लगी हुई थी, २३ अगस्त १९६६ को खूराक के कृषि सुब्रह्मण्यम् की घोषणा ने जो सब मंत्रियों से सलाह कर की गयी, आशा को निराशा में बदल दिया।

वस्तुतः विधान में संशोधन करके पूर्ण गौवध घोषणा जब तक भारत सरकार नहीं करतीं तब तक भार गो भक्त जनता के हृदय में बेचैनी कम न होगी।

सुब्रह्मण्यम् मंत्री की घोषणा, (नवभारत टाइम्स २४ देहली) निम्न निर्दिष्ट है।

गौ हत्या पर रोक लगायी जाय-राज्य सरकारों को (हमारे विशेष संवाददाता द्वारा) नई दिल्ली, २३ अगस्त

खाद्य व कृषि मंत्री श्री सुब्रह्मण्यम् ने आज लोकसभा को बताया कि 'राज्य सरकारों को सलाह दी गयी है कि वे गौ-हत्या पर रोक लगाने के बारे में संविधान के निर्देश का पालन करें।

अधिकांश राज्यों ने रोक लगा दी है, जिन राज्यों में पूर्ण रोक नहीं लगी है वहां मुख्य मन्त्रियों से राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक के समय बातचीत की गयी, मन्त्री ने बताया कि उन्हें यह भी कहा गया कि वे इस सवाल पर लोगों की भावना का आदर करें, किन्तु कानून मन्त्रालय ने उन्हें सलाह दी है कि गौ हत्या पर प्रतिबन्ध लगाना राज्यों का अधिकार है, इस सम्बन्ध में संसद् कोई कानून नहीं बना सकती है।' इस घोषणा से सदन में तथा सदन से बाहर जनता में समाधान के स्थान में घोर असंतोष ही हाथ लगा।

मेरे विचार में यदि जिन महाराष्ट्र, प. बंगाल, आन्ध्र, मद्रासादि प्रान्तों में गौवध बन्दी का कानून अभी तक नहीं बना, वहां के चीफ मिनिस्टरों से शीघ्रातिशीघ्र घोषणा करायी जाये कि हम शीघ्र ही कानून द्वारा गौ-हत्या बन्द करेंगे और समय भी निर्धारित किया जाये कि इतनी अवधि में गौ हत्या निरोध का कानून बना दिया जायेगा, तो जनता का हृदय कुछ शान्त होगा। पूर्ण यह समस्या तब ही सुलझेगी जब विधान में संशोधन करके पूर्ण गौ रक्षा का मार्ग प्रशस्त बनाया जाये। अर्थात् गाय, बछड़ा, बैल, साण्ड किसी की भी हत्या न हो सके। पूर्ण गौ वंश को संरक्षण दिया जाये। जब गौ हत्या बन्दी का कानून बनना ही है और कोई भी

जनता में तथा मिनिस्टरों इस के विरुद्ध नहीं फिर मि करके तपस्वियों को अनशन आदि के क्लेश द्वारा सता व्यर्थ में पाप मोल क्यों लिया जाये । आशा करता हूँ प्रधान मंत्री तथा स्वराष्ट्र मन्त्री एवं प्रान्तों के चीफ मिनि उचित कदम उठाकर जनता में फैल रहे घोर असन्तोष दूर करने का प्रशंसनीय प्रयत्न करेंगे ।

पाकिस्तान और चीन की सांठ गांठ से युद्ध का स सदा बना हुआ है, ऐसी स्थिति में ८० प्रतिशत जनता भावना को आघात पहुँचा से यदि राष्ट्र में अशान्ति गई तो राष्ट्र का महान् अनिष्ट हो जिसका अनु लगाना कठिन है ।

मैं १९ अगस्त से २४ अगस्त ६६ तक केन्द्र के प्र मंत्री, गृहमंत्री, माल मंत्री आदि प्राय: सभी मन्त्रियों मिला, वार्तालाप सद्भावना पूर्ण रहा । २ सितम्बर परिस्थिति निरीक्षण के लिये मैं देहली जा रहा हूँ । आवश्यक प्रतीत हुई तो उन प्रान्तों के चीफ मिनिस्टरों से फिर मि का प्रयास करूंगा, जिन प्रान्तों में अभी तक गौ ह वन्द नहीं ।

मैं जनता और सरकार दोनों से अनुरोध करता हूँ पारस्परिक कटुता पैदा हो से पहले इस समस्या सुलझाने के लिये चार या पांच सदस्यों की समिति ब जायें, जिसमें जनता और सरकार दोनों के प्रतिनिधि र और उनका निर्णय मान्य हो । समिति निर्णय एक महीने पहले ही दे, जिससे राष्ट्र का संकट टल जाय, राष्ट्र सौमनस्यता का वातावरण स्थापित हो ।

(कहानी)

पारस की खोज

ले०- 'हरीश 'मधुर'

[प्रस्तुत कहानी मनोवैज्ञानिक आधार पर लिखी गई एक मर्मस्पर्शी कहानी है जिसमें यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है कि संतोषी व्यक्ति ही सदा सुखी रहता है तृष्णाओं का महासागर अनन्त आकाश की भांति कहीं अन्त नहीं पाता । —सम्पादक]

आज उसे अपने देश छोड़े तीन वर्ष से भी अधिक हो गये और इन तीन वर्षों में उसने हिमालय से लेकर कन्या कुमारी अन्तरीप तक, अटक से लेकर कटक तक सारा आर्यावर्त छान डाला था। देश का को भग कोई धार्मिकस्थल ऐसा न रहा जहां पर न पहुंचा हो। तब से पारस क्यों नहीं मिला? किसी ने उसे पागल कहा तो किसी ने महत्वाकांक्षी और किसी को उसके अद्भुत विचारों पर अतीव आश्चर्य हुआ। वह रेस्तरां में बैठा। था विचारों में मग्न एक मनोमय अज्ञात प्रदेश में गुजर रहा था —उसने सोचा पारस! क्या वास्तव में कोई ऐसी वस्तु है जो लोहे से छुआते ही उसे सोना बना दे। सोना—सोना क्या ? अब उसका विचार प्रवाह दूसरी ओर मुड़ा और वह आध्यात्मिक दृष्टि से भौतिक संसार के नश्वर रूप को निहारने लगा। विचारों के अनन्त सागर में खो गया। उसने पारस प्राप्त करने के लिये एड़ी से चोटी तक का बल लगाया था। सैकड़ों पुस्तकें और लेख इस सम्बन्ध में पढ़े थे। लेकिन वह वास्तव में अभी तक निश्चय नहीं कर पाया था

कि पारस नाम की कोई वस्तु संसार में हैं। उसका मन था, पुस्तकों में उलझा था उसने एक बोतल पेय; लाने आडर दिया और मस्तिष्क को विश्राम देने का मिथ्या प्र करने लगा। उसने निश्चय किया कि वह अवश्य पारस खोज करने हिमालय की तलहटी में जायेगा वहीं उसे पार मिल सकेगा।

नगाधिराज हिमालय की पर्वतमाला के एक खण्ड में चारों ओर बर्फ ही बर्फ थी वह अमेरिकन वैज्ञानिक वि ले रहा था। चारों ओर स्निग्ध शुभ्रता और अखण्ड शां थी। भगवान भास्कर का रथ यात्रा के लिये प्रस्थान हो चु था और उसकी पीली किरणें हिम की सिकता से मिलकर आभा उत्पन्न कर रहीं थीं। तलहटी के दायें भाग में झरना ऋषि के आश्रम को अपने बाहुपाश में जकड़े निर बह रहा था। उसकी कलकल ध्वनि और पक्षियों के कल के अतिरिक्त सर्वत्र शांति का साम्राज्य था। वैज्ञानिक आश्र में पहुंचा और उसकी मनोहारी प्राकृतिक छटा एकटक नि रता ही रहा। महात्मा जी आश्रम के उद्यान में फूल चुन र थे। वैज्ञानिक ने महात्माजी को भारतीय ढंग से नमस्का किया और उत्तर में महात्मा जी ने अत्यन्त कोमल स्वर आशीर्वादात्मक शब्दों की झड़ी लगा दी। महात्माजी ने दीर्घ काल के पश्चात् आज एक और मानव के दर्शन किये थे वेशभूषा में उनसे भिन्न था। हिन्दी भी उसे काम चलाऊ आती थी। महत्मा जी ने आने का कारण पूछा तो उसने बताया—

“‘महात्मन् मैं पारस की खोज में अपना देश छोड़ आपकी शर

में आया हूं परंतु पारस नाम की कोई वस्तु है भी यह निश्चय नहीं कर पा रहा हूं" "है क्या नहीं ?" महात्माजीका संक्षिप्त उत्तर था। "तो बताइये महात्मन मैं उसे कहां प्राप्त कर सकता हूं। आज संसार के लिये उसकी अत्यन्त आवश्यकता है। इसके बदले में आप जो चाहें आपको दे सकता हूं।" महात्माजी ने कहा— "पारस कहां है ? अन्वेषक पारस पग पग पर है, था, और रहेगा। केवल दृष्टि भ्रम के कारण ही वह अदृश्य है और जैसा तुमने कहा आज के संसार के लिये पारस की आवश्यकता नहीं। इसीलिये वह अप्राप्य है। पर मैं तुम्हें अवश्य पारस दूंगा।' रुक कर कहा—'आज ही तुम बम्बई चले जाओ और ठीक सात दिन पश्चात् लौट आना मैं तुम्हें पारस दूंगा।' वैज्ञानिक लौट आया।

× × × ×

बम्बई एक्सप्रेस के फर्स्टक्लाश कम्पार्टमेन्ट में बैठा वह वैज्ञानिक सोच रहा था कि क्या वास्तव में कोई ऐसी वस्तु है जो लोहे से छुआते ही उसे सोना बना दे। उसे अभी तक विश्वास नहीं हो पाया था। उसके सामने वाली बर्थ पर एक भारतीय बैठे थे जो वेशभूषा से धनवान प्रतीत होते थे। उनके सूटकेश पर लिखे ये शब्द मि. सतीशचन्द जैन (ओनर आफ जैन काटन मिल्स लि. अहमदाबाद) उनका स्पष्ट परिचय दे रहे थे। वे बहुत अधिक व्यथित और चिन्ताग्रस्त थे। अतः उन्होंने वैज्ञानिक से बात करने का प्रयास भी नहीं किया। कक्ष में शांति थी—दो के अतिरिक्त तीसरा कोई था भी नहीं ! एक स्टेशन पर आकर एक्सप्रेस रुकी और रुकते ही एक बूढ़ी

भिखारिन अपने सात वर्षीय इकलौते बेटे को लिये कक्ष में घुसी। उसका चेहरा झुर्रियां खा रहा था। वह भूखसे व्याकुल थी एक पैसा दो बाबू एक पैसा, दो दिन से खाना भी नहीं खाया मालिक भगवान तुम्हें सुखी रखें। कहते हुये वृद्धा ने अपना कटोरा सेठ सा. की ओर बढ़ा दिया। सेठ अनसुनी कर गये। लेकिन जब वृद्धाने आशीर्वादात्मक वाक्यों की पुनरावृत्ति की तो वे उबल पड़े। 'हमें अपने काम से फुरसत नहीं और ये जान खाने आ जाते हैं। कमीने कुत्ते—क्या पैसा यहां तुम्हारा बाप रख गया है चलो यहां से।' वृद्धा ने कोई प्रतिरोध नहीं किया क्योंकि हर जगह इन्हीं वाक्यों से तो उसका स्वागत होता था पर उसकी आंखों से अविकल वेदना ग्रस्त हो फूट उठी और वह मौन अविचल मूर्तिवत क्षण भर के लिये खड़ी रह गई। उसने अनमने मन से वैज्ञानिक की ओर कटोरा बढ़ाया। वैज्ञानिकने पर्स खोला और दो रुपये का नोट उसके हाथों में थमा दिया। नोट देखते ही वृद्धा सकपका गई और आश्चर्य से बोली—यह क्या नोट है। वैज्ञानिक हंसा और बोला—तुम भूखी हो न मां! जाओ खाना खालो' और वह वृद्धा लाख दुआयें देती कक्ष से बाहर आ गई। वैज्ञानिक ने खिड़की से झांककर देखा आज वह बहुत प्रसन्न थी मानो क्षुधा ग्रीष्म से तपित वह लतिका 'धन' रूपी जल पाकर पुनः अंकुरित हो उठी हो। उसने जीवन में आज तक सोचा भी न था कि कोई उसे नोट भी देगा।

× × × ×

बम्बई आयें आज वैज्ञानिक को दूसरा दिन. था। 'बोलगा होटल' के वातानुकूलित कक्ष में भी वह व्यथित था। सोचता

था महात्माजी ने सात दिन के लिये ही क्यों कहा—क्या रहस्य है इसमें। प्रातःकाल हुआ ही था। अतः उसने बैरे को बैड टी लाने को कहा और पूछा कि 'बम्बई टाइम्स आया या नहीं।' बैरा बम्बई टाइम्स और चाय लेकर आया। ज्यों ही वैज्ञानिक ने प्रथम पृष्ठ खोला चौंक उठा—सेठ सतीशचन्द्र जैन (ओनर आफ जैन काटन मिल्स लि. अहमदाबाद) ने आज रात को जहर खाकर आत्महत्या करली। हत्या का कारण लगभग मिल में बीस करोड़ से भी अधिक का नुकसान बताया जाता है। नुकसान के पश्चात् भी उनके पास एक शानदार कोठी और कुछ रुपयें शेष थे। 'एक कोठी और कुछ करोड़ रुपये' (एक कोठी और कुछ करोड़ रुपयें और उन्होंने आत्महत्या करली।) अब उसे ट्रेन वाली सारी घटना याद हो आई। उसे लगा एक रुपया किसी को नवजीवन दे सकता है दूसरी ओर कुछ करोड़ रुपयें किसी की जान ले सकते हैं। तब कहां पारस की खोज की जाय। महात्माजी ने यही दृश्य दिखाने शायद मुझे बम्बई भेजा था। अब हो चुकी पारस की खोज पूरी। अब नहीं चाहियें मुझे पारस-पारस तो मृत्युका कारण है। (अट्टहास) संतोष—संतोष ही सबसे बड़ा धन है। यही ध्वनि ही उसे चारों ओर से सुनाई दी और उसी दिन वोल्गा होटल के मैनेजर ने मुझे बताया कि वह अमेरिकन वैज्ञानिक वापिस अपने देश चला गया और कह गया है कि उसकी पारस की खोज पूरी हो चुकी। वास्तव में तृष्णा के महासागर का क्षितिज की भांति कहीं अन्त नहीं। सन्तोषी ही सदा सुखी रहता है।

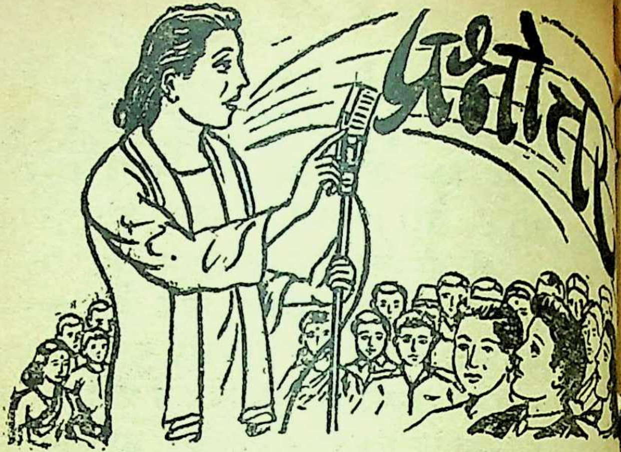

[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक-आध्यात्मिक प्रश्नों समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या समाधान चाहते हों तो लिख भेजें—सम्पादक]

श्री मानवेंद्रराय भूपेन्द्रराय (कलकत्ता)

पत्र १ प्रश्न १— श्री० संचालकजी, हमारा प्रश्न गृ जीवन के वास्तविक स्वरूप— ढांचे के साथ संबद्ध है। पत्नी अनुमानतः ५१ वर्ष की है। सन्तान ६ हैं और वे अ पढ़े-लिखे और डिग्रीधारी हैं। आमदनी अच्छी है। र सहन, खान-पान और रीति-रिवाज उच्च कोटि का है। योगाभ्यास तथा सत्संग का उपासक हूं— प्रेमी हूं। सन्त में अपने संस्कार डालने और उन्हें योगाभ्यास और स की ओर प्रवृत्त करने का मैंने बहुत प्रयत्न किया और उ फल उत्तम प्रकट हुआ है। हमारा तथा सन्तानों का जी पूर्ण आनन्दमय, कर्तव्यनिष्ठ, मानसिक शान्ति, पूर्ण

आरोग्यसंपन्न है। संतान आज्ञापालक हैं। किन्तु मेरी पत्नी के विचारों में बहुत अंतर है। यह क्रम गृहस्थ-जीवन के आरम्भ से है। दोष, दुर्गुण, परीक्षा-वृत्ति, निन्दा, द्वेषभाव, चिन्ता, क्रोधावेश, अनुचित शब्दों से उत्तर, शिर-दर्द, मेद अधिक, हाथ पैरों की सन्धियों में सूजन नहीं, परन्तु वेदना, शरीर में जड़ता, वजन अनुमानतः १५५ पौंड। सत्संग, प्राकृतिक चिकित्सा तथा योगाभ्यास की ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं हैं। तत्संबंधी सलाह में उपेक्षापूर्ण भावनासे प्रत्युत्तर मिलता है। आयुर्वेदिक दवा चल रही है। पढ़ी-लिखी है।

उत्तर-१— ज्ञानी, योगी, ऋषि-मुनि और सन्त-महात्माओं के घर की स्त्रियां अधिक सेवामयी, नम्रतापूर्ण, आज्ञापालक, सहनशील, योग-वेदांत और प्राकृतिक चिकित्सा में निष्ठा रखनेवाली होती हैं। परंतु ऐसा भी देखा गया है, जैसा आपने अपनी पत्नी के गुण, धर्म और स्वभाव का वर्णन किया है। संसार में रहकर त्याग-वैराग्यमय अलंकारों को धारण कर संसार तथा परमार्थ में जो अपने कर्तव्य को समाप्त करती हैं, जो शूर वीर हैं, ध्येय-निष्ठ और महान् परिश्रमी हैं और जो प्रतिकूल पति के स्वभाव को बदलकर और उसके मन को शांत रखकर अपने गृह-संसार का सुयोजित संचालन करती हैं, वे निस्संदेह धन्यवाद की पात्रा हैं। ऐसी महिलाओं को गृहदेवी के गौरवमय नाम से अभिहित किया जाता है।

एक महात्मा-ज्ञानी का उदाहरण देकर समझाइये कि उनकी पत्नी भी अत्यंत क्रोधाविष्ट, कलहप्रिय और उग्र

स्वभाव की थी। वह स्वामीजी के प्रति अति निष्ठुरता व्यवहार करती थी और हर समय गालियों की वौछार क रहती थे। उनके महान् कार्यों में वह सदा विघ्न-बा बनकर अड़ जाती थी और उन्हें मानसिक तथा शारी यातनाएं देने को कमर कसे रहती थी।

एक दिन प्रातःकाल जब महात्मा ज्ञानी बैठे भगवान ध्यान कर रहे थे, तब उनकी पत्नी ने उनपर गन्दा फेंक दिया। उन्होंने आंखें खोलकर देखा, तो पत्नी सा खड़ी क्रोधावेश में गालियां बक रही है।

उत्तर में पति ने कहा— प्रतिदिन केवल बादल गरजते थे, परंतु आज तो बरसात भी गिरने लगी। दृष्टांत से पता चलता है कि परम पवित्र जीवन व्यतीत क वाले परिवारों में ऐसी स्त्रियों का अस्तित्व सनातन काल चला आ रहा है और इसी प्रकार वे परिवारों में क दुर्भावना और अशांति के बीज बोतीं आ रही हैं। तुकाराम आदि महापुरुषों की दशा भी ऐसी ही दयनीय

घर और संसार के व्यवहार को चलाने के लिये प्रकार के अनेक कष्टों और आपदाओं का सामना करना प है। उनमें से इस एक आपदा को भी शामिल कर दे पड़ेगा। आपकी पत्नी यदि आपकी किसी उचित सला सूचना, और आज्ञा का पालन करने में असमर्थ हैं, तो आप उनके मनोनुकूल व्यवस्था करनी चाहियें और उनके मा पिता, बहन-भाई अथवा जिसके प्रति उनकी श्रद्धा जिसको वह हितचिन्तक मानती हों, ऐसे व्यक्तियों

कहलाकर-परामर्श दिलाकर आपको उनका इलाज कराना चाहिये। उनके लिये आसन, प्राणायाम, मालिश, पैरों को स्टीमबाथ (बाष्प-स्नान), आहार में परिवर्तन, सप्ताह में एक दिन फलाहार और दुग्धाहार, हर एकादशी के दिन उपवास, सप्ताह में चार दिन केवल एक बार—मध्याह्न भोजन, प्रातःकाल तथा रात को भी फलाहार आदि प्रकार के सात्विक गुण प्रधान उपचारों का आधार ग्रहण करना पड़ेगा। यदि वे इस सात्विक सरल चिकित्सा प्रणाली को अस्वीकार करेंगी, तो एतदर्थ अन्य किसी विस्तृत विधान का परामर्श देना निरर्थक है। इसीलिए सारांश में उपर्युक्त मुख्य मुख्य बातें बता दी गई हैं। प्रकृति का यह नियम है कि जब दो कठोर वस्तुएं परस्पर टकराती हैं, तब वे या तो चूर-चूर हो जाती हैं या उनमें धब्बे, छिद्र या दरारें पड़ जाती हैं। परन्तु उनमें यदि एक नरम होती है, तो उपर्युक्त संभावना उपस्थित नहीं होगी। यदि आपका स्वभाव सहनशील है, तो निस्सन्देह आपका जीवन निर्बाधरूप से चलता रहेगा।

श्री विपिनचन्द्र जोशी (पौड़ी)

पत्र २ प्रश्न १—मुझे पैदल दौरा बहुत अधिक करना पड़ता है। कृपया कोई ऐसा आहार का क्रम बतलाइये जिसको खा कर थकान न लगे।

प्रश्न २—क्या कोई ऐसी दवा या जड़ी है जिसे खाकर कई दिनों तक खाना खाने की जरूरत न पड़े पर शरीर में शक्ति ज्यों की त्यों वैसी ही बनी रहे?

प्रश्न ३—गठिया रोग की शुरूआत में क्या संयम या उपचार ठीक रहेगा।

प्रश्न ४—मेरे एक मित्र को गैस की बीमारी है यह कैसे ठीक होगी, व सारे बदन में दर्द है।

प्रश्न ५—बवासीर की शर्तिया औषधि क्या है।

उत्तर १—थकावट दूर करने के लिए भुजंगासन १ मिनट, शलभासन २ मिनट, चक्रासन १ मिनट, पश्चिमोत्तानासन १ मिनिट, मत्स्यासन २ मिनिट करिए।

उत्तर २—आयुर्वेद में अनेक दवाइयां हैं जिनसे दीर्घ काल तक क्षुधा तृष्णा कम होती है। कई एक कन्दमूल के खाने से भी क्षुधा-तृषा कम होती है। जंगल निवासी योगी मुनि, ऋषि लोग इस विषय के जानकार थे। योगाभ्यास का (प्राणायाम मुद्राएं) अभ्यास बढ़ाने से जल तथा हवा द्वारा पौष्टिक जीवन तत्वों को सूक्ष्म प्रमाण में ग्रहण करने से क्षुधा तृषा कम होती है। तथा कंदमूल, साग-सब्जी, फल के सेवन से जीवनतत्व अधिक प्राप्त होता है।

उत्तर नं. ३—गठियारोग निवारण के लिये पवन मुक्तासन २ मिनिट, उर्ध्वसर्वांगासन ३ मिमिट, सर्वांगासन २ मिनिट, वज्रासन २ मिनिट, जानुशिरासन ३ मिनिट प्रतिदिन करें।

सयंम से ब्रह्मचर्य पालन करें, प्रकृति के अनुकूल शुद्ध सात्विक आहार लेना होगा। वायु प्रधान आहार वर्ज्य है।

उत्तर ४—उड्डियान १ मिनिट, पूर्णपद्मासन १ मिनिट, अर्ध मत्स्येंद्रासन ३ मिनिट, उर्ध्व हस्तासन २ मिनिट, कटि स्नान साधारण गरम जल से १० से २० मिनिट तक २१ दिन लेना होगा। आहार में वायुप्रधान, तले हुए पदार्थ तथा रुक्ष खाद्य पदार्थ वर्ज्य हैं। भोजन के बाद फल लेवें।

उत्तर ५—निंबोलिया (नीम के वृक्ष के बीज) प्रतिदिन

प्रातःकाल ५ का सेवन करें। पुराना बवासीर हो तो २१ दिन सेवन करें। भोजन में सूरण (कंद) का सेवन करें। साग सब्जी में धनिया, जीरा, सेंधा निमक छोड़ें । चावल का सेवन करें। दूध और मीठे फलका सेवन करें, कंकड़ न हो ऐसी चिकनी (चिकनाहट) मिट्टी २० तोला दूध में १ घंटा भिगो कर रखा जाय पश्चात् उस मिट्टी की मोटी रोटी का आकार कर नाभी के नीचे लिंग मूलतक रखें। उसके ऊपर केले का पता रखें, उसके ऊपर कपड़ा लपेट करके प्रातःकाल स्नान के पहले ३० मिनिट रखें। ८ दिनतक ३० मिनिट, ८ से २० दिन तक ४० मिनिट, २० से ४५ दिन तक ४५ से ६० मिनिट तक रखें। बवासीर की बीमारी जैसी अच्छी होती जाय वैसे २ मिट्टी का समय घटाते जायें। अन्त में २० मिनिट तक बवासीर का दर्द नष्ट होने पर १ मास तक चालू रखें। यह इलाजके बाद स्नान करिए। भोजनमें चिकनाहटयुक्त पदार्थ अधिक तथा आसानी से पचकर के मल विसर्जन आराम से हो सके ऐसा आहार लेना जरूरी है।

श्री हरप्रसाद टेलर मास्टर (नरसिंहपुर म. प्र.)

पत्र ३ पश्न १—हर मानव की नाक में बचपन से सुगंध या दुर्गन्ध ग्रहण करने की शक्ति होती है यदि नाक में बचपन से बास (गंध) ग्रहण करने की कमी है तो कमजोरी का कारण तथा सुधार लिखने की दया करें।

प्रश्न २—प्रतिदिन सुबह शाम हर स्त्री पुरुष को एक ही समय में पूरा मलत्याग होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति ६ बजे सुबह दस्त को जावे और उसका पूरा दस्त साफ न हो और पुनः १ घन्टे बाद दस्त जावे तब दस्त साफ हो, इस

प्रकार का रोगी १९ वर्ष से हो तो दस्त न जाने का कारण और सुधार लिखियें।

प्रश्न ३—यदि कोई व्यक्ति लगभग २। घन्टे में दस्त होकर फारिग होता है तो उसका कारण तथा सुधार लिखियें।

उत्तर १—अपवाद रूप में बाल्यावस्था में नाक के घ्राण तन्तु जाल में कमजोरी होतीं है माता के दूध में ज्ञान तन्तु के उपयोगी विटामिन के अभाव से नासिकाने गंध नहीं आना संभव रहेगा। किन्तु कुमार अवस्था में सुधार होना चाहियें। नहीं होने के कारण अनेक हैं जैसे मगज के अवयवों के अविकास, खेल-कूद का अभाव, दुर्गन्धमय स्थान में निवास, जीवन तत्वाभाव का आहार, पीनस (नाक के छिद्रों में श्लेष्म का एकत्र होकर ज्ञान-क्रिया तन्तु जाल तथा हड्डी-मांसको सड़ाना) रोग, श्वासनेन्द्रिय नलिकामें संकोच-विकास की गति में अनियमितता आदि। अपचारः-नेती कर्म ३ महिने तक प्रातःकाल प्रतिदिन करें। कपालभाति कर्म ८ बार करें, पूर्ण पद्मासन २ मिनिट, और भस्त्रिका प्राणायाम ५ बार करें।

पाचन शक्ति बढ़े, क्षुधा की वृद्धि हो ऐसा विटामिन्स युक्त आहार ग्रहण करें। लौकी, गिलाय, परबल, पपीता, सन्तरा, सफर चन्द, (सेव) केला गेहूँकी रोटी, उड़दकी दाल, चावल आदि भोजन करें। दही. तक्र का उपयोग करें।

उत्तर २—प्रातःकाल तथा सायंकाल ऐसे दो बार मल विसर्जन करना उचित है। प्रातःकाल दो बार जाना उचित नहीं है। एक बार जाने से पेट स्वच्छ होने पर भी आदत होने से दूसरी बार जाने की इच्छा रहतीं है। प्रातःकाल १२ औन्स जल पीने से मल साफ एक बार में आ जाता है। गणेश क्रिया करने से गुदा द्वार के अंतर्गत रहनेवाले मल के साफ होने से प्रातःकाल दूसरी बार जाने की आदत छूट जायेंगी। नौली कर्म तथा भोजन के साथ सलाद के सेवन से दस्त साफ अवश्य आयेगा।

प्रश्न नं. ३ का उत्तर दूसरे प्रश्न के उत्तरमें समाहित है।

मानव जीवन सफल बनाइये

नेति, धोति, बस्ति, नवली, त्राटक, प्रकार के आसन, विभिन्न प्रकार के प्राणायाम, कुण्डलिनी शक्ति जागृतिके लिये महत्वनीय अनेक मुद्राएँ, धारणा, ध्यान समाधि का अभ्यास गत ४० बरसों से श्री रामतीर्थ योगाश्रम में चालू है। सत्य सुख का स्रोत, जन्म-मृत्यु का निजी अनुभव, आपके मूल स्वरूप सत् चित् आनन्द प्राप्त करने के लियें सुलभ उपाय बताया जाता है। अष्टांग योग तथा राजयोग के निरंतर अभ्यास की व्यवस्था रखी गई है। व्यवहार एवं परमार्थ का अज्ञान यह दुःख का कारण तथा आत्मज्ञान सुख का भंडार है। केवल आहार, भय, मैथुन तथा निद्रा से सदा सुख आपको नहीं प्राप्त होगा। अर्थात् दुःखों के साथ सुख का अनुभव मिलेगा। आपका वर्तमान काल ही सुख-शांति प्राप्त करने का अमूल्य समय है। अष्टांग योग अथवा राजयोग से यथेच्छ लाभ उठाने के लियें रामतीर्थ योगाश्रम का आश्रय लीजिये। सुवर्ण संधि का लाभ उठाइये।

* * *

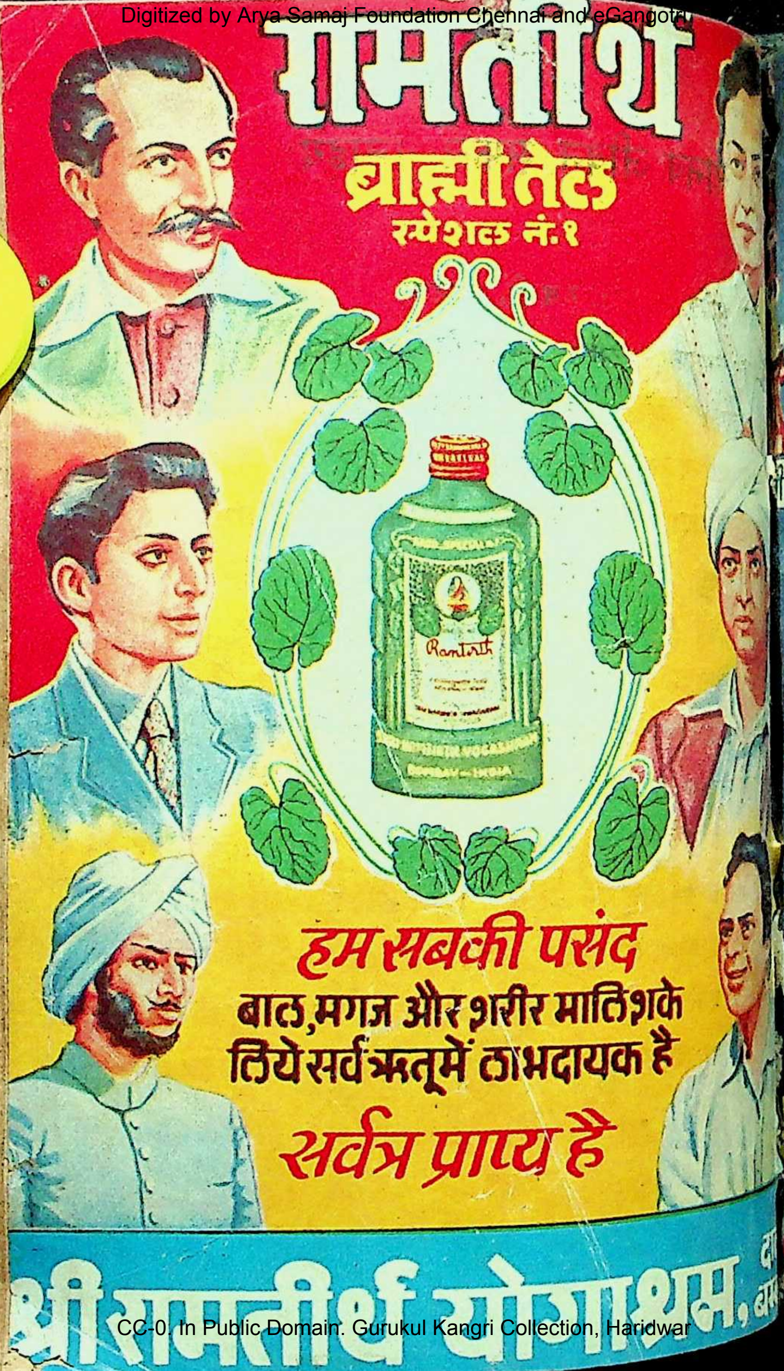

Ramtirth
BOMBAY — INDIA

रामतीर्थ

ब्राह्मी तेल

स्पेशल नं. १

हम सबकी पसंद

बाल, मगज और शरीर मालिशके लिये सर्व ऋतूमें लाभदायक है

सर्वत्र प्राप्य है

श्री रामतीर्थ योगाश्रम,

रामतीर्थ

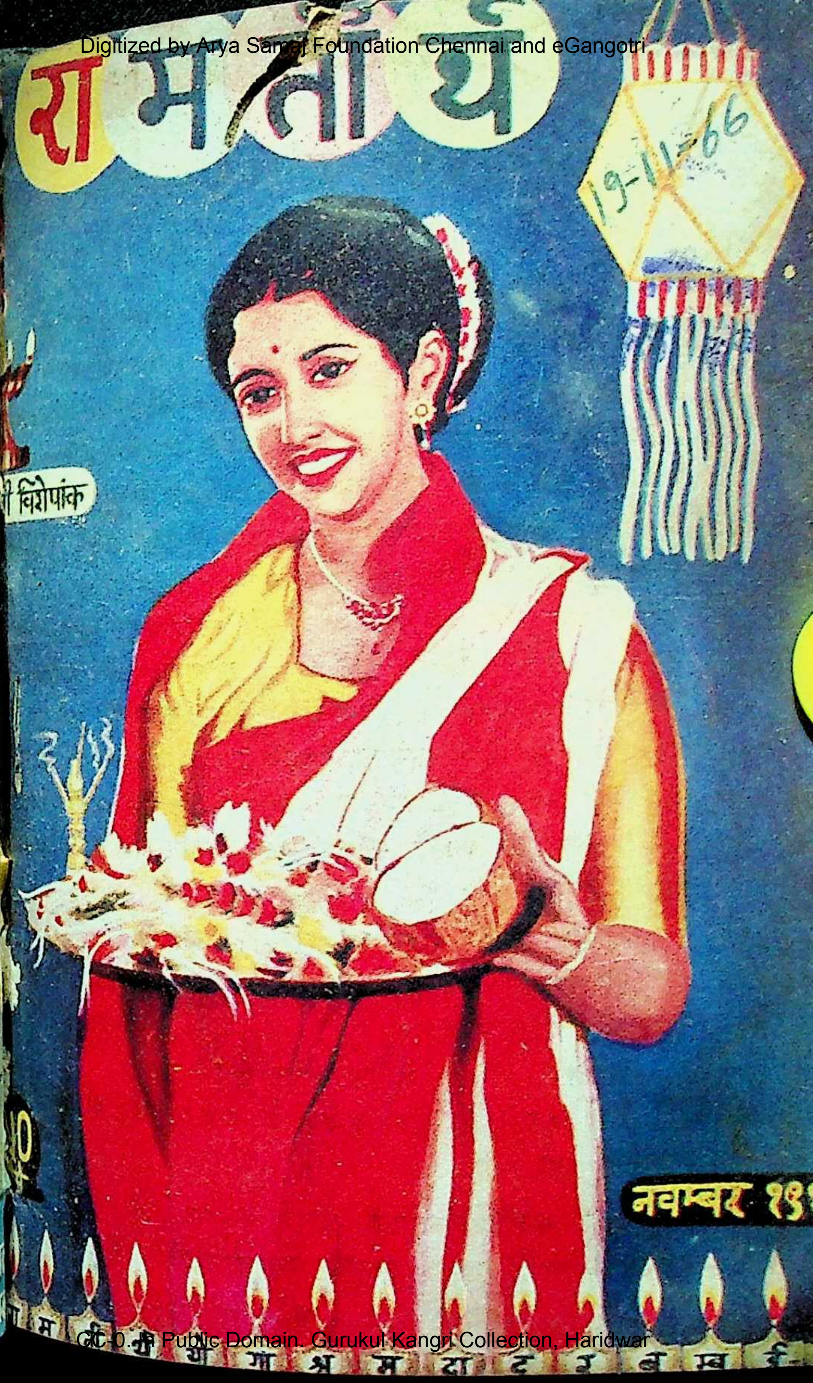
19-11-66
ी विशेषांक
नवम्बर १९
रा म ती र्थ यो गा श्र म दा द र ब म्ब ई-

आप सदा कैसे सुखमय रह सकोगे।

आपके पास धन-दौलत कम हो अथवा अधिक सत्ता बड़ी हो या कीर्ति बड़ी हो किन्तु आपका शरीर मन की सुलभ साध्य एवं त्रासदायक बीमारियों से जीवन बिताते होंगे तो सुख-सम्पत्ति के लाभ से वंचित पड़ेगा। इन स्थूल-सूक्ष्म जटिल व्याधियों से छुटकारा के लिये 'उमेश योगदर्शन' प्रथम खंड अवश्य पढ़िये। आकर्षक मनोरंजक योगासनों की छबियों से सुसज्जित, पृष्ठ में महत्त्वनीय इलाजों का जैसे क्रोमोपेथी, हायड्रो मालीश, यौगिक थेरेपी, आहार, सायकालोजी आदि दिग्दर्शन आधुनिक वैज्ञानिक ढंगसे किया गया है। उमेशयो दर्शन ग्रंथ एक बार पढ़ने से आपके मन में जीवन के मूल्य का पता लगेगा। बारम्बार पढ़ने की इच्छा रहेगी अन्त में सारा जीवन अपने पास रखने की बढ़ जायेंगी।

भाषा: हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी।

पृष्ठसंख्या ६०० से अधिक। कागज बढ़िया,

आकर्षक।

कीमत : १५-०० रु. डाकव्यय २-५० रु.

पैसा पहले से भेज सकते हैं अथवा बी. पी. पी.

मंगा सकते हैं।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर, (मध्य रेल्वे) स्टेशन
के पास (पूर्व) स्वामी नारायण मंदिर के पीछे,
बम्बई १४ फोन— 442899

(प्रकाशन ति)

मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और
पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

रामतीर्थ

सम्पादक—
योगीराज
उमेशचन्द्र जी

वर्ष–७ अंक– ८
नवम्बर १९६६

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक 442899
विज्ञापन
तार–प्राणायाम दादर

लेख	लेखक	पृष्ठ
वैदिक प्रार्थना	संकलित	६
उमेश वाणी		७
प्रकाशोपासना	सम्पादकीय	८
मानव और मांसाहार	रामस्वरूप खरे 'दीपक'	१७
विश्व विहार	कालूभाई बसिया	२३
स्त्रियों के स्वभाव	राजमोहन मिश्र	३१
स्वानुभव	योगानन्द	३९
प्रणदीप संजाओ (कविता)	रामशरण	४१
प्राणायाम-श्वास नियमन	योगीराज उमेशचन्द्र जी	४२
धर्मोपदेश	स्वामी रामतीर्थ	४९
प्रश्नोत्तर	सम्पादकीय कलम से	६४

लेख	लेखक
राष्ट्रीय पर्व दीपावली	श्याम मनोहर व्यास
दीपावली का त्यौहार	डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'
वह क्या देखती थी (कहानी)	राजेन्द्र प्रताप गुप्त
दीप मालिका कहती गई	राम अवतार अभिलाषी
रामचरितमानस	टी. योगीराज उमेशचन्द्रजी
त्याग का प्रभाव	देवेन्द्रनाथ शर्मा
दीप वन्दना (कविता)	वल्लभ व्यास
अबला (एकांकी)	कमला प्रसाद सिंह
अपना डाक्टर आप बनो	डा. कुलरंजन मुखर्जी
कालीमाई का खप्पर (कहानी)	एम. आर. गुप्त
बुलाकी (कहानी)	नामवर
दीपावली	ब्रह्मदत्त शास्त्री
श्री गजाधर सोमानी	प्रो. सत्यपाल

मुख पृष्ठ का परिचय

दीपावली पूजन का अवलोकन कीजिये विशेष विव हेतु इसी अंक के पृष्ठ ८ पर देखें।

विशेष सूचना– 'रामतीर्थ' मध्यप्रदेश व राजस्थान सरकार शिक्षण विभाग की ओर से प्राथमिक, माध्यमिक उच्चत बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों व सार्वजनिक व पंचाय समिति पुस्तकालयों के उपयोग के लिये स्वीकृत है।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके लिये विन्सेन्ट स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

श्री दिग्विजय सीमेन्ट कं. लि.

श्री निवास हाऊस, वाडबी रोड बम्बई १.

की ओर से

— 卐 —

नूतन वर्षाभिनन्दन

—卐—

कारखाने—

(१) सिक्का (जामनगर) गुजरात,
शिवड़ी बम्बई

(२) एसबेस्टोस प्रॉडक्स
साबरमती अहमदाबाद

टेलीफोन २६८२४१

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल विषयक लोकमत

(१) रामतीर्थ ब्राह्मी तेल अपने अद्वितीय गुणों से भा आज घर घरमें प्रयोग किया जाता है। बालों को काला बना स्मरण शक्ति बढ़ाना, नेत्रों में ज्योति पैदा करना आदि गुणों कारण ही सभी इस तेल की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं स्वयं के अनुभव ने निसन्देह इस तेल को बेजोड़ पाया है

छेदालाल अग्रवाल,
देवलाली (नासिक)

(२) आयुर्वेदिक पद्धति से तैयार किया हुआ रामतीर्थ ब्राह तेल आज के सभी तेलों से अनोखा आयुर्वेद की देन है।

आज कल के बाजारू तेलों में तो केवल विदेशी गंध ह मिलती है। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के लगाने से माथे में ठंडक बालों में चमक और मस्तिष्क में विचित्र प्रकार की ताजगी मिलती है। सिर के दर्द में तो यह तेल रामबाण की तरह अचूक है। एक और नवीन प्रयोग रात्री समय सोने से पहले इस तेल को अच्छी तरह त्वचा पर मलने से प्रातःकाल बिछावन से उठने पर त्वचा पर नवीन कांति मिलती है।

केवल एक दो बोतल के व्यवहार ही से इसके गुण प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ने लगते हैं। नियमित रूप से व्यवहार से शरीर कांतिपूर्ण तथा रूपवान बनता है।

भवदीय
रवीन्द्रकुमार
माधोपुर (बिहार प्रदेश)

सर्वाधिक उत्पादन राष्ट्र के नाम एक चुनौती

राष्ट्र के [illegible]से बड़े सरकारी प्रतिष्ठान 'भारतीय रेलों' ने देश की औद्योगिक प्रगति को लगातार बढ़ाने में अपनी गतिशील कार्य-क्षमता को बराबर बनाये रखा है। खेतों तथा कारखानों में देश का उत्पादन बढ़ाने के लिए भारतीय रेलों ने अब तक जो महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उसमें अधिक [illegible] का प्रसार किया जायगा।

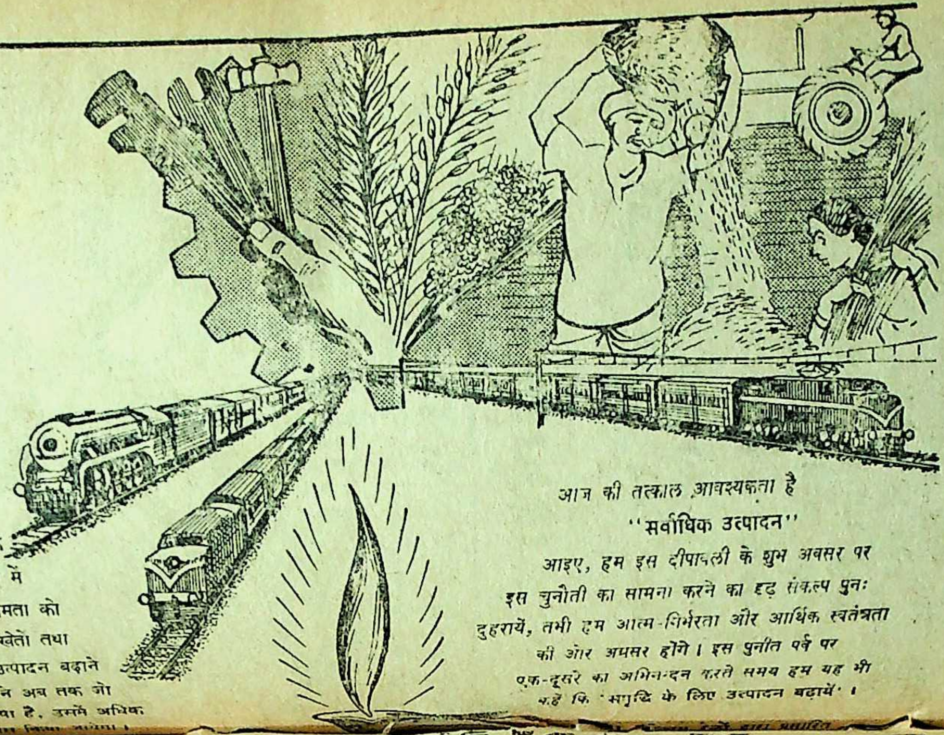

आज की तत्काल आवश्यकता है

"सर्वाधिक उत्पादन"

आइए, हम इस दीपावली के शुभ अवसर पर इस चुनौती का सामना करने का दृढ़ संकल्प पुनः दुहरायें, तभी हम आत्म-निर्भरता और आर्थिक स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होंगे। इस पुनीत पर्व पर एक-दूसरे का अभिनन्दन करते समय हम यह भी कहें कि 'समृद्धि के लिए उत्पादन बढ़ायें'।

[illegible] रेलों द्वारा प्रसारित

भद्रकर्णेभिः श्रुणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

सम्पादक — रामतीर्थ योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ७] नवम्बर १९६६ [संख्या ८

वैदिक-प्रार्थना

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ ६ ॥

ऋ. वे. पु. सू. १०-९०-

भावार्थ—देवोंने जब उस पुरुषको सामान्य रूपसे हविष्य मान कर यज्ञकार्यका विस्तार किया, तब उस यज्ञका घृत, वसन्त और शिशिर दो ऋतु बनें, इन्धन, ग्रीष्म और वर्षा बनें, एवं हवि, शरद् और हेमन्त बनें ।

(२९५) जो लोग आयु बढ़ाने की इच्छा रखते हैं, उन्हें चाहिये कि वे प्रतिदिन कम से कम एक घंटे तक योगाभ्यास करें। अन्य कर्तव्य-कर्मोंके साथ योगाभ्यास भी जीवन का अनिवार्य कर्तव्य बन जाना चाहिए। शाक सब्जी, फल, अन्न, दुग्धादि का सेवन भी आवश्यक है। मांस, मछली, शराब, सिगरेट का व्यसन निन्दनीय, दूषित तथा जीवन को नष्ट कर देता है अतः उक्त पदार्थ सर्वदा वर्जित हैं सुख-दुःख को समान मानें। सत्संग और सेवा भाव में प्रवृत्ति रखें तथा सत् शास्त्रों को पढ़ने में समय व्यतीत करें।

(२९६) आनन्दका अनन्त स्रोत आपके आस पास ही निरन्तर लहरा रहा है। आपको उसका ज्ञान नहीं— आप उससे परिचित नहीं, अतः गुरु तथा उनके सान्निध्य में शास्त्र के अध्ययन मनन की आवश्यकता है।

(२९७) जैसे गहन जंगलों में आवास करते समय भय, चिंता मन की अस्त-व्यस्त अवस्था तथा मृत्यु का भय आदि मनोभाव सदा घेरे रहते हैं। यही दशा आवेश उत्तेजनामय तथा चिड़चिड़े स्वभाव के धनवानों, राजाओं, महान सत्ताधीशों और उन लोगों की भी है, जो व्यसनों के चंगुल में फंसे हुये हैं।

प्रकाशोपासना का सनातन प्रतीक

अखिल ब्रह्माण्ड प्रकाश से परिपूर्ण हो रहा है। विराट् विश्वात्मा का आत्मचैतन्य कण-कण को प्रकाश से स्नान करा रहा है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि ग्रह आदि उस प्रकाशपुंज के खण्ड हैं। सभी अपना प्रकाश फैलाकर सृष्टि की आकांक्षाओं को परितृप्त कर रहे हैं। प्रकाश की यह विभूतियां आदि काल से ही समग्र सृष्टि को स्पर्श कर उसे नवीन चैतन्य से उर्ज्वसित बनाती आ रही हैं। यही प्रकाश-चैतन्य शरीर की रग-रग में प्रवेश कर उसे सशक्त और कार्य-क्षम बनाता है। विश्वात्मा की प्रकाश-धारा अप्रतिहत गति से अविच्छिन्न चली आ रही है। यही प्रकाश मानसिक चेतना को उल्लास और उत्साह से सराबोर बना देता है। यही प्रकाश निरलस भाव से कर्म-रत रहने का सामर्थ्य प्रदान करता है। ज्ञान तन्तु और क्रिया तन्तु सजग रह कर

सुयोजित गति से काम करते रहते हैं और दीर्घकाल तक उनमें थकावट नहीं आती। यह प्रकाश अमृतमय है। यह सोचने-विचारने और काम करने की शक्ति का प्रस्थापक है; फलतः वह अत्यन्त वांछनीय और प्रिय बना हुआ है। सृष्टि का कोई घटक उसकी अवहेलना नहीं कर सकता।

"तमसो या ज्योतिर्गमय" सूत्र मानव की प्रियता का अत्युत्तम उदाहरण है और प्रकाश रहित क्षण निरर्थक बन जाता है। प्रकाश रहित दशा में चेतना की प्रबलता पराहत होती है और मनुष्य पर आलस्य, शैथिल्य और निष्क्रियता का प्रभाव छा जाता है। इससे बचने के लिये अनन्त व्यापी प्रकाश के साथ तादात्म्य स्थापित करने और उसे धारण करने की नितान्त आवश्यकता है। हमारे मन और प्राण प्रकाश से ही शक्ति प्राप्त करते हैं मनुष्य के मन, प्राण और शरीर चिरन्तन प्रकाश का परिवहन कर रहे हैं और उसमें गरिमा, प्रतिभा और क्षमता का संचार होता है।

प्रकाश से मानव निरन्तर उपकृत होता आ रहा है और इसी कृतज्ञता के आवेश में उसने प्रकाश की उपासना प्रारम्भ की। वह प्रकाश की अहर्निश अर्चना और वन्दना करने लगा। प्रकाश का स्वागत करना मानव का स्वाभाविक ध्येय बना। योगिजन एकनिष्ठ भाव से इसी प्रकाश-पुंज की आराधना करते हैं और अन्त-निहित आत्म-प्रकाश के दर्शन कर कृत-कृत्य होते हैं। यह अंतःजन्य प्रकाश मन, प्राण और शरीर को उद्भासित करता है और अणु-परमाणु उस प्रकाश-प्रतिभा से प्लावित हो उठते हैं !

दीपावली पर्व इसी प्रकाश-प्रेम का प्रतीक है। भार जन प्रकाश का पूजन-अभिनन्दन कर अपने आंतरिक प्र का प्रस्फुटन करते हैं। इस ज्वलन्त आत्म प्रकाश का धा धारण और वितरण मानव का स्वाभाविक आचरण गया है। इसीलिये दीपावली पर्वपर अनेकशः दीपों के में उसका आत्म-प्रकाश जगमगा उठता है। भगवान् राम राज्यारोहण के समय में जनता का अंतःकरण अनन्त के रूप में व्यक्त हुआ था। राजमार्गों, सार्वजनिक वैयक्तिक आवास-स्थलों को इन लघु दीपकोंने आलोकि कर दिया। घर, गांव, कस्बे, नगर उस दीप-माला ज्योति से सराबोर हो उठे। सर्वत्र एक आलोक-मंडल गया और अमावस्या की रात्रि पूर्णिमा की रात्रि बन गई जनता का यह विराट् आयोजन राम की लोकप्रियता प्रमाण है अतः दीपावली पर्व—आलोक बिखेरने का यह पर्व अपनी प्राचीनता स्वयं सिद्ध कर रहा है।

इस पर्व पर लक्ष्मी का पूजन और आह्वान किया जाता है तथा दीपकों की उज्ज्वल ज्योति से जागरूक अमा-निशा में लक्ष्मी के शुभागमन पर विश्वास प्रकट किया जाता है भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार से लक्ष्मी देवी की आराधना की जाती है।

जो हो मानव, की यह प्रकाश-आराधना दीपावली बनकर प्रतिवर्ष आलोकित हो उठती है। अमावस की सर्वाधिक अंधकारमयी रात्रि प्रकाश-धारा में तैरने लगती है। यही आलोक चेतना में रूपांतरित होकर मनोबल, प्राण-

शक्ति बनकर प्रवर्तित होता है। ज्ञान, योग और कर्म में विभक्त होकर यही प्रकाश-चेतना मानव के आंतरिक सामर्थ्य को उकसाती और प्रोत्साहन प्रदान करती है। योग-इसी प्रकाश साधना का मार्ग है। योगाभ्यास की आध्यात्मिक साधना द्वारा मानव अन्तर्निहित इसी प्रकाश-दर्शन की ओर प्रवृत्त होता है। योग शरीर और मन का परिमार्जन करता है उनके सामर्थ्य को बढ़ाता और उन्हें आत्म-प्रकाश की अनुभूति के योग्य बनाता है। योग-मार्ग पर चलने वाले निस्सन्देह इसी आत्म प्रकाश और अन्तर्नाद की अर्चना करते हैं और उनकी अनुभूति से मस्त होकर धन्य होते हैं। योगदर्शन ग्रन्थों में लिखा है कि योगाभ्यासी और आत्म प्रकाश से परिपूर्ण तेजस्वी और चेतना के उच्च स्तर पर पहुंचे हुए महात्माओं के प्रभाव से पशु-पक्षी भी प्रेम के मधुर गीत गाने लगे। उनके अन्तःकरण से प्रेमका झरना फूट पड़ा और वे जीवन की उच्च स्थिति पर पहुंच गये। जब पशु-पक्षी इस प्रकार हो सकते हैं, तब मानव भी अपने अन्तःकरण को पवित्र और प्रकाशमान बनाकर अभिमत सिद्ध कर सकता है। योगाभ्यासी स्वयं विचारक होता है। उसके बुद्धि-विचार स्वतंत्र और स्वयंभू होते हैं और उसके रोम-रोम से समग्र तादात्म्य का स्फुरण होकर विराट् विश्वात्मा के साथ वह ऐक्यानुभूति करता है। योगाभ्यासी प्रत्येक भारतवासी को भारत-माता का पुत्र मानकर उसके प्रति प्रेम-भाव प्रकट करता है और सबकी सेवा-सहायता के लिये कटिबद्ध रहता है। वह प्रत्येक गांव, नगर, नदी, पशु, पक्षी और वृक्ष-वनस्पति में स्वयं प्रकाश के दर्शन करता है और

भारत-माता की रग-रग में चैतन्य, प्राण एवं प्रेमका संचार करता है। वह मानव-हृदयों में एकता की प्रतिष्ठा करने की कला से परिचित होता है। मस्तिष्क शक्ति-बुद्धिबल और शरीर-बल कार्य-शक्ति में सामंजस्य और सहयोग स्थापित करना योगाभ्यासी का स्वभाव होता है। इस प्रकार योगाभ्यासी आध्यात्मिक और भौतिक सहयोग का आदर्श प्रत्यक्ष कर दिखाता है।

ऐसी दशा में हमारा कर्तव्य है कि योग-साधना द्वारा हम अपने अन्तर्निहित तमोगुण की सत्ता पर सत्त्वगुणात्मक ज्ञान का प्रकाश फैला दें। यदि तमांश के कोयले को रजोगुण की अग्नि से ज्वलित कर सत्त्वगुण के प्रकाश को देदीप्यमान बनाया जायेगा। तो तमोगुण की भी सार्थकता सिद्ध हो जायेगी और उसका उचित उपयोग कर हम अपना अभीष्ट सिद्ध करेंगे। हमारे हृदय में कलात्मक प्रतिभा का आविर्भाव होगा और हम जिस वस्तु का भी स्पर्श करेंगे। वह कलात्मक सृजन में रूपान्तरित हो जायेगी और सर्वत्र अपना सौन्दर्य बिखेरने लगेगी। हमारी प्रत्येक रचना सौन्दर्य-दीप होगी।

आत्मिक चेतना और आत्मबल से परिपूर्ण मानव अपने अथक परिश्रम और प्रतिभा द्वारा उद्योगशील बनता और उद्योगों की वृद्धि करता है। उद्योगों का विस्तार ही वर्तमान युग में जीवन-यज्ञ है। नाना प्रकार की कलाओं के विकास के आधारभूत तत्त्व उद्योग ही हैं। अतः आज भारत कला उद्योगों के अनुष्ठान में निरलस भाव से संलग्न है। उद्योग और कला-कौशल लोकप्रिय बनते जा रहे हैं। नित्य नई लोक-कलाओं का उद्भव हो रहा है। देश में

क्नेशियन (कारीगर) और इंजीनियर तैयार किये जा रहे हैं और उनकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कारीगरों, मजदूरों और काम करनेवालों का सम्मान बढ़ता जा रहा है और उनकी बौद्धिक तथा कर्म-शक्ति का मूल्यांकन किया जाने लगा है।

आज देश भर में सर्वत्र उद्योग-धन्धों का स्वागत किया जा रहा है और परिणाम भी पूर्णतः प्रकट हो रहे हैं। देश समृद्धि सम्पन्नता की ओर प्रधावित है और उन्नति, अभ्युदय तथा निर्माण चारों ओर झांकते दिखाई दे रहे हैं और कला-कौशल का उद्यान हरा-भरा और सौन्दर्यलक्षी बनता जा रहा है। उद्योगों की व्यापक प्रतिष्ठा—सतत श्रम और उद्योगशील रहना—निर्माण में प्रवृत्त रहना—चैतन्य, प्रकाश और ऐश्वर्य की गारण्टी है। समष्टिगत-सार्वभौम रचनात्मक ामर्थ्य और सहृदयता के भाव को अन्तस्तल में प्रकट कर न-जन के मंगल-विधान में लगकर लक्ष्मी-पूजा और काशोपासना की महत्त्वाकांक्षा को परितृप्त किया जा सकता है। फिर भी मानव को कर्तव्य पालन करते हुये कर्तृत्व के अहंकार से समग्रतः मुक्त रहना चाहिये। मनुष्य की कर्तृत्व शक्ति उसे स्वय ज्ञानमय बना देती है और उसकी अन्तःप्रेरणा शक्ति पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। कारीगर को अपने कला-कौशल की साधना में निःस्पृह भाव से तन्मय रहना चाहिये। यदि जनता को उसमें सत्य, शिव और सौन्दर्य के दर्शन होंगे, तो वह कला का स्वागत करते हुये कलाकार (कारीगर) के प्रति हार्दिक कृतज्ञता भी प्रकट करेगी। कलाकार या कारीगर का कर्तव्य

है कि वह अपना समग्र जीवन कला को समर्पित करे —उसी में अपने आपको आहुत कर दे और देश तथा समाज के चतुर्मुखी विकास तथा अभ्युदय में योगदान करे।

वर्तमान जगत् में मानव को केवल उपभोक्ता बनना ही अधिक पसन्द है। उसकी उत्पादक क्षमता क्षीण होती जा रही है। यह प्राकृतिक नियम के विरुद्ध आचरण है। देहाभिमान और द्वैतभाव का अभाव होने पर ही कलाकार, शिक्षक, वैज्ञानिक दार्शनिक अन्तः प्रेरणा से अपने-अपने विषय-ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं। जब मनुष्य अपने काम में तल्लीन होता है, तब उसका मन पूर्णतः शान्त, स्थिर और किसी अनिर्वचनीय स्थिति पर पहुँच जाता है। मनोनिरोध की यह अन्तः प्रसूत स्थिति है और मन स्वतः शान्त और सुस्थिर होकर कर्तव्य-तत्परता में सहायभूत होता है।

अस्तु, आज हम देखते हैं कि प्रकाश, ज्ञान, चैतन्य, बुद्धि, शक्ति, क्षमता आदि के अभाव में भारतीय मानव की स्थिति अत्यन्त दयनीय और पतनोन्मुख बनती जा रही है। बाढ़, सूखा आदि के रूप में दैवी या प्राकृतिक प्रकोप प्रकट होते रहते हैं। जनता का आचार-विचार भी उच्छृंखल बनता जा रहा है। मिलावट, कालाबाजार, घूसखोरी, चोरी, हत्या, लूट, धोखाधड़ी की घटनाएं निरन्तर बढ़ती जा रही हैं, जिससे देश के जिम्मेदार लोग चिन्तित हो रहे हैं। इन सब विभीषिकाओं से त्राण पाने के लिये आवश्यक है कि हम उत्पादन द्वारा राष्ट्र-लक्ष्मी या देश की सम्पत्ति का निर्माण और उसका समान वितरण करें। हमारी जनता में

असीम संभावनाएं और शक्तियां संनिहित हैं। मानव उनसे परिचित है। यदि इन शक्तियों को जाग्रत कर उन्हें क्रियाशील बनाया जाये, तो भारत की राष्ट्रीय समृद्धि के साथ उसके गौरव की भी वृद्धि होगी। भारतीय मानव का मूल्य बढ़ेगा और कभी कोई उसके अवमूल्यन का साहस कर नहीं सकेगा। यदि अश्रद्धा और अन्धविश्वास से जकड़ी हुई आत्म-शक्ति को मुक्त करना है, जीवन को प्रकृतिनिष्ठ, उत्साहपूर्ण और सुसंस्कृत बनाना है, तो इच्छाओं और वासनाओं की दासता से मुक्त होकर मानव को आत्मसंयमपूर्वक काम करना चाहिये। बिना आत्म-संयम के कोई भी मानव जीवन में सफलतादेवी के दर्शन कर नहीं सकता। संयम, सहिष्णुता, कर्तव्यपरायणता मनुष्य को उच्च कोटि के जीवन-विकास का अवसर देते हैं। यदि मनुष्य इच्छाओं और वासनाओं मुक्त संयमी जीवन व्यतीत करे, तो उसे नाना प्रकार के नाचार और भ्रष्टाचार के मार्गों की खोज करनी न पड़े। ससे मुक्त रहने का एक ही मार्ग है। वह यह है कि भारत की अदम्य मानव-शक्ति और आत्म-चेतना को संगठित और सुयोजित रूप से निर्माण की ओर प्रवृत्त किया जाये। मानव की अन्तः प्रकाशजन्य ज्ञान और कर्म-साधना से भारत-लक्ष्मी की अवतारणा और सुख-समृद्धि के स्रोतों का निर्माण करने के लिये भारत की विशाल मानव-शक्ति चल पड़े और सर्वत्र सर्वोदय का मंगल-गान हो। सर्वोदय तभी संभव है, जब मानव इच्छाओं पर शासन करने लगेगा। इन वैयक्तिक इच्छाओं ने मानव को परतंत्र और परमुखापेक्षी बना दिया है। उसका अवमूल्यन कर दिया गया है। फिर भी उसे

चिन्ता नहीं। अब भी सँभलने का समय है। हमें अ
व्यवहार उन्हीं देशों तक सीमित रखने चाहियें, जो परि
जन्य लाभ उठाने की घात में नहीं रहते। ऐसे देशों का
जनता की निर्माण शक्ति से दिन-दूना, रात चौगुना
जन में व्याप्त दिखाई देगा; क्योंकि उसमें निर्माणों
उत्पादनों को कौड़ियों के दामों में खरीद लेने की चाल
वह सहयोग भारत की आत्मा के लिये प्रेरणा का स्रोत है
उसके आधार पर भारतीय जन अपना बहुमुखी वि
करते हुयें धीरे-धीरे प्रगति की मंजिल पर पहुँच जायें
जो धन हमें स्वतंत्र, स्वावलंबी, स्वाभिमानी, ज्ञानचेता
कार्य-तत्पर होने, उसे अधिकाधिक रूपों में परिणत कर
के लिये प्रेरणात्मक निमन्त्रण दे रहा है, उसका हमें स
सदुपयोग करना चाहिये और ऐसी व्यवस्था करनी चाहि
जिससे वह हमारे लिये अधिकाधिक फलीभूत हो।

दीपावली-पर्व पर प्रकाश बिखेरने के बाद हमें ऐ
व्यवस्था करनी चाहियें, जो सर्वत्र सत्य-ज्ञान का प्र
फैला दे, मनुष्य के मन, बुद्धि और शरीर संयत और आ
केन्द्रित हों और सर्वत्र उसका प्रकाश-प्रभाव प्रतिबिम्बित हो
लगे। भारत की राष्ट्र-लक्ष्मी या समृद्धि में दिन-प्रति
वृद्धि हो और वह हर तरह से संपन्न हो। हमें अप
जन शक्ति का आह्वान कर काम में लगाना चाहिये, दे
करने पर ही हम स्वतन्त्र जीवन बिता सकेंगे और आयोजि
विकास-पथ पर भी बढ़ते रहेंगे और सब सबके
सद्भावनामूलक अभिवादन करने लगेंगे। दीपावलीका प्र
पर्व सबके अन्तःकरण को मंगल-प्रकाश से परिपूर्ण कर दे

मानव और मांसाहार

ले० राम स्वरूप खरे 'दीपक'

देहधारी के लिये भोजन एक अनिवार्य आवश्यकता है। कोई प्राणी एक प्रकार का भोजन करके जीवन धारण करता है, तो अन्य प्राणी किसी दूसरे प्रकार के विभिन्न भोज्य पदार्थों पर अवलम्बित रहते हैं

सभी खाद्य पदार्थों को हम साधारणतः दो श्रेणियों में रख रखते हैं—एक मांसाहार और दूसरा शाकाहार। इन दोनों के भी उपभेद होते हैं मांसाहार के एक वर्ग में कीड़े मकोड़े आते हैं तथा दूसरे वर्ग में मोटा मांस। इसी प्रकार शाकाहार में घास-पात, फल, मेवा व अनाज की गणना है। दूध और पक्षियों के अण्डों को कोई शाकाहार में मानते हैं तथा कुछ लोग मांसाहार के अन्तर्गत इनकी गणना करते हैं।

भोजन की दृष्टि से संसार के समस्त प्राणियों को हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। (१) मांसाहारी (२) शाकाहारी (३) उभय भोजी (जो मांस व शाक-पात दोनों का सेवन करते हैं) विश्व में उभयभोजी जीव सर्वाधिक हैं।

जीवधारियों की बनावट के आधार पर प्रथम अन्वेषण करना है कि कौन से जीव किस कोटि में आते हैं। मानव भी संसार के प्राणियों में से एक है। वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और उसी के विषय में यहां विशेष रूप से विचार किया जायगा।

सर्व प्रथम भोजन ग्रहण करने का कार्य दांत करते हैं, अस्तु पहिले हम दांतों की बनावट पर विचार करें। दांत

तीन प्रकार के होते हैं—(१) कुतरने वाले (Incisors) कीले (Canine) (३) दाढ़ (Molars)। मांसाहारी जीवों कुतरने वाले (अग्र भाग के) दांत छोटे होते हैं तथा कीले ब बड़े और नुकीले होते हैं। वे कुछ तिरछे से रहते हैं शिकार को पकड़कर थामने में सहायक होते हैं। उनसे च का कार्य नहीं हो सकता। कीले के पास वाले दांत अथ दाढ़ें मांस को टुकड़े टुकड़े करने में काम आते हैं। इन जबड़े अगल-बगल हिलते नहीं हैं, इसीलिये वे भोज्य पदा को पीस नहीं सकते।

इनके विपरीत शाकाहारी जन्तुओं के कुतरने के दांत कु बड़े होते हैं और वे भली भांति कुतरने का काम करते हैं वे चौड़े होते हैं, जबकि मांसाहारियोंके गोल व नुकीले। इन कीले छोटे होते हैं। दाढ़ें ऊपर नुकीली न हो कर चौड़ी हो हैं, जिनसे जबड़ा हिला-हिलाकर पीसने का कार्य सुगमता सम्पन्न होता है। फलाहारी जीवों के दांत लम्बाई में स एक जैसे होते हैं। जो जीव मांस और शाकाहार दोनों प निर्भर रहते हैं उनकी दाढ़ें भी दोनों प्रकार की होती हैं। अर्थात् कुछ नुकीली और कुछ चौड़ी।

मनुष्य के दांत न तो साग-पात खाने वाले जानवरों मिलते हैं और न मांसाहारियों से ही, किन्तु फलाहारियों सदृश होते हैं। बन्दर और मनुष्य के दांतों में भी अन्य अ यवों की भांति समानता है। बन्दर निस्संदेह फलाहारी प्रा है। उसे मांसाहारी अथवा उभयहारी नहीं कहा जा सकता इससे यह सिद्ध होता है कि प्रकृति से मानव भी फलाहारी

भोजन को पाक करने तथा उससे तैयार रसों का शोषण आंतें करती हैं। शाक-पात खाकर जुगाली करने वाले पशुओं की आंतें उनके शरीर की लम्बाई से २८ गुनी लम्बी होती हैं। फल खाने वाले जानवरों की आंतें उनके शरीर से १०-१२ गुनी लम्बी होती हैं मांसाहारियों की ३ से ५ गुनी होती हैं। मनुष्य की लम्बाई सिर से रीढ़ तक १॥ से २॥ फीट तक होतीं है और आंतें १६ से २८ फीट तक। इस प्रकार वे शरीर से १०-११ गुनी लम्बी हैं। आंतों के आधार पर भी मनुष्य को फलाहारी ही माना जायगा।

आमाशय की बनावट पर भी ध्यान दिया जाय तो मांसाहारी जन्तुओं का आमाशय छोटा और गोल होता है, जब कि शाकाहारियों का बड़ा होता है। मनुष्य का आमाशय मांसाहारी जानवरों से भिन्न होता है।

आंतों की दृष्टि से मांसाहार के पक्ष वाले यह तर्क उपस्थित करते हैं कि शरीर विज्ञान के अन्तर्गत मनुष्य की लम्बाई पैरों से सिर तक ली जाती है। तब आंतें ३ या ५ गुनी लम्बी होतीं हैं इसलिये मनुष्य मांसाहारी है। यह तर्क न्याय संगत नहीं है। जिस प्रकार अन्य जानवरों को सिर से रीढ़ के अंत तक नापा गया है तो मनुष्य को भी इसी प्रकार नापना उचित होगा। तभी शुद्ध फल निकलेगा। यह नाप बैठे हुए भी पशु अथवा मनुष्य का समान रूप से लिया जा सकता है।

और भी अनेक छोटी-मोटी बातें हैं जिन पर विचार करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि मनुष्य का शरीर मांसाहार के लिये उपयुक्त नहीं है।

रामतीर्थ

मांसाहारी पशुओं के नख गोल-नुकीले होते हैं, शाकाहारियों के चौड़े। मांसाहारियों के नेत्र चमकीले होते उनसे रात्रि के अंधकार में खूब दिखाई देता है, जिस अपना शिकार सुगमता से पकड़ पाते हैं। शाकाहारी कार में नहीं देख सकते।

एक प्रमुख अन्तर और भी देखें। मांसाहारी जा अपना शिकार घ्राण शक्ति के आधार पर खोज लेते हैं, उसको देखते ही उनकी प्रवृत्ति उसका बध करने की होती यहां तक कि एक बिल्ली का छोटा सा पालतू बच्चा जि कभी मांस खाया भी न हो, चूहे को देखते ही उस झपटेगा और उसे मारकर अत्यन्त रुचि के साथ खा जाय मनुष्य का एक बच्चा ले लीजियें। चाहे वह मांस भी खा हो, एक अच्छा बकरा उसके समक्ष खड़ा किया जाय तो उस बध करने की भावना बच्चे के हृदय में उत्पन्न नहीं होती वह यह विचार करके कि बकरा उसका प्रिय भोजन है, लालायित नहीं हो सकता। यह प्रकृति का एक उच्चकोटि तथा विचारणीय प्रमाण है।

ऐसा भी अनुभव किया गया है कि मांसाहार करने प्रसूता के दुग्ध में कमी आ जाती है। मनुष्य के बच्चे को वर्ष केवल मां के दूध पर निर्भर रहना होता है, यह भी प्राकृतिक नियम है।

शाकाहारी जानवर स्वेच्छा से तो मांसाहार नहीं सकते, हां यदि उनको अभ्यास कराया जाय तो खाने सकते हैं। किन्तु अल्पकाल में वे रोगी होकर मर जाते ऐसे परीक्षण किये जा चुके हैं। मनुष्य ने भी प्रकृति

विरुद्ध यह अभ्यास कर लिया है। इसका जो फल हुआ, वह दवाओं के निर्माण और उपचारकों की संख्या से जाना जा सकता है।

मांसाहार से हानियां

मांसाहार से अनेकों हानियां हैं। उनका क्रमबद्ध उल्लेख करने की वैसे तो आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती, साधारणतः यह कहा जा सकता है कि कुभोजन से जो हानियां होतीं हैं। वे सभी मांसाहार से होती हैं।

सर्व प्रथम हम हिंसा पर ही विचार करें। अपना पेट भरने के लिये अनावश्यक रूप से किसी जीवका हनन करना कहां तक न्याय संगत है, जबकि दूसरे अन्नों से हम पेट भी भर सकते हैं और स्वस्थ भी रह सकते हैं। मांसाहार बिना जीव का हनन किये सम्भव नहीं होता, तब यह अकारण हिंसा है।

मांसाहार से अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। रोगी जानवर का मांस खाने वाले के शरीर में तत्सम्बन्धी रोग हो जाना स्वाभाविक है। मांस का सेवन करने से कुछ समय में पाचन क्रिया बिगड़ कर मन्दाग्नि मूलक रोग घर दबाते हैं। मांसाहारी मनुष्य शाकाहारी की अपेक्षा अधिक बीमार होता है, उसकी आयु भी अपेक्षाकृत कम होती है मांसाहारी स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी होता है। क्रोध से कितने काम बिगड़ जाते हैं–यह सभी जानते हैं। 'जहां क्रोध तहं काल है।' प्रसिद्ध विद्वान के इस वाक्य में सत्यता है।

मांसाहार से कामोत्तेजना अधिक होती है और कठिनाई से संयम रखने पर भी उत्तेजना होकर धातुक्षय हो जाता है।

स्त्री-पुरुष के शरीर में रज-वीर्य की उत्पत्ति तो मर्यादित होती है, किन्तु यदि वासना के वशीभूत होकर विषय-भो का अतिरेक किया जायगा तो हानिकर फल मिले विना रहेगा।

जहां धर्म की दृष्टि से हम मांसाहार को पाप मानते वहां स्वास्थ्य विज्ञान के आधार पर भी इसे हानिकार पाते हैं।

एक बात स्वाद के सम्बन्ध में और कहूंगा। लोगों ऐसी धारणा है कि मांस अत्यन्त स्वादिष्ट होता है और उसकी तुलना में अन्य भोज्य पदार्थ फीके प्रतीत होते हैं। यह सुनकर हंसी आती है। मांसाहारी इस बात को स्वयं जानते हैं कि वे मांसके व्यञ्जन अन्य सब्जियों की अपेक्षा कई गुने अधिक मशाले डालकर बनाते हैं। उसमें स्वाद मसालों का ही हो जाता है। यदि बने हुए मांस को खूब धो डाला जाय अथवा यूँही उबाला हुआ मांस खाया जाय तो उसमें कोई सुस्वाद नहीं मिल सकता। ऐसे प्रयोग किये गये हैं कि मांसाहारियों ने मसालों के योग से बनी अन्य सब्जियों को खाकर अपना उक्त कथित भ्रम दूर कर दिया है।

हम देखते हैं कि मानव का मांसाहार से कोई सम्बन्ध नहीं है। दुखदायिनी तथा पतित करनेवाली इस कुप्रथा को बन्द करना चाहिए। सात्विक भोजन के द्वारा मानव समाज दीर्घायु व सुन्दर स्वास्थ्य प्राप्त करे, यही मेरा उद्देश्य प्रस्तुत निबन्ध लिखने का है।

विश्व विहार

लेo— कालूभाई बसिया

(गतांक से आगे)

द्वाववाद

दबाव ही ईश्वर और सर्वोपरि सत्ता है।
दबाव के सिवा अन्य किसी शक्ति का अस्तित्व नहीं।
विश्व में दबाव के बिना कुछ नहीं हो सकता।
अखिल विश्व का सृजन दबाव से ही हुआ है।

दबाव के अनेक प्रकार हैं—अगल-बगल का दबाव आदि। दबाव से गति पैदा होती है। गति ही शक्ति है। शक्ति का वस्तु में और वस्तु का शक्ति में रूपान्तर होता है। शक्ति का वस्तु पर और वस्तु का शक्ति पर परस्पर दबाव होता रहता है। दोनों के समान दबाव से संतुलन स्थिर रहता है। और न्यूनाधिक परिमाण के अनुसार प्रभाव कम या अधिक होता रहता है। वस्तु और शक्ति भिन्न तत्त्व नहीं, अपितु संयुक्त और अविभाज्य हैं।

दबाव के सिद्धांत

१-शक्ति और वस्तु के परस्पर दबाव से अखिल विश्व का सृजन हुआ है।

२-बाहर के दबाव से वस्तु के आकार टूटते हैं और आंतरिक दबाव से वस्तु का संयोजन होता है और नयें-नयें गठन होते रहते हैं।

३-इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन के अणु-संयोजन से न्यूक्लियस नाम के चेतन तत्त्व का निर्माण होता है।

४- युरेनियम नामक धातु को शक्ति में और फोटों सा क्लोन नाम की शक्ति को पदार्थ में रूपान्तरित किया सकता है। यह दबाव से ही होता है।

५- प्रकाश अणु-परमाणु के केन्द्र में दबाव होने से प्रक होता है और आवाज भी दबाव से ही उत्पन्न होती है। आवा का मुख्य भाग एक सेकेण्ड के एक हजार आन्दोलनों की सृ करता है।

६- पृथ्वी पर एक वर्ग इंच स्थान पर १५ पौण्ड हवा क दबाव होता है। दबाव जितने परिमाण में बढ़ता है, उतने ह परिमाण में परिवर्तन होते हैं।

७- पृथ्वी के अन्दर दो लाख जितने दबाव से कोयला हीरा बन जाता है सूर्य के अन्तराल में भारी दबाव से पदार्थ तत्वों के परमाणु टूट जाते हैं। और आकाशी पदार्थों की रचना होती है।

८- बादलों में बिद्युत-शक्ति का दबाव जब एक करोड़ बोल्ट होता है, तब उसमें ५० करोड़ बोल्ट शक्ति उत्पन्न होती है। विद्युत-स्फुलिंग के १५ हजार डिग्री तापमान से हवा क नाइट्रोजन और हाइड्रोजन दोनों तत्व एकत्र हो जाते हैं और अमोनिया का निर्माण होता है। वह पृथ्वी पर आकर अनेक प्रकार की जीव-सृष्टि का सृजन करता है। जीवन रासायनिक तत्वों का गठन है।

काम, क्रोध, प्रेम, दया, लोभ आदि मनोवृत्तियां रासायनिक हैं। और दबाव से उत्पन्न होती हैं। शरीर के रक्त में भिन्न-भिन्न रस- ग्रंथियों के द्रव्य का मिश्रण होने से भिन्न-भिन्न

वृत्तियों का उद्‌भव होता है। मस्तिष्क में ५० से भी अधिक वृत्तियां हैं। प्रेम वृत्ति आन्तरिक दबाव से और भय की वृत्ति बाहरी दबाव से पैदा होती हैं। सभी मनुष्य सभी काम दबाव से करते हैं।

दबाववाद

वस्तु पर न्यूनाधिक दबाव से हलके-भारी पदार्थों की रचना होती है। युरेनियम धातु सभी धातुओं से वजनदार है। इसका कारण यह है कि उस पर अधिक दबाव होने से उसका घनत्व अधिक बना है। दबाव एक शक्ति है। शक्ति का उष्णता में, शीतमें, प्रकाश में, गुरुत्वाकर्षण में, ज्ञान में, आनन्द और सभी वस्तुओं में रूपान्तर होता है। इसी प्रकार जीवन की उत्पत्ति हुई है।

जीव-जीवन की उत्पत्ति

विश्व के मूल में दबाव से कार्बन डायोक्साइड और उसमें से जीवन की उत्पत्ति हुई है। कार्बन द्रव्य प्रचण्ड दबाव से एकाणु में से दो अणु और अनेकाणुओं में रूपान्तरित होकर उसके पुनः संयोजन से उच्च कक्षा का अनेक-अणुओं का द्रव्य तैयार हुआ था, होता है। यही जीवन का मूलाधार है। इस द्रव्य का निर्माण प्रथम सूर्य किरणों का योग पाकर जल में हुआ था और तदुपरांत वनस्पति और प्राणी इस प्रकार दो रूपों में विकसित हुआ। अन्तर केवल इतना ही है कि प्राणी के जीवन में प्रोटीन तत्त्व अधिक है और वनस्पति जीवन में वह कम है, कार्बन अधिक है। परन्तु यह सारी घटना दबाव

के परिमाण के अनुसार हुई है। दबाव के बिना लघुंश
नहीं हो सकती अतः विश्व का निर्माण कैसे सम्भव
दबाव ही समग्र सृष्टि का ईश्वर है।

शून्यवाद

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फेड हेल ने
किया है कि अखिल विश्व शून्य है और शून्य से ही उ
उत्पत्ति हुई है। आकाश की एक एक नीहारिका में चा
अरब सूर्य हैं, अतः नीहारिकायें सूर्यों के योग से बनी
सूर्य ग्रहों में जीव-सृष्टि भी होती है। जहां जीवन सृष्टि हो
वहां विकास भी होता है। काल क्रम से सूर्य फटते हैं
नष्ट होते हैं। ऐसी क्रिया होने का कारण यह है कि सूर्य
आन्तरिक शक्ति का कोष क्षीण हो जाता है, अतः उस
अन्तराल पोला हो जाता है। किन्तु उसके केन्द्र में अधि
वजनदार पदार्थ होते हैं और उनके गुरुत्वाकर्षण से अचान
एक सेकण्ड में समग्र सूर्य संकुचित हो जाता है-सिकुड़ जा
है और शून्य बन जाता है। सूर्य जब फटता है तब २० क
सूर्यों जैसा फूट निकलता है। फिर विस्फोट की आवाज
प्रकाश दोनों शून्य में लय हो जाते हैं। सूर्य में दोनों क्रिय
होती रहती हैं। पुनः शून्य आकाश में वायु के रूप में नी
रिकायें संगठित होती हैं और उसमें से सूर्य आदि स
सृष्टि का पुनर्निर्माण होता है और वह पुनः नष्ट होकर
में समा जाती है। शून्य ही सबका भगवान है।

भगवान बुद्ध भी अनात्म शून्यवादी थे। उनका कहना है कि आत्मा शून्य है और अखिल विश्व शून्य है। शून्यम् शून्यम् सर्वत्र शून्य है। सब कुछ शून्य है।

परमाणुवाद

वैज्ञानिकों का कथन है कि विश्व का गठन अणुओं से हुआ है। विश्व का मूल अणु तत्त्व है। अणु तीन प्रकार के हैं। रेडियम से छूटने वाले परमाणुओं को आल्फा किरण कहा जाता है। परंतु प्रकाश एवं किरण तो पदार्थ के ही परमाणु हैं। परमाणु की गति प्रति सेकेण्ड १ लाख छियासी हजार मील की होती है। यह परमाणु अन्य प्रकार के परमाणुओं के साथ मिल जाते हैं, फलतः विश्व के मिश्र पदार्थों का निर्माण होता है। अणुगर्भ में गति के कारण शक्ति, उष्णता, प्रकाश और विकास का उद्भव होता है। अणु-गर्भ में संयोजन की क्रिया भी होती है। इस क्रिया के परिणाम स्वरूप अटूट शक्ति उत्पन्न होती है। उसमें से नवीन पदार्थ-सूर्यों, तारा-मण्डलों एवं अखिल विश्व की रचना होती है। विश्व अणु-गर्भ का विकास है। अणु गर्भ से इलेक्ट्रोन ऋणभार विद्युत-कण (२) प्रोटीन घनभार विद्युत-कण और (३) न्युट्रोन भाररहित कण होते हैं। इन तीन प्रकार के कणों से अणु का गठन होता है। यह प्रत्येक गोलाकार घूमता है। उसके मध्य में समग्र पदार्थ का वजन केन्द्रित होता है और शेष भाग हलका पोचा और पोला होता है। इस पोले भाग में इलेक्ट्रोन चतु-

र्दिक घूमते हैं और मध्य में प्रोटोन और न्यूट्रोन एकत्र रहते हैं। इस मध्य भाग को न्यूक्लियस कहा जाता है। इ से विकास-क्रम के अनुसार विश्व का सृजन हुआ है अणुगर्भस्थ अणुओं के विभाजन को एटोमिक एनर्जी (परमा शक्ति) कहते हैं। अणु-बम में यही शक्ति होती है। भारत अणु-वैज्ञानिक स्व० डा० भाभा ने कहा था कि प्रकृति में सूक्ष्म इकाइयां हैं। जैसे इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन औ कास्मिक किरणों के पोजिट्रोन, मेसोन आदि कुल १२ मि कर अथवा इन बारह सूक्ष्म इकाइयों के संयोजन से वि सृष्टि हुई है। अणु ज्ञानरहित है।

आनन्द वाद

आनन्द का अर्थ है शांत, सुख-दुःख का आत्यन्ति अभाव। आनन्द अखंड तत्त्व है और ज्ञानमय है। इसी अखिल विश्व का निर्माण हुआ है। आनन्द अद्वैत भाव उपलब्ध होता है। जितने अंश में ज्ञान-वृद्धि होती है उत अंश तक आनन्द की वृद्धि होती है। स्थूल जितना अधि सूक्ष्म होता है आनन्द का प्राबल्य उतना ही अधिक होता है द्वैत भाव आनन्द को प्रकट होने नहीं देता। द्वैतज्ञान बुद्धि संतोष प्रदान करता है। जहां द्वैत होता है वहां कुछ जान को शेष रह जाता है और आनन्द अपूर्ण बन जाता है। पर जानने और करने को कुछ बाकी नहीं रहता। यह तत्त्व आन है। ईश्वर का अर्थ ही परमानन्द है। आनन्द से परे अ

कुछ भी नहीं । आत्मा भी आनन्द है, प्रेम भी आनन्द है और विश्व का रहस्य भी आनन्द है।

अज्ञेयवाद

१-ईश्वर, विश्व और परम सत्य विषयक सभी वाद गप्प हैं—निराधार हैं ।

वैज्ञानिकों का कथन है कि हम द्रव्य को पहचानने में समर्थ हो गये हैं, परंतु उस-वस्तु के पीछे यदि कोई सूक्ष्म अतीन्द्रिय तत्त्व है, तो हम उसे जानने में समर्थ नहीं हो सके हैं।

३-पश्चिमीय दार्शनिक हक्सली, स्पेन्सर, हेमिल्टन आदि आत्मा को स्वीकार नहीं करते किन्तु साथ ही उसे अस्वीकार भी नहीं करते । आत्मा और ईश्वर के प्रति विश्वास करने के लिये कोई भी कारण उनके पास नहीं, तथा उसे प्रमाणित करने का उपाय भी उन्हें नहीं सूझा, ऐसा उनका कथन है । ईश्वर सबका पिता है और सब पर प्रेमभाव रखता है, इस बात का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता ।

४-प्लेटो का कथन है कि किसी को ईश्वर या परम सत्य का अनुभव हो, तो भी वह अन्य किसी को बताना समझाना असम्भव है । उसके अस्तित्व और उसकी आकृति का विश्वास नहीं होता । ऐसी अनेक वस्तुयें भी हैं जिन्हें पूरी तरह से जान लेना कदापि संभव नहीं ।

५-डेविड ह्यूम का कहना है कि मानवीय अनुभव आधार पर प्रवर्तित समझ पर ईश्वर का आधार है। पं उसका आधार-स्तम्भ श्रद्धा है-विश्वास है। जो वस्तु ज्ञान अतीत है, बुद्धि से परे है, उसका प्रमाण मिलना क्यों संभव नहीं।

६-अंग्रेज महाकवि कान्ट का कहना है कि ईश्वर अस्तित्व को मानने के लिये मानव की बुद्धि में प्रलोभन उत्प होता है इसलिये वे कहते हैं कि ईश्वर को विश्वास पूर्व मानना चाहिये।

७-विलियम हेमिल्टन का कथन है कि जगत् में जो कुछ अनन्त है, उसका माप अपने ज्ञान के गज से करना सर्वथा मूर्खतापूर्ण है। जिसे हम किसी तरह जान नहीं सकते, उसके अस्तित्व को अस्वीकार करना भी महान् मूर्खता है। किन्तु सभी खोजों के आधार पर यह माना गया कि विश्व के मूल में एक हीतत्त्व सर्वोपरि शक्ति है। जब वह व्यक्त होता है, तब दो बन जाता है और तत्पश्चात् अनेकशः रूप धारण कर लेता है। विद्युत-शक्ति एक है, परंतु जब वह प्रकट होती है, तब नेगेटिव दो रूप धारण कर लेती है। वह क्या है, यह कहा नहीं जा सकता। —क्रमशः

स्त्रियों के स्वभाव

ले. राजमोहन मिश्र

शास्त्रकारों ने स्पष्ट बताया है कि बालहठ, राजहठ तथा स्त्री-हठ के प्रति सदैव सजग रहना चाहिए। इस हठ का मूल कारण अज्ञान एवं दुराग्रह है। छः प्रकार के शत्रुओं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर तथा तीन अवस्थाओं—तनु, विच्छिन्न तथा उदार तथा अन्य विविध मायाजाल में फँसे हुए स्त्री-पुरुष सर्वत्र पायें जाते हैं। परन्तु राजा, बालक और स्त्री में यह वृत्ति अधिकाधिक रूप में रहती है। इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए राजा, स्त्री तथा बालकों को त्याग वैराग्य का ज्ञान, पारमार्थिक ज्ञान, संसार में रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहने का ज्ञान आदि से दीक्षित करने के लिए योगाभ्यास, वेदांत, भक्ति-कर्म-योग, मंत्र योग की शिक्षा दी जाती है।

लक्षण तथा स्वभाव

शास्त्रकारों ने स्त्रियों में चार प्रकार के लक्षण स्वभाव तथा आहार-विहार बतायें हैं। इनमें से प्रथमकोटि की स्त्री को पद्मिनी कहते हैं। पद्मिनी को उच्चकोटि की नारी कहा गया है और उसके आचरण तथा स्वभाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। ऐसी नारियां सात्विक गुण सम्पन्न दुःख सुख में समानभाव रखनेवाली, शाकाहारी, निर्व्यसनी, स्वाभाविक आनन्दमयी मुख-मुद्रा से समलकृत, चलने में सतत

सावधान उठते बैठते समय शांति पूर्ण उच्छ्वास, फल, शाक-सब्जी, घी, मक्खन, चावल, गेहूँ, चने आदि के प्र अधिक रुचि, मिर्च, इमली, और नमक आदि से अरुचि, शीलता, पवित्र जीवन की ओर प्रवृत्ति, पति को परमे मानकर उसकी सेवा में तत्पर रहना, माता-पिता की से अतिथियों का उचित सत्कार, योगाभ्यास, वेदांत-ग्रंथ, यो वासिष्ठ तथा महात्माओं के उपदेशपूर्ण ग्रंथों का पठन, अ करण को पवित्र बनायें रखने के लिए प्रयत्नशील रहना, सेवा को ईश्वर की पूजा समझना, सप्ताह में अथवा हर ए दशी के दिन उपवास करना, संतान के समुचित पाल पोषण में तत्पर रहना, देवपूजा तथा पर्व त्यौहारों के निय पालन करना, यथा शक्ति दान-पुण्य करना, किसी कार वश शारीरिक या मानसिक रोग उत्पन्न हो गया हो तो उसके प्रतिकार के लिये—उससे मुक्ति पाने के लिये प्राकृतिक चिकित्सा का प्रेम पूर्वक अवलम्ब लेना, घर में किसी कारणवश वाद-विवाद या हानि का संयोग आ पड़ा हो, विरोधी वातावरण उत्पन्न हो गया हो, तो उसे युक्ति, कला, दूरदर्शिता, सहिष्णुता, शत्रुभाव रहित सुयोग्य उपायों से उस द्वेष-दुःख पूर्ण स्थिति से बच निकलना या उसके समाधान की संभावनाएं खोजना आदि महान् गुण पद्मिनी स्त्रियों में स्वभावतः प्रकट होते हैं। पद्मिनी की गौरव गरिमा अक्षुण्ण है। वे परोपकारमय कार्यों में उत्साहपूर्वक प्रवृत्त रहती हैं। वीभत्स उपन्यास-कहानियों तथा अन्य गन्दे साहित्य को वे हाथ भी नहीं लगातीं। शराब, गांजा-भांग तथा चाय आदि मादक

वस्तुओं के दुर्व्यसन उनका स्पर्श भी नहीं कर सकते। सिनेमा, खेल-तमाशों से वे दूर बहुत रहती हैं। अप्राकृतिक सौन्दर्य की वृद्धि करनेवाली वस्तुओं की वे तनिक भी रुचि प्रकट नहीं करती। बाल्यकाल में पढ़ना लिखना, माता-पिता की सेवा-सहायता करते रहना पद्मिनी नारी का जन्मजात गुण होता है। युवावस्था में पति की सेवा तथा सन्तान के लालन पालन में वे संलग्न रहती हैं तथा वृद्धावस्था में भगवत् चिन्तन, योगाभ्यास तथा परोपकारमूलक कार्यों में प्रवृत्त रहने को पद्मिनी अपना कर्तव्य समझती है। इस प्रकार के महान् गुणों से सम्पन्न पद्मिनी नारियां परम आदरणीय एवं वन्दनीय होती हैं। जगत् उनके महान् गुणों की ओर निःसन्देह आकृष्ट होगा। और उनकी इज्जत करेगा। उनकी शरीर यष्टि मध्यम सुकोमल तथा आवाज मधुर होगी। पद्मिनी स्त्री गालियां और अपशब्द भले ही सहन कर लेगीं, परन्तु उसके मुख से कभी गाली या अपशब्द नहीं निकलेंगे। ऐसी महान् और विदुषी नारियां भूतकाल में भारत में घर घर में विद्यमान थीं, परन्तु आज उनकी संख्या बहुत कम हो गई है। किसी कारण वशात् माता-पिता, इष्ट-मित्र, पास-पड़ोस के सम्पर्क, महान् संकट, शिक्षा आदि के कारण भयावह और बुरे संस्कारों के उत्पन्न होने की संभावना रहती है, परन्तु उस अवांछनीय स्थिति में भी पद्मिनी बुद्धिमत्तापूर्वक और सावधानी के साथ अपने मूल संस्कारों की रक्षा करती है। उसे अपने मूल गुण-स्वभाव का विस्मरण कदापि हो नहीं पाता। पद्मिनी की यह दैवी भावना उसके जीवन की सुरक्षित निधि

है। पद्मिनी के मौलिक गुणोंका उत्कर्ष उसकी प्रतिभा प्र प्रभावशाली बना देता है।

२— हस्तिनी

दूसरे प्रकार की स्त्री को हस्तिनी कहते हैं। पद्मि और हस्तिनी के लक्षणों में थोड़े से परिवर्तन हैं। फिर पद्मिनी के ७५ प्रतिशत कर्म-गुण-स्वभाव हस्तिनी नारी निस्सन्देह प्रकट होंगे और २५ प्रतिशत दुर्गुणों का आभा पाया जायेगा। आपत्तिकाल आ पड़ने पर वह अत्यन्त विक्षि हो उठती है। वह प्रसंगोपात परिवार तथा पति के स्वा विरोध करने का प्रयास भी करती है। यदा-कदा वह अप आहार में भी परिवर्तन करती रहती है। उच्च कोटि का ज्ञा संपादन करने में आंतरिक स्वाभाविक भावना की कुछ न्यूनता रहती है। हस्तिनी स्त्रियों के जीवन में यह लक्षण निरं तर प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। पद्मिनी और हस्तिनी स्त्रियों के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन और विश्लेषण करने पर ही यह अंतर प्रतीत होगा, अन्यथा पद्मिनी और हस्तिनी नारियों में चाल गति न तो अधिक मन्द होती है और न अधिक वेगवती बल्कि सामान्य होती है हस्तिनी हाथी के समान मन्द चलती है।

३— चित्रिणी

तीसरे प्रकार की स्त्री को चित्रिणी कहा जाता है। पद्मिनी की तुलना में चित्रिणी नारी में ५० प्रतिशत गुण और ५० प्रतिशत दुर्गुणों का आभास स्पष्ट प्रकट होगा।

चित्रिणी में असहिष्णुता अत्यधिक मात्रा में होती है और वह तमोगुणी आहार की ओर विशेष रुचि प्रकट करती है। परिवार तथा पति से झगड़ने के लिए वह सदैव कटिबद्ध रहती है। काम क्रोध, मद, लोभ, मद, मत्सर मोह का उस पर प्रबल प्रभाव होता है और वह उसी में आनन्द मानती है। विषय-भोग की ओर उसकी तीव्र प्रवृत्ति होती और ऐन्द्रियिक सुख के साधन जुटाने में ही वह लगी रहती है। वह अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों का दुरुपयोग करती है और पति सेवा से विमुख रहती है। पति की आज्ञा और सत्परामर्श आदि की अवहेलना करना उसके स्वभाव का मुख्य अंग होता है। वह पति से द्वेष-भाव भी रखती है। अवसर मिलने पर वह पर पुरुष के साथ अनुचित सम्बंध रखने से भी नहीं हिचकती और प्रत्यक्ष में पतिव्रता होने का स्वांग करती है। अहंकार तथा द्वेष भावना से वह सदा लिप्त रहती है। पति के सामने पतिव्रता का छद्मपूर्ण स्वांग प्रकट करता है और बीमारी का बहाना करती है। वह आलस्य, प्रमाद और मात्सर्य में डूबी रहती है। वाद-विवाद के क्षुद्र कारण उपस्थित कर पति का अपमान करती है और स्वयं पति से ही अपनी सेवा कराती है। किसी-न-किसी निमित्त का स्वयं निर्माण कर परिवार तथा संतानों से झगड़ा करता है और उनपर अपशब्दों की बाण-वर्षा करती है। पति जब घर से बाहर चला जाता है, तब वस्त्र, बर्तन शाक-भाजी खरीदने अथवा मित्रों के घर जाने का मिथ्या बहाना देकर अनैतिक (व्यभिचार मूलक) कर्म के लिए वह हमेशा

घर से बाहर निकल जाती है। सामाजिक परोपकार का निमित्त देकर वह सिनेमा देखने के लिये सोत्साह जाती है। योगाभ्यास, सत्संग और प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति उसकी तनिक भी रुचि नहीं होती। अपने दुराग्रह और अरुचिकर आचरणों से वह घर के वातावरण को सदैव अशांतिमय बनाये रखती है। अनैतिक, अधार्मिक और व्यभिचारिणी स्त्रियों के साथ उसका घनिष्ठ प्रेम-सम्बंध होता है और पतिव्रता का ढकोसला बनाकर अपनी प्रशंसा सुनने में आनन्द मानती है। चित्रिणी नारी में यह लक्षण प्रायः पाये जाते हैं। अधिक मिर्च, इमली, नमक और अन्य तमोगुणी आहार की ओर उसकी विशेष रुचि होती है। वह दूसरों को माया-जाल में फंसा कर तथा पति का अपमान करके उससे रुपये-पैसे वसूल करती है।

४— शंखिनी

चौथे प्रकार की स्त्री को शंखिनी कहा जाता है। ऐसी स्त्री का ७५ प्रतिशत अंश अपवित्र और २५ प्रतिशत अंश पवित्र और सद्गुण संपन्न होता है। वह चोरी करती है तथा हिंसा व्यभिचार, वेश्यावृत्ति और दुर्व्यसनों में उसकी विशेष प्रवृत्ति होती है। वह गालियां सुनानेमें परम संतोषका अनुभव करती है। वह स्वयं तो कलह प्रिय और अशांत जीवन बिताती ही है, साथ ही पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को भी अशांतिमय बना देती है। उसके आचार व्यवहार समाज विरोधी होते हैं। उसमें विषय भोग तथा कामुकता की भावना अत्य-

धिक होती है, एतदर्थ वह निन्दनीय प्रयासों में संलग्न रहती है। कामोत्तेजक आहार, औषधि और अन्य मादक वस्तुओं का सेवन उसके जीवन का अंग बन जाता है। वह पतिको शत्रुवत् देखती है तथा पति, परिवार, सन्तान, इष्ट-मित्र आदि के दुर्गुणों को देखती रहती हैं और निन्दा, विरोध, कटु वचन बोलना, मार-पीट करना और आत्महत्या तथा घर छोड़ जाने की धमकी देना आदि दुर्गुण शंखिनी नारी में प्रचुरता से पाये जाते हैं। वह उत्तम उपदेश को अनर्गल और अभिशाप-मय, अवांछनीय उपदेशको आशीर्वाद मानकर उसे अत्यधिक हत्त्व प्रदान करती है। समागत अतिथियों के स्वागत सत्कार और आहारादि के सम्बंध में भी वह अपनी संकुचित भावना या छोटे मन का प्रदर्शन करती है। शंखिनी प्रकृति की स्त्रियों की प्रवृत्ति देव-पूजा, धार्मिक अनुष्ठान, सत्संग की ओर बिल्कुल नहीं होती। योग-वेदांत, प्राकृतिक चिकित्सा और तदनुकूल जीवन-यापन के प्रति वे विरोध भाव प्रकट करती हैं। वे वीभत्स तथा कुरुचिपूर्ण उपन्यास कहानियां तथा साहित्य को विशेष पसन्द करती हैं और उसे प्राणों के समान महत्त्व देती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट पता चलता है कि चित्रीणी तथा शंखिनी स्त्रियां इस पृथ्वी तलपर महान् संकट की जन्म-

दात्री हैं। अपने स्वैर विहार या स्वेच्छाचारिता से पारि रिक, सामाजिक तथा स्वयं अपने जीवन को भी वे नर्क बना देती है। न वे स्वयं सुखी होती हैं और न अन्य स्त्रि को सुखी बनाने में समर्थ होती हैं। इसके विपरीत वे स्व तो दुःखी रहतीं ही हैं, दूसरे को भी दुखों में जकड़ देने सक्रिय प्रयास करती रहती हैं। उक्त चार प्रकार की स्त्रियों उच्च उपाधियों से समलंकृत स्त्रियों का भी समावेश होता है। पद्मिनी तथा हस्तिनी स्त्रियां सदैव कल्याणमयी, दयामयी संसार की उद्धारक, हर तरह से उन्नति की ओर अग्रसर रहती हैं। वे धरती माता, देश, समाज तथा परिवार में सुख शांति एवं संयमपूर्ण जीवन की विधात्री, सर्वत्र स्वर्ग राज्य का अवतरण करतीं है, परन्तु चित्रिणी तथा शंखिनी नारियां इस पृथ्वी पटपर महान् भाररूप हैं। वे कलह प्रिय, कर्कशा, निष्ठुर स्वभावकी होतीं हैं और अपने अवांछनीय आचरण से परम संकटमय, भयरूप, आपत्तिरूप और दुःखरूप बन जातीं हैं। भगवान ऐसी स्त्रियों को सद्बुद्धि प्रदान करें।

* * *

यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा

स्वानुभव

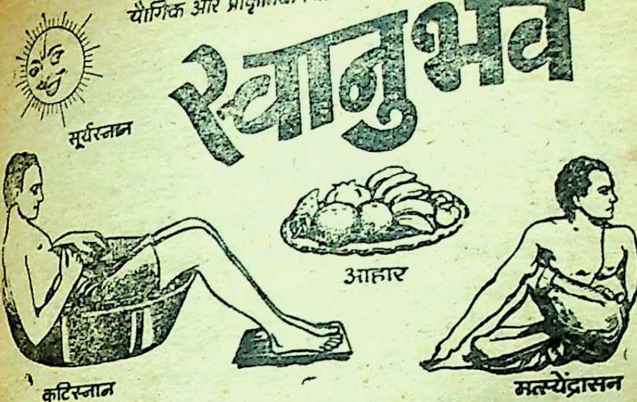

मेरा जन्म हुआ है टोकियो (जापान) में, पढ़ाई हुई है हांग-कांग में और मैं सर्विस करता हूं लन्दन में। कालेज जीवन में मेरे अनेक भारतीय मित्र-साथी थे। वे हमें हिन्दी और संस्कृत पढ़ाया करते थे। ग्रहण तथा स्मृति-शक्ति अच्छी होने से अंगरेजी तथा जापानी भाषा के साथ अन्य भारतीय भाषा रही। दो वर्ष में हिन्दी तथा संस्कृत का अच्छा खासा अभ्यास कर लिया। भारतीय मित्र ने मुझे पतंजलि योगदर्शन पढ़ने को दिया। इसका प्रभाव मेरे मन पर अत्युत्तम हुआ, फलतः मैंने योगाभ्यास का श्री गणेश किया। यह आत्मश्लाघा नहीं, बल्कि सत्य घटना है। उस कालेज में मैं प्रथम श्रेणी में पास हुआ—उत्तीर्ण हुआ। अतः कालेज की ओर से स्कालरशिप (छात्रवृत्ति) प्राप्त कर उच्च पदवी (डिग्री) प्राप्त की। इसका फल यह हुआ कि सर्विस (नौकरी) मेरे जीवन के लिये विशेष अनुकूल हो गई।

प्रसंगोपात मुझे कलकत्ता जाना पड़ा, जहां आर्य-समाज मंदिर के साथ साक्षात्कार हुआ। उन्होंने कहा कि आप तो योगाभ्यास में पारंगत योगी हैं। हम भारतीय लोग तो केवल

श्रोताओं पर अपने पाण्डित्य की प्रतिष्ठा और धाक जम लियें पतंजलि योगदर्शन पर व्याख्यान देते हैं, परन्तु उ अभ्यास नहीं करते—उसका उनके पास कोई क्रिया आयोजन नहीं होता। आपने तो पतंजलि योग दर्श मौखिक पाठ तो किया ही है, उसका सक्रिय अभ्यास भी क हैं। धन्य है आप का अत्यन्त पवित्र जीवन। अपने आच से आप जापानी नहीं, भारतीय के समान हैं। आपको आ समाज के विधानानुसार विधिवत् दीक्षा दी जायगी।

मुझे दी गई। नामका परिवर्तन किया गया। बाल्याव का मेरा नाम था मिटसु और अब रखा गया योगानन्द लन्दन आने के बाद अब मैं गृहस्थ हो गया हूं। प्रतिदि घण्टेतक आसन और प्राणायाम करता हूं। तन, मन, ध यश और परम तत्त्व के ज्ञान का अर्जन कर अब मैं शांति जीवन व्यतीत करता हूँ। स्वानुभव में एक बात का उल्ले करना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा मेरा स्वानुभव वर्णन अपूर्ण रह जायेगा। जब मैं कलकत्ते से बम्बई ग तब वहां श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में योगाभ्यास सम्बं सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर आश्रम की ओर से योगाचार्य प्रमाणपत्र प्राप्त कर चुका हूं। मेरी पत्नी प्रतिदिन अत्य आदर भाव से योगाभ्यास करती है और योगाभ्यास के प्र अतीव श्रद्धा भाव रखती है। सुख न तो मनोरंजन में और न सिनेमा आदि के गीत सुनने में। क्लबों तथा घोड़ों रेस में जाने में भी कोई सुख नहीं है। मांस-मदिरा का से तथा वेश्यागमन भी मानव को अभीष्ट सुख देने में सम नहीं। योगाभ्यास ही जगत् में सुख शांति की स्थापना क सकता है। जगत् के दुःखी स्त्री पुरुषों के लिए योगाभ्या आश्वासन है व अन्धकारमें भटकते लोगों के लिये प्रज्वलि ज्योति के समान है। योगाभ्यास से सुख शांति की अनुभू करनी चाहिए। —योगानन्द अलबेमारले स्ट्रीट W. 1. लन्

प्रणदीप सजाओ

ले० रामशरण के. की.

दिवाली ने कहा—कोई ऐसा दीप जलाओ !
समस्तमानवी पापों को फूंकते जाओ ॥
प्रेम दीप में सत्यता की बाती डाल ।
सद्गुण तेल से चहूं ओर हो उजाल ॥
एकता की दीवट पर प्रण दीप सजाओ ......

पापों के रावण ने अपना रंग जमा लिया ।
सीमाओं पर नाटक की मंच ला लिया ॥
गहरी निन्द्रा से राम–दल को फिर जगाओ ....

शांति की सीता से नाता जोड़ रहे हो ।
शक्ति की सीना से मुख मोड़ रहे हो ॥
पाक बन्धनों से सहस्त्रों सीताओं को लाओ ......

पापों के पांव पड़कर प्राण दान ना लेना ।
देव-भूमि हित निज प्राण दान ही देना ॥
भारत मां के आंचल को ना दाग लगाओ ......

पग–पग पर है पंचवटी, हरवीर हो उसका रखवाला ।
लक्ष्मणों की तैयारी का तरकश हो तीरों से मतवाला ॥
फूट की मदिरा पीकर ना दण्डक वन को और लजाओ ...

हरवीर कौशल्या पुत्र हो, राम से वीर, महान बनो ।
मूर्ख अहिंसा की छोड़ो, हिमालय सी चट्टान बनो ॥
कायरता की शहनाई से मत अपना दिल बहलाओ.......

आधि-व्याधि-उपाधि का विनाशक

प्राणायाम-श्वास-नियमन

लेखक-योगीराज उमेशचन्द्र जी

चुम्बक और लोहा—इन दो वस्तुओं में से लोहे तुलना में चुम्बक में अधिक शक्ति है। चुम्बक लोहे को आ र्षित करता है - पास खींचता तो है ही, साथ ही प आये हुए लोहे को पकड़ रखता है। इसी प्रकार मानवीय को भी समझना चाहिए। दृश्य लोहे का और मन चुम्बक काम करता है। मन चुम्बक से भी अधिक शक्तिशाली हो है। यह कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींचने की शक्ति रखता है, परन्तु म तो पृथ्वी पर अस्तित्व रखनेवाले और स्वयं को सुख देनेवाले प्रत्येक पदार्थ को खींचने का प्रयत्न करता है।

प्रत्येक ज्ञानी पुरुष का कथन है कि मानसिक शक्ति विकास करना चाहिए। मानसिक शक्ति को बढ़ाने के लिये मानसिक शक्तियों को विकसित करने की आवश्यकता है मन अनन्त शक्तियों का खज़ाना है। इन शक्तियों का आवागमन मनोवृत्तियों द्वारा होता है। महर्षि पतंजलि ने मानसिक शक्तियों को विकसित करने के सुन्दर साधन बताये हैं। वे साधन—उपाय सबके लिए अनुकूल तथा लाभप्रद हैं और ऐसे सरल हैं कि सभी स्त्री—पुरुष अपने घर में ही अनायास कर सकते हैं।

सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक,

वैज्ञानिक आदि कार्यक्षेत्रों में मानव को काम करना पड़ता है। अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र में दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर उसमें प्रवेश करना और तदनुसार प्रवृत्तियों में व्यस्त होना पड़ता है। कुछ क्षेत्रों में तो मन की संपूर्ण कसौटी होती है। यदि मानसिक शक्ति निर्बल है, तो निर्धारित क्षेत्र से पृथक होना पड़ता है। यदि मानसिक शक्ति सबल है, तो किसी भी क्षेत्र से इच्छित फल की उपलब्धि की जा सकती है।

मन प्राणाधीन होता है—मन और प्राण के बीच घनिष्ट सम्बन्ध है। मानसिक शक्ति को बलवान प्राण का निरोध युक्ति पूर्वक करना पड़ता है। किसी भी गंभीर घटना के समय, विचार के समय अथवा किसी अन्य प्रिय वस्तु या व्यक्ति से भेंट होने के समय प्राण की गति अत्यन्त मन्द हो जाती है। प्राण की गति के मन्द होते ही मन के विचार भी एकाग्र हो जाते हैं। यह चिन्ह अल्पकाल के लिये ही प्रकट होते हैं। इस स्थिति का अनुभव नगर निवासी प्रत्येक स्त्री-पुरुष के नित्य जीवन में विशेष रूप में होता रहता है। उदाहरण स्वरूप किसी प्रसिद्ध फिल्म या बहुप्रशंसित नाटक को देखते समय, व्यापारिक बाजारों में भावों का परिवर्तन होते समय, तथा रेस में धन नष्ट या प्राप्त होते समय—ऐसी अनेक घटनाओं में प्राण की गति बहुत ही मन्द हो जाती है। यदि मन निर्बल है, तो ऐसी घटनाओं के प्रभाव से प्राणपंखेरू के उड़ जाने की भी संभावना है। इन लक्षणों से यह प्रमाणित होता है कि मन की शक्ति का अभाव है। मानसिक शक्ति को बढ़ाने के लिए योगशास्त्र में अनेक साधन बताये हैं। उन

अनेक साधनों में एक साधन इस लेख में बताया जायेगा इससे मानसिक शक्ति असीम रूप से बढ़ जायेगी। यह निर्विवाद है। इतना ही नहीं, अपितु स्थूल शरीर को भी अं लाभ होगा। इसका विशेष वर्णन भस्त्रिका प्राणायाम के में किया गया है।

भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका प्राणायाम दो प्रकार के हैं।

प्रथम प्रकारः— पद्मासन या सुखासन में बैठना चाहिये दाहिने नासापुट को दाहिने हाथ की उँगलियों द्वारा दबाये रखकर बायें नासापुट से १० बार श्वास को अन्दर खींचना और बाहर निकालना चाहिए। ११ वीं बार उसी नासापुट द्वारा श्वास को फेफड़ों में भर लेना चाहिए और यथाशक्ति कुम्भक कर लेनेके पश्चात् दाहिने नासापुट की राह से धीरे बाहर निकाल दो। इस प्रकार एक प्राणायाम सम्पूर्ण होता है।

द्वितीय प्रकार :— बायें नासापुट से श्वास को फेफड़ों भर लेना चाहिये और तुरन्त दाहिने नासापुट से बाहर निकाल देना चाहियें। इस प्रकार १० बार करने के पश्चात् ११ वीं बार बायें नासिका छिद्र से यथेष्ट श्वास फेफड़े में भरना चाहिए। यथाशक्ति कुम्भक करने के पश्चात् दाहिने नासिका-छिद्र से शनैः शनैः श्वास को बाहर निकाल देना चाहिए। तदुपरांत तुरन्त ही (बीच में कुछ विश्राम लिये बिना) दाहिने नासिका छिद्र की राह श्वास को अन्दर खींचना चाहिए और बायें नासिका छिद्र से निकाल देना चाहिये।

स प्रकार १० बार करने के पश्चात् ११वीं बार दाहिने नासापुट की राह श्वास को फेफड़ों में भर लेना चाहियें और यथाशक्ति रोक रखने के पश्चात् बायें नसा-पुट से शनैः बाहर निकाल देना चाहिये। इसे द्वितीय प्रकार का भस्त्रिका प्राणायाम कहा जाता है।

दोनों प्राणायामों में तीन बन्धों तथा मात्राओं का ध्यान रखना चाहियें। प्राणायाम के प्रारम्भ से अन्ततक मूलबन्ध, कुम्भक के समय जालन्धर बन्ध और रेचक के समय उड्डीयान बन्ध किया जायें, एक मात्रा को एक सेकण्ड के बराबर मानना चाहिए।

प्राणायाम का पहले-पहल अभ्यास करनेवाले को ४ मात्रा तक पूरक, १६ मात्रातक रेचक करना चाहिये। जैसे-जैसे मनोबल में वृद्धि होती जाये, और फेफड़े मजबूत होते जायें, तदनुसार मात्राओं की संख्या बढ़ाते रहना चाहिये।

प्रतिदिन कितने प्राणायाम कियें जायें ?

ऊपर बतायें गयें दोनों प्राणायाम करने की जरूरत नहीं। दो में से कोई एक प्राणायाम करना चाहिए। प्रथम प्रकार की अपेक्षा द्वितीय प्रकार उत्तम है। आठ दिन तक २, ९ से १६ दिन तक ४ और तदुपरांत लाभ तथा समय के अनुसार ४ से ६ प्राणायाम कियें जा सकते हैं।

प्राणायाम के लाभ

जैसे स्थूल शरीर को दाल, भात, रोटी, साग, फल और

दूध आदि खाद्य पदार्थों की जरूरत होती है, उसी तरह म को विचाररूपी खाद्य आवश्यक होता है। विचार दो प्रका के होते हैं—शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध विचारों से मनोबल वृद्धि होती है। प्राणायाम से मन में शुद्ध विचारों का स्फुरण होता है। निर्दय और मलिन विचार मानव को नरक कुण्ड (दुःख-दावानल) में धकेलते हैं और पवित्र तथा निर्मल विचा मानव को सांसारिक सुख तथा आत्मदर्शन की प्रवृत्ति में सहयोग प्रदान करते हैं। कोई भी व्यक्ति दुःख की इच्छा नहीं करता, मात्र सुख की कामना करता है। फिर भी अपवित्र विचारों के वशीभूत होकर मलिन कृत्यों की ओर प्रवृत्त होता है। और प्रलोभनों में फंस कर अपनी आन्तरिक दिव्य चेतना को दबा देता है। मन का मुख्य निवास स्थान हृदय और मस्तक है। प्राणायाम के अभ्यास से यह दोनों स्थान मजबूत और बलवान बनते हैं। अन्तःकरण में महान् शुभविचारों का स्फुरण होता है। चित्तभ्रम, अस्थिर मस्तिष्क, फेफड़ों की निर्बलता, हृदय की कमजोरी, ज्ञान का अभाव, ज्ञानतन्तुओं की शिथिलता, पंचज्ञानेन्द्रियों की अशक्ति, क्रियातन्तुओं की निर्बलता, आदि अनेक व्याधियों से छुटकारा मिलता है प्राणायाम के अन्त में अलौकिक आनन्द का अनुभव होगा। प्रशांत सुगन्धित युक्त तथा नाना प्रकार के फल-फूलों से परिपूर्ण उद्यान बैठते समय जो आनन्द उत्पन्न होता है, उसी आनन्द की अनुभूति भस्त्रिका प्राणायाम साधक को होती है। अप्रत्याशित वस्तु अचानक प्राप्त होगी और ऐसा प्रतीत होगा मानो दैवी भूमि में विचरण कर रहें हैं। रक्त-विकार से

उत्पन्न प्रत्येक रोग मिट जायेगा ।

प्राणायाम करने के पश्चात् कुछ देर तक शांत बैठना चाहिये। उस समय मन में जो शुभेच्छाओं (आरोग्य, ऐश्वर्य, आरोग्य, पदवी, सन्तान, महत्ता, असाधारणता, लोकोत्तर उत्कर्ष पूर्णत्व, आत्मज्ञान आदि गुणों) का आह्वान और धारण करना चाहिये। उस दशा में विरोधी और अनिष्ट कर विचार मन में आने देना न चाहिए। मानसिक वृत्तियों को केन्द्रीयभूत बनाकर एक हीकार्य-सिद्धि की ओर प्रेरित करना चाहियें और तदनुसार अभीष्ट विचारों को तैलधारावत् रहने दिया जायें। इस प्रकार करने से कुछ दिनों में ही अजीब चमत्कार दिखाई देगा। इस प्राणायाम के साधक को आधि-व्याधि-उपाधि आदि विकार तकलीफ नहीं देंगे। ज्ञानेन्द्रियां अत्यन्त बलवान बनेंगी। मस्तिष्क की शक्ति में पर्याप्त वृद्धि होगी। मन सात्त्विक गुणों से परिपूर्ण होगा। गले से मधुर आवाज बहुत ही सुन्दर निकलेगी। आरम्भिक दमा का रोग दूर हो जाता है। यदा-कदा शरदी का जो विकार उत्पन्न होता रहता है, वह इस प्राणायाम से दूर हो जायेगा। नाड़ियां शुद्ध होंगी। मन में डरपोक भाव, बौद्धिक अस्थिरता, चित्त की चंचलता, हृदय की निर्बलता तथा एनेमिया रोग नष्ट होगा। इस प्रकार प्राणायाम की साधना में संलग्न मानव तन मन से आरोग्यमय, पवित्र तथा कार्य-तत्पर होता है और पूर्णता प्राप्ति के लियें अभीष्ट शक्तियां जाग्रत होकर शुभ कर्मों की ओर प्रवृत्त होती हैं।

卐

* धर्मोपदेश *

(प्रथम खण्ड)

स्वामी रामतीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी तथा चुने धार्मिक (वेदान्त परक) प्रवचनों का संग्रह। मानव ज सार्थक कर नित्य सुख प्राप्त करने के लिये अतीव सु सुयोग्य रूप से स्वामी रामतीर्थ जी ने देश--विदेशों में प्र करके अपने स्वानुभव को बताया है। हरेक घरमें नित्य प पाठनकर सुख--शांति का लाभ लीजिये।

पृष्ठ संख्या ३८४ कीमत ४-०० डाक व्यय अलग।

द्विरंगी आसन चित्रपट

बहुरंगी आसन चित्रपट में नित्य उपयोगी १७ आसनों का संग्रह है। रोगों से मुक्त होकर सदा सुदृढ़ शरीर बनाए रखने के लिये आकर्षक चित्रपट अवश्य मंगवाइये। आसनों के नाम तथा लाभ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं। डाक व्यय के साथ ३-०० रु.

प्राप्तिस्थान

श्री. रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

धर्मोपदेश

स्वामी रामतीर्थ.

(गतांक से आगे)

इसके अतिरिक्त आपके प्रत्येक कार्यमें आसक्तिका अस्वीकार संभव नहीं, अपनी स्नेह भावनाओंको आप अच्छी तरह समझ नहीं सकते, इसीलिये कहते है कि हम प्रेम में-प्यार में पड़ गयें, परन्तु वास्तविक रूप से देखने पर पता चलता है कि यह प्रेम नहीं, द्वेष होता है, अतः वेदांत जब कहता है कि आप राग में न फंसे, तो इसका अर्थ यह करना चाहिये कि आप घृणा न करें। जब आप किसी भी वस्तु के प्रति अनुराग प्रकट करते हैं. जब आप एक ही वस्तु पर दृढ़ आसक्ति प्रकट करते हैं तथा संसार की अन्य वस्तुओं के प्रति अनासक्त हो जाते हैं अर्थात् एक ही वस्तु के साथ घनिष्ठ सम्बंध हो जाने से आपका समग्र विश्व के साथ का सम्बंध टूट जाता है। क्या आपको ऐसा अनुभव नहीं हुआ ? जबतक बालक को यह भान नहीं होता कि प्रेम क्या है, तबतक वह प्रेम स्वरूप ही होता है। मानो उसका सभी के साथ सम्बन्ध है। जब वह

एक दो महीने का होता है, तब तक कोई भी मानव उसे कर वात्सल्य पूर्वक खेला सकता है। बालक में ऐसी आ शक्ति होतीं है कि उसे खेलाने की अदम्य इच्छा उत्पन्न है, क्योंकि वह प्रेम स्वरूप होता है। परन्तु कुछ समय बाद जब बालक को दुनियां की हवा लगती है और ब होकर वह मेरे तेरे की भावनाओं में पड़कर स्त्री के प्रेम में आबद्ध होता है, तब उसका क्या होता है! माता पिता भारस्वरूप प्रतीत होते हैं, उसे अपनी बहन सम्बंधियों से आनन्द का अनुभव नहीं होता और पु मित्रों से भी सम्बन्ध टूट जाता है। वह अखिल विश्व सम्बंध भंग कर देता है। वह उद्योग-धन्धे के लिए समु की यात्रा करता है, परन्तु उसका चित्त कहीं चिपकता न सभी उसे दुःखदाई प्रतीत होते हैं। कोई मानव प्यार में फं गया है, तो इसका अर्थ यही होता है कि वह समग्र विश्व को धिक्कारता है। जब आपको किसी विशेष पदार्थ प अनुराग होता है तब आप सारी दुनियां से अलग हो जाते हैं अतः वेदांत के सिद्धांतानुसार व्यक्तिगत मोहका अर्थ वियोग असंबद्धता होता है और यह वियोग जड़ता उत्पन्न करता है अतः वेदांत हमें उपदेश करता है कि दुनियां के पदार्थों आसक्त होकर कभी आत्मघात नहीं करना।

वेदांत का कथन है कि जो बालक एक दिन प्रेमस्वरू होता है, वही बालक बाद में विषयासक्ति का एक उदाहर बन जाता है, इसीलिए वेदांत जब यह कहता है कि आ विषयासक्ति और कामनाओं से ऊपर उठें, तब उसके क

का उद्देश्य यही होता है कि आप समग्र मानव जाति के लिये आशीर्वाद रूप बनें। वेदांत आपकी समग्र शक्तियों को सुदृढ़ बनाकर आपको मानव जाति के साथ एकता का अनुभव कराता है।

बिना किंचित् आसक्ति के परोपकारी सन्त जन अपना जीवन बिताते हैं ? क्या यह सत्य नहीं ? क्या ईसा ने कभी विवाह नहीं किया ? नहीं, कभी नहीं। राम विवाह के विरुद्ध कुछ कहना नहीं चाहता, अपितु राम के कथन का तात्पर्य यही है कि ईश्वर के साथ अपने मन का विवाह करो। तथा अखिल विश्व के साथ अभेद भाव धारण करो। कुछ महात्माओं ने विवाह भी किया है, तथापि यह देखिए कि उनका सम्बंध कैसा था। उनका मन केवल अनासक्त और निर्लेप था। वे गृहस्थ और कुटुम्बी थे तो सही, और उन्हें सन्तान भी थी; फिर भी वह पवित्र जीवन व्यतीत करते थे, परन्तु हम तो भिन्न प्रकार का ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हमारा शरीर जहां होता है वहां हम नहीं रहते हैं, परन्तु जिन सन्त पुरुषों ने जिस सांसारिक दृष्टि से गृहस्थाश्रमी जीवन व्यतीत किया। वह सर्वांशतः आत्म प्रकाश में ही निष्ठाप्राप्त थे। वेदांत आपकी आसक्ति और वासना का धीरे-धीरे नाश कर आपको समग्र मानव जाति के लिए कल्याणकारी बनाता है।

अमेरिका के मुद्रणालयों (छापखानों) से पुस्तकें, समाचार पत्र, मासिक पत्र आदि जो साहित्य प्रकाशित होता है, उसका बहुत कुछ साहित्य प्राण विनिमय-विद्या, आकर्षण विद्या, अतीन्द्रिय दर्शन विद्या और ऐसी ही अनेक विद्याओं से भरा

रहता है। इस साहित्य में अधिकांश साहित्य शरीर को कि तरह सुदृढ़ और तन्दुरुस्त बनाया जाय और अनेक प्रका व्याधियों को किस प्रकार मिटाया जाये, उसकी विधि विधियां प्रकाशित कर जन समाज को विकसित क जाता है। यह अतीव उत्तम कार्य है तथा उसका आशय स्तुत्य है परन्तु इस साहित्य के लेखकों में से अधिकांश स विरोधी सिद्धांत की चर्चा करते हैं। यह साहित्य स्वार्थ रंग में रँगा हुआ और आच्छादित होता है। पुस्तक प्रका का अधिकार, प्रेम संपादन की लालसा, और आत्म-प्रशंसा परिपूर्ण होता है। यद्यपि यह लोग परिश्रम अधिक करते और काम भी उत्तम करते हैं, तथापि उसमें निहित निर्बल को दूर करना चाहते हैं, यदि आप अपने कार्य में सफलीभू होने के इच्छुक हैं, तो आपको मालूम होगा कि सत्य तो स सबसे भिन्न है और हम उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सक राम यह संपूर्ण सत्य आपके समक्ष प्रस्तुत करता है और आ भी अपने स्वयं के अनुभव से जान लेना। अन्य सभी विधियो और परिवर्तन का भी चाहे अनुभव कर लेना परन्तु तदुपरां राम के शब्दों की भी परीक्षा कर लेना।

किसी भी वस्तु को प्राप्त करने का उपाय उसे खो देना है। जो अनन्त जीवन प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, उन्हें इस पार्थिव जीवन को धो डालना चाहिये। अनेक लेखक इ सत्य के विरोधी हैं और राम उन्हें जानता भी है। यदि आ अपने कार्य में विजयी या सफल होना चाहते हैं, तो तु चुंबक की आकर्षण-शक्ति धारी बनो, फलतः लोहे का प्रत्ये

परमाणु जिस तरह चारों ओर से चुम्बक के प्रति खींचता है, उसी तरह प्रत्येक पदार्थ चारों ओर से आपके प्रति आकर्षित होगा।

जब मानव अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त करता है, तब वह चुम्बक के समान ।आकर्षण स्वरूप बन जाता है। यदि आप तदनुरूप बनना चाहते हैं, तो एतदर्थ आपको एक विशेष प्रकार की साधना करनी पड़ेगी। यह साधना क्या है?

मान लें कि यहां एक पदार्थ है। इस पदार्थ में अनुलोम और विलोम—ऐसी दो प्रकार की विद्युत निहित है। जब किसी वस्तु में यह दो प्रकार की विद्युत होती है, तब उसके अन्दर आकर्षण शक्ति नहीं होतीं। चुम्बक में विलोम विद्युत तत्त्व के सिवा अनुलाम विद्युत तत्त्व भी होता है। अनुलोम विद्युत तत्त्व एकछोर पर एकत्र होता है और विलोम विद्युततत्त्व उसके दूसरे सिरे पर एकत्र होता है।

ऐसा होने से उस पदार्थ की शक्ति हजरत मूसा के दण्ड के समान सम्पूर्ण होती है, जिस दण्ड के द्वारा लाल सागर का स्पर्श कर उन्होंने जल के विभाग कर डाले थे। इसी प्रकार यहां भी दो विभाग हैं और चुम्बक जैसी आकर्षण शक्ति उत्पन्न करने के लिये उसे ध्रुवाभिमुख करना चाहिये अर्थात् दोनों विभागों को दोनों छोर पर स्थापित करना चाहिए इसी प्रकार आपको भी एकबार ध्रुवाभिमुख होनेकी-अपने स्वयं के केन्द्र में स्थित होने की आवश्यकता है फिर आप सहज ही चुम्बक के समान आकर्षण शक्तिधर बन सकेंगे। अस्तु वेदांत क्या है ? वेदांत केवल त्याग के सिद्धांतों का उपदेश करता

है। वह मानव की आसुरीसंपत्ति को पृथक करता है वह स और असत् वस्तुविषयक विवेक प्रदान करता है। आपके क्षुद्र स्वभाव से आपके दिव्य स्वरूप को पृथक करता है। प्रत्येक आसक्ति और वासना आपकी अल्पता और परिच्छिन्न स्वभाव के कारण हैं। जो अपरिमित और परिपूर्ण है, उसे किसी प्रकार की कामना हो ही नहीं सकती। अपरिमित और पूर्ण पदार्थ में अन्य कुछ से अन्तर नहीं। अस्तु जो अपरिमित और परिपूर्ण है वह किस प्रकार इच्छा कर सकते हैं? आपकी सभी इच्छायें वासनायें आपके परिमित, अल्प और अपूर्ण स्वभाव—जो मायारचित है—में से उत्पन्न होता है। आपके अन्दर जो अपरिमित, पूर्ण आत्मा विराजमान है, वह सभी इच्छाओं से रहित है। आपके अन्दर इच्छा करनेवाला जो मिथ्या अहंकार है, वह क्षुद्र और आसुरी स्वभाव है और आपके अंदर जो ईश्वरत्व और अपरिमेय तत्त्व विद्यमान है, वह सभी कामनाओं से परे है। अतः वेदांत का क्या आशय है? इस दो प्रकार के स्वभाव को आप पृथक करें—यही वेदांत का आशय है। इस दुनियां में प्रत्येक वस्तुमें मिलावट पाई जाती है। आप स्वयं को एक अल्प स्वार्थनिष्ठ और परिमित जीव मानते हैं और सत्य स्वरूप आत्मा या ईश्वर को इस दृश्य, मिथ्या भ्रांति मूलक, परिमित स्वभावयुक्त, और अनात्मवस्तु के साथ मिश्रित कर देते हैं।

वेदान्त का उपदेश है कि जो पार्थिव है, उसे पृथ्वीपर रहने दीजियें और जो राम का अथवा प्रभु का है, वह राम को

अथवा प्रभु को समर्पित कर दो। इन कामनाओं और इस मिथ्या अनात्म वस्तु का स्वरूप क्या है, यह जानकर उसके मिथ्यात्व का विश्वास प्राप्त करना चाहिए। आप स्वयं के दिव्य स्वरूप का निश्चय करें कि मैं देवों का देव, ईश्वर का भी ईश्वर—महेश्वर और अपरिमित आत्मा हूं, अतः मुझे कौन सी इच्छा संत्रस्त कर सकती है ? क्योंकि मैं तो सर्वरूप हूँ। ऐसा आप अनुभव करें। जिसका सर्वकाल में अस्तित्व नहीं उस अनात्म अहंकार को ही काम्य पदार्थों की इच्छा नहीं हो सकती है। सत्य स्वरूप आत्मा को किसी प्रकार की इच्छा नहीं हो सकतीं, क्यों कि सत्यस्वरूप आत्मा सर्वरूप है। यह जो कुछ है, वह सब तुम्हारे अन्दर ही है। सचमुच विश्व के सभी पदार्थ, सभी आनन्द, समग्र संपत्ति और मानव-जिस जिसकी इच्छा कर सकता है, वह सब मैं ही हूं, यह आप अनुभव करें और ॐ ॐ का जप करते हुए यह साक्षात्कार करने का प्रयास करें। कि सब कुछ ॐ स्वरूप ही है। आपको यह स्वानुभव करना ही चाहिए। अभी तक आप यह मानते आ रहे हैं कि शरीर ही आपका स्वरूप है, फलतः आप शरीररूप ही बन गये हैं। आप अपने दिव्य स्वरूप में स्थित हों, अतः आपको इच्छायें करने का किसी प्रकार का अवकाश ही कहां रहेगा ? इस प्रकार वेदांत आपको चुम्बक की तरह आकर्षण रूप बनाता है और अनुलोम-विलोम ध्रुव को पृथक कर आपके शरीर में आकर्षण शक्ति प्रेरित करता है।

अब जरा हम एक महत्त्वपूर्ण बात पर विचार कर लें। कभी-कभी कहा जाता है कि अमुक व्याख्यान दाता में प्रबल

आकर्षण शक्ति है। यह धारणा भ्रांत है। आप कुछ [illegible] आकर्षण शक्ति के अर्जन करने की इच्छा नहीं रखते। एक मनुष्य ऐसा है, जो विचारों को आकर्षित करने के लिए आकर्षग शक्ति से पूर्ण होना चाहता है। दूसरा संपत्ति को आकार्षित करने के लिये आकर्षण शक्ति प्राप्त करने का आकांक्षी है। तीसरा शारीरिक सौंदर्य की दृष्टि से आकर्षण शक्ति के संपादन के लिये प्रयत्नशील रहता है। इस प्रकार लोग भिन्न-भिन्न प्रकार की आकर्षण शक्ति प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं। परन्तु इन सब आकर्षण शक्तियों का रहस्य त्याग-भाव में गुंफित है। इन शब्दों पर आप उचित रूप से ध्यान दें। यह त्याग विशुद्ध त्याग होना चाहिए।

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए आरोग्यशास्त्रीय पुस्तकों के प्रकाशन की आवश्यकता नहीं। यह सब समय का अपव्यय है। यदि आप इस उपदेश को स्मृति पटपर अंकित रखते हुए तदनुसार अपना जीवन व्यतीत कर सकें, तो आप एक महान आकर्षण शक्ति के साक्षात् स्वरूप बन जायेंगे। राम यह तुम्हें स्वानुभव की बात बताता है और आप भी इसका स्वानुभव कर सकते हैं।

विचार की आकर्षण शक्ति जिसके द्वारा सब प्रकार के ज्ञान को आप अपनी ओर आकार्षित कर सकेंगे—हे साक्षात् स्वरूप बनने के लिए "हे सर्वशक्तिमान् प्रभु! मुझे प्रकाश प्रदान करो हे स्वयं प्रकाश मुझे प्रकाश प्रदान करो। इस प्रकार प्रभुकी पार्थनाएं करने से क्या आप वैसे बन सकेंगे! क्या एसी प्रार्थनाएं आप को प्रकाश-स्वरूप बना सकेंगी!

नहीं, कभी नहीं। स्मरण रखें जैसा आप विचार रखेंगे, वैसे ही बनेंगे। मुझे प्रकाश प्राप्त हो' यह विचार यदि आपके हृदय में स्फुरित होता रहेगा, तो उसका परिणाम क्या होगा? ऐसा विचार करते रहने से अन्त में आपको ऐसी स्थिति प्राप्त होगी, जिस स्थिति से प्रकाश सदा दूर-ही दूर भागता रहेगा। 'मुझे प्रकाश प्रदान करो' इस प्रकाश-प्राप्ति के अर्थ में किये गये विचार-प्रकाश-प्राप्ति के अर्थ की गई प्रार्थना और याचना आपके और प्रकाश के बीच में व्यवधान का कारण है और इसका परिणाम यह होता है कि आप सदैव प्रकाश से वंचित रहेंगे और वह सदैव हमसे दूर-अति दूर भागता रहेगा।

धनवान व्यक्ति के घर में उत्पन्न एक मानव का उदाहरण लीजिये। आप कहते हैं कि वह मनुष्य लाखों रुपये का उत्तराधिकारी है परन्तु उस का यह अधिकार कब फलीभूत होता है? उसे दीर्घ कालतक एतदर्थ प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। वह हमेशा अपने माता-पिता की मृत्यु की राह देखता रहेगा। क्योंकि उनके मरते ही वह उस धनका अधिकारी बन सकता है। इसी प्रकार अब आप ईश्वरकी प्रार्थना करते हैं कि "हे ईश्वर! मैं तुम्हारा दास हूं और आपका दास होने पर भी मैं दुःखी रहूं, यह उचित नहीं, अतः हे प्रभो। मुझे धन-संपन्न बनाओ" ऐसी प्रार्थना में तो आपको ईश्वर की मृत्यु होनेतक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी; परन्तु ईश्वर की मृत्यु कदापि संभव नहीं, फलतः आप धन-सम्पन्न भी बन नहीं सकेंगे। अतः हमें जिस ज्ञान-प्रकाश की आवश्यकता है, उसे प्राप्त करने का यह

मार्ग नहीं। प्रार्थना करने से, याचना करने से, मांगते रहे कभी किसी को कुछ भी नहीं मिला। मेरा यह कथन आ विचित्र जान पड़ता होगा। परन्तु यह तत्त्व ज्ञान को कर देता है। शक्ति का अर्थ यह है कि आपको ज्ञान प्रकाश की इच्छा का भी त्याग करना चाहिए। जबतक आ उस प्रकाश की इच्छा रखते हैं, तब तक वह प्रकाश आप शक्ति में बाधक होता है। इस सम्बन्ध में राम आपको विनोदपूर्ण वार्ता बताता है। भारत में एक मानव अ प्रियतमा का प्रेम प्राप्त करने के लिए एक मंत्र का जप क रहता था, परन्तु जिस महात्मा ने उसे एक बात में साव रहने के लिये कहा था वह यह कि मंत्र जपते समय म बन्दर का ध्यान या विचार आने न पाये। वह मनुष्य महात्मा के आदेशानुसार दिये गये मंत्र का जप करता र था, और सावधान रहता था, कि मन में बन्दर का तनिक विचार आने न पाये, परन्तु जब-जब वह एकाग्र चित्त से मं का जप करता था, तब उसके मनमें बन्दर का विचार आ बिना न रहता। फलतः वह एकाग्र चित्त से मंत्र का जप न सका। वह महात्मा के पास गया और निवेदन किया यदि आप यह न कहते कि बन्दर का विचार आने न पाये, मैं निस्सन्देह एकाग्र चित्त से मंत्र को जपता रहता। आ कहा है कि बन्दर का विचार आने न पाये, परन्तु बन्दर विचार ने ही मुझे घेर लिया है। इसी प्रकार अज्ञान औ निर्बलता को मिटा देने के प्रयास करने पर ह और निर्बलता से स्वयं को और भी अधिक जकड़ लेते हैं।

सूर्य और अन्य ग्रहों से जैसे प्रकाश स्वतः प्रस्फुटित होता रहता है, उसी तरह आपके अन्तरात्मा से भी प्रकाश अपने आप आता रहता है; अतः वेदान्त का उपदेश है कि प्रकाश प्राप्त करने की कामना और प्रार्थना से विरत रहकर विशुद्ध बनो और फिर देखो कि कैसा आनन्द विलसित होता है! मात्र सत्यानुभूति ही करो। प्रकाश मिलता है या नहीं, इसकी चिन्ता नहीं करना। और स्वानुभाव से गर्जना पूर्वक कहो —"मैं स्वयं इस विश्व का प्रकाशक हूं, मैं ही विश्व का प्रकाश हूँ"। इस प्रकार आप देखेंगे कि आप किसी वस्तु पर प्रेम करनेवाले नहीं; स्वयं प्रेमस्वरूप ही हैं। आप प्रकाश की प्राप्ति के लिये याचना या प्रार्थना नहीं करते; क्योंकि आप स्वयमेव प्रकाश स्वरूप हैं। प्रकाश तो किसी क्षुद्र या परिच्छिन्नता प्रधान मानव को प्राप्त होता है, परन्तु आप तो वैसे नहीं। आप तो सचमुच स्वयं प्रकाशस्वरूप ही हैं। अपने ऐसे स्वरूप का आप मनन और स्वानुभव करें, फलतः आप सब कामना-रहित बन जायेंगे।

भारतीय भाषा में एक मनोहर कविता है, जिसका भावार्थ यह है कि आप मधुर से भी मधुर हैं, आप इच्छा या कामना नहीं, बल्कि आप इन सबसे परे हैं।

यह एक स्वानुभव की बात है कि जब राम किसी बात पर विचार करने बैठता, तब उसके लिये अधिकाधिक प्रयास करता जब उसमें वह निष्फल हो जाता और मन ऊब उठता—घबराजाता, तब उसे अचानक स्फुरण होता, कि तुम्हें प्रकाश-

प्राप्ति की इच्छा करनी चाहियें ? तुझे इच्छा से विरत हो चाहियें। तुम इच्छा नहीं करना' 'इस प्रकार इच्छाओं के हो जाने पर ज्ञान-प्रकाश का प्रादुर्भाव होता।

जब राम विश्व विद्यालय के उच्च वर्ग में पढ़ता था, तब प्रतिज्ञा की थी कि मैं पढ़ाई में प्रोफेसर की सलाह न लूंगा, परन्तु यह कार्य अत्यन्त दुष्कर सिद्ध होता। गणितशास्त्र के गहन प्रश्नों के समाधान का काम स्वयमेव शिरोधार्य कर लिया था। प्रोफेसर या मार्गदर्शक पुस्तक की सहायता के बिना ही कुछ प्रश्नों में राम सफलता प्राप्त कर लेता, परन्तु अनेक प्रश्नों में सफलता न मिलती। राम सायं ५ बजे से प्रातः ५ बजे तक खूब परिश्रम करता। फिर भी उन प्रश्नों का कोई भी निराकरण न होता राम अन्ततः अब उठता और ताजी हवा प्राप्तः करने के लियें ऊपर छतपर टहलने लगता। प्रश्न का समाधान नहीं होता, यह समझकर अन्ततः आत्महत्या करने के लियें छुरी लाने का विचार उत्पन्न हो जाता। इस प्रकार जब शरीर त्याग तक का अवसर आ पहुँचता, तब एकाएक उस गहन प्रश्न का समाधान स्फुरित हो आता।

इस प्रकार कठिन परिस्थितियों में जब हम विचार से ऊपर आ पहुंचते हैं तभी हम आकर्षणशक्ति के स्वरूप बनते हैं। राम आजकल क्या क्या करता है ? फिलहाल वह कर्म और कर्त्तापन की बुद्धि त्याग कर रहा है और कुछ लिखने की इच्छा भी नहीं करता। "मैं प्रकाशस्वरूप हूं और अपनी स्वयंभू महिमा का उपभोग कर रहा हूं। स्वयं की महिमा का उप-

भोग करना ही कार्य-सिद्धि का सच्चा विजय-मंत्र है। कभी इस जगत् की सारी सिद्धियां अपने आप ही मेरे सामने आ उपस्थित हों, तो भी मैं उनका उपभोग नहीं करूंगा। मेरा प्रत्येक आनन्द मेरा दिव्य स्वरूप है।" यही रास्ता है। एक बार आप अपने दिव्य स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करें अतः प्रत्येक वस्तु अपने आप ही आपके पास चली आयेगी। आप अपने आत्मस्वरूप में स्थिति प्राप्त करो; अतः इस जगत् के सभी पदार्थ आपके पास चले आयेंगे। मेरा किसी भी वस्तु के साथ संबन्ध नहीं, किसी प्रकार की जिम्मेदारी या भय नहीं; मैं किसी भी मानव का जिम्मेदार नहीं; मुझे किसी मानवको कुछ भी देना नहीं; मैं तो आत्मस्वरूप हूं केवल प्रकाशस्वरूप हूं।" ऐसी भावना आप सिद्ध करो।

यह जगत् आपको कौन-सा आनन्द दे सकता है। समग्र आनन्द और सुख आपके अन्दर ही विद्यमान हैं। परमानन्द, परम सुख और परम महिमा—यह तो आपका अपना ही स्वरूप है। ऐसी भावना और ऐसी स्थिति में ही विलसित रहो और इस जगत् के पदार्थों की कामना से परे रहो। इसका परिणाम यह होगा कि आपका मन विचारों से भरपूर होगा। विचार आपको खोजते हुए आपके पास आयेंगे। यह विश्व का नियम है। इसी प्रकार यदि किसी मानव को चुंबकीय शक्ति की तरह विचार की आकर्षण शक्तिका स्वरूप बनना हो, तो उसे प्रकाश-प्राप्ति की कामना से रहित होना चाहियें। इस प्रकार इच्छा रहित होना विलोममूलक (अभाव-मूलक)

है और तदुपरान्त "मैं प्रकाशस्वरूप हूं, मैं अपनी दि विलास कर रहा हूं"—इस प्रकार सतत अनुभव करते र अनुलोम (सद्भाव)मूलक पहलू है।

यदि आप मित्र या धन-प्राप्ति करना चाहते हो, आपको क्या करना चाहिए ? प्रथम तो इस इच्छा को ही को त्यागना चाहियें। इस प्रकार वस्तु का यह विलोम प सिद्ध करलेने के पश्चात् आपको वस्तु का अनुलोम प सिद्ध करना चाहियें—मैं दिव्य स्वरूप हूं, मैं स्वामी का स्वामी हूं, प्रकाश का भी प्रकाश हूं। समग्र सौंदर्य, स आनन्द, समग्र सुख मैं ही हूं। समस्त भूत प्राणियों के अ करण में साक्षी स्वरूप परमात्मा मैं ही हूं—मैं विश्व निय हूं।" आप ऐसी भावना करें, आप दिव्य स्वरूप हैं, ऐ विचार करते रहें, वस्तूपलब्धि के विचार को पूर्णतया त्या दो और जब वस्तु प्राप्त हो जाये। तब भी आप को इसी दृ से उस वस्तु की ओर देखना चाहिये कि मैं केवल आत्मस्वरू हूं। ऐसी स्थिति पर पहुंच जानेपर आप अन्य लोगों की दृ में तो विजेता दिखाई देते ही हैं, साथ ही अपनी वास्तवि दृष्टि में तो आप विजेता से भी अधिक अनुभूत होंगे।

कुछ दिन पहले कहा गया था कि जब वायु को पतला क डालने की क्रिया से अमुक स्थानीय वातावरण में जब निर्वा स्थिति (वायुरहित स्थिति) उत्पन्न की जाती है तब उत्प से पतली हुई हवा ऊपर चढ़ जाती है और वहां निर्वात स्थि उत्पन्न हो जाती है। परन्तु इस के बाद क्या होता है ? आ

पास की हवा का प्रवाह उस खाली स्थान को भर देने के लिये दौड़ पड़ता है। इसी प्रकार जब आप इच्छारहित होकर निर्वात स्थिति प्राप्त कर लेते हैं, तब आपका अन्तः करण निर्वात-स्थिति के समान बन जाता है और उस समय जब आप अपने दिव्य स्वरूप में स्थित होते हैं, तब आपका शरीर अर्थात् आभासमात्र अहंकार मृतप्रायः हो जाता है, वह अपने स्थान को खाली कर देता है और ऐसा होते ही जगत् के सभी पदार्थ आपकी ओर उमड़ पड़ते हैं।

कुछ लोगों के मतानुसार आकर्षक शक्ति निर्वात स्थिति के सिवा अन्य कुछ भी नहीं। जो इच्छाएं आपको कठिनाई में डाल देती हैं, उनका त्याग करने से आप निर्वात स्थिति प्राप्त कर सकेंगे और चुम्बक की तरह आकर्षण स्वरूप बन जायेंगे।

—क्रमशः

नियम यदि एक क्षण के लिये टूट जाय तो सारा सूर्यमंडल अस्त-व्यस्त हो जाय।

ऐ नीच पेट! एक ही रोटी से सन्तोष कर ले ताकि तुझे गुलामी से पेट न भरना पड़े।

यदि मनुष्य परोपकारी नहीं है तो उसमें और खिंची तस्वीर में कोई फर्क नहीं है।

❧

प्रश्नोत्तर

[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक अध्यात्मिक प्रश्नों समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या समाधान चाहते हों तो लिख भेंजें—सम्पादक]

श्री श्यामसुन्दर अग्रवाल भाटापारा

पत्र-१ प्रश्न-१ नाद साधना उच्चकोटि की साधना है। कृपया इस साधना का पूर्ण विवरण बताइये ?

प्रश्न २-स्वमूत्रेणांजनं कृत्वा स्वरो मधुरतामियात्।
गान विद्याप्रवीणश्च भवत्येव न संशयः॥

कृपाकर इसकी विधि बतायें ?

उत्तर-१—नादानुसन्धान का अनुभव ब्रह्मरन्ध्र से करना पड़ता है। मधुर, दीर्घ, तैलधारावत् अपरिवर्तित स्वर अन्तर में गूंजता रहता है। बुद्धि स्थिर होती है, मन एकाग्र होता है

चित्त का तिरोधान होता है, स्वभाव तथा अहंकार के तादात्य की मध्यम अवस्था की अपूर्व अनुभूति होती है। यही नादानुसन्धान की चरम परिणति है। परन्तु उससे भी आगे बढ़कर आत्मा जब अपने स्वरूप में स्थित होता है, तब अचिन्त्य, अवर्णनीय, अभेद्य, केवलानन्द, सदानन्द एवं पूर्णानन्द में अवस्थित होता है और इस नाद से परे स्वयं स्वरूप में तदाकार होता है। नादानुसन्धान के अभ्यास काल में निर्धारित नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है। क्योंकि इसके अभ्यास काल में किसी प्रकार के बाह्य साधन, वस्तु, क्रिया आदि का आश्रय नहीं लेना पड़ता।

अभ्यास-क्रम

निर्जन प्रदेश (घर, मठ, मंदिर, नदी से ५० गज के अंतर पर, जलाशय से ५० गज, कुयें से ३० गज और अग्नि से २५ गज के अन्तर पर,) उच्चपर्वतीय स्थान, समतल भूमि, वृक्ष के नीचे, गुफा आदि स्थान साधना है लियें अनुकूल हैं। भूमि स्वच्छ हो, मच्छर अथवा अन्य जीव जन्तु परेशान न करते हों; जहां कर्कश, कर्णकटु भयावह अपशब्द होते न हों। शांत, समसीतोष्ण, मन्द वायुयुक्त, सुरम्य, मनोहर प्राकृतिक दृश्य हों। गुरु, भगवान्, ऋषि-महर्षि और सन्त-महात्माओं के चित्रों से समलंकृत उत्तम स्थान हो। सुगंधित द्रव्यों से साधना स्थल के वातावरण को आनन्दमय रखना होगा। अभ्यास का समय अभ्यास आरम्भ करने से पहले ही प्रतिदिन निर्धारित कर लेना पड़ेगा। उस समय नादानुसन्धान के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की भावना किंचित् मात्र आने न

पायें। नादानुसन्धान के समय, शारीरिक हाव-भाव, सु मुद्रा, मनकी स्वाभाविक स्थिति पवित्र एवं आनन्दमय रहे मुखमुद्रा को मध्याह्नकालीन कमल पुष्प के समान प्रफुल्ल प्रसन्न तथा सुन्दर भावनाओं तथा शांत एवं देदीप्यमान वृतियों के आधार पर आह्लादमय रखें।

अभ्यास का आरम्भ

पहले दर्भासन, फिर कम्बल, और तदुपरांत खादी धोया हुआ वस्त्र बिछायें। पद्मासन, सुखासन अथवा सिद्धासन लगाकर बैठें।

भ्रामरी प्राणायाम

मूलबन्ध लगाकर चन्द्रनाड़ी (बायें नासापुट) से मात्रा तक पूरक, १६ मात्रा तक कुंभक तथा ३२ अथवा अधिक मात्रा तक रेचक सूर्यनाड़ी (दाहिने नासापुट) से करें कुम्भक के समय जालन्धर बन्ध और रेचक के समय उड्डीयान बन्ध करें। अनेक प्रकार के प्राणायामों में भ्रामरी प्राणायाम की विधि में कुछ अंतर बतलाया गया है। इस प्राणायाम के समय—अर्थात् रेचक और पूरक के समय का नाद के साथ संबंध है—अर्थात् पूरक के समय आवाज निकालनी पड़ती है। पूरक के समय भ्रमर की गूञ्ज के समान आवाज निकालनी चाहिए और रेचक के समय भ्रमरी के समान आवाज निकालनी चाहिए। इस नाद का प्रथम उद्गम-स्थल परावाणी (नाभि) है, द्वितीय स्थान पश्यन्ती वाणी (हृदय) है, तृतीय उद्भव स्थान मध्यमा वाणी (कंठ) है और चतुर्थ स्थान वैखरी वाणी (जिह्वा) है। परन्तु भ्रामरी प्राणायाम के समय

में परा, पश्यन्ती और मध्यमा वाणी से नासिका-रन्ध्र से निकल कर बाह्य ब्रह्माण्ड में प्रवेश करती है। मन जैसे-जैसे नाद (आवाज) के साथ तन्मय होता जायेगा, तदनुसार पूरक और रेचक का समय भी बढ़ता जायेगा तथा जैसे जैसे पूरक रेचक के समय में वृद्धि होती जायेगी, तदनुसार आंतरिक स्वाभाविक आनन्द-भण्डार के विकास की अनुभूति होती रहेगी।

समय

प्रातःकाल स्नानके बाद मध्याह्न-भोजन से एक घण्टा पूर्व, और सायंकाल सूर्यास्त अथवा शयन के समय अभ्यास करना चाहिए। पेट भरा हुआ न हो। १० दिन तक ६ बार, ११ से २५ दिनतक ६ से १२ बार, तत्पश्चात् यथा शक्ति और आनन्द पूर्वक यथेच्छ संख्या में अभ्यास बढ़ा सकते हैं।

नये साधक

आरम्भ के कुछ दिनों तक नये साधक इस प्राणायाम की साधना में सफल नहीं हो पाते और आवाज निकलती भी है, तो केवल रेचक के समय में थोड़ी निकलती है, पूरक के समय में नहीं निकलती। ऐसी दशा में निराश होकर अभ्यास को स्थगित कर देना उचित नहीं अपितु गुरु के मार्गदर्शन के अनुसार अथवा तद्विषयक साहित्य के निर्देशानुसार अभ्यास पूर्ववत् चलाते रहना चाहिए। यदि रेचक और पूरक के समय में वृद्धि न हो रही हो और मधुर आवाज (नाद) भी उचित ढंग से निकल न रही हो, तो निश्चित समझ लेना चाहिए कि मानसिक एकाग्रता में अपूर्णता है। जिन लोगों का मन चचल

है, जिनके मन पर अपवित्र विचार तथा भय और नि मूलक भावनाएं छाई रहती हैं, कुसंस्कार जिनके मनको अ भूत बनाने के लिये हर समय सन्नद्ध रहते हैं, ऐसे साधक पुरुष के लिये आरम्भ के कुछ दिनों तक अभ्यास का प्राप्त करना शायद सम्भव न हो, किन्तु यदि साधना सु रूप से चलती रहेगी, कुछ ही समय में सिद्धि देवी प्रसन्न उठेंगी और सफलता हस्तामलक हो जाएगी। साधना गति में विक्षेप या तारतम्य में बाधा न होने पर ही अर्थ सिद्धि की आशा करनी चाहिये, अन्यथा सफलता आक कुसुमवत् ही बनी रहेगी। दुनिया का कोई भी महान् का बिना श्रम-साधना के सफल नहीं होता।

भ्रामरी प्राणायाम के महत्त्वपूर्ण लाभ

शरीर रूपी देव-मंदिर को स्वच्छ, पवित्र बनायें रखं और उसे नीरोगावस्था पर पहुँचाने के लिए भ्रामरी प्राणाया का स्थान अतीव महत्त्वपूर्ण है। बुद्धिमान जन योग वि को अत्यन्त गौरवमय और उच्च मानते हैं और एतदर्थ प्रा र्पण के लिये भी कटिबद्ध रहते हैं। योग-विद्या त्रिवे संगम के समान है, जिसके सतत अभ्यास व प्रभाव से काया अंतःकरण और आनन्दमय कोश की पूर्णतः शुद्धि होती है तथा साकार ब्रह्म की अनुभूति द्वारा साधक निराकार ब्र स्वरूप में विलीन-तदाकार हो उठता है। यही योगविद्या की सिद्धि है—चमत्कार है। भ्रामरी प्राणायाम से शरीर को पर्याप्त लाभ होता है। फेफड़े के विकार, कण्ठ विकार, आ शय के विकार, रक्त-विकार, हृदयगत विकार समन्ततः दू

हो जायेंगे। लाभ का यह वर्णन मनोकल्पित, शास्त्रनिदर्शित अथवा बौद्धिक कुशलता के आधार पर किया नहीं गया, अपितु श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में अभ्यास कर लाभ उठानेवाले शतशः पवित्र पावन धर्मभीरु, जन्म सार्थककारी, पुण्यप्रतापी पुरुष नामधेय, ध्येयनिष्ठ मुमुक्षुगणों में श्रेष्ठ अधिकारी पदपर प्रतिष्ठित महिलाओं और पुरुषों पर इस भ्रामरी प्राणायाम का प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर उसका दिग्दर्शन कराया गया है। भ्रामरी प्राणायाम का यह अनुभव सिद्ध चमत्कार है। आयु का संवर्धन कर मृत्युञ्जय की स्थिति पर पहुंचानेवाले अनेक प्रकार के साधनों और क्रियाकलापों का उल्लेख शास्त्रों में पाया जाता है और जीवन में भी वे प्रवर्तित हैं। इसी प्रकार भ्रामरी प्राणायाम और नादानुसन्धान के अन्य महत्त्वपूर्ण विधान योगाभ्यास के अंतर्गत हैं। नादानुसन्धान के प्रथम प्रवेश काल में भ्रामरी प्राणाणाम का आश्रय और अनुभव लेना आवश्यक होगा ऐसी कोई अनिवार्य शर्त नहीं है, क्योंकि अनेक साधक महोदय अनुलोम-विलोम प्राणायाम और भस्त्रिका प्राणायाम के अभ्यास के पश्चात् मूर्छा प्राणायाम (षण्मुखी मुद्रा) में प्रवेश कर नादानुसन्धान का लाभ उठाते हैं।

ॐ की ध्वनि और भ्रामरी प्राणायाम

भ्रामरी प्राणायाम के अभ्यास-काल में यदि रेचक के समय में अभिवृद्धि होगी—अर्थात् यदि अधिक समय तक रेचक होता रहेगा, तो हृदय कमल से अनायास 'ओं' की ध्वनि निकलने लगेगी। हृदय के स्पन्दन-स्थल में मन का

निरोध करने से हृदय कमल के संकोच-विकास का अनुभ हृदय की गतिविधि का अनुभव तथा स्वाभाविक रूप से की ध्वनि का अनुभव होगा। उस अनुभवगम्य अवस्था में साधक का अंतःकरण मृत्यु-लोक से परे पहुंच कर–उ उठकर स्वर्गलोक की अप्रतिम सुखशांति की अनुभूति में मग्न हो उठेगा। प्राणायाम की साधना के पश्चात् दीर्घकाल तक साधक का मन इतना आनन्दमय प्रतीत होगा कि केवल म ही मन में उसका समाना असम्भव हो जायेगा। अन्य लोगों के समक्ष इस आनंदमयी अनुभूति को प्रकट करने हेतु साधक उत्कण्ठित हो उठेगा। किन्तु वाक्चातुर्य का अधिकार लेश उस आनंदमयी स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में साधक कदापि समर्थ न होगा, बल्कि निजी स्वरूपानंद के हाव-भाव, मुखमुद्रा के लावण्य चिह्न, अवयवों में सात्विक गुण के आविर्भाव के आधार पर उस स्थिति का निदर्शन करना सम्भव होगा। मूर्छा प्राणायाम के समय इससे भी अधिक अनुभव सहस्रदल पद्म द्वारा साधक को प्राप्त होती है।

मूर्छा प्राणायाम (षण्मुखी मुद्रा)

प्रथम तैयारीः—आशा और कुबड़ी। नाड़ी के परिवर्तनार्थ कुबड़ी तथा इस प्राणायाम के समय शरीर को स्थिर रखने के लिये आशा का आधार लेना पड़ता है। कुबड़ी का आश्रय बगल के लिए लेना पड़ता है और आशा का दोनों हाथों के लिए लेना पड़ता है। अधिक देर तक लगातार अभ्यास करनेवाले परमात्म स्वरूप योगी पुरुषों को इस आशा के आधार की इसलिए आवश्यकता पड़ती है, जिससे उनका

शरीर भूतल पर गिर न जायें।

पद्मासन में बैठकर जालन्धर बंध करें। दोनों हाथों के अंगुष्ठ के अग्र भाग से दोनों कानों के छिद्र बन्द कर लें, दोनों तर्जनी उंगलियों से दोनों आंखें बन्द करें, दोनों मध्यमा उंगलियों को नासिका के अगल-बगल भाग में स्थापित करें। दोनों हाथों की अनामिका तथा कनिष्ठिका उँगलियों से मुख के उपरिवर्ती तथा निम्नवर्ती होठों को मिलाकर दबा रखें। जालन्धर बन्ध की अवस्था में चन्द्र नाड़ी से ४ मात्रातक पूरक करें, १६ मात्रातक कुंभक करें और आठ मात्रातक सूर्यनाड़ी से रेचक करें। तदुपरांत तुरन्त दाहिनी नाड़ी से ४ मात्रातक पूरक करें। १६ मात्रातक कुम्भक तथा आठ मात्रातक बायीं नाड़ी से रेचक करें। यह मूर्छा प्राणायाम की विधि संपन्न हुई। रेचक, पूरक तथा कुम्भक के समय जालन्धर बन्ध करें तथा रेचक के समय उड्डीयान बन्ध करें। प्राणायाम के आदि से अंत तक मूलबन्ध कायम रखें। इस प्राणायाम के समय कानों के छिद्र अवरुद्ध हो जाने से उनमें वहिर्जगत् की आवाज प्रवेश कर नहीं पाती है। आंखें उंगलियों से बन्द हो जाने से बहिर्जगत का दृश्यदर्शन हो नहीं पाता। इस प्राणायाम के समय में दोनों भुजाओं, कन्धों और कुहनियों को समानांतर में रखना पड़ता है। इसके अभ्यास के पूर्ण परिपक्व हो जाने के बाद १६ मात्रा तक पूरक, ६४ मात्रा तक कुम्भक ३२ मात्रातक रेचक करना चाहियें। तदुपरांत रेचक-पूरक की मात्रा में वृद्धि न करें, हां कुम्भक की मात्रा यथाशक्ति आनन्द के साथ बढ़ाते जायें। एक बैठक में

कम से कम १२ प्राणायाम होने चाहियें। तभी लाभ की आ की जा सकती है । यदि २४ या उससे भी अधिक प्राणाय किये जायें, तो विशेष लाभ का अनुभव होगा। २४ प्राणाया के बाद मन स्वभावतः अन्तर्मुख हो जाता है। और अन्तर्मु का अनुभव विशेषरूप से होने लगता है।

लाभ :—

मन्मनो मीनवत् नित्यं,
क्रीडत्यानन्द वारिधौ,
सुस्नास्तास्तेन पूतात्मा
सम्यगविज्ञानवारिणौ।

—सदाचार स्तोत्र

अर्थात् मनरूपी मत्स्य जगत् मायारूप जल में नित्य नि तर आनन्द क्रीड़ा करता रहता है और इंद्रियों के साथ संवर होकर क्षणभंगुर भोग विलासों में भटकता फिरता है। उस मन को उचित तथा विशेष ज्ञानरूपी अंकुश के आधार पर वशीभूत कर ब्रह्मानन्द में लीन करें।

मूर्छा प्राणायाम के समय कुछ दिन तक ब्रह्मरंध्र चिड़ियों के चहकने-जैसी आवाज सुनाई देगी। इसके बाद भ्रमरों की गूंज वायु से पूर्ण बांस की नली से निकलते हु स्वर, फिर वंशी, बीणा आदि के समान मधुर रव श्रवणगोचर होता है। समुद्र की गगन चुम्बी लहरों तथा गम्भीर मेघ-गर्जना जैसा शब्द निकलता है। यह समाधि के रूप लययोग की साधना है। आदियोगी भगवाम शंकर चित्त के लय-म अन्तर्मुखी बनाने के सवा करोड़ प्रकार बताये हैं किन्तु प तेरे लोग नादानुसन्धानको ही मनोलय का मुख्य साधन माने

है। गोरक्षनाथ भी इसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं।

लय योग की स्थिति पर पहुंचने के लिये मुद्राओं का आधार विशेष लाभदायक है। शाम्भवी मुद्रा के साधन से योगी अन्तःजन्य नाद या ध्वनि को सुनने में समर्थ होता है। शाम्भवी मुद्रा चित्तलय और प्राणलय का साधन है। उस अवस्था में शरीरस्थ आधार चक्रों के मध्य में अपने अभीष्ट चक्र में अन्तःवृत्ति स्थित रहती है। बाह्य दृष्टि निमेष-उन्मेष से रहित होती है— अर्थात् नेत्र अपलक हो जाते हैं। परम ध्येय परमात्मा तत्त्व के आकार के आवेश को धारण करने त्र तेजस्वी बन जाते हैं, फलतः उनके खुलने बन्द होने की क्रिया पूर्णतः स्थगित हो जाती है। शाम्भवी मुद्रा की साधना के प्रभाव से साधक के समक्ष भगवान शंकर का आविर्भाव होता है। शाम्भवी मुद्रा का ज्ञान भगवान् शम्भु ने बताया है। इस मुद्रा की साधना के प्रभाव से एकाग्र चित्त और एकाग्र दृष्टि स सम्पन्न योगी अन्तःजन्य आनन्द नाद की अनुभूति करने में सफल होता है। इस नाद की चार अवस्थाएं हैं। १-आरम्भावस्था, २-घटावस्था, ३-परिचयावस्था और ४-निस्पत्ति अवस्था चित्तवृत्तियों के निरोधरूप पूर्ण-योग में उक्त चारों अवस्थायें विद्यमान रहती हैं।

आरम्भावस्था में अनाहत चक्र के ब्रह्मग्रंथिका उद्भेदन जब प्राणायाम द्वारा किया जाता है, तब हृदयाकाश रूप शून्य में उद्गत अनेक आभूषणों के खनखनाहट जैसी आनन्दजनक अनाहत ध्वनि देह के अंतरंग से सुनाई देती है। कहा जाता है कि यदि हृदयाकाश रूप शून्य में नाद का जन्म हो—अर्थात्

यदि हृदय में नाद की अनुभूति हो, तो प्राणवायु से योगी का हृदय आनंदमग्न हो उठता है और वह रूप ण्य पूर्ण, सौंदर्यशील, तेजस्वी और अन्तःसुगंधित से पूर्ण हो उठता है। उसकी देह निरोग होती है। हृदयाकाश शून्य इसलिये कहा गया है क्योंकि योगिजन हृदा विशुद्धाकाश और भ्रकुटि के मध्यवर्ती आकाश को शून्य, अतिशून्य और महाशून्य के नाम से अभिहित करते

घटावस्था नाद की दूसरी अवस्था है। इस अवस्था प्राणवायु अपान और नाद विंदु को अपने साथ पकड़ कण्ठस्थानीय मध्य-चक्र में पहुंच जाता है। यही बात धर बंध में भी बताई गई है। कहा गया है कि मध्य-चक्र आधार के बंधनों का है। इस अवस्था को प्राप्तकर लेने बाद योगी स्थिर आसन, कुशाग्र बुद्धि, और सौंदर्य की कता और दिव्यता के कारण देव तुल्य प्रतीत होता है। योग में कहा गया है कि इस अवस्था का निर्माण प्राण, नादबिंदु और आत्मा-परमात्मा के संयोग से होता है, इसे घटावस्था कहा जाता है।

परिचयावस्था नाद की तीसरी अवस्था है। इस अवस्था प्राणवायु सब सिद्धियों के स्थल महाशून्य भ्रूमध्याकाश पहुंच जाता है और इसी स्थान से मर्दल नामक वाद्यवि की ध्वनि श्रवण गोचर होती है। अन्तःवृत्ति ही साधक नाद का विषय है और तज्जय मानसिक आनंद का करने से स्वाभाविक आत्मसुखरूप सहजानंद का होता है इस अवस्था पर पहुंच जानेपर साधक वात-

कफ रूप त्रिदोष वृद्धावस्था, आध्यात्मिक दुःख और ज्वरादि विकारों और भूख नींद से रहित हो जाता है। सहजानन्द प्राप्त होने पर सभी मल-विकार बह जाते हैं। आज्ञाचक्र की रुद्र ग्रंथिको भेद कर प्राण वायु जब ईश्वर-स्थली रूप भृकुटी के मध्य में प्रवेश करता है तब सहजानन्द-स्वाभाविक आत्मसुख की अनुभूति होती है।

चौथी निस्पत्ति अवस्था का निर्दशन करते हुए कहा गया है कि इस अवस्था में चित्त एकाकार बन जाता है और मन राजयोग में रूपान्तरित हो जाता है। मन की इस एकाग्रता को ही राजयोग कहा जाता है। साधना की इस संपूर्ण सफल स्थिति पर पहुंच कर साधक सृष्टा और संहारक ईश्वरीय सामर्थ्य से समलंकृत होता है। नाद-ब्रह्म की सिद्धि की यह चरम परिणति है। साधक जीवन्मुक्ति की अवस्था प्राप्त करे या नहीं, किन्तु नाद-ब्रह्म की साधना से साधक को अखण्ड अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती है। इस अलौकिक आनन्द का उद्भव लय से होता है। राज योग भी ऐसे ही आनन्द की अनुभूति करता है। जो साधक योगी राजयोग से अपरिचित हैं और केवल हठ योग की क्रियाओं का अभ्यास करते रहते हैं, उनका श्रम निष्फल होता है, क्योंकि बिना राजयोग के ज्ञान के हठयोग सफल नहीं होता। हठयोग की उन्मनी समाधि अवस्था या राजयोग की तुरीयावस्था को प्राप्त करने के लिये भृकुटीमें ध्यान लगाना अल्पबुद्धि साधकों के लिये सरल है और नादजन्य चित्तकालय इस क्रिया की उपयोगिता सिद्धकर देता है। अनाहत

ध्वनिरूप नाद की साधना के द्वारा मानसिक ध्येय-तं या समाधिकी स्थिति पर पहुंचने वाले साधकों के हृद आनन्द का जो अजस्र स्रोत उमड़ उठता है, उसका व वाणी के आधार पर करना कदापि संभव नहीं इस नि वृद्धिगत आंतरिक आनंद-नाद का अनुसंधान गुरु कृपा से संभव है, अन्यथा नहीं।

नादानुसन्धान के साधक को चाहिये कि वह हाथों के अंगूठों से कर्ण-रंध्रों को अवरुद्ध कर अनाहत नाद सुनें और चंचल मनको उस अन्तः ध्वनि में तब-तक तन् रखें जब-तक तुरीयावस्था के स्थिर पद पर प्रतिष्ठित न जायें। चेतना के अभिव्यञ्जक नादका ज्ञान ही तुरीयावस् है। नादानुसन्धान से प्राणवायु स्थिर होता है और सि सिद्धियां भी प्राप्त होती हैं। जिस योगी के शरीर में स्वाभावि नाद भलीभांति जाग्रत होता है, वह प्राणवायु पर विजय प्र कर लेता है। हाथके दोनों अंगूठों से कर्ण-कुहरों को बंद क देने से समुद्र की घहराहट-जैसा नाद शरीर में प्रकट हो उठता है और साधक को सुनाई देने लगता है। नाद ब्रह्म के साधना से योगी बाहर-दूरका शब्द भी सरलता से सुनं लगता है और १५ दिन के अन्दर मानसिक चंचलता आदि विक्षेपों को पराभूत कर आनन्द मग्न हो उठता है आत्मानन्द का अनुभव करने लगता है। प्रारंभिक साधना में समुद्र मेघ, भेरी आदि के महान रव श्रवण गोचर होते हैं, तदु रान्त अभ्यास की विकास-प्रक्रिया के साथ अत्यन्त सू ध्वनि भी सुनाई देने लगती हैं।

नादानुसन्धान-साधना की प्रारंभिक अवस्था में जब प्राण वायु ब्रह्म रन्ध्र में पहुँचता है, तब समुद्र, मेघ, नगाड़ा, झांझ आदि के समान शब्द ब्रह्मरन्ध्र में सुनाई देते हैं और मध्य में- अर्थात् सुषुम्णानाड़ी में प्राणवायु के स्थिर होने पर मर्दल और शँखनाद-जैसा स्वर संचार सुनाई देता है। इसी प्रकार घण्टा और काहल-जैसे वाद्यों की ध्वनि भी सुनाई देती है। प्राणवायु जब ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर हो जाता है, तब छोटी-छोटी घंटियों, वंशी, वीणा और भ्रमरोंकी गून्ज जैसे नाना प्रकार की ध्वनियां देह के आभ्यन्तर में श्रवण गोचर होती हैं। महान नाद ब्रह्म की अवहेलना कर अथवा सूक्ष्य अन्तर्नाद से विमुख होकर रजोगुण से चञ्चल हुए मनको चलायमान नहीं होने देना चाहिये, क्योंकि विषयासक्त मन का समाधान कदापि सम्भव नहीं। नाद में विरमित मनका समाधान सरलता से किया जा सकता है। जिस किसी भी उच्च अथवा सूक्ष्म नाद में मन लग गया हो उसी नाद में वह अच्छी तरह स्थिर-होकर उस नाद के साथ ही लय हो जाता है। जैसे मकरन्द (पुष्प–रस) के पान में लीन भ्रमर फूल की गन्धका अनुभव नहीं करता, उसी तरह नाद में तल्लीन हुआ मन भी स्वयं को बन्धन में जकड़ देनेवाले विषयों- फूलमाला, चन्दन, स्त्री आदि की ओर कदापि प्रवृत्त नहीं होता। यह एक निश्चित वस्तु स्थिति है। इस के अतिरिक्त नाद ब्रह्म में समाहित योगी का मन विषय-मूलक चंचलता से निवृत्त होकर शाश्वत स्थिरता को प्राप्त करता है। इस अनाहत नाद में तन्मय हो जाने के कारण मन स्वाभाविक रूप से शांत और सुस्थिर हो जाता है। राजयोग के साधक का कर्तव्य है सभी अंतःबाह्य विषयों के चिंतन से

विरत होकर वह नाद-ब्राह्म के अनुसन्धान में निरंतर रहे। नादद्वारा यहां मन का प्रत्याहरण धारण, और ध्या भी है।

मन रूपी मृग की उछल कूद और चञ्चलता को दू करने के लिए नाद जाल के समान है, जैसे जाल में बांधक हिरन की चंचलता समाप्त कर दी जाती है उसी तरह नाद भी मन की चञ्चलता को अपने सामर्थ्य से हरण कर लेता है। नादब्रह्म व्याध है, जो मन मृगको जालमें फँसा बांध लेता है। जैसे व्याध जालगत मृग को मार डालता है, उसी तरह नाद भी अपने में आसक्त हुए मन को मार डालता है—अर्थात् मन जन्य वृत्तियों का सर्वथा तिरोभाव हो जाता है। योगीश्व मन यदि अश्व है, तो नादब्रह्म अश्वशालाके द्वारपर लगी हुई अर्गला है। जैसे अश्व को अश्वशाला से बाहर आने में अर्गला बाधक है, उसी तरह नाद भी मन को अन्यत्र भाग-दौड़ करने रोकता है, अतः नादब्रह्म की उपासना आवश्यक है। अनाहत नाद की मधुर गूँज को सुनकर मनरूपी सर्प समग्र जगत् को भूलकर एकाग्र हो जाता है। चंचल तथा नादप्रिय होने से मन की तुलना सर्प के साथ की गई है। नादाकार वृत्ति में तदाकार हो जाने के बाद मन अन्य किसी विषय में प्रवृत्त नहीं होता। इसी को समाधि कहा जाता है। यह अवस्था आत्मा के ही अर्थमात्र निर्भासस्वरूप शून्य के समान है। इस को संप्रज्ञात समाधि कहा जाता है।

काष्ठ में प्रज्वलित अग्नि अपने ज्वाला रूप को त्याग कर काष्ठ के साथ ही शांत हो जाता है, उसी तरह नादब्रह्म में

तन्मय मन नाद के साथ ही लीन हो जाता हैं— अर्थात् रजोगुणी वृत्तियों का नाश हो जाने पर सत्त्व मात्र शेष रह जाता है। विविध अन्तर्नादों में निमग्न मन को मारना—नाना प्रकार की वृत्तियों को प्रतिबंधित करना अत्यन्त सरल है—अर्थात् बाण की तरह शीघ्रगामी प्राणवायु को सुषुम्णा के मार्ग से ब्रह्मरंध्र में पहुंचाने का कार्य कुशल साधक के लिए सरल है।

अनाहत अर्थात् बिना ताड़न के उद्भूत शब्द-ध्वनि में ज्ञेयरूप प्रकाशमान चैतन्य का अस्तित्व विद्यमान है। इसी ज्ञेय—चैतन्य में अन्तःकरण रूप मन है और इसी ज्ञेय मन में लयीभूत हो जाता है। वृत्तियां तिरोभूत हो जाती हैं। केवल संस्कार ही शेष रहते हैं। यह ज्ञेय ही व्यापक आत्मा का परम धाम है! यह अवस्था अन्तःकरणजन्य वृत्ति रूपी उपाधि से सर्वथा रहित है। योगिजन इसी स्वरूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

जितने अन्तर तक अनाहत नाद कर्णगोचर होता है उसी सीमातक आकाशी कल्पना अच्छी तरह की जा सकती है, क्योंकि शब्द आकाशरूप है और गुण तथा गुणवान के अभेद के कारण मन के साथ शब्द का विलय होने पर शब्द रहित ब्रह्म ही शेष रहता है। यही परब्रह्म है और इसी को परमात्मा कहा जाता है। समग्र वृत्तियों का लय हो जाने पर योगी जिस स्वरूप में स्थित होता है, वह परब्रह्म परमात्मास्वरूप हैं। नाद रूप में जो कुछ कर्णगोचर होता है, वह शक्ति ही है और जिसमें तत्त्वों का लय होता है, वह निराकार

परमेश्वर है-अर्थात् सभी वृत्तियों का नाश होने पर जो रूप स्थिति प्राप्त है, वही आत्मा है। यह असंप्रज्ञात समाधि

आसन, प्राणायाम, मुद्रादि हठयोगके साधन हैं नादानुसंधान व शाम्भवी मुद्रा से लय-योग की साधना की जाती है राजयोग की सिद्धि के लिए यह आवश्यक साधन है। राजयोग में भलीभांति प्रवृत्त योगी मृत्युंजय अवस्था को प्राप्त कर है-अर्थात् राजयोगी की मृत्यु नहीं होतीं। जो साधक निरं नादानुसन्धान में संलग्न रहते हैं, उनके सभी पापों का उपशम होता है और निर्गुण चैतन्य में उसके मन और प्राणवायु दोनों ही लीन हो जाते हैं—मन और प्राण दोनों का ब्रह्म में लय हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि आमदर्शन अर्थात् मन प्राण को निराकार ब्रह्म में लय करने का एकमात्र साधन अष्टांग योग है। शुद्ध बुद्धि संपन्न योगाभ्यासी के मन, प्राण, और बुद्धि परमेश्वर के चिंतन में संलग्न रहते हैं और अन्ततः उस सनातन देव के साथ तादात्म्य स्थापित कर-जीवात्मा को परमात्मा में लीन कर-आत्मदर्शन प्राप्त कर साधक सदा के लिए सुख-दुःख से विरत हो जाता है। इस स्थिति को योगी परम गति-योग की सर्वोत्तम स्थिति मानते हैं। इंद्रिय, मन और बुद्धि की स्थिर धारणा का नाम योग है और इसी को विशुद्ध आत्मज्ञान अथवा आत्मदर्शन भी कहा जाता है।

विश्व-ब्रह्मांड की अनन्त व्यापिनी काया से भी इसी प्रकार का दिव्य संगीत अहर्निश प्रस्फुटित होता रहता है। मानव देह विश्व ब्रह्माण्ड की छोटी सी अनुकृति है, अतः

वह भी इस स्वान्तः जन्य संगीत की प्रसादपूर्ण मधुर ध्वनि से परिपूर्ण हो रहा है। यह मानव का अन्तर्नाद है, जो उसके हृदय और मन मस्तिष्क पर छाया रहता है। अंतःकरण का यह आध्यात्मिक उच्छ्वास है और उसी के आधार पर व्यावहारिक जीवन कला का प्रदर्शन किया जाता है। मानव की इस अंतःध्वनि में कुछ बाह्य अंतर प्रकट होता है,परंतु उसमें एक मूलभूत एकता लक्षित होती है। इसी आंतरिक साम्य के के कारण मानव एक दूसरे का सामीप्य प्राप्त करने के लिए उत्कण्ठित रहता है व सामूहिक निवास का अभ्यस्त है। इस अंतर्नाद के कारण अदृश्य चेतना का विकास होता है व रोम-रोम अपार जीवनी शक्ति से प्रफुल्लित हो उठता है। यह प्राणिक चेतना या जीवनी शक्ति ही चिरसंचित विभूति या थाती है। आंतरिक अक्षुण्ण प्रतिभा की झलक है। इस अदृश्य जीवनी शक्ति से परिपूर्ण मानव नदी, समुद्र, पहाड़ों और जंगलों को रौंदता हुआ आगे बढ़ता रहता है। कोई भी बाधा उसके निर्धारित मार्ग को अवरुद्ध करने में समर्थ नहीं। इस आत्म-बल के आधार पर अद्भुत सामर्थ्य और साहस का उदय होता है और अपने अंतर्नाद का अनुसरण करते हुए सांसारिक व्यवहारों में लगा रहता है।

अंतर्नाद प्रेरणाओं का उद्गम-स्थल है और तदनुसार सांसारिक जीवन का सञ्चालन होता रहता है। यह आध्यात्मिक अंतःनाद है और इसके अप्रतिहत प्रभाव से सीमा असीम में रूपांतरित हो जाती है। साधक अंतःजन्य अमृत रस का पान करता है और मृत्यु से परे पहुँच कर मृत्युञ्जय पद पर प्रतिष्ठित होता है।

उत्तर-२-प्रस्तुत श्लोक में वर्णित विषय में हमारी आ और विश्वास नहीं, इसे हम वाम मार्गीय पद्धति सा इसका विरोध करते हैं।

श्री एम. निझाम मोमीन, बम्बई,

पत्र २-प्रश्न१- अगस्त ६६ के रामतीर्थ मासिक के मुखपृ बाबू आर्टिस्ट का बनाया गया केलेके झाड चित्र छापा गया। उस झाडपर अनेक केलेके गु बताये गये, मेरी रायसे केलेके झाडको ए केलेका गुच्छ रहता है। सत्य क्या है?

प्रश्न—२—पहले आप अपने रामतीर्थ मासिक में प्रतियोगि प्रकाशित करते थे उसे क्यों बंद कर दिया ग कृपया उल्लेख कीजियेगा और जल्द ही आप 'श प्रयोगिता' प्रकाशित करने का यत्न करें ता रामतीर्थ हमें और आकर्षित करेगा!

प्रश्न—३—आपके रामतीर्थ मासिक में प्रकाशित होनेवा 'उमेश बाणी' तथा 'धर्मोपदेश' इनको मैं सम्पू एकत्रित हासिल करना चाहता हूँ कब वह आप पास मिलेगी? कैसे?

प्रश्न—४—गुलाबी होठोंपर धूम्रपान के मामूली धब्बे (दाग) पड़े हैं उन्हें दूर करने का शर्तिया इलाज बताइये धूम्रपान छोड़ दिया है।

प्रश्न—५— कहते हैं प्रेम द्वारा ईश्वरीय मार्ग प्राप्त होता है तथा सौंदर्य में ईश्वरका रूप अवित है यह कहांतक सच है ? उदाहरणके लियें सोनी-महिवाल,हिर-रांझा, शिरी फरहाद इनका जीवन ऐसे ही बीता या उन्हें ईश्वरैश्वर्य प्राप्त हुआ था ?

प्रश्न—६—सौंदर्यरूपी औरत के प्रेम द्वारा मैं ईश्वरीय सत् मार्ग हासिल करना चाहता हूँ किन्तु स्त्री सुख लेते हुयें ईश्वरीय मार्ग प्राप्त हो सकता है क्या ?

उत्तर-१ श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में प्रति शनिवार को सायंकाल तथा प्रति रविवार को प्रातःकाल विभिन्न विषयों पर विभिन्न विद्वानों के प्रवचन होते हैं। श्री कालूभाई बसिया अनेक बार प्रवचन कर चुके हैं। श्री० कालूभाई बसिया विश्व-यात्री हैं और अनेक बार स्विटजरलेण्ड, रूस, अमेरिका, जापान, रोम, पेरिस, इंगलेण्ड, उत्तर-ध्रुव आदि देशों और नगरों की यात्रा कर आये हैं। उनके प्रवचनों में विदेशों की यात्रा का वर्णन और विभिन्न देशों के रीति-रिवाज, बोल-चाल, खान-पान, पशु पक्षियों का परिचय सब वृक्ष, लता, फूल-फलादि के विषय में श्रोताओं को समझाते हैं। एक बार श्रोताओं के समक्ष प्रवचन करते हुए आपने कहा था कि भारत के जंगलों में केलेके पेड़ होते हैं, जिन में केलेका एक गुच्छा होता है। जंगली केलों का सेवन यहां किया नहीं जाता परन्तु विदेशों में जंगली केलेके वृक्ष में एक या दो गुच्छ

होते हैं । उन जंगली केलों को जंगल के आदिवासी लोग करते हैं । श्री० बसिया की यह बात श्रोताओं को महत्त्वपूर्ण लगी । 'रामतीर्थ' मासिक में इस बात की कारी दी जा नहीं सकी । यह सत्य है कि भारत के प्रदेशों में स्थित गहन जंगलों में रहनेवाले आदिवासी तथा ऋषि-मुनि, योगी, त्यागी महानुभाव कंद-मूलादि सेवन कर जीवन-धारण करने हैं । केलेके वृक्ष की एक अनेकशः जातियां होती हैं । प्रकृति की अद्भुत घटनाओं अनेक आश्चर्यजनक बातें सुनने में आती हैं ।

उत्तर-२-प्रतियोगिता के संबन्ध में अवश्य विचार करें

उत्तर-३-'धर्मोपदेश' तथा 'उमेशवाणी' का संग्रह पुस्तक के रूप में किया नहीं गया है । उनका पुस्तकाकार संग्रह प्रकाशित होने पर 'रामतीर्थ' मासिक में उसकी सूचना प्रकाशित की जायेगी ।

उत्तर-४-शीर्षासन २० मिनट, सिंहासन १ मिनट, सुप्तवज्रासन २ मिनट, पवन मुक्तासन २ मिनट, पूर्णपश्चा २ मिनट, शवासन ४ मिनट करना चाहिये । इसके अतिरिक्त शुद्ध शाकाहार, गाय का दूध, फल, और तेल-मालिश का भी प्रयोग करें ।

उत्तर-५-व्यवहार में रहकर प्रेयस को गौण स्थान देना चाहिये । और श्रेयस को श्रेष्ठ । ऐसा करने से प्रेम मार्ग अनुकूल होगा । संसार में रहते हुए और मायाजाल में फँसे रहकर

भी गुरूपदिष्ट मार्ग का अनुसरण कर और सत् शास्त्र, योग-वेदान्त, भक्ति आदि उच्चकोटि के साधन, साहित्य, सत्संग आदि के आधार पर पवित्र प्रेम का सम्पादन कर सर्वोच्च सुख की प्राप्ति की जा सकती है।

उत्तर-६ इस प्रकार के अनुभव के लिये सर्वप्रथम मनकी संपूर्ण परीक्षा लेनी होगी। मन कहां भटकता है, कैसी वृत्ति रखता है और कबतक रखेगा आदि। क्योंकि मन ही बन्धन का हेतु बनता है और मन ही मोक्ष का हेतु होता है। जिसने मनको जीता, उसने जगत् को जीत लिया। आपकी मानसिक, वृत्तियां सचमुच कहां-तक किस सीमातक ईश्वरीय भावनाओं से ओत प्रोत हैं; यह तो आप ही भलीभांति जान सकते होंगे। यदि आप सचमुच अपने मनपर भरोसा रखते हैं तो अनुकूल होगा, अन्यथा प्रतिकूल होगा। गीता में कहा है कि आप ही अपने मित्र हैं और आप ही अपने शत्रु। इसका मूल कारण मन है। मनको जीतने के लिये अभ्यास और वैराग्य का आश्रय लेना पड़ता है। योगाभ्यास, सद्गुरु की सेवा, परोपकार, दया, दान, ईश्वर-चिन्तन, पवित्र विचार, व्रत-नियम आदिका आश्रय लेकर मानसिक वृत्तियों को निषिद्ध, निन्दनीय विचारों से अलग कर देना चाहिये। भगिनी और माता के प्रति जो भावनाएं रहती हैं, वही भावनाएं यदि स्त्रियों के प्रति प्रकट की जायें, तो अत्युत्तम होगा।

राष्ट्रीय पर्व दीपावली

ले०—प्रो० श्याम मनोहर व्यास एम. एस-सी.

दीपावली भारतवर्ष का एक अत्यन्त प्राचीन लोकोत्सव है ! यद्यपि वैदिक साहित्य में हमें दीपावली का कोई रूप देखने को नहीं मिलता, परन्तु पौराणिक काल की अनुश्रुतियाँ और दीपावली पर पूजे जाने वाले देवता लक्ष्मी एवं गणेश स्वयं इस पर्व की प्राचीनता के प्रतीक हैं ।

संस्कृत साहित्य में दीपावली का उल्लेख मिलता है। इस पर्व के अवसर पर लक्ष्मी पूजन, दीपमालिका और द्यूतक्रीड़ा का विशेष रूप से वर्णन हुआ है।

महाराज हर्ष ने भी अपने ग्रन्थ "नागार्जुन" नाटक में 'दीप-प्रतिपदुत्स्व' का उल्लेख किया है ।

६ ठी शताब्दी में रचित 'नीलमति पुराण' में हमें वर्तमान दीपावली के और अधिक विकसित रूप के दर्शन होते हैं जो आज की दीपावली के बहुत अधिक निकट है।

सगुण भक्तिधारा के कृष्णोपासक कवियों ने हिन्दी काव्य में दीपावली का वर्णन विशेष रुचि के साथ किया है और दीपमालिका के वर्णन की यह परम्परा सूरदास से लेकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तक चली गई है।

दीपावली आनन्द एवं उल्लास का त्यौहार है। दीपों के उज्जवल प्रकाश में जनमानस का अन्तःकरण हर्ष विभोर हो उठता है ।

दीप जलाने का मूल ज्ञानोदय है, अज्ञानान्धकार का उन्मूलन है इस दिन अपने में कार्य दक्षता, ईमानदारी व

कार्य निष्ठा को बढ़ाने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये ।

दीपावली हमारा राष्ट्रीय पर्व है ।

यह लक्ष्मीजी का त्यौहार है । लक्ष्मी धन की देवी और विष्णु की प्रिया है ।

दीपावली विशुद्ध प्रकाश का त्यौहार है । इसे सच्चे अर्थों में सात्विक पुरुष ही मना सकते हैं ।

दीवाली एक त्यौहार नहीं है बल्कि इस अवसर एक साथ पाँच पर्व पड़ते हैं जिनका अपना अपना अलग महत्व है ।

(१) धनतेरस (२) नरक–चतुर्दशी (३) लक्ष्मी पूजा (४) गोवर्धन पूजा) ५) भ्रातृद्वितीया ।

धनतेरसः—यह लक्ष्मी पूजा के दो दिन पूर्व याने कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को पड़ती है । पुराणों में आता है कि इस दिन भगवान धन्वन्तरि अमृत का कलश लिये हुये प्रकट हुये थे । इस लिये वैद्य समाज में इस दिन का विशेष महत्त्व है ।

इस दिन लोग अपने घरों की सफाई करते हैं ताकि वर्षा ऋतु में उत्पन्न कीटाणु नष्ट हो जाएं ।

नरक–चतुर्दशीः—त्रयोदशी के पश्चात् चतुर्दशी का पर्व बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है । इसी दिन भगवान् विष्णु ने नरकासुर का वध किया था । इसी दिन भगवान् विष्णु ने वामनावतार धारण कर महान् योद्धा राजा बलि का गर्व भंजन किया था । इसे छोटी दीवाली भी कहते हैं ।

लक्ष्मी पूजाः—अमावस्या का दिन लक्ष्मी पूजा का त्यौहार है और दीपावली का मुख्य पर्व ।

इस दिन भगवान् राम लंका-विजय कर अयोध्या लौटे थे । इस पर्व के सम्बन्ध में एक और कथा प्रचलित है विलोपी–

ब्राह्मण की ।

उसका जीवन सात्त्विक एवं सत्कर्मों से परिपूर्ण था। बार कुसंग में पड़कर उसने जुआ खेला। वह सब कुछ जुए हार गया किन्तु पथभ्रष्ट नहीं हुआ।

वह फिर भगवान् की आराधना में लग गया।

उसकी भक्ति से लक्ष्मी उसपर प्रसन्न हुई और वह अतुल सम्पत्ति का स्वामी बन गया।

मनुष्य जीवन भी एक जुआ है कर्म और साधना जीवन के वास्तविक उद्देश्य को सामने रखकर जो कार्य करते हैं वे जीवन संग्राम में विजयी होते हैं और अहंकार एवं विषय वासना में लिप्त हो जाते हैं वे होते हैं। उनका मनुष्य जीवन व्यर्थ चला जाता है।

लक्ष्मी पर्व का अर्थ है–धन के महत्त्व को समझना व सत्कर्मों में व्यय करना।

लक्ष्मी चंचल है, चपल है। आज एक के पास है तो दूसरे के पास।

जो आज भिखारी है कल धनी बन सकता है और आज धनी है वह कल भिखारी बन सकता है।

अहंकारी, जुआरी, वैश्यागामी, हिंसक, नास्तिक एवं असत्यवादी व्यक्तियों के पास लक्ष्मीजी अधिक दिन तक नहीं टिकतीं। स्वामी दयानंद और महावीर स्वामी ने इसी दिन निर्वाण प्राप्त किया था।

स्वामी रामतीर्थ ने इसी दिन जन्म ग्रहण किया और इसी दिन निर्वाण प्राप्त किया।

गोवर्धन पूजाः—कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा का त्यौहार गोवर्धन पूजा के नाम से प्रसिद्ध है। गोवर्धन की पूजा से महा-भारत काल की वह घटना हमें स्मरण हो आती है जब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठा कर इन्द्र का गर्व भंजन किया था! इसे अन्नकूट का त्यौहार भी कहते हैं।

यम द्वितीयाः—लक्ष्मी पूजा के तीसरे दिन भ्रातृद्वितीया या यम द्वितीया का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन यमराज का जन्म हुआ था।

महाराज यम समस्त विश्व के शासन में व्यस्त रहते हैं। कहते हैं जो इस दिन यमकी पूजा करते हैं उन्हें मृत्यु के उपरान्त यमकी यातना से छुटकारा मिल जाता है।

दीपावली जैसे व्यापक राष्ट्रीय पर्व को मनाने के लिए हमें अपने में सांस्कृतिक निष्ठा, सात्त्विकता, भ्रातृप्रेम एवं एकता आदि गुणोंको विकसित करना होगा।

यह विश्व तीन महा शक्तियों श्री, शक्ति और सरस्वती से संचालित है।

इन शक्तियों के सदुपयोग और दुरुपयोग से मानवता बनती और बिगड़ती है !

जहां इन तीनों का समुचित समाजीकरण होता है, अथवा समन्वित उपयोग किया जाता है वही राष्ट्र समृद्ध, सभ्य और अग्रगण्य समझा जाता है। ये तीनों शक्तियां एक दूसरे की विरोधिनी नहीं वरन् परस्पर पूरक हैं।

अतएव तीनों के समन्वय से ही समाज का कल्याण सम्भव है।

दीपक के प्रकाश से मंगलमय किरणों का जन्म तभी सकेगा जब हम नैतिकता के आदर्शों पर बढ़ें। समता स्नेह के माध्यम से सुख तथा समृद्धि का विकास होता है

दीपोत्सव के उल्लास भरे हुए पुण्य अवसर पर कवि का मन भी हर्ष विभोर हो उठता है।

उन्होंने इस पुनीत अवसर पर मन मोहिनी कविता का सृजन किया है।

भगवान् राम अयोद्धा में दीपोत्सव का आनंद लूट हैं—कवि तुलसीदासजी के शब्दों में—

सांझ समय रघुवीर पुरी की शोभा आजु बनी,
ललित दीप मालिका विलोकहिं हित करि अवध धनी।
फटिक भीति सिखरू पर रजित कंचन दीप अनी,
जनु अनिनाथ मिलन आयोमनि सोभित सहस फनी॥

कवि बच्चनजी कहते हैं—

साथी, घर घर आज दिवाली,
फैल गई दीपों की माला, मन्दिर मन्दिर आज उजाला
किन्तु हमारे घर को देखो, दर काला, दीवारें काली

कवि चिरंजीत भी दीप जलाने को उत्सुक हैं—

जगमग जगमग मा का मन्दिर
अगरू-धूम घन छाए घिर घिर,
हिम किरीटिनी मा की शोभा
पर मैं बलि बलि जाऊँ।
मैं मंगल दीप जलाऊँ।

कवि शारदाप्रसाद 'भुशुण्डि' को दीपावली पर मज़ नहीं मिलते जबकि बी. ए. पास बेकारों का अभाव नहीं

प्रिये आज दिवाली आई है
किस तरह मकान पुताऊं मैं।
है पड़ा गिरानी से पल्ला,
मजदूर बन गया है अल्ला,
दिन रात खोजने में जिनके
चप्पल का घिसा नया तल्ला।
तुम कहो तो उनके बदले में
अब बी० ए० पास लगाऊं मैं।।

डा० हरिशंकर शर्मा जन जन में समता, स्नेह, नैतिकता और सदाचार की भावना जागृत करना चाहते हैं—

सदाचार सम्पन्न रहें सब, नैतिकता अपनायें हम,
भारत को पुनि पहला सा गौरवशाली पायें हम।
समता, स्नेह, स्वतंत्र भाव की जन मन में उजियाली हो,
सुख, समृद्धि बरसे वसुधा पर मंगलमय दीवाली हो।।

इस पुनीत पर्व पर हमें अपने में राष्ट्रीय एकता, नैतिकता, सहिष्णुता, देश प्रेम एवं ईमानदारी आदि गुणों को ग्रहण करने की प्रतीज्ञा करनी चाहिए।

अंत में हम 'रामतीर्थ' के विज्ञ पाठकों को इस महान् पर्व पर अपनी मंगलमय कामनायें अर्पित करते हैं कि वे दिनों दिन अपने जीवन का सर्वतोमुखी विकास करते रहें।

दीपावली का त्यौहार

ले०— डा० गोपाल प्रसाद 'वंशी'

'हंसी है होठों पै सूखी फीकी, लहू के आंसू बहा रहे हैं
जिगर में होली सुलग रही है, और हम दिवाली मना रहे हैं

सच्चे त्योहारों के रूप में आज दीवाली कहां मनाई जा है ? शहरों में रहनेवाले रईश, सेठ, साहूकार और महाज की आलीशान इमारतों में हम चहल पहल देखते हैं। बिज के रंग बिरंगे लट्टुओं की रोशनी फैलाने वाली आतिशबाज़ छोड़ीजाती है। बड़े बड़े अमीर–उमरा और ब्लैक मार्केटियरों दावतें दी जाती हैं। महल में मिठाइयों के अम्बार लगा जाते हैं। उधर सड़क की पटरियों पर, महल के बरामदे नीचे पड़े हुए क्षीणकाय अर्द्धनग्न गरीब रोटी के एक टुक के लिये तरसते हैं। इनकी कोई खबर लेने वाला नहीं, पूछ वाला नहीं। उधर पैसेवालों के घर दीवाली मनाई जाती है- कन्दील के चिराग जलाये जाते हैं। बेचारे गरीब किसानों के घर में अन्न बिना एकादशी हो रही है। वे बाढ़, सूखे और महंगी से तबाह हैं। उनके झोपड़े में अन्धकार है। दिये जलाने को तेल नहीं, पैसे कहां जो तेल आयें ?

काश ! आज सचमुच हमारी दीवाली होती ! दशों दिशायें अनंत प्रकाश से खिल उठतीं ! हमारे अंतःप्रदेश में फैला हुआ अन्धकार भी दूर हो जाता और संसार की सभी चीजों के, सभी प्राणियों के वास्तविक रूप को इस प्रकाश में हम देख पाते। संसार के सभी प्राणियों में नया जीवन, नया उल्लास

उमड़ पड़ता । राग-द्वेष और वैषम्य की इस दुनिया में जो एक युग से मानवता रौंदी जा रही है—एक कोनेमें पड़ी-पड़ी कराह रही है, उसे राहत मिलती, एक नया मार्ग मिलता, नयी प्रेरणा मिलती, नयी रोशनी मिलती । आज जो संसार के असंख्य प्राणी भूख की प्रलयंकर अग्नि में धू धूकर जल रहे हैं, या यों कहिये कि जलाये जा रहे हैं, ईश्वर की सुन्दर सृष्टि जो पशुता के प्रहार से आहत हो सिसक रही है, चारों ओर दानवता का प्रलय-नर्तन हो रहा है, उसका हमेशा के लिये अन्त हो जाता । चारों ओर फैली हुई विषमता, पशुता और पैशाचिकता पर मानवता की विजय होती । तब विजयोल्लास में होती हमारी सच्ची दीवाली । तब हम देखते, दीवाली का रूप कैसा होता है । परन्तु आज तो हमारे अंतरतर में अंधकार का साम्राज्य है, निरुत्साह और निराशा ने हमारे मन पर पूरी तरह कब्जा कर रखा है, जिसके कारण हम अपनी वर्तमान स्थिति से निकलने की पूरी चेष्टा भी नहीं कर पाते ।

आज तो देश के अनेक परिवार अनाहार कर जिन्दगी के दिन काट रहे हैं । कितनी ही मातायें भूख से तड़पते हुये अपने बच्चे के आर्तनाद को बर्दास्त न कर सकने के कारण जहर खाकर या कुए में कूदकर अपने जीवन का अंत कर रहीं हैं। अगणित शिक्षित नवयुवक बेकारी की चक्की में पिस रहे हैं। सैकड़ों गरीब किसान-मजदूरों की आखिरी सांस निकल जाने पर उनके लिये कफन का भी ठिकाना नहीं । फिर हमें सच्ची दीवाली के दर्शन क्यों कर हों ? फिर भी हमें गर्व है अपने इस राष्ट्रीय त्यौहार पर, और हम एक जमाने से

यह रस्म अदा करते आ रहे हैं। आदत से लाचार हैं, इस आज भी लकीर पीट रहे हैं।

कहते हैं, यह लक्ष्मी के शुभागमन का दिन है। इस इस अवसर पर लक्ष्मी की आराधना होती है, गरीब लोग गुड़, अक्षत, फूल और धूप-दीप नैवेद्य लेकर लक्ष्मी का पू करते हैं-वर्षों से इसी प्रकार लक्ष्मी का पूजन करते आ हैं, किन्तु लक्ष्मी नहीं आती, लक्ष्मी का शुभागमन नहीं हो रूठी हुई लक्ष्मी को मनाने का इसी प्रकार प्रयत्न किया जा है, लेकिन वह नहीं रीझती। बूढ़ी मातायें रात्रि के अंतिम प्र में अपने कांपते हुये हाथों में एक टूटा हुआ सूप उठा सवई के डण्टल से पीटकर दरिद्रता को घर से निकाल बाह करने का प्रयास करती हैं। हर साल दीवाली की रात हमारी बूढ़ी मातायें ऐसा करती आ रही हैं, ऐसा करके सन्तोष कर लेती हैं कि हमने दरिद्रता-राक्षसी को घर बाह कर दिया। परंतु क्या सचमुच दरिद्रता हमारे घर इस प्रकार भाग जाती है? सच तो यह है कि इस प्रकार द द्रता को निकाल बाहर करने का प्रयत्न अंधविश्वास के का है, दरिद्रता इस प्रकार दूर नहीं होती। लक्ष्मीपूजन का य तरीका अख्तियार कर अपने मन को भले बहलायें लेकि लक्ष्मी इस प्रकार किसी पर प्रसन्न नहीं होतीं।

दरिद्रता के भगाने की तरकीब कुछ और ही है-ल पूजन का ढँग कुछ और ही है। धेले की मिठाई और छदाम धूप दीप से उसकी पूजा नहीं होती, इस तरह युगों तक

हम करते रहें किन्तु कुछ होगा नहीं। इसी तरह बराबर हमारे कलेजे के दीप बनते रहेंगे, उनमें हमारा हृदय रक्त भरता रहेगा और उसमें डूबी अरमानों की बत्तियां बिना दियासलाई जलाये ही जलती रहेंगी-वैसे ही जैसे मजार पर जलती हैं। दरिद्रता के पांव तभी उखड़ेंगे जब हम रूढ़िवाद का सुदृढ़ गढ़ चूर-चूर कर सकेंगे और जब कूप-मण्डूकता के दलदल को सुखा सकेंगे। हां तभी हमारी दरिद्रता दूर हो सकती है और तभी हम लक्ष्मी-पूजा का मर्म भी समझ सकेंगे।

* * * *

हमें अपने त्यौहारों पर भी बड़ा फख्र है। हम आज भी सुनते हैं कि हमारे त्यौहार, हमारी राष्ट्रीयता के प्राणों में संजीवनी शक्ति भरते हैं। हमारे त्यौहार हमारे हृदय में प्रेम, का महासागर उंडेलते हैं। हमारी आंखों में विश्व बन्धुत्व का रंगीन नक्शा खींचते हैं। हमारे त्यौहार यह करते हैं, वह करते हैं आदि। किन्तु सच बात तो यह है कि आज हमने दीवाली को त्यौहार के रूप में भी नहीं रहने दिया है। जिस उद्देश्य से यह त्यौहार बनाया गया था, उससे हम लोग कितनी दूर पड़ गयें हैं, क्या इसे भी कभी सोचा है? इस त्यौहार का सारा सौंदर्य, सारी महत्ता रौंद कर आज हमने इसको इतने विकृत रूप में बना दिया है कि कहा नहीं जा सकता है। हम अपनी नवीन सभ्यता के नशे में बेतहाशा बह रहे हैं। आज हमारी प्राचीन संस्कृति, हमारी दिल्लगीका, हमारे मनोरंजन का साधन बन गया है। नयी रोशनीवालों से जरा कहिये कि त्यौहार जातीय जीवन का एक बहुत ही बड़ा

प्रामाणिक इतिहास है, तो देखिये प्राण बचाना मुश्कि जायगा। ऐसी ऐसी चुटकियां लेंगे कि बस। आज तो दीवा का अर्थ जुआ खेलना है—आतिश बाजियां उड़ाना है। बड़े अक्लमन्दों के मुह सुना है–युधिष्ठिर महाराज की दु देते सुना है कि जुआ दीवाली के त्यौहार का एक महत्व अंग है। इसके सहारे भाग्य का फैसला होता है।

* * * *

आडम्बर का पर्दा हटाकर जरा गवेषणापूर्ण दृष्टि दीवाली त्यौहार की एक झांकी लीजिये। कितना सुन्दर अं हँसता हुआ आंखों के सामने आ जाता है। विज्ञान का वि गहरा तत्त्व झलक उठता है। वर्षा ऋतु का अंत देखा है पूरे चार महीने पानी के बीच रहना पड़ता है। ठीक उस बाद ही, जब धुली हुई प्रकृति में एक अलसाया सा उन्मा डोलने लगता है. तब जरूरत इस बात की होती है कि ह अपनी बिगड़ी हुई बातों को ठीक करें, मलेरिया के उत्पातों से त्राण पायें; उसी समय दीवाली का त्यौहार आता है। उन दिनों मकानों की सफाई, रोशनी तथा भगवती लक्ष्मी की आरा धना का विधान रखा गया। विधान रखने का यही मतल था कि वर्षाऋतु की गंदगी दूर कर दी जाय, मकान स्वच्छ सुन्दर बनाये जांय। किन्तु आज तो हमें सफाई की वैसी आव श्यकता ही नहीं। हम कहते हैं कि हमारे पूर्वजों का आ आडम्बर है और इस तरह से दीवाली के उद्देश्यों का ए महान खंड आज एक प्रकार से अलग कर दिया गया है।

दीवाली के अवसर पर रोशनी करने का विधान भी विशे से ओतप्रोत है। वर्षा ऋतु में अनेक प्रकार के कीटाणु पै

हो जाते हैं। यह कीड़े स्वास्थ्य के लिये कितने घातक होते हैं, इस बात को सभी लोग जानते हैं। वर्षा ऋतु में किसी भी गांव में चले जाइये और इन कीटाणुओं का उत्पात देखिए। ऐसा कोई घर नहीं मिलेगा जिसमें दो चार आदमी पड़े न कराहते हों। वहां दवादारू का भी साधन नहीं और साधन भी हो तो उनके पास पैसे कहां ? रोटी के लिए तो लाले पड़े ते हैं। इन्हीं भयंकर कीड़ों को भगाने के लिये रोशनी का विधान किया गया है। वैज्ञानिक इस बात को जानते हैं कि रोशनी इन कीड़ों का अंत कर देती है। मकानों की वायु भी शुद्ध हो जाती है। लेकिन आज रोशनी की कितनी बुरी गति र रहे हैं। आज तो रोशनी का अर्थ हमने अज्ञानवश यह समझा है कि मकानों में खूब जगमगाहट हो। जिसके मकान दीवाली के दिन जितनी ही जगमगाहट होती है; वह तना ही सम्पन्न समझा जाता है। रोशनी जो आज हम वाली के दिन करते हैं; वह इसलिये नहीं कि हमारे मकानों कीड़े मर जांय, रोशनी के ताप से दूषित वायु हट जाय, रन् इसलिये कि हमारे दरवाजे पर दर्शकों का बड़ा समूह त्र हो जाय, लोग हमारे रंग-बिरंगे लट्टुओं पर लट्टू होते ें; कभी बुझती और कभी जगमग रोशनियों को देखकर लोग काचौंध में पड़ जांय और लोगों की जबान पर हमारा नाम ये। इसी भावना का यह प्रतिफल है कि आज लोगों में वाली के दिन रंग-बिरंगी बिजलियों से सजाने का पागलपन ार है। हम उसके असली उद्देश्य को बिल्कुल भूल गये हैं। नहीं सोच रहे हैं कि यह बिजली की बत्तियां जहरीले

कीड़ों की जननी हैं। इनका प्रकाश करके हम कीड़ों के वि और रोगों के निवारण का उद्देश्य छोड़कर, इनके विधाता रहे हैं। माना, देहातों में बिजली नहीं है; किन्तु वहां बिज का स्थान मिट्टी के तेल की मशालें जलाकर रौनक बढ़ाते

और लक्ष्मी पूजा में खेत-विधान का भी बहुत उद्देश्य था। उस समय खेत धान्यपूर्ण रहते हैं। गृहस्थों मन में उमंग की लहरें डोलती रहती हैं। इसीलिये यह वि बना था। कि हम जगद्धात्री का पूजन करें। मां भगवती प्रार्थना करें कि हे मां कमले! हमारे खेत इसी प्रकार लह-लहाते रहें तू प्रसन्न रह, इसलिये हम तेरी पूजा करते हैं किंतु आज कितने इन भावनाओं से प्रेरित होकर पूजा करते हैं आज तो हम उसकी पूजा अपनी किस्मत आजमाई के लि करते हैं। हमारा भविष्य कैसा होगा, इसकी परीक्षा हम कौड़ियों की नृत्यलीला पर करते हैं। कितने करोड़ पतियों के बदन पर सुबह तक वस्त्र का एक धागा भी नहीं रह जाता। मतलब यह है कि आज पूजा का महत्त्व एक रहस्य बन गया है। इसमें न हमारी श्रद्धा ही है, न विश्वास ही। आज उसके स्थान को द्यूत ने ले लिया हैं। दीवाली को जुआ खेलना एक धर्म बन गया है।

जबतक हम दीवाली के मर्म को नहीं समझेंगे, जब तक हम अपनी प्राचीन पद्धतियों का अनुसरण नहीं करेंगे, तब तक हमारी दीवाली इसी तरह आती जाती रहेगी और हम इसी तरह दरिद्रता के गर्दगुबार में उड़ते रहेंगे। पूजन के बाहरी उपकरणों से लक्ष्मी और सरस्वती की हमारी ओर नहीं हो सकती।

[कहानी]

वह क्या देखती थी

लेo राजेन्द्र प्रताप गुप्त

यह छोटी सी कहानी है उस प्राणी की जिसकी मृत्यु पर कदाचित् ही किसी ने दो आंसू गिराये हों। फिर उसकी कब्र पर कौन फातिहा पढ़ता और कौन उसका चालीसा करता। था ही कौन अब उसका इस दुनियां में। मौत एक-एक को निगल गई थी। न कभी किसी ने उसे हँसते ही देखा और न रोते ही। न वह किसी से बोलती थी और न ही कुछ मांगती थी। यदि किसी को कुछ दया आ गयी दे दिया तो खा लिया नहीं तो खाली पेट ही लेट रहती थी। न उसे कुछ दुनिया वालों से मतलब था और न दुनिया वालों को उससे कुछ मतलब था। अगर कुछ मतलब भी था किसी को तो गांव के उन शैतान लड़कों को जो प्रायः भिखमंगी और पागल सरीखी स्त्रियों को छेड़कर आनन्दित होते हैं; ये शैतान लड़के कभी उसपर कंकड़ फेंकते, कभी धूल उड़ाते और कभी कोई पुराना कपड़ा उसके ऊपर डाल देते। अगर कभी वह खीज जाती तो कुछ दूर लड़कों के पीछे उन्हें मारने और पकड़ने को दौड़ती थी लेकिन यें बन्दर लड़के भला उस पगली के कब हाथ आने वाले थे। मैं भी उसे पगली ही समझता था। इसके अतिरिक्त और कुछ समझने के लियें सबूत भी नहीं मिलता था। उसकी सूरत शकल, चलना फिरना और खाना पीना सब पागलों जैसा ही था। जिसे हम सभी रोजाना ही देखा करते थे। लेकिन अन्य पागलों की तरह न तो वह बकती झकती ही थी न कपड़े फाड़ती थी और न कोई सामान ही तोड़ती थी।

समनी को गांव के बच्चे देखते-देखते जवान हो गये और जवान बूढ़े हो गये लेकिन समनी की दशा में कोई फ़र्क नहीं आया। जैसा लोगों ने उसे चालीस वर्ष पूर्व देखा था उसी दशा में वे उसे अब भी देख रहे थे। इतना अवश्य था कि अब वह शरीर से बहुत दुर्बल हो गयी थी और एक लाठी के सहारे चलने लगी थी। अब यह लाठी ही उसकी एकमात्र साथी थी। समनी केवल दो समय ही अपने घर से बाहर निकलती थी। प्रातः आठ बजे के क़रीब और शाम को छः बजे के करीब। शरारत करने वाले लड़के आने-जाने वाले समय से परिचित थे। कभी तो गांव के बड़े बूढ़े जिन्होंने उसकी युवावस्था देखी थीं और उसके भरेपूरे घर को देखा था उसपर तरस खाकर इन शैतान लड़कों को डपट कर भगा देते थे, लेकिन वे उसके पहरेदार तो थे नहीं सो लड़कों को बहुधा उसे छेड़ने का अवसर मिल ही जाता था। समनी सुबह शाम शायद दिशा मैदान के लिये ही घर से बाहर निकलती थी क्योंकि उस समय उसके हाथ में पानी का एक लोटा होता था जिसे लड़के अक्सर हाथ या लकड़ी मार कर गिरा देते थे। वह खीजती थी और लड़के ताली बजा-बजा कर हँसते थे।

समनी रास्ता चलते हुये, जाते और आते बार अपने पैरों से जमीन पर गोल गोल से निशान बनाती थी और फिर स्वयं ही उन्हें मिटा दिया करती थी। एक निशान दूसरे से ठीक १० कदम की दूरी पर होता था। निशान बनाते तथा उन्हें बिगाड़ते वह न जाने अपने मुंह से क्या बुदबुदाती जाती

थी। उसकी इस भाषा का कभी कोई अर्थ न जान सका। वह पहले एक निशान बनाती फिर दस कदम आगे जाकर दूसरा निशान बनाती फिर वहां से लौटकर पहले वाले निशान को बिगाड़ देती फिर आगे बढ़कर तीसरा निशान बनाती और अब दूसरे को पीछे लौटकर बिगाड़ देती। उसका यह क्रम घंटों चलता था। देखनेवाले थक जाते थे किन्तु समनी नहीं थकती थी। अगर कभी लड़कों ने शरारत की और उसके निशान को बिगाड़ दिया तब भी वह ठीक स्थान पर ही आ खड़ी होती थी और फिर उसे बनाती थी। ऐसा लगता था कि वह अपने कदम गिनकर ही निशान बनाती थी। समनी ने ये निशान एक वर्ष नहीं दो वर्ष नहीं पूरे चालीस वर्षों तक बनाये थे और उसने इन निशानों का बनाना और मिटाना उसी समय बन्द किया जब उसका ही निशान इस दुनियां से मिट गया।

कहते हैं समनी ने ४० बहारें देखीं थीं, ऐसी बहारें जिनसे खिजां मुंह छिपाती थी और फिर ४० खिजां देखी तो ऐसी की बहारों का कहीं दूर तक पता न रहा। कहते हैं कि बहार के बाद खिजां और खिजांके बाद बहार आती है और खिजां तथा बहारका यह क्रम प्रतिवर्ष चलता ही रहता है लेकिन समनीके जीवन में जो आया। स्थायी बनकर ही आया। खिजां के बाद उसके जीवनमें बहारको न आना था तो नहीं आई। एक दिन वह आया कि समनी ने दम तोड़ दिया। किसी ने भी तो नहीं जाना कि वह कब बीमार हुई और कब मर गयी। प्रातःकाल जब पड़ोसियों ने समनी के घर के पट नियमानुकूल न खुलते

देखे तो उन्हें कुछ चिंता सी हुई। किसी ने घर में किवाड़ों के सांसों से झांक कर देखा भी तो कुछ पता न लगा। कि अंदर से बन्द थे। अब लोगों को चिंता हुई तो कुछ लो दीवार पर चढ़कर उसके आंगन में कूद गये। अब लोगों की समझ में आया कि घर के पट क्योंकर खुलते जब समनी के ही पट बंद थे। समनी एक टूटी सी खाट पर पड़ी थी जिसके बान इतने ढीले थे कि वह भूमि से आ लगी थी शरीरपर वे ही फटे चीथड़े थे जिन्हें वह रोज ही लगाये रहती थी। अब यही चीथड़े उसके कफन थे। जिस लाठी के सहारे वह रास्ता चलती थी वह लाटी अब भी उसकी बगल में दबी थी। शायद उसी को उसने अपना वफादार साथी समझा था मुंह कुछ खुला था मानो वह अब भी कुछ बुदबुदाने वाली थी। दोनों आंखें खुली थीं जिन्हें देखने से ऐसा लगता था कि वे एक टक किसी की ओर देख रही हों। समनी के प्राण पँखेरू ने कब पिंजरा खाली कर दिया किसी को पता ही न चला।

थोड़ी ही देर में समनी के मरने की खबर सारे गांव में फैल गयी। बहुत से आये और बहुत से नहीं भी आये। आने वालों में से भी कितने देखकर चले गयें। अर्थी उठाने के लिए छः सात आदमियों से ज्यादा न रहे और वे भी मुहल्लेवाले। अब प्रश्न था समनी के लियें कफन का। ये चार या पांच रुपयें कौन खर्च करे। घर की तलासी ली गयी तो सिवाय टूटे फूटे दो चार तांबे के बरतनों और चीथड़ों के और कुछ

भी न मिला। मिट्टी के बरतनों की भी तलाशी ली गई तो एक हांडी में सूखी रोटी के टुकड़े निकले और एक हांडी में सेर सवा सेर के अनाज मिला। उसके पलटने पर उसमें से एक छोटी सी पोटली निकली जिसमें कुछ रकम बंधी सी मालूम हुई। लोग खुश हुये कि समनी के लिये कफन का प्रबन्ध हो जायगा, लेकिन जब उसे खोलकर देखा गया तो कुल जमा में पांच आने पैसे निकले। शायद यही उसकी जन्म भर की कमाई थी। मुहल्ले से चंदा किया गया और समनी के लिये कफन लाया गया। प्राणों ने पुराना शरीर छोड़ा और समनी ने छोड़े पुराने चीथड़े। दर्जी बुलाकर समनी के लिये नये कपड़े तैयार किये गये। चालीस वर्षों के बाद आज लोगों ने समनी के शरीर पर चीथड़ों के स्थान पर नये कपड़े देखे थे। वही टूटी खाट समनी की अरथी बनी। लोगों ने ले जाकर समनी को कब्र में रख दिया और साथ में रख दी समनी की वह लाठी जिसके सहारे वह जिन्दगी में चलती थीऔर अब शायद उसके सहारे मौत का सफर तय करने के लिये। कुछ दिनों तक वह टूटी खाट तकिया में पड़ी अवश्य देखी गई जहां समनी को दफन किया गया था लेकिन एक दिन वह भी राख मिली। शायद लड़कों ने उसे जला डाला। क्यों कोई उसका निशान वाकी रहता। पहले समनी ही निशान मिटातीं थी तो अब गांव के लोग उसका ही निशान मिटाने में लगे थे। धीरे-धीरे समनी का वह घर गिर गया लोग वहां अपने जानवर बांधने लगे। समनी की कब्र बहुत दिनों तक तो देखी गई लेकिन बाद को

सियारों, सेहियों और ऊदविलाओं ने उसे खोदना शुरू क दिया। समनी अपने साथ तो कुछ खाने पीने का सामान (जाद-राह) भी नहीं ले गयी थी फिर न जाने ये सब जानवर उसे खोदने में क्यों लगे हुये थे। कुछ ही काल में समनी की कब्र का निशान भी मिट गया। पहले तो जानवरों ने ही उसे खोदकर जमीन के बराबर कर दिया फिर पड़ोसी खेत वाले ने उसे अपने खेत की हद में लेकर जोत डाला। इस तरह यह आखिरी निशान भी मिट गया।

इस घटना को अब चालीस वर्ष हो चुके हैं। समनी को सब पगली जरूर कहते थे वह इसलिए कि वह पागलों की तरह रहती थी, लेकिन क्या वह वास्तव में पागल भी थी कि नहीं इस बात को कोई न जान सका। दुःखों के सिवा समनी का सब ही तो साथ छोड़ गये थे। कहते हैं समनी जवानी में एक हसीन औरत थी। गांव में उसके मुकाबले की दूसरी औरत नहीं थी। लेकिन बेचारी का भाग्य ही खराब था। पहले समनी के पति को मौत उठा ले गई और फिर उसके पश्चात् उसके चारों बच्चों को एक-एक करके चट कर गयी। बेचारी के खेत भी जमीदार ने कर्ज न वसूल होने पर जोत-बो लियें। समनी को इन बिछुड़े हुओं के दुःखों ने पागल जैसा बना दिया था अथवा वह सचमुच पागल हो गयी थी इसे कौन कह सकता है। क्या वह भूमि में अपने पैरों से निशान बना-बना कर और फिर उन्हें मिटाकर यह नहीं बताती थी कि सारी दुनियां ही इन निशानों की तरह

मिटने वाली है। उसने यही बात तो जीवन भर निशान बना-बना कर सिद्ध की है और बाद को समय ने उसे मिटाकर उसके पीछे रहने वालों ने उसके घर और कब्र का निशान मिटा कर अनजाने ही यह सिद्ध करके दिखा दिया कि इस संसार से केवल समनी ही को नहीं मिटना है। बल्कि संसार के प्रत्येक प्राणी और संसार की प्रत्येक वस्तु को मिटना है।

इतनी बात तो मैंने अपनी समझ से लिखी लेकिन वह अपने पैर के जिन चिन्हों को पहले भूमि पर धूल से बनाती थी उन्हें मिटाने के पूर्व वह बड़े ध्यान से उन्हें क्यों देखती थी। क्या उन चिन्हों में उसे कोई ऐसा चिन्ह दिखाई देता था जिसे वही समझती और देखती हो और दूसरा कोई न उसे देख ही पाता हो। और न समझ ही पाता हो। मैं इस बात पर आज चालीस वर्षों से विचार कर रहा हूँ किंतु न तो समनी ही भूलती है और न वह भेद ही खुलता है। मुझे विश्वास है कि समनी को अब तक गांव का बच्चा बच्चा भूल चुका होगा लेकिन जीवन की कुछ घटनायें ऐसी होती हैं जो मानस पटल से मिटाने पर भी नहीं मिटती हैं। समनी की तमाम घटनायें भी मेरे मानस पटल पर कुछ इसी प्रकार से अंकित हो गई हैं जो मिटाये नहीं मिटती हैं। परंतु समनी उन निशानों में क्या खोजती और क्या देखती थी यह प्रश्न चालीस वर्षों से हल नहीं हो रहा है। क्या आप बता सकते हैं कि "वह क्या देखती थी?"

卐

दीपमालिका कहती गई

ले० राम अवतार अभिलाषी

मानस मनसिज,

इस बार भी तुम्हारा मनसिज कुम्हा हुआ है। तुम्हारी अवस्था भी इस समय गीता के अर्जुन के समान है जो भ्रमचित्त हो अपने कर्तव्य से विमुख हो जाता है।

> एवमुक्त्वार्जुनः संख्यें रथोपस्य उपाविशत्
> विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ (गीता १।

यह भी सत्य है कि इसमें तुम्हारा भी कोई दोष नहीं है। गत वर्ष से अब तक की अवधि में धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन कटु होता आ रहा है और यह कटुता कब तक बनी रहे इसके बारे भी किसी भी प्रकार की स्पष्टता अभी तक झलक नहीं पाई है। प्रत्येक मनुष्य ने अपने स्वार्थ-वश अपने चारों ओर का ऐसा संसार सृजित कर लिया है कि अब उसके लियें उससे पीछा छुड़वाना कठिन हो रहा है। आज डगमगाहट प्रत्येक के जीवन में घर कर गई है। मनुष्य से लेकर राष्ट्र तक दुविधाग्रस्त हैं। तुम्हारे राष्ट्र के लिये तो समय भी अपनी दयालुता को ताक में रख चुका है।

इस बार के भ्रमण में तो मुझे गत वर्ष से भी अधिक निराशा हुई है क्योंकि समस्याएं स्वयं निर्मित हैं। दुखी और आकुल भी हूं क्योंकि तुम्हारा एक कर्मठ, स्थित प्रज्ञ और कर्तव्यनिष्ठ वीर लाल बहादुर भी पुष्पोद्यान में लूट लिया

गया है। इस अकस्मात् वज्रपात ने जन मानस को टूक-टूक करके रख दिया है। विजय की सारी खुशी ओझल हो गयी है। शांति के लिये दिया गया बलिदान इतिहास का अमर अजर पृष्ठ हैं, किन्तु शांति के स्थायित्व में अभी भी पूर्ण संदेह है। शत्रु बड़ी जोर शोर से युद्ध की तैयारी में लगा है। मुझे याद आ रहा है कि तुमने तो कई वर्ष पूर्व ही शत्रु की ओर से सावधान रहने के लिये चेतना प्रदान की है अपनी कविता "सावधान" के माध्यम से। कुछ पंक्तियां उभर कर आ रही हैः—

सहज प्रवाह तुम देख नदी का, मत समझो है धार नहीं।
फूल खिले तुम देख चमन में, मत समझो है खार नहीं॥
अरि को बैठा मौन देखकर, मत समझो बलवान नहीं।
फटे चीथड़ों में लख अरि को, मत समझो धनवान नहीं॥
देख रहा है वह भी छिपकर, गतिविधि भारत वीरों की।
मां के सपूत कब सोते हैं, चाह रहा उनकी कमजोरी॥

इस प्रकार बाह्य संघर्ष आशंकाओं से भरपूर है। आंतरिक वातावरण भी अकुलाहट मय है। गतवर्ष के सूखे ने सभी को निराशा से भर दिया है। जो धन से दबे बैठे हैं उनकी स्थिति तो अलग है ही क्योंकि वे किसी भी भाव पर खाद्य सामग्री खरीदने में समर्थ हैं जिससे चोर बाजारी प्रोत्साहित होती आ रही है और दिन प्रति दिन बलवती होती जा रही है। इसी कारण उपलब्ध खाद्य भी भण्डारों की कैद में है, इसको मैंने घूम घूम कर अच्छी तरह पा लिया था, इसका चित्रण तुम्हारी

कविता "मौत लौट गई" में उपलब्ध है ही:—

दुर्भाग्य वश मौत लौट गयी
तथा मुझे छोड़ गई
महंगाई से टकराने के लिये
इस जगत की असंख्य
घृणाओं से जूझने के लिए
किन्तु आदेश कर गई
केवल भुखमरी से मरने के लिए
और मैं विवश हो
फिर आगे बढ़ गया।

यह कुछ राहत की बात है कि इस वर्ष वरुण देवता ने आपकी जाति को अपने आशीषों से माला माल कर दिया किन्तु उन्हें आशीषों का फल तभी सर्वत्र प्रकट हो सकेगा। जब कि श्रमशीलता के साथ साथ प्रत्येक के हृदय में निस्वार्थ भावना का भी उदय हो। सांसारिक विषयकामनाओं में न लिप्त होकर सभी का कार्यरत रहने से ही मानवता की रक्षा हो सकती है। भगवान कृष्ण ने भी तो गीता में ऐसा ही कुछ अर्जुन के लिये कहा है:—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रै गुण्यो भवार्जुन
निर्द्वन्द्वो नित्य सत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान॥ २।४५

हे अर्जुन, वेद तीनों गुणों के विषयों को प्रकाश में लाने वाले हैं, अतएव तुम्हारे लिए द्वन्द्वों से रहित, नित्यत्व में

स्थित तथा योग क्षेम को न चाहने वाला होते हुयें आत्मवान बनना ही योग्य है।

किन्तु मनसिज,

लगता ऐसा है कि महान् वाणियों को जो आपके समाज ने केवल पुस्तकों के योग्य ही समझ लिया है। आचरण की दृष्टि में तो आप लोग अव्यवहारिक बने हुये हैं। मान्यताएं और परिभाषायें भी बदल दी गयी हैं जैसा कि तुमने स्वयं अपनी कविता "कैसा हिन्दुस्तान है ?" में इसे स्वीकार किया है। तुम्हारा अन्तस् कितना दुखी है, किन्तु नक्कार खाने में तुम्हारी तूती की आवाज को सुनता ही कौन है। तुम इन्सानियत के पर्यायवाचियों (असत्य वादिता, आत्म-प्रशंसा, भ्रष्टाचार, भाई भतीजा वाद, नास्तिकता, हड़पना, कामुकी प्रदर्शन इत्यादि) को कितना ही दोहराते रहो और कितना ही कहते रहो कि

सत नहीं लज्जा नहीं प्रण भी नहीं
शान बान दूर अपनी आन नहीं
कहँ तलक कहती रहेगी लेखिनी
यहँ तहँ जीने की फुरसत भी नहीं
अपनी मौत आप बन रही इन्सानियत
आज न जाने यह कैसा हिन्दुस्तान है ?

हिन्दुस्तान कभी कैसा था और आज इसका रूप कितना घिनौना सा है, यह वास्तव में कचोटता है। भौतिक प्रगति की होड़ में यह अपनी आध्यात्मिक शक्ति को गँवाता ही जा रहा है, ऐसी दशा में यदि अमेरिका का जन-मानस इसे गुरु

की अपेक्षा भिखारी के रूप में देखने की भूलकर बैठे आश्चर्य नहीं क्योंकि कृषि-प्रधान देश के होते हुए भी उनसे खाद्य-सामग्री की भीख मांगना कितनी अपमा विडम्बना है? रुपये के अवमूल्यन से भी एक धाके इसके मान को धक्का पहुँचा ही है। यह अलग बात है बाद में सँभला आता चला जाए किन्तु महँगाई को काबू में आना कठिनसा ही दिखाई देता है। इन सब परिणामों का दोष केवल सरकार पर भी नहीं थोपा जा सकता क्योंकि यदि आज तुम्हारी जाति के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष व्यवहार हो तो आत्म-सम्मान भी उसी गति से होता चला जायेगा। चरित्र के परिवेश में मनुष्य के सब क्रिया कलाप सन्निहित हैं। धर्म, समाज, और राजनीति के क्षेत्र में जब तक चरित्र का निखार नहीं होगा तब तक किसी भी शुभ की कल्पना करना मूर्खता ही है तब तुम बार बार यह दोहराते ही रह जाओगे :--

> चरित्र से भला अब किसको प्यार है
> कामुकता का हो रहा प्रचार है
> चाल ढाल बेढंगी है हो रही
> व्यभिचार का हो रहा प्रसार ॥

हां अभिलाषी,

लूप ने व्यभिचार को तथा मानव को कामुकी बनने में आगमें घीका काम किया है जिससे कामुकता का सीमा से पर का प्रभाव छाता जा रहा है जिस कारण बुद्धि का संयमी-पक्ष कमजोर होता जा रहा है और यही सब बुराइयों के

जड़ है क्योंकि इससे फिर नाशवान काम (सभी प्रकार की इच्छाएं) बलवान होता है और यह काम ज्ञान को ढक लेता है ।—

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा
काम रूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥(गीता३/३९

इस लिए इसके प्रभाव को कम करने के लिए आवश्यक है प्रत्येक धुएं में लिपटी अपनी आत्मा को पहचाने, उसके आदेशानुसार आचरण करते हुए वास्तविक शक्ति को समझकर दुर्जय काम रूप शत्रु को मारे ।--

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना
जहि शत्रुं महाबाहो काम रूपं दुरासदम् ॥ (गीता ३।४३)

तब उस अवस्था में दृढ़ आस्था के साथ गो वध भी बन्द करवाया जा सकेगा और तब फिर दुग्ध की नदी बहने लगेगी ।

प्रिय अभिलाषी,

इस समय तुम जो अपने को एकाकी अनुभव करते हो उस भावना को मार भगाओ और सत्य की लहर को प्रवाहित करो क्योंकि सत्य की एक लहर का भी स्थायी प्रभाव होता है। तुम्हें तो सांसारिक उतार चढ़ाव से अप्रभावित होकर एक पण्डित के समान आचरण करना ही शोभा दे सकता है। भगवान कृष्ण की यह वाणी ग्रहण कर लेनी ही चाहिए—

अशोच्यानन्व शोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे
गतासून गतां सूंश्च नानु शोचन्ति मण्डितः ॥ गीता २।११।

अच्छा अब मैं चलती हूं । सभी शुभ रहे ।

रामचरित मानस

(रामायण)

टीकाकार -

योगीराज
श्री उमेशचन्द्रजी

(गतांक से आगे)

शतानन्द अरु विप्र सचिव गण,
मागध, सूत, विदुष बन्दी जन,
सहित बरात राउ सनमाना,
आयसु मांगि फिरे अगवाना ।

मुनि शतानन्द, ब्राह्मण, मंत्रिगण, मागध, सूत, विद्वा और भाटों ने महाराज दशरथ का बारात सहित स्वाग सम्मान किया और आज्ञा लेकर अगवान लोग लौट आ

प्रथम बरात लगन ते आई
ताते पुर प्रमोद अधिकाई,
ब्रह्मानन्द लोग सब लहहीं,
बढ़हु दिवस-निशि विधिसन कहहीं।

बारात विवाह मुहूर्त से पहले ही आ गई है, इसलि सारे नगर में उत्साह अधिकाधिक छा गया है। लोग ब्र

नन्द की अनुभूति में मग्न हैं और विधाता से विनय कर रहे हैं कि वह दिन रात की सीमा और भी अधिक बढ़ा दें।

राम-सीय शोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज,
जहँ-तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नर-नारि-समाज

राम और सीता सौन्दर्य की सीमा हैं और सत् कर्मों की सीमा हैं दोनों राजा—दशरथ और जनक। यत्र तत्र पुरवासी नर-नारी समाज उपर्युक्त मन्तव्य प्रकट कर रहा है—परस्पर बातचीत कर रहा है।

जनक सुकृत-मूरति वैदेही,
दशरथ सुकृत राम धरि देही,
इन सम काहु न शिव अवराधे,
काहु न इन समान फल लाधे ॥

जनक के सुकृत मानो वैदेही-सीता के रूप में मूर्तिमान हो उठे हैं और दशरथ के सुकृत राम के रूप में साकार हो उठे हैं। इनके समान किसी ने भी भगवान शिव की पूजा अर्चना नहीं की और उनके समान अन्य किसी ने भी इस प्रकार अपने सुकर्मों का फल नहीं पाया।

इन सम कोउ न भयौ जगमाहीं,
है नहिं कतहूं, होनेउ नाहीं,
हम सब सकल सुकृत के रासी,
भये जग जनमि जनकपुर वासी।

इनके समान जग में न तो कभी कोई हुआ है, न आज विद्यमान है और न भविष्य में कोई होगा। हम सब भी पुण्य-

पुंज और भाग्यशाली हैं, क्योंकि हमारा जन्म जनकपु
हुआ है ।

जिन जानकी राम-छवि देखी,
को सुकृती हम सरिस विशेषी,
पुनि देखब रघुवीर विवाहू,
लेब भली विधि लोचन लाहू ।

जिन्होंने जानकी और राम के सौन्दर्य का दर्शन कर लि
है, उन हमारे सुकृती-भाग्यवान कौन है ? अब आगे राम
विवाह भी देखेंगे और नेत्रों का अस्तित्व सफल करेंगे—
उठायेंगे ।

कहहिं परस्पर कोकिल बयनी,
यहि विवाह बड़ लाभ सुनयनी,
बड़े भाग्य विधि बात बनाई,
नयन अतिथि होइहैं दोउ भाई ।

कोकिल कण्ठी वनिताएं परस्पर बातचीत कर रही हैं
हे सुनयनी, यह विवाह परम लाभदायी है । बड़े भाग्य
विधाता ने यह आयोजन बना दिया है । दोनों भाई इ
नेत्रों के अतिथि बनते रहेंगे ।

बारहिं बार सनेह वश, जनक बोला उब सीय,
लेन आइहैं बन्धु दोउ, कोटि काम कमनीय ।

जनक बारंबार स्नेहवश सीता को जनकपुर बुलायें
और कोटिशः कामदेवों की सौन्दर्य-राशि से परिपूर्ण दों
भाई सीता को लेने यहां आया करेंगे ।

विविध भांति होइहिं पहुनाई
प्रिय न काहि अस सासुर माई,
तब-तब राम लखनहिं निहारी,
होइहैं सब पुर लोग सुखारी ।

यहां उनका नाना रूपों में आतिथ्य होगा । ऐसी ससुराल भला किसे प्रिय न होगी ! उस समय जनकपुर के लोग उन राम लक्ष्मण को देखकर परमानन्द का अनुभव करेंगे ।

सखि जस राम-लखन कर जोटा,
तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा,
श्याम गौर सब अंग सुहायें,
ते सब कहहिं, देखि जे आये ।

सखी ! जैसी राम लक्ष्मण की जोड़ी है, उसी तरह के राजा के साथ भी दो बालक हैं । उनमें भी एक श्याम और एक गौर वर्ण हैं, उनके अंग सुहावने हैं । यह सब वे लोग बता रहे हैं, जो उनको देख आये हैं ।

कहा एक, हम आज निहारे,
जनु विरंचि निज हाथ संवारे,
भरत राम ही की अनुहारी,
सहसा लखि न सकहिं नर-नारी ।

एक अन्य सखी ने बताया—मैंने आज ही उन्हें देखा है, मानो विधाता ने स्वयं अपने हाथ से उनकी रचना की हो । भरत के अंग प्रत्यंग और आकार-प्रकार राम से पूर्णतया मिलते जुलते हैं । वह सहसा पहचाने नहीं जाते ।

लखन-शत्रुसूदन एक रूपा,
नख-सिख सब अंग अनूपा,
मन भावहिं, मुख बरणि न जाई,
उपमा कहुँ त्रिभुवन महँ नाहीं।

लक्ष्मण और शत्रुघ्न-दोनों का रूप एक समान है। नख से शिखा तक के दोनों के अंग प्रत्यंग अनुपमेय हैं। वे मनोमुग्धकारी हैं उनके मुखों का वर्णन नहीं किया जा सकता। अखिल त्रिभुवन में उनका उपमेय कहीं नहीं है।

उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुं कवि-कोविद कहैं,
बल-विनय-विद्याशील, शोभा सिन्धु इन से एइ अहैं,
पुरनारि सकल पसारि अंचल विधिहिं वचन सुनावहीं,
ब्याहिहहु चारिउ भाई एहिपुर हम सुमंगल गावहीं

तुलसीदास कहते हैं और अन्य कवि-कोविदों का भी यही कहना है कि इनके उपमेय खोज निकालने वाला कोई नहीं, बलवान, विनम्र स्वभाव विद्या-सम्पन्न सौन्दर्य राशि इनके समान यही हैं। इनका सादृश्य कहीं नहीं। जनकपुर की स्त्रियां अंचल फैलाकर विधाता से विनम्र वाणी में कह रही हैं—मांग कर रहीं हैं कि इन चारों भाइयों का ब्याह जनकपुर में ही हो और हम मंगल गान करें।

कहहिं परस्पर नारि, वारि विलोचन, पुलक तन,
सखि सब करब पुरारि, पुण्य-पयोनिधि भूप दोउ।

आखों में प्रेमाश्रु भर कर और पुलकित भाव से वह नारियां परस्पर कह रही हैं कि सखी! सबकी सदिच्छाओं को

भगवान त्रिपुरारि पूरा करेंगे, क्योंकि दोनों राजाओं का पुण्य प्रभाव अपरिमेय है।

यहि विधि सकल मनोरथ कहहीं,
आनन्द उमँगि उमँगि उर भरहीं,
जे नृप सीय स्वयंवर आयें,
देखि बन्धु दोउ तिन सुख पायें।

इस प्रकार सब स्त्रियां अपनी अपनी हार्दिक आकांक्षाएं प्रकट कर रही हैं और आनन्द तथा उमंग से अपने हृदय को भर रही हैं। जो राजा सीता के स्वयंबर में आयें हुयें थे, वे दोनों भाइयों को देख कर परम प्रसन्न हुए।

कहत राम यश विशद विशाला,
निज-निज भवन गयें महिपाला,
गयें बीति कछु दिन एहि भांतीं,
प्रमुदित परिजन, सकल बरातीं।

राम के विशद विशाल यश को परम कहते हुये समागत राजा अपने-अपने घर चले गये। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गयें। सभी बाराती और पुरवासी बहुत प्रसन्न हैं।

मंगलमूल लगन-दिन आवा,
हिम-ऋतु, अगहन मास सुहावा,
ग्रह, तिथि, नखत, योग वर वारू,
लगन शोधि विधि कीन विचारू।

मंगलमय लगन दिन-विवाह-तिथि आ पहुँची। शुभ ग्रह तिथि, नक्षत्र, योग और दिन विचार कर विधाता ने लगन

निश्चित किया कि हेमन्त ऋतु का अगहन महीना विवाह के लिये श्रेष्ठ है।

पठै दीन नारद सन सोई,
गनी जनक के गनकन जोई,
सुनी सकल लोगन यह बाता,
कहैं ज्योतिषी आहिं विधाता।

लग्न पत्रिका ब्रह्मा ने नारद के हाथ भेज दी। यह पत्रिका वैसी ही थी, जैसी जनक के गणकों-ज्योतियों ने गणना की थी। जब लोगों ने यह बात सुनी, तब कहने लगे कि ज्योतिषी विधाता हैं।

धेनुधूलि, वेला विमल, सकल सुमंगल मूल,
विप्रन कहेउ विदेह सन, जानि सगुन अनुकूल।

जब मंगलमूल और पावन धेनुधूलि की वेला आ पहुँची, तब विप्रों ने राजा जनक से कहा—मंगल शकुन हो रहें हैं, यह मुहूर्त अनुकूल है।

उपरोहितहिं कहेउ नर-नाहा,
अब विलम्ब कर कारण काहा,
शतानन्द तब सचिव बुलायें,
मंगल सकल साजि सब लायें

पुरोहित से राजा जनक ने कहा—अब विलम्ब का क्या कारण है ? तब शतानन्द ने मंत्रियों को बुलवाया और वह समग्र मंगल साज सजाकर—मांगलिक आयोजन करके ले आए।

शंख निशान पनव बहु बाजे,
मंगल कलश, सगुन सब साजे,
सुभग सुआसिनि गांवहिं गीता,
करहिं वेद ध्वनि विप्र पुनीता,

शंख, नगाड़े, ढोलक आदि वहुत से वाद्य बजने लगे और मंगल-कलश शकुनमय साज सजने लगा। सुन्दरी सौभाग्यशालिनी स्त्रियां गीत गाने लगीं और पवित्र ब्राह्मण वेदोच्चार करने लगे।

लेन चले सादर यहि भांतीं,
गयें जहां जनवास बरातीं,
कोशलपति कर देख समाजू,
अति लघु लाग तिनहिं सुरराजू।

इस प्रकार सब लोग आदरपूर्वक बारात को लाने के लियें चले और जनवासे में पहुँचे। कोशलपति के गौरवशाली विराट् समाज को देखकर उन्हें देवराज इन्द्र अत्यन्त छोटे प्रतीत हुए।

भयौ समय अब धारिय पाऊं,
यह सुनि परा निशानन धाऊं,
गुरुहिं पूछि करि कुल-विधि राजा,
चले संग मुनि साधु समाजा।

उन्होंने राजा दशरथ से कहा—समय हो गया है, हमारे घर में पैर रखियें। यह सुनते ही नगाड़े बजने लगे। गुरु से पूछकर सारा कुलाचार सम्पन्न कर राजा मुनि और साधु समाज के साथ जनक के राजगृह की ओर चले।

भाग्य विभव अवधेश कर, देखि देव ब्रह्मादि,
लगे सराहन सहस मुख, जानि जन्म निज बादि।

अवधराज दशरथ का भाग्य और ऐश्वर्य देखकर देव और ब्रह्मा आदि सहस्रमुख से उनकी सराहना करने लगे, अपने जन्म को वृथा मानते हुए।

सुर सुमंगल अवसर जाना,
बर्षहिं सुमन बजाय निशाना,
शिव-ब्रह्मादिक विबुध बरूथा,
चढ़े विमाननि नाना यूथा।

मंगल अवसर समझकर देवगण नगाड़े बजाते हुए पु की वर्षा करने लगे। शिव ब्रह्मादि का देवसमुदाय ना समूहों में विमान पर आसीन होकर—

प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू,
चले विलोकन राम विवाहू,
देखि जनकपुर सुर अनुरागे,
निज-निज लोक सबहिं लघु लागे।

देह प्रेम से पुलकायमान हो रहा है। वे सब हृदय में उत्साह भरकर राम का विवाह देखने के लिये चले। जनकपुर की महिमा देखकर देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और अपने अपने लोकों को हीन मानने लगे।

चितवहिं चकित विचित्र विताना,
रचना सकल अलौकिक नाना,
नगर नारि-नर रूप-निधाना,
सुघड़, सुधरम, सुशील, सुजाना,

वे चकित भाव से उस विचित्र वितान (मंडप) तथा उसकी लोकोत्तर रचना को देखने लगे। नगरवासी नर-नारी रूप-राशि, सुडौल, धर्मपरायण, सुशील. और सुविज्ञ हैं।

तिनहिं देखि सब सुर सुरनारी,
भये नखत जनु विधु उजियारी,
विधिहिं भयो आचरज विशेषी,
निज करनी कछु कतहुं न देखी।

उन्हें देखकर सभी देव और देव-नारियां ऐसे झेंप गये, जैसे चन्द्रोदय होने पर नक्षत्र-समूह निष्प्रभ हो जाता है। वहां की विविध रचना देखकर विधाता को अपनी कला कुशलता कहीं दिखाई न दी।

शिव समझाये देव सब, जनि आचरज भुलाहु,
हृदय विचारहु धीर धरि, सिय-रघुबीर विवाहु।

शिव ने सब देवों को समझाया कि आश्चर्य से मति-भ्रांत मत बनो और मन में धैर्य धारण कर सीता और राम के विवाह का विचार करो।

जिन कर नाम लेत जगमाहीं,
सकल अमंगल मूल नसाहीं,
करतल होहिं पदारथ चारी,
ते सिय-राम कहेउ त्रिपुरारी।

जिनका नाम लेते ही जगत् में सारे अमंगल समूल नष्ट हो जाते हैं, चारों पदार्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–स्वायत्त हो जाते हैं–अधीन हो जाते हैं, भगवान शंकर ने बताया कि यह वही महामहिमामय सीता और राम हैं।

यहि विधि शंभु सुरन समझावा,
पुनि आगे वर वसह चलावा,
देवन देखे दशरथ जाता,
महामोद मन, पुलकित गाता।

इस प्रकार शंकर जी ने देवताओं को समझाया औ
अपना वृषभ पुनः आगे बढ़ाया। देवताओं ने देखा कि रा
दशरथ चले जा रहे हैं। उनका मन प्रसन्नता से परिपूर्ण औ
शरीर पुलकित हो रहा है।

साधु समाज संग महिदेवा,
जनु तन धरे करहिं सुख सेवा,
सोहत साथ सुभग सुत चारी।
जनु अपवरग सकल तन धारी।

उनके आसपास साधु-महात्माओं और ब्राह्मणों का समु
दाय इस प्रकार सुशोभित हो रहा है, मानो सारे सुख साका
रूप धारण कर सेवा में निरत हों। साथ में, चारों पुत्र ऐसे
शोभित हो रहे हैं, मानो समग्र अपवग साकार हो उठे हों

मरकत कनक बरन वर जोरी,
देखि सुरन भै प्रीति न थोरी,
पुनि रामहिं बिलोकि हिय हरषे,
नृपहिं सराहि सुमन तिन बरसे।

मरकत मणि की तरह नीलवर्णी और स्वर्ण-वर्णी दोनों
जोड़ियों को देखकर देवगण अपरिमित प्रेम से भर उठे। पुन
राम का अवलोकन कर उनका अन्तर आनन्द से ओत-प्रो
हो उठा। राजा की सराहना करते हुए उन्होंने फूल बरसाये

राम रूप नख-शिख सुभग, बारहिं बार निहारि,
पुलक गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि।

राम के अंग प्रत्यंगों का सौन्दर्य और एकत्रित रूप-राशि को बारंबार देखकर उमासहित भगवान त्रिपुरारि-शंकर के नेत्र सजल हो उठे-उनमें प्रेमाश्रु उमड़ आये और अंग पुलकित हो उठे।

केकि कण्ठ दुति श्यामल अंगा,
तड़ित विनिन्दक वसन सुरंगा,
ब्याह विभूषण विविध बनाये,
मंगल सब, सब भांति सुहाये।

भगवान् राम के मयूर-कण्ठ की कांति से सुशोभित श्याम अंग और विद्युत प्रभा को मलिन करनेवाला पीत वस्त्र तथा सब तरह से मंगलकारी और सुहावने विविध वैवाहिक आभूषणों से अलंकृत अंग-प्रत्यंग है।

शरद विमल विधु वदन सुहावन,
नयन नवल राजीव लजावन,
सकल अलौकिक सुन्दरताई,
कहि न जाय, मन ही मन भाई।

उनका मुख शरद ऋतु के धवल चन्द्र सा शोभायमान है और नेत्र नवविकसित राजीव-कमल को भी लज्जित कर रहे हैं। राम का सारा सौन्दर्य लोकोत्तर है अर्थात् वैसा सौन्दर्य भू मंडल भर में कहीं भी नहीं है उसका वर्णन करना संभव नहीं, मन में ही अनुभूत किया जा सकता है।

बन्धु मनोहर सोहत संगा,
जात नचावत चपल तुरंगा,
राजकुंवर वर बाजि देखावहिं,
वंश प्रशंसक विरुद सुनावहिं ।

उनके साथ सुन्दर बन्धु सुशोभित हैं और वे चं अश्वों को नचाते हुए जा रहे हैं। राजकुमार परमोत्तम अश्वों को—उनकी मनोहर गति-विधि का प्र करा रहे हैं और वंश के प्रशंसक भाट आदि यशोगान रहे हैं।

जेहि तुरंग पर राम विराजे;
गति विलोकि खगनायक लाजे
कहि न जाय सब भांति सुहावा,
बाजि वेश जनु काम बनावा ।

जिस अश्व पर राम सुशोभित हैं उसकी वेगवती ग को देखकर पक्षिराज-गरुड़-भी लज्जित हो उठे । उस वर्णन किया नहीं जाता, वह सब तरह से सुहावना है, मा अश्व की वेश-भूषा की रचना स्वयं कामदेव ने की हो।

जनु वाजि-वेश बनाय मनसिज राम हित अति सोहई,
आपने वय, बल, रूप, गुण, गति, सकल भुवन विमोहई,
जगमगत जोति जराव जोति सुमोति मणि माणिक लगे,
किंकिणि ललाम, लगाम ललित विलोकि सुर-नर मुनि ठगे

राम का अश्व इतना मनोहारी है, मानो स्वयं कामदेव राम के लिए उस अश्व की वेश-भूषा को सुसज्जित कि हो। राम अपनी आयु, शक्ति, रूप, गुण, गति आदि से सम

विश्व को विमुग्ध कर रहे हैं । सुन्दर मुक्तामणि माणिक-मंडित और ज्योति से जगमगातीं जीन मनोहर किंकिणी (घुंघुरू) और सुहावनी लगाम का अवलोकन कर देव, मानव और मुनि भी ठगे से रह गए—आत्म स्मृत हो गए।

प्रभु मनसहिं लयलीन मन, चलत बाजि छवि पाव,
भूषित उडुगण-तड़ित घन, जनु वर वरहिं नचाव ।

भगवान् राम की इच्छा में अपने मन को तन्मय किए हुए संचलनशील वह अश्व इस प्रकार शोभित हो रहा है, मानो तारिकावली विद्युत से समलंकृत मेघ सुन्दर मोर को नचा रहा हो ।

जेहि वर बाजि राम असवारा,
तेहि शारदौ न वरणै पारा,
शंकर राम रूप अनुरागे,
नयन पंचदश अति प्रिय लागे ।

जिस सुन्दर अश्व पर राम ने आरोहण किया है, उसकी महत्ता का वर्णन शारदा भी नहीं कर सकतीं । शंकर राम के रूप को देखकर इतने मुग्ध हो उठे कि उन्हें अपने पन्द्रह नेत्र अत्यन्त प्रिय प्रतीत हुए ।

हरि हित सहित राम जब जोहे,
रमा समेत रमापति मोहे,
निरखि राम छबि विधि हरषाने,
आठै नयन जानि पछिताने ।

भगवान विष्णु ने जब प्रेमपूर्वक राम को देखा, तब वे भी लक्ष्मी सहित विमुग्ध हो उठे। राम के सौन्दर्य को देखकर विधाता भी आनन्द-विभोर हो उठे और आठ ही नेत्र आनन्द उन्हें पश्चात्ताप होने लगा।

सुर सेनप उर बहुत उछाहू,
विधि ते डेवढ़ लोचन लाहू,
रामहिं चितव सुरेश सुजाना,
गौतम श्राप परम हित माना।

देवताओं के सेनापति स्वामिकार्तिक का अन्तःकरण परमोत्साह से सरावोर हो उठा है, क्योंकि वह ब्रह्मा से ड्योढ़े-बारह-नेत्रों से दर्शन लाभ प्राप्त कर रहे हैं। सुरेश (इन्द्र) सहस्रनेत्रों से राम के सौन्दर्य का दर्शन कर रहें। इस समय उन्होंने महर्षि गौतम के श्राप को परम श्रेयस्कर समझा।

देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं,
आज पुरन्दर सम कोउ नाहीं,
मुदित देवगण रामहिं देखी,
नृप-समाज दुहुं हरष विशेषी।

सभी देव सुरराज इन्द्र के भाग्य की सराहना कर रहे हैं और कह रहे हैं कि आज देवराज समान अन्य किसी का भी अहोभाग्य नहीं। देवगण हर्षातिरेक से राम को देख रहे हैं और दोनों राजाओं के समाज में भी विशेष आनन्द भर रहा है

अति हरष राज-समाज, दुहु दिशि दुंदुभी बाजहिं घनी,
बरषहिं सुमन सुर, हरषि कहि जय जयति जय रघुकुल मनी

एहि भांति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं,
रानी सुआसिनि बोलि परिछनि हेतु मंगल साजहीं ।

दोनों राज-समाज अत्यन्त आनन्द मग्न हैं और दोनों ओर बहुत सी दुन्दुभियां बज रही हैं । देवगण हर्ष मग्न होकर और रघुकुल मणि राम की जय-जयकार कर पुष्पवर्षा कर रहे हैं। इस प्रकार बारात को आती हुई जानकर नाना प्रकार के बाजे बजने लगे और रानी सौभाग्यवती स्त्रियों को बुलाकर परछन के लिये मंगल द्रव्य सजाने लगीं ।

सजि आरतीं अनेक विधि, मंगल सकल सँवारि,
चली मुदित परछनि करन, गजगामिनि वर नारि ।

विविध प्रकार से आरती और सभी मांगलिक वस्तुओं को सजाकर हाथी की तरह मन्दगति से चलनेवाली सौन्दर्यमयी नारियां प्रसन्न मन परछन के लिये चलीं ।

विधुवदनी सब, सब मृगलोचनि,
सब निज तन छवि रति-मदमोचनि,
पहिरे बरन-बरन वर चीरा,
सकल विभूषण सजे शरीरा ।

सभी के मुख चन्द्र की तरह कांतिमान हैं,सबके नेत्र मृगों की तरह विशाल और चंचल हैं और सभी अपने शरीर सौन्दर्य से रति के दर्प को दलन कर रही हैं । वे सबके शरीर रंग-बिरंगे विविध वस्त्रों से और समस्त आभूषणों से अलंकृत हैं ।

सकल सुमंगल अंग बनायें,
करहिं गान कलकंठि लजायें,

कंकण किंकिणिनूपुर बाजहिं,
वाल विलोकि कामगज लाजहिं।

उन सबने अपने अंग-प्रत्यंगों को मांगलिक उपादानों सजाया है। उनके मधुर गीतों से कलकण्ठी कोकिल लज्जित हो रही है। कंगन, करधनी और नूपुर आदि के मधुर ध्वनि गूंज रही है और उनकी चालको देख कामदेव के हाथी भी लजा रहे हैं।

बाजहिं बाजन विविध प्रकारा
नभ अरु नगर सुमंगलचारा,
शची शारदा रमा भवानी,
जे सुरतिय शुचि सहज सयानी।

विविध प्रकारके बाजे बज रहे हैं तथा आकाश और नगर में मंगलाचार हो रहे हैं। शची,शारदा, लक्ष्मी, भवानी आदि स्वभावतः पावन और गरिमामयी देव- नारियां–

कपट नारि वर वेश बनाई,
मिली सकल रनिवासहिं जाई,
करहिं गान कल मंगल वाणी,
हरष विवश सब, काहु न जानी।

सब मानवी स्त्रियोंका सुन्दर छद्म वेश धारण कर रनिवास में जा मिलीं और मंगलवाणी से मधुर गीत गाने लगीं। उस आनन्द-परवश भाव-विभोरता में कोई किसीको पहचान न पाया।

को जान केहि आनन्दवश सब ब्रह्म वर परछनि चलीं,
कल गान, मधुर निशान, वरषहि सुमन सुर, शोभा भली।

आनन्दकन्द विलोकि दूलह सकल हिय हर्षित भई,
अंभोज अंबक अंबु उमँगि सु-अंग पुलकावलि छई।

भला कौन किसको जाने! सभी आनंद-रस से सराबोर होकर दूलहरूप ब्रह्म की परछन करने को चली। मधुर गीत गाये जा रहे हैं। नगाड़ों से मधुर ध्वनि निकल रही है। देवगण फूल बरसा रहे हैं, यह सब शोभा बहुत अच्छी लग रही है। आनन्द-निकेतन दूलह को देख कर सब नारियां अत्यन्त प्रसन्न हो उठीं। उनके अंभोज अंबकों-कमल नेत्रों में प्रेमजल उमड़ आया और अंग पुलकायमान हो उठे।

जो सुख भा सिय-मातु मन, देखि राम वर वेश,
सो न सकहिं कहि कलप शत, सहस शारदा शेष।

राम को वर (दूलह) के वेश में देख कर जो सुख सीता जी की माता के मन में हुआ, उसे सहस्रशः शेष और शारदा सैकड़ों कल्पतक कहते रहें, तो भी उसका अन्त नहीं हो सकता।

नयन नीर हटि मंगल जानी,
परछनि करहिं मुदित मन रानी,
वेद विहित अरु कुल आचारू,
कीन भली विधि सब व्यवहारू।

नेत्रों में उमड़े हुए प्रेमाश्रुओं को बलवंत् रोक कर प्रसन्न मन रानी परछन लगी। उन्होंने वेदों के कथनानुसार और कुलाचार के अनुसार सभी विधान विधिवत् संपन्न कियें।

पंच शबद करि मंगल गाना,
पट पांवड़े परहिं विधि नाना,

करि आरती अरघु तिन दीना,
राम गवन मंडप तब कीना।

पंच शब्द हो रहे हैं अर्थात् पांच प्रकार के बाजे बज रहे और वेदध्वनि, शंखध्वनि, जयध्वनि, बन्दिध्वनि और हुलूध्वनि यह पंच ध्वनियां हो रही हैं और अनेक प्रकार के वस्त्रों के पांवड़े पड़ रहे हैं। रानी ने आरती करके अर्घ्य दिया और रामने मंडप की ओर गमन किया।

दशरथ सहित समाज विराजे,
विभव विलोकि लोकपति लाजे,
समय-समय सुर वर्षहिं फूला,
शांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला।

जब अपने समाज के साथ दशरथ विराजमान हुए तब उनके इस ऐश्वर्य का अवलोकन कर लोकपति भी लज्जित हो उठे। यथा समय देवगण फूलों की वर्षा करने लगते हैं तथा भूदेव-ब्राह्मण समय के अनुसार शान्ति-पाठ करने लगे।

नभ अरु नगर कोलाहल होई,
आपन-पर कछु सुनै न कोई,
यहि विधि राम मंडपहिं आये,
अरघ देइ आसन बैठाये।

आकाश और नगर में कोलाहल हो रहा है सर्वत्र एक हलचल-सी दृष्टिगोचर हो रही है। कोई अपने-पराये की नहीं सुन रहा है। इस प्रकार राम मंडप में पधारे और अर्घ्य देकर उन्हें आसन पर बैठाया गया।

बैठारि आसन, आरती करि, निरखि बर सुख पावहीं,
मणि, वसन, भूषण भूरि वारहिं, नारि मंगल गावहीं,
ब्रह्मादि सुरवर विप्र वेष बनाय कौतुक देखहीं,
अवलोकि रवि-कुल-कमल-रवि छवि सुफल जीवन लेखहीं ।

आसन पर आसीन कर, आरती कर और वरको देखकर वह परम सुख का अनुभव कर रही हैं । मणि-मुक्ता, वस्त्र, आभूषण आदि अधिक मात्रा में निछावर करके नारियां मंगल-गीत गा रही हैं । ब्रह्मा आदि शीर्ष देवगण ब्राह्मणों का वेश धारण कर विवाह-कार्य कौतूहल पूर्वक देख रहे हैं और रवि-कुल-कमल-दिवाकर के दिव्य सौंदर्य का अवलोकन कर अपने जीवन को सफल मान रहे हैं ।

नाऊ, बारी, भाट, नट, राम निछावरि पाय,
मुदित अशीषहिं नाय सिर, हर्ष न हृदय समाय ।

नाऊ, बारी, भाट, नट आदि रामकी निछावर पा करके प्रसन्न मन आशीष दे रहे हैं, उनके हृदय में आनन्द समा नहीं रहा है ।

मिले जनक दशरथ अति प्रीती,
करि वैदिक लौकिक सब रीती,
मिलना महा दोउ राज विराजे,
उपमा खोज-खोज कवि लाजे ।

सब वेदोक्त विधान और लोकाचार सम्पन्न कर जनक और दशरथ अत्यन्त प्रेमपूर्वक मिले । इस मिलाप काल में दोनों महाराजाधिराज परम शोभायमान हो उठे । कविगण उनके उपमेय की खोज करते ही रह गए ।

लही न कतहुं हार हिय मानी,
इन सम यह उपमा उर आनी,
सामध देखि देव अनुरागे,
सुमन बरसि यश गावन लागे।

फिर भी उन्हें कहीं उनकी उपमा मिल न सकी, अतः वह कहने लगे—"इनके समान यही हैं"—अर्थात् इनका उपमेय खोज निकालना असंभव है। दोनों समधियों का यह आनन्द मिलाप देखकर देवगण प्रेम-विभोर होकर पुष्प बरसाने लगे, यशोगान करने लगे।

जग विरंचि उपजाव जब ते;
देखे-सुने ब्याह बहु कब ते,
सकल भांति सम साज समाजू
सम समधी देखे हम आजू :

जबसे विधाता ने सृष्टि का निर्माण किया है, तब से अब तक बहुतेरे विवाह हमने देखे और सुने हैं, लेकिन सभी प्रकार साज—समाज की समानता और पूर्ण समतामय समधी तो हमने आज ही देखे हैं।

देव-गिरा सुनि सुन्दर सांची,
प्रीति अलौकिक दुहुं दिशि माची,
देत पांवड़े, अरघ सुहायें,
सादर जनक मंडपहिं लायें।

देवों की यह सुन्दर और सत्यवाणी को सुनकर दोनों समाज लोकोत्तर प्रेम-भाव से परिपूर्ण हो गए। सुन्दर पांवड़े

बिछाते और अर्घ्य समर्पित करते हुये जनक दशरथ को मंडप में सम्मान पूर्वक ले आये ।

मंडप विलोकि विचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे,
निज पाणि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंहासन धरे,
कुल इष्ट सरिस वसिष्ठ पूजे विनय करि आशिष लही,
कौशिकहिं पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कहीं ।

मण्डप की विचित्र मनोहर रचना और सौन्दर्य को देखकर मुनियों के मन मुग्ध हो उठे । उस मंडप में सुजान जनकराज ने अपने हाथ से सबके लिये सिंहासन लाकर रखे । सर्व प्रथम उन्होंने कुल के इष्ट सदृश महर्षि वसिष्ठ की पूजा की और विनयावनत होकर शुभाशीर्वाद प्राप्त किया । तत्पश्चात् जब मुनिवर विश्वामित्र का वह पूजन करने लगे, उस समय के प्रेम-भाव का वर्णन तो कदापि किया नहीं जा सकता ।

वामदेव आदिक ऋषय, पूजे मुदित महीश
दिये दिव्य आसन सबहिं सब सन लही अशीष ।

वामदेव आदि ऋषियों का भी राजा ने प्रसन्नता पूर्वक पूजन-अभिवादन किया और सबको दिव्य आसनों पर सुशोभित कर आशीर्वाद ग्रहण किया ।

बहुरि कीन कोशलपति पूजा,
जानि ईश सम, भाव न दूजा,
कीन जोरि कर विनय बड़ाई,
कहि निज भाग्य-विभव बहुताई ।

फिर उन्होंने कोशलपति दशरथ को ईश (भगवान
के समान मानकर उनकी पूजा की। उस समय उनके मनमें
अन्य भाव नहीं था। करबद्ध होकर उनकी हर तरह से वि
बड़ाई की और कहा कि आज हमारे भाग्य का वैभव ब
बढ़ गया है।

पूजे भूपति सकल बराती,
समधी सम सादर सब भांती,
आसन उचित दिए सब काहू,
कहौं काह मुख एक उछाहू।

भूपति जनक ने सब बारातियों का भी समधी दशरथ
समान आदर पूर्वक पूजन वन्दन किया। सभी को समुचित
आसन दिये। उस समय के अपरिमित उत्साह का वर्ण
एक मुख से कैसे किया जा सकता है?

सकल बरात जनक सनमानी,
दान-मान विनती वर वाणी,
विधि, हरि, हर, दिशिपति दिनराऊ
जे जानहिं रघुवीर प्रभाऊ।

दान, मान, विनय और मधुर विनम्र वाणी से जनक ने
समग्र बारात का स्वागत सम्मान किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिव
दिकपति, दिनेश-सूर्य-जो भगवान् राम के प्रभाव से पूर्णतः
परिचित हैं—

कपट विप्र वर वेश बनायें,
कौतुक देखहिं अति सचुपायें,
पूजे जनक देवसम जाने,
दियें सुआसन बिनु पहिचाने।

ब्राह्मणका छद्मवेश धारण कर आनन्द और कौतूहल पूर्वक वैवाहिक आयोजन का अवलोकन कर रहे हैं। जनक ने उन्हें देवतुल्य मानकर उनका सादर पूजन किया और बिना परिचय पूछे उन्हें सुन्दर आसनों पर आसीन कराया।

पहिचान को केहि जान; सबहिं अपान सुधि भोरी भई,
आनन्द कन्द विलोकि दूलह उभय दिशि आनंदमई,
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दिए,
अवलोकि शील स्वभाव प्रभु को विबुध मन प्रमुदित भये :

कौन किसको जानें ? कौन किसको पहचाने ? सब आत्म विस्मृत हो रहे हैं-अपने आपको भी भूल बैठे हैं। आनन्द स्वरूप दूलह-राम-को देखकर दोनों ओर आनंद का सागर लहरा रहा है। देवों ने सर्वज्ञ राम को देखा और उनकी मानपूजा करके उन्हें अपने मानसिक आसनों पर सुशोभित किया। प्रभु रामके शील स्वभावको देखकर देवगण आनंदमग्न हो उठे।

WITH BEST WISHES FROM

A. G. Arts

CINE COMMERCIAL
&
SIGN BOARD

Specialists—Exhibition Stall Construction & Decoration
CINE AND COMMERCIAL ARTISTS
1/24 Meeran Sahib Street
Mount Road, MADRAS-2

FOR ADVERTISING

IN

NEWS PAPERS

THROUGHOUT INDIA

.: Contact :.

IND ADVERTISING AGENCY

15, COMMERCIAL CHAMBERS
MUSJID BUNDER ROAD
BOMBAY 3
Tele : 322422

विभिन्न आकार प्रकार की
विशिष्ठ कांचकी बोतलों
के लिये
पूछ ताछ कीजिये

प्रसिद्ध ग्लास फैक्ट्रियों के प्रतिनिधि

के. के. शाह एन्ड कं.

१२३, चकला स्ट्रीट, बम्बई–३

H. BABOO

COMMERCIAL ARTIST

&

SIGN WRITER SPECIALIST

jayandra Mahal, Vincent Road.,
Dadar T. T.
BOMBAY-14.

GLASS

Preserves All Products

BHARAT GLASS

Is supplied to all large manufacturers because it Protects the product and distinguishes the contents.

BHARAT GLASS WORKS
CHEMBUR, BOMBAY-38

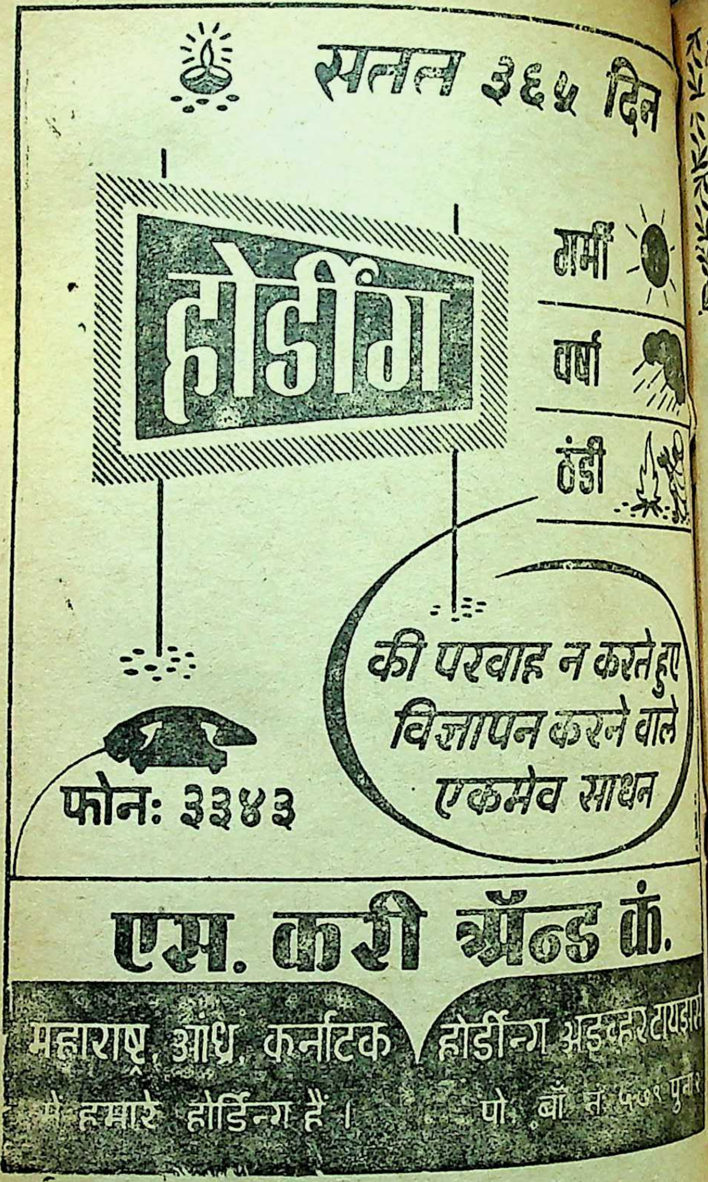

सतत ३६५ दिन

होर्डींग

गर्मी
वर्षा
ठंडी

की परवाह न करते हुए
विज्ञापन करने वाले
एकमेव साधन

फोनः ३३४३

एस. करी अॅण्ड कं.

महाराष्ट्र, आंध्र, कर्नाटक में हमारे होर्डिन्ग हैं।

होर्डीन्ग अॅडव्हर्टायझ
पो. बॉ. नं. ५७९ पुना

S. D. NEROY AND CO

Leading Block-maker to the leading Advertising Agencies, Pharmaceutical PRESSES AND ARTISTS

534, Sandhurst Bridge,
Bombay-7

☎ **355047**

त्याग के सामने रावण को भी झुकना पड़ा

त्याग का प्रभाव

लें०—देवेन्द्र नाथ शर्मा,

त्याग में विलक्षण शक्ति है त्याग द्वारा एक साधारण मनुष्य भी अमोघ शक्ति प्राप्त कर लेता है। हमारे देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति में भी त्याग ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसमें इतनी शक्तियां निहित हैं जिनकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते। इस लेख द्वारा पाठकों को त्याग के प्रभाव की विलक्षणता से परिचय कराने का भरसक प्रयत्न करूँगा।

भारत में चक्कवेण नामक एक आदर्श शासक (सम्राट) हो चुके हैं। वे बड़े ही धर्मात्मा, सत्यवादी, स्वावलम्बी अध्यवसाय शील, त्यागी; विरक्त आदि गुणों से सुशोभित थे। वे राज्य के द्रव्य को दूषित समझकर उसे स्वयं अपने और अपनी पत्नी के काम में नहीं लाते थे। प्रजा से जो कुछ कर लिया जाता था, वह सम्पूर्ण राशि प्रजा के कार्य में ही खर्च होता था। राज्य का कार्य वे निरभिमान पूर्वक निष्काम भाव से तन-मन से किया करते थे। प्रजा उन्हें बहुत चाहती थी। वे भी उसे सन्तानभाव एवं ईश्वर रूप समझकर सेवा करते थे। रामराज्य की भांति उनके राज्य में कोई दुःखी नहीं था। सभी प्रकार से सुखी थे।

वे अपने शरीर निर्वाह के लिए पृथक खेती किया करते थे। स्वयं रानी बैल के स्थान में हल खींचा करती और वे बीज बोया करते। वे अपने ही खेत में उपजे हुए अन्न से अपना भरण पोषण करते थे। वे गन्ना, रुई, अनाज, फल

और शाक की खेती किया करते थे। अपने खेत में उपजी हुई रुई का ही वस्त्र बनाकर पहनते, अपने खेत में उपजे हुए गन्ने का गुड़ निर्माणित करते और दम्पति निष्कामभाव से अपने इसी प्रकार दिन व्यतीत होने के लिए प्रभु से प्रार्थना करते। उनकी पत्नी के पास कोई आभूषण नहीं था, क्योंकि राज्य के द्रव्य से तो आभूषणादि बनाना था ही नहीं तथा अपने से पैदा की हुई खेती की उपज से केवल सादगी से खाने पहनने भर का काम चलता था। खेती के सिवा उन्हें राज्य के कार्यों में भी तो समय देना पड़ता था। उनका जीवन एक सीधे सादे सदाचारी किसान के समान था। छः घंटे शयन के सिवा उनका सारा समय ईश्वर भक्ति, परोपकार राज्यकार्य, और कृषि के कार्यों में ही व्यतीत होता था। वे सब प्राणियों को परमात्मा का स्वरूप मानकर सबकी निष्काम प्रेमभाव से सेवा किया करते थे। स्वावलम्बन उनमें कूट-कूटकर भरा था। अपना काम स्वयं करते, किसी राज्यकर्मचारी या नौकर से नहीं कराते थे। जो कुछ भी कार्य करते, आसक्ति और अहंकार से रहित होकर बड़े ही उत्साह और धैर्य से किया करते।

एक दिन की बात है। जिस देश में राजा चक्कवेण रहते थे, वहां एक बड़ा भारी मेला लगा। उसमें नगर के अन्यान्य प्रांतों के लोग बड़ी भारी संख्या में इकट्ठे हुए। राजा-रानी के दर्शन के लिए यों तो बराबर ही लोग आते रहते, पर मेले के कारण नर नारियों की भीड़ कुछ अधिक रहती थी। राजा के पास अधिकतर पुरुष आते और रानी के पास स्त्रियां।

एक दिन बहुत से गहनों और रेशमी वस्त्रों से सजी-धजी अनेक दासियों से घिरी हुई बहुत सी-धनी व्यापारियों की स्त्रियां रानी का दर्शन करने के लिए उनके पास आयीं। उन स्त्रियों ने कहा—रानी जी! आपके जैसा वस्त्र तो हमारी दासियां भी नहीं पहनती आप हमारी दासियों को तो देखिए, कैसे वस्त्राभूषण पहनी हैं। आपके वस्त्राभूषण तो हम लोगों से भी उत्तम होने चाहिएं। आपके स्वामी बड़े सम्राट हैं, आप उन्हें थोड़ा भी संकेत कर देंगी तो वे आपके लिए श्रेष्ठ आभूषणादि की व्यवस्था कर देंगे। आप हमारी स्वामिनी हैं। अतः आपको इस दशा में देखकर वेदना होती है। ऐसा वस्त्र तो एक भिखारिन भी नहीं पसन्द नहीं करती। एक महारानी की जैसी वेश-भूषा होनी चाहिए उसी रूप में हम सभी आप को देखना चाहती हैं।'

ऐसा कहकर सभी सेठानी चलती बनीं। रानी के ऊपर उनके भाषण का प्रभाव अवश्य पड़ा। रात्रि में जब सम्राट आये तो रानी ने घटना का वृत्तांत उन्हें कह सुनाया। जैसा कि सेठानियों ने उन्हें समझाया था। रानी ने आग्रह किया कि मेरे योग्य उचित वस्त्रों एवं आभूषणों की व्यवस्था आपको यथा शीघ्रकरनी चाहिये। पत्नी के प्रेम से वशीभूत होते हुये राजा ने सोचा। रानी कितना भी आग्रह करे, मैं राज्य के धन को तो किसी भी दशा में भी अपने उपयोग में नहीं ला सकता, किन्तु मैं सम्राट हूँ, दुष्ट, अत्याचारी और बलवान राजाओं से कर ले सकता हूँ। यह सोचकर उन्होंने पर राष्ट्रों तथा अधीनस्थ राज्यों के कार्य का सम्पादन करनेवाले मंत्री को बुलाया और आज्ञा दी मंत्री! आज आप राक्षसराज

रावण के-पास जाइये और कहिए कि राजा चक्कवेण की ओर से मैं आया हूँ। उन्होंने आप से कर रूप में सवा मन सोना प्राप्त करने के लिये भेजा है। सम्राट की आज्ञा पाकर मंत्री कुछ आदमियों को लेकर रथ द्वारा समुद्र के किनारे पहुँचे और फिर जलयान द्वारा समुद्र के उस पार पहुँच कर लंका में प्रवेश किया तथा राजसभा में जाकर बड़ी नम्रता और सभ्यता के साथ सम्राट चक्कवेण का सन्देश सुनाया। सन्देश सुनकर रावण हँसा और सभासदों से बोला-देखो ऐसे मूर्ख राजा भी संसार में अभी हैं महर्षि, देवता, राक्षस आदि सभी से कर लेनेवाले मुझ जैसे बलवान स्वतन्त्र महान सम्राट से भी कर की आशा रखते हैं। उन्होंने राजा चक्कवेण के सन्देश वाहक को कैद करना चाहा, किन्तु अपने सभासदों के अनुरोध पर उन्हें मुक्त कर दिया।

तदनन्तर रावण जब रात्रि में मन्दोदरी के पास महल में गया। तब रावण ने हँसकर मन्दोदरी से विनोद में कहा कोई एक भारतवर्ष में चक्कवेण नामका राजा है। आज उसका एक दूत सभा में आया और उसने मुझसे सवा मन स्वर्ण 'कर' के रूप में देने को कहा। मुझे इस पर बड़ी हँसी आई। देखो संसारमें ऐसे मूर्ख भी अभीतक जीते हैं; जो मुझ जैसे से 'कर' की आशा लगाये रहते हैं। मैं तो उसके दूत को कैद करना चाहता था पर सभासदों के अनुरोध से छोड़ना पड़ा।' मन्दोदरीने दुःखित होकर कहा लंकेश ! आपने बड़ा बुरा कार्य किया जो दूत का अपमान कर डाला। चक्कवेण को मैं अच्छी तरह जानती हूँ। वे सत्यवादी और धर्मात्मा राजा हैं।

उनका चक्र चलता है। जो उनकी आज्ञा का पालन नहीं करता उसका महान् अनिष्ट हो सकता है। उस दूत को संतोष कर ही उसे आपको सत्कारपूर्वक भेजना चाहिए और उसका पता लगाकर उसके कथनानुसार आपको सवा स्वर्ण उसे भेंट करना चाहिए। इसमें आपकी कुशलता है। रावण बोला तू बहुत ही डरपोक है। मामूली मनुष्य राजाओं से तू इतना भयभीत होती हो। मैं इसकी कुछ भी परवाह नहीं करता। मन्दोदरी बोली—कल प्रातःकाल मैं आपको सम्राट चक्रवेण के प्रभाव को दिखाऊँगी। दूसरे दिन सुबह रावण के साथ में वह महल के छत पर गई, जहां वह रोज कबूतरों के लिए अन्न डाला करती थी। अन्न चुगने वहां नित्य बहुत संख्या में कबूतर एकत्र होते थे। मन्दोदरी ने दाने चुगते हुये पक्षियों से कहा—'राजा रावणकी दुहाई है, खबरदार! दाने न चुगना।' किन्तु वे चुगते ही रहे। फिर रानी ने कहा—देखिये आपकी दुहाई देने पर भी यें सब दाने चुगते ही रहे।' रावण बोला-अरी मूर्ख! यें पक्षी बेचारे क्या समझें! इस पर मन्दोदरी राजा चक्रवेण के प्रभाव को देखने को कहा। वह कबूतरों को सम्बोधित कर बोली--'खबरदार चक्रवेण की दुहाई है कोई दाने न चुगना।' इतना सुनते ही सब पक्षियों ने एक साथ दाने चुगना बँद कर दिया। उनमें से एक कबूतर बहिरा था, वह कुछ भी नहीं सुन पाता था, इसलिए उसने दाना उठा लिया। ज्योंहि उसने दाना उठाया कि उसकी गर्दन टूटकर गिर गयी मन्दोदरी कही—देखिये राजा चक्रवेण की दुहाई देने पर सबने दाने

चुगना बंद कर दिया। यह बहिरा न सुनने के कारण दाना उठा लिया, जिससे उसकी यह दुर्दशा हुई चक्र से इसकी गर्दन अलग की गयी पुनः रानी ने पक्षियों को दाने चुगने की आज्ञा दी और राजा चक्कवेण की कसम हटा ली। तुरन्त सभी पक्षी पहले की भांति दाने चुगने लगे। कबूतरों से अबकी बार मन्दोदरी बोली-जो तुम्हारे सम्मुख खड़े हैं इन राजा रावण की तुम्हें दुहाई है कोई दाना न चुगो। किन्तु रावणके सामने रहते हुए भी किसीने परवाह न की। मन्दोदरी बोली-देखिये, आपका इन पक्षियों पर कुछ भी असर नहीं होता, परन्तु राजा चक्कवेण के प्रभाव पर विचार कीजिए उनके अप्रत्यक्ष में भी उनका कितना प्रभाव है। रावण इसे मन्दोदरी की माया बताकर इसकी अपेक्षा कर चलता बना। राजा चक्कवेण के मन्त्री ने रावण को समझाने के लिए समुद्र के किनारे एक नकली लँका का निर्माण किया। उसने चिकनी मिट्टी को समुद्र के पानी में घोलकर खड़ के समान बनाया तथा तट की जगह को चौरस बनाकर उस पर उस मिट्टी से ठीक लँका जैसी एक छोटे परिमाण की आकृति अंकित की। घुली हुई मिट्टी के बूँदों को टपका टपका कर उसी से लँका के परकोटे, बुर्ज और दरवाजों आदि की रचना की। इन सबों को निर्माणित कर वह बूढ़ा मन्त्री पुनः लँकेश दरबार में गया। उसे देखकर रावण चौंकते हुए पूछा क्यों मन्त्री, तुम फिर यहां दुबारा कैसे पहुँचे। वह बोला मैं आपको एक कौतूहल दिखलाना चाहता हूँ। आप मेरे साथ समुद्र तट तक चलिये। रावण यह सुनकर समुद्र तट-तक चलने को राजी हो गया। रावण अपने कुछ सलाहकारों को साथ ले

चक्कवेण के मंत्री के निर्देशानुसार उस तट पर पहुँचा गया जहाँ काल्पनिक लंका की रचना की गयी थी। मंत्री के यह पूछने पर कि यह लंका का रूप है अथवा नहीं? रावण ने उत्तर दिया कि है तो पर क्या आप यही दिखाने के लिए हमें साथ लाये हैं। मंत्री उन्हें स्थिर रहने को कहते हुये बोले- देखिये लंका के पूरब का परकोटा, दरवाजा बुर्ज और झंडे साफ-साफ ज्यों के त्यों दीख रहे हैं न। देखिए मेरे द्वारा रची हुई लंका के पूर्वद्वार के कंगूरे को मैं राजा चक्कवेण की दुहाई देकर गिराता हूँ। इसके साथ ही आपको लंका के पूर्वी द्वार के कंगूरे गिरते हुए दिखाई देंगे। यह देखकर रावण को विस्मय हुआ। इस बार मन्त्री ने राजा चक्कवेण की दुहाई देते हुए उस नकली लंका के चार बुर्जों को मिटा दिया। इसके साथ ही असली लंका के ठीक उसी दिशा के चारों बुर्ज गिर गये जो नकली लंका के मिटाये गये थे। उस समय रावण को भय हुआ तथा उसे मन्दोदरी की बातें याद हो आयीं।

मन्त्री ने रावण को राय दी यदि आप राजा के मांगे हुए कर रूप में सवा मन सोना नहीं देते हैं तो उन्हें आपसे युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। उनके त्याग रूपी प्रभाव के द्वारा ही आपकी लंका तथा आप अपनी सभी प्रजा के साथ नष्ट हो सकते हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो कहिए उनकी दुहाई देकर मैं आपकी पूरी नगरी यहीं से चौपट कर दूँ। आप अपने राज्य को किसी भांति नहीं बचा पावेंगे। यह सुनकर रावण ने राजा चक्कवेण को सवा मन सोना देना स्वीकार कर लिया।

मन्त्री रावण द्वारा प्रदत्त 'कर' लेकर राजा चक्कवेण के समक्ष पहुँचा। राजा-रानी के सामने ही उसने सवा मन रख दिया, जैसे प्राप्त किया उसकी कहानी ज्यों-की-त्यों कह सुनाई। घटना को सुनकर रानी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजा से पूछा यह क्या बात है जिसके सामने रावण ने अपनी हार मान ली। हममें वह कौन सी अद्‌भुत शक्ति है ? राजा बोले हमलोग स्वावलम्बी होकर परिश्रम पूर्वक खेती करके अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। साथ ही हम, परनिन्दा, असत्यता, एवं परधन के सम्बन्ध में कभी स्वप्न में भी नहीं सोचते, वैराग्य और त्यागही हमारे जीवनका व्रत है। निष्काम भाव से प्रजा के धन को प्रजा की सेवा में ही लगा देते हैं, अपने व्यक्तिगत कार्य के लिए राज्य के पैसे को छूते तक भी नहीं, इसी का यह प्रभाव है।

यह जानकर रानी में महान् परिवर्तन हुआ। वह बोली-स्वामी ! मैं बहुमूल्य वस्त्राभूषण नहीं पहनूँगी। जिस प्रकार अब तक नियम से रहती आयी हूँ, वैसे ही रहूँगी, कुछ भी परिवर्तन नहीं करूँगी। धनी व्यवसायियों की स्त्रियों के कुसंग से मेरी बुद्धि त्याग, वैराग्य और धर्म से विचलित हो गयी थी, किन्तु अब उनके संग का मेरे ऊपर कोई असर नहीं रह गया है। मैंने आपसे जो कुछ दुराग्रह किया, उसके लिए मैं क्षमा प्रार्थना करती हूँ। मेरी उपाधि को आप क्षमा करें और इस स्वर्ण को वापस लौटा दें। राजाको यह सुनकर प्रसन्नता हुई और रानी के विचारानुसार-स्वर्ण रावण को वापस कर दिया।

दीप वन्दना

लेखक—पं. श्री वल्लभव्यास 'परमहंस'

ऐ नव वर्ष के नूतन दीपक, तुमको शत शत बार प्रणाम
नूतन दीपक, शत-शत बार प्रणाम।
शायित तव नवज्योति में, शाश्वत पुनीत गीता-ज्ञा
नूतन दीपक, शत-शत बार प्रणाम।

समता का तू पाठ पढ़ाये,
तिमिर विषमता दूर हटाये।
बन्धुता की ज्योति जलायें,
शीतल स्नेह सुधा बरसाये।

बहा आज जन मानस में, सरस सुधायुत स्नेह धार,
ऐ नव वर्ष के नूतन दीपक, तुमको शत-शत बार प्रणाम।

नूतन दीपक शत-शत बार प्रणाम
ज्ञान-दीप की ज्योति जगायें,
अन्धतिमिर अज्ञान मिटायें।
जन जन को समृद्ध बनायें,
पुण्य वसुधा में स्वर्ण उपजायें।

भर आज जग जीवन में, नव स्फूर्ति नव-प्रकाश,
ऐ नव वर्ष के नूतन दीपक, तुमको शत-शत बार प्रणाम।
नूतन दीपक शत शत बार प्रणाम।

* योग से तन मन का विकास कीजिये *

सर्वत्र तू मालिन्य मिटायें,
स्थल स्थल को स्वच्छ बनायें।
तव ज्योति स्वास्थ्य बढ़ाये,
रोग शत्रु सब मार भगायें।

कर आज अखिल विश्व में, जागृति औ नव निर्माण
ऐ नव वर्ष के नूतन दीपक, तुमको शत-शत बार प्रणाम।
नूतन दीपक, शत-शत बार प्रणाम।

आनन्द हर्ष का सिन्धु बहायें,
जन मानस में नव ज्योति जलायें।
प्रेम, दया सद्भाव बढ़ायें,
सत्य, अहिंसा तू सिखलाये।

बना आज भारत भू को, सबल, सधन उन्नत विशाल,
ऐ नव वर्ष के नूतन दीपक, तुमको शत शत बार प्रणाम।
नूतन दीपक, शत शत बार प्रणाम।

दीप से दीप ज्योति जगायें,
बिछुड़ों का तू मेल बढ़ाये।
भूलों को नव पथ दर्शायें,
सन्मार्ग की राह दिखायें।

मांग रहा है कवि तुझसे, बल, बुद्धि औ विद्यादान
ऐ नव वर्ष के नूतन दीपक, तुमको शत-शत बार प्रणाम।
नूतन दीपक, शत-शत बार प्रणाम।

"अबला"

लेखकः— कमला प्रसाद सिंह

(प्रथम दृश्य)

(वन में पाण्डवों की कुटी। कुटी के वाहर महाराज युधिष्ठिर चिंतित मुद्रा में खड़े हुये हैं। अर्जुन बैठे हैं तथा भी युधिष्ठिर की ओर पीठ फेरकर खड़े हैं।)

युधिष्ठिर :– भीम! मुझसे अब यह दुःख सहन नहीं होगा। तुम लोगों का इस तरह भूखे रहकर जीव बिताना राज-राजेश्वरी द्रोपदी की य दीन अवस्था मुझसे नहीं देखी जाती। क्य करें, और युद्ध का परिणाम। ...... उफ़ आर्यावर्त्त का महाविनाश। ... हमारी सभ्यत और संस्कृति की प्रखर किरण सदा के लिए अस्त हो जायगी। भीम! मँडराती हुई युद्ध की इन भयानक घटाओं को देखकर मेरा धीरज टूट रहा है,....... हमारा कुटुम्ब समाप्त हो जायगा। हमें शायद जल दे वाला भी कोई न होगा, यह पृथ्वी हमारे परिजनों के रक्त से अपवित्र हो जायगी। हमें शांति..........

(क्रोध से कांपती हुई द्रोपदी का प्रवेश)

द्रोपदी :— (दोनों हांथों को खींचकर आक्रोशपूर्वक) नहीं, नहीं! कदापि नहीं, महाराज! युधिष्ठिर की

पृथ्वी अपवित्र हो चुकी है उसे पवित्र करने के लिये शोणित की जरूरत है। (लट बिखरा कर) यह देखिये इसे खून चाहिये खून........ दुर्योधन का उबलता हुआ खून!

युधिष्ठिर :-- क्या सचमुच आर्यावर्त्त का भविष्य विनाश की घटाओं में छिपा है ? क्या धर्म, न्याय और शांति का चिराग बुझने वाला है ? क्या हमारे कुटुम्ब के पाप का घड़ा भर चुका है ? (द्रोपदी की ओर घूमकर) तुम्हारा नारीत्व कहां है ? तुम्हारा ममत्व कहां गया ? शास्त्रवेत्ताओं ने तुम्हें कन्या क्यों कहा है !....अबला क्यों कहा है !..........तुम चंडी हो.........हमारे कुल रूपी वन के लिये भयंकर आग हो।...।

द्रोपदी :-- (दीनता पूर्वक हँसकर) महाराज! यह हृदय पत्थर बन चुका है। इसमें कन्या, पत्नी व माता का रूप अब कहां! कहां रही विनाश की बात...शायद आर्यावर्त्त का विनाश उसी दिन हो चुका था जब भरी सभा में द्रोपदी को वस्त्रहीन करके दूसरों की जांघों पर बिठाया जा रहा था, जिस धर्म, न्याय और शांति की आप दुहाई दे रहे हैं, वे तो तभी अस्त हो चुके जब आपने अपनी धर्म पत्नी की लज्जा-हरण को किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर इन आंखों से देखा था। महाराज! यदि आपके कुटुम्ब के पाप का घड़ा भरा न होता

तो द्रोपदी की ये लटें इस तरह बिखरी हों आपको न दिखतीं। ये आपके खून की प्यासी हैं...... आपके कुटुम्ब के रक्त से ही इन्हें सवांरूँगी महाराज! इनकी प्यास आपको ही बुझानी पड़ेगी।

युधिष्ठिर :— द्रोपदी याद रखो.. ...यदि यह भयंकर विनाश लीला प्रारंभ हुई तो केवल कौरव रमणियों के ही सिन्दूर नहीं धुलेंगे, तुम्हें भी अपने सुहाग की कुर्बानी देनी होगी। तुम जिस राज्य-सुख और भोग विलास का स्वप्न देख रही हो,... शायद वह पूरा नहीं होगा। द्रोपदी! इन पांचों भाइयों की चिता तुम्हें ही सुलगानी होगी।

द्रोपदी — कौन कहता है कि द्रोपदी सुहागन है?...... द्रोपदी विधवा हो चुकी है। मेरी इन बिखरी हुई लटों को देखिए! सुहागन तो उस दिन बनूँगी, जिस दिन दुर्योधन के रक्त से इस मांग को भरूंगी......(कलाई की ओर देखकर) और चूड़ियां......नहीं। इन्हें तबतक नहीं पहनूँगी जबतक नोच दुर्योधन के रक्त मांस-मज्जा और चर्बी से अपने अंगों का विलेपन नहीं कर लेतीं। चिता......तो मैं कभी की लगा चुकी हूँ...वह देखिये चारों ओर धधक रही है...... आप भी तो उसी में जल रहे हैं महाराज...... (युधिष्ठिर सिर थामकर बैठ जाते हैं) यह

अबलाओं की तरह रोने का समय नहीं। क्या आपका पुंसत्व समाप्त हो चुका है ? क्या अर्जुन का गांडीव मृत हो गया है ? भीम की गदा कहां है ? द्रोपदी को चिता की भयानकता से मत डराइये। आप सत्यवादियों के शिरोमणि हैं, वचन दीजिये......मैं अभी मृत्यु का वरण करती हूं...परन्तु आप से एक वचन लूँगी...........बोलिये महाराज..... मेरे मृत शरीर को दुर्योधन के गरम लहू से स्नान कराना होगा। कहिए हां। महाराज! आप बोलते क्यों नहीं।

(युधिष्ठिर मौन होकर सिर झुका लेते हैं और और द्रोपदी कुटी के भीतर चली जाती है)।

(द्वितीय दृश्य)

(नेपथ्य में "बचाओ, बचाओ" की ध्वनि)

युधिष्ठिर :— (चौंककर) ऐं ! यह कैसी करुण आवाज ! देखो कौन है ?

अर्जुन :— (देखकर) महाराज ! इन्द्र की आज्ञा से गन्धर्व सेना दुर्योधन को बांधकर ले जा रही है। उसकी ही यह आवाज है।

युधिष्ठिर :— (सशंकित होकर) सर्वनाश ! गन्धर्वों का यह साहस ! अर्जुन ! दुर्योधन की रक्षा करनी ही होगी। हमारे आपसी वैमनस्य का लाभ

दूसरे कदापि नहीं उठा सकते। कुछ भी हो वह हमारा रक्त है...........

भीम :— (बात काटकर) नहीं महाराज! इन्द्र ने हमारी सहायता के लिए ही गन्धर्व सेना को यह आज्ञा दी है। बिना प्रयत्न के ही यदि हमारा कांटा दूर हो जाय तो इससे अच्छा सुयोग और क्या हो सकता है?

द्रोपदी :— (कुटी से बाहर आकर और भीम को लक्ष्य करके) नहीं नाथ! आपको दुर्योधन की रक्षा करनी ही होगी। दूसरे के द्वारा किया गया शत्रु का पराभव हस्तिनापुर का राज्य हमें लौटा सकता है, परन्तु द्रोपदी के सुहाग को नहीं। जब तक तुम्हारे इन विशाल भुजदंडों से मर्दित दुर्योधन के गाढ़े तप्त खून से मैं अपना श्रृंगार नहीं कर लेती तबतक सम्पूर्ण पृथ्वी का वैभव सारहीन है। (अर्जुन और भीम का प्रस्थान। युधिष्ठिर आश्चर्यचकित होकर द्रोपदी को देखते हैं)

(तृतीय दृश्य)

(अर्जुन और भीम के साथ दुर्योधन की आँखे आंसुओं से तर हैं। वह आकर युधिष्ठिर से गले मिलता है)

युधिष्ठिर :— कौरवनरेश महाराज दुर्योधन की आंखों में आंसू ।

दुर्योधन :— भैया ! ये कृतज्ञता के आंसू हैं। अर्जुन और भीम ने जिस बहादुरी से गन्धर्व-सेना का मुकाबला करके मेरी रक्षा की है, उससे मैं अत्यधिक प्रसन्न हूँ। (अर्जुन को लक्ष्य करके) अर्जुन ! आज तुम्हारा बड़ा भैया और कौरवाधिपति दुर्योधन तुमसे अत्यन्त प्रसन्न है; तुम जो चाहो मांग सकते हो :

(अर्जुन आश्चर्ययुक्त होकर युधिष्ठिर को देखते हैं)

युधिष्ठिर :— (प्रसन्न होकर) सच.........

द्रौपदी :— (व्यंग्यपूर्वक चीखकर) सच...(और घृणा से मुँह फेर लेती है)।

(युधिष्ठिर आक्रोश पूर्वक द्रोपदी की खुली हुई वेणी को देखते हैं)

युधिष्ठिर :— (कुछ सोचकर उदास भाव से) महाराज दुर्योधन ! इस समय तो हमें किसी भी प्रकार की सहायता की आवश्यकता नहीं है भविष्य में जब भी आवश्यकता होगी, हम आपसे अवश्य ही निवेदन करेंगे ।

दुर्योधन आश्चर्य पूर्वक कभी युधिष्ठिर को और कभी द्रोपदी को देखता है)

(पटाक्षेप)

अपना डॉक्टर आप बनो।

लेखक
डॉ. कुलरंजन मुकर्जी

प्राकृतिक चिकित्सा एक श्रेणी की गृह-चिकित्सा है। इससे अपना तथा अपने परिवार का घर में बैठकर इला किया जा सकता है। इसलिए इस चिकित्सा में कोई ख नहीं होता है। इससे किसी रोग को दबाया नहीं जाता है बल्कि देहयें जमा हुआ मल तथा कूड़ा-करकट देहसे निकालक समूचा रोग आरोग्य किया जाता है।

बुखार एक मामूली रोग है। जब बुखार न हो तो पहले ही एक डूस देकर कोष्ठ साफ कर लेना जरूरी है। इसके साथ नीबू के रस के साथ पानी पीना उचित है। इससे मूत्र के साथ बहुत विष देहसे बाहर निकल जाता है। दिनमें तीन बार रोगी का सिर धोकर उसका तमाम शरीर, खासकर पेट भी गमछे से पोंछ देना भी कर्त्तव्य है।

कोष्ठ बद्धता होने पर दो एक घंटे के लिए एक बार पेट की लपेट रक्खी जा सकती है। इसी से दूसरे दिन आप से

आप कोष्ठ साफ हो जाता है। एक हाथ चौड़ा और नीचोड़े हुए तौलिये से स्तनरेखा से लेकर पेड़ू की शेष सीमा तक, पेट और पीठ ढक कर एक सूखे हुए भारी ऊनी कपड़े से उसे दुबारा ढक देने से ही ऐसी पट्टी लेना होता है। इसके बाद उसे एक कपड़े के टुकड़े से बांध देना उचित है। जरूरी अवस्था में हमेशा ही डूस ग्रहण किया जा सकता है। दस्तावर दवाई से डूस सहस्रगुना श्रेष्ठ है।

पतले दस्त होने से पहले पेट को साफ होने देना उचित है। इसके बाद देखना चाहिये, कि पेट गर्म है या ठंडा। गरम हो तो आधा ईंच भारी भीली मिट्टी की पुल्टीश रोगी के पेट पर एक घंटे के लिये रखने से आप से आप पेट अच्छा हो जाता है। और अगर पेट ठंडा रहे तो पेट के ऊपर पांच सात मिनट के लिये सेंक कर पेट की लपेट देना उचित है। रोगी के हाथ पैर हमेशा गरम रखने चाहियें।

पेचिश होने से जल्दी जल्दी रोगी का पेट दो मिनट के लिये सेंक कर उसके बाद भींगे गमछे से पुनः पेट ठंडा कर देना चाहियें। ऐसा तीन बार करना उचित है। इसे गर्म ठंडा सेंक कहते हैं। इसके बाद गुनगुने पानी से एक डूस देना चाहिए। और एक घंटे बाद बदलकर दो तीन बार पेट को लपेट देना जरूरी है। इससे कठिन से कठिन पेचिश भी मिट जाता है। रोगी को कम से कम एक बार उपवास करना चाहिये।

साधारणतः ठंडी लग कर सर्दी होती है। ठंडी लगने ही से गरम पानी में दोनों पैर डुबाने से ही, या असम्भव हो, तो दोनों पैर आग में सेंक लेने से ही ठंडी लगना चला

जाता है। किन्तु ठंड अगर शरीर में बैठ जाय तो हाथ आग में सेंक लेने से कुछ लाभ नहीं होता बल्कि एक खांसी पैदा होती है। तब सिर्फ एक घंटे के लिए एक बार को लपेट लेने से ही सर्दी अच्छी हो जाती है। पेट की छाती पर उठाकर नाभी से गले तक ढकने से ही छाती लपेट हो जाती है। सभी प्रकार ढकी हुई लपेट के नीचे गरम (ताप) पैदा होना चाहिये।

यदि सर्दी के साथ साथ रोगी को खांसी भी रहे, तो छाती की लपेट से ही वह मिट जाती है। अगर खांसी साथ कफ आता है, तब हमेशा ही छाती की लपेट चाहिये।

कभी कभी रोगी की सूखी हुई खांसी प्रकाश पाती है इस हालत में स्नान के बाद छाती गला तथा पीठ के वाले हिस्से को अच्छी तरह घस देने से ही खांसी चली है।

व्रण (डुम्सा) होने पर इसके ऊपर गरम तथा ठं सेक देना ही व्रण मिटाने का प्रधान उपाय है। किन्तु उसे दबा देना उचित नहीं है। व्रण के ऊपर पांच मिनट के लिये सेंक कर भींगा कपड़ा ऊनी कपड़े से ढक लपेट देना ही उचित है। उसी से व्रण फटकर अन्दर से तथा पीब बाहर हो जाता है।

मुह तथा जिह्वा में घाव होने से गरम ठंडा कुल्ली उसकी प्रधान चिकित्सा है। एक मिनट गरम पानी से कुल्ली करने के बाद एक मिनट ठंडे पानीसे कुल्ली करना उचित है ऐसा तीन बार करना चाहिए। मिट्टी से दन्त मंजन भी करना

अच्छा है ।

दांत दर्द में भी यही चिकित्सा करनी चाहिये । बहुत अवस्थामें आदमी ठंडी गर्म कुल्ली करने के बाद ही अन्न खा जाता है ।

घाव हो जाने पर उसके ऊपर दिन में दो बार एक घंटे के लियें ढकी हुई मिट्टी की लपेट रखना जरूरी है । और दिन में दो बार उसके ऊपर गरम-ठंडा सेक देना चाहिए साधारणतया घाव पर तीन मिनट के लिये गरम या तीन मिनट के लिये ठंडा देना उचित है ।

लीवर कभी बड़ा हो जाने से लीवर के ऊपर तीन से पांच मिनट के लियें तीन बार गरम और पर्याय क्रम से ठंडा सेक देना चाहिए । सात दिन ऐसा करने से ही लीवर स्वाभाविक आकार में आ जाता है ।

वात का दर्द मिटाना कभी सहज नहीं होता. किन्तु हाथ या पैर, जहां वात का दर्द हो वहां पर कई रोज तक १ से १५ मिनट के लिये भाप लगाने से वह धीरे-धीरे कम हो जाता है और अंत में स्थायी रूप से मिट जाता है । भाप ऐसे ढंग से लगाना चाहियें, कि जिससे वह शरीर पर सीधा जाकर न लगे, तथा शरीर के लिए दाहजनक न हो ।

साधारणतया ये सब रोग ही संसार में अधिक देखे जाते हैं । प्राकृतिक चिकित्सा से एक पैसा भी न होते हुयें भी इन सब रोंगों से छुटकारा मिल जाता है । इसलिये रोगी का जिससे कोष्ठ साफ रहे, मूत्र स्रोत परिष्कार होता है और रोम कूप खुल जाय, उसकी व्यवस्था करनी चाहियें । यह उद्देश्य साधन किया जाता है, काफी मात्रा में देशी फल, सलाद उबाली हुई तरकारी खाकर और तरकारी का सूप तथा मट्ठा पीकर । उपवास भी हमेशा देह-शुद्धि करने में सहायक होता है ।

काली माई का खप्पर

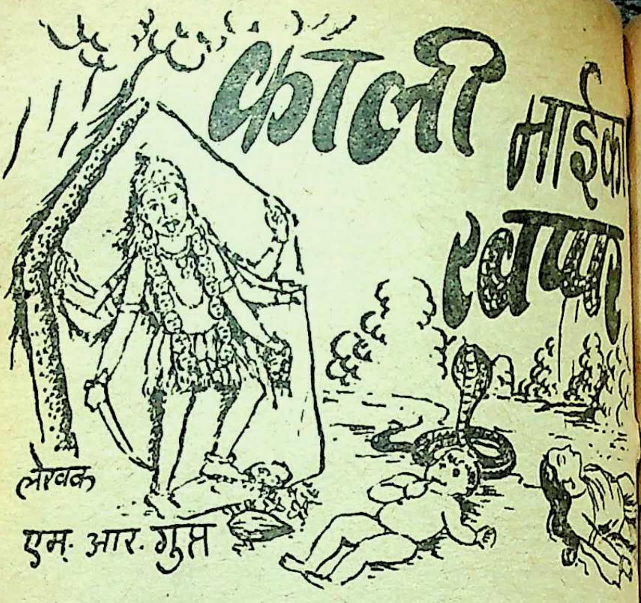

लेखक

एम. आर. गुप्त

(सामाजिक कहानी)

पार्वती ने अपने एकलौते पुत्र रामजस की शादी गांव में जिस धूम-धाम से की उसकी लोग आज तक चर्चा करते हैं। यों कहना चाहिए कि उसने घर फूंककर तमाशा देखा था। अपने जीवन में जो कुछ धन वह बचा कर जमीन में गाड़ सकी थी, रामजस की शादी के समय उस गड़े धन को उसने बाहर निकाल लिया। ठीक भी था। उसका एक ही तो बेटा था जिसे उसने देवी-देवताओं की बड़ी मान्यताओं से पाया था और जिसे उसने फिर बड़े अरमानों से पाला था। फिर भला वह अपने चहीते तथा एकलौते पुत्र की शादी में दिल खोलकर खर्च क्यों न करती। वह गांव में

की शादी गांव
तक चर्चा करते
कर तमाशा देख
ा कर जमीन में
य उस गढ़े धन
था। उसका एक
बड़ी मान्यताओं
रमानों से पाला
एकलौते पुत्र की
ती। वह गांव में

अपनी नाक ऊंची रखना चाहती थी, और गांव की स्त्रियों से सम्मान प्राप्त करना चाहती थी। "पुत्र की शादी होगी, घर में चांद सी सुन्दर बहू आएगी, साल-दो साल बाद ही उसे चांद सा प्यारा नाती खिलाने के लिए मिल जायेगा, उस समय गांव में उससे बढ़कर और कौन सुखी होगा।" इस प्रकार के विचार उसके मन में उठा करते। घर में उसका कोई हाथ पकड़ने वाला न था। उसका पति मोहन एक सीधा-सादा किसान मात्र था। उसने जीवन में मेहनत करना ही सीखा था। जो कुछ रूखा-सूखा मिल गया, उसी को शान्ति से खा लिया। लड़ाई-झगड़े से वह कोसों दूर था। पार्वती उसकी इस सिधाई का कभी-कभी अनुचित लाभ भी उठा लेती थी किन्तु उसने कभी किसी को यह मौका ही नहीं दिया जो उसे कोई कुछ कह सकता। गांव वाले उसे मोहन भगत कहकर पुकारते थे। ८५ वर्ष से ऊपर उसकी उम्र हो चुकी थी। लेकिन बीमारी किसे कहते हैं उसे जरा मालूम ही नहीं था। शरीर में दो आदमियों का बल होते हुए भी सीधा इतना कि जैसे गौ। रस्सी खोलकर चाहे कोई कहीं लेता जाय। उसके परिश्रम का ही यह परिणाम था कि घर में अन्न-धन की कमी कभी न हुई। जिस समय गांव के दूसरे आसामियों के खेतों में कुछ भी न होता उस समय भी मोहन के खेत सोना उगल देते। मोहन पक्का किसान था और किसानी की हर कला का वह जानकार था, फिर भला उसके खेतों में उपज क्यों न अच्छी होती। मोहन पढ़ा-लिखा नहीं था फिर भी जैसे गीता के वास्तविक रहस्य

को वह समझता था। गीता के उपदेश के अनुसार वह केवल काम करना जानता था और फल के लिए सदैव ईश्वराधीन ही रहता था।

पहले घ में जब चार वर्ष तक बहू के बच्चा नहीं हुआ तो पार्वती अधीर हो उठी। उसने अपनी व्याकुलता अपने पति को भी प्रकट की, किन्तु वहां से उसे वही पेटेन्ट उत्तर मिला "जब ईश्वर की इच्छा होगी तभी तो देगा।" इस पर पार्वती खीज उठती और कहती 'ईश्वर तो देगा ही लेकिन उसके लिए कुछ उपाय भी तो करना चाहिये।' इस पर मोहन कहता "और उपाय क्या किया जाय लड़के का विवाह कर दिया घर में बहू आ गई। अब रही बात सन्तान की भगवान ने चाहा तो वह भी मिलेगी। फिर अभी उन दोनों की उम्र ही क्या है। ३० वर्ष का रामजस कोई बूढ़ा तो नहीं हो गया है।" इस पर पार्वती कहती "रामजस तो बूढ़ा नहीं हो गया, लेकिन मैं तो बूढ़ी हो गयी हूं। बिना बच्चे के घर-आंगन कितना सूना-सूना सा लगता है और बिना नाती खिलाये मेरी मुक्ति कैसे होगी? बिना नाती खिलाये मुझे स्वर्ग में भी चैन न आयेगा। मोहन कहता 'भगवान पर विश्वास रखो, वही सबकी इच्छा पूरी करनेवाला है!"

पति पत्नी में अकसर भावी नाती के पीछे बहस छिड़ जाती किन्तु उसका अन्त कलह न होकर सुलह ही होता, क्योंकि मोहन सुलह के सिवाय कलह करना जानता ही न था। नाती के लिए पार्वती ने अपनी बहू और बेटे के न जाने कितने गंडा तावीज लगाकर बांधे, कितने देवी देवताओं

की मान्यताएं मानीं और न जाने कितने मन्दिरों में पाठ कराया और साधुओं की पूजा की। नाती की लालसा पार्वती को इतनी बलवती थीं कि वह उसे पाने के लिये सब कुछ करने को तैयार थी। यदि किसी टोने-टोटके से पड़ोसी की संतान न रहे किन्तु उसके आंगन में एक नाती दौड़ने लगे तो वह इसे भी उचित समझती थी। यहां यह बताना भी असंगत न होगा कि पार्वती को उन सब घरों से बड़ी ईर्ष्या थी जिनमें बच्चे चहकते थे और साथ ही साथ उसे जलन भी होती थी, किन्तु वह इस बात को कभी किसी पर प्रकट नहीं होने देती थी।

देवी-देवताओं की कृपा कहिए या भगवान की कृपा कहिए जो विवाह के ठीक पांचवें वर्ष बहू ने एक चांद से प्यारे शिशु को जन्म दिया। इस समय पार्वती की खुशी का भला क्या ठिकाना था। उसने सारे गांव में थाली पीट दी। गांव भर में बताशे बंटवाये। पार्वती बुढ़िया से जवान हो गयी। उसके अरमान जवान हो गयें। अब वह अपने को बहुत ही अधिक भाग्यवान समझने लगी। उस नासमझ बच्चे के साथ पार्वती तोतली भाषा में ऐसे बातें करती, जैसे वह बच्चा उसकी हर बात को समझता हो। उसे अब कुछ गर्व भी हो चला था और गांव में अपने को सबसे अधिक भाग्यवान भी समझने लगी थी किन्तु बहुत दुःख के साथ कहना पड़ता है कि पार्वती का यह सुख स्थायी बनकर नहीं आया था। शीघ्र ही वह चांद बादलों में छिप गया और फिर बाहर नहीं निकला। गांव में चेचक का टीका लगाने

वाला भी आया था किन्तु उस समय पार्वती ने किसी हालत में टीका न लगवाया। बच्चे को चेचक हो गया और परिणाम फिर वही हुआ, जोकि होनेवाला था। झाड़-फूंक तथा टोटकों ने पार्वती का साथ न दिया। देवी-देवताओं की मान्यताएं कुछ काम न आईं। घर सूना हो गया और पार्वती का जीवन सूना हो गया। उसकी सारी खुशी छिन गयी। पार्वती फिर बूढ़ी हो गयी। किन्तु अनेक साधु-सन्तों और फकीरों के कहने से उसके हृदय में दूसरे पुत्र की लालसा बलवती हो उठी। गांव की अन्य बूढ़ी स्त्रियों ने उसे काली माई का खप्पर भरने की सलाह दी और किसी-किसी ने उसे काली माई के मन्दिर में छौने (सुअर के बच्चे) चढ़ाने की सलाह दी। मरता क्या न करता की कहावत के अनुसार उसने सब कुछ किया। उसका यह भी विचार था कि जब तक नाती उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके मुख में अग्नि नहीं देगा, उसकी मुक्ति सम्भव नहीं है।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि इन तमाम टोना-टोटकों में तथा गंडा-तावीजों में जितनी आस्था पार्वती की थी, उतनी घर में और किसी की न थी, किन्तु घर में वही बात होती थी, जो पार्वती चाहती थी। मोहन भगत पूरे भगत ही थे और पुत्र रामजस पर भी उन्हीं का प्रभाव था। बहू विचारी की अपनी कोई आवाज नहीं थी! वह सास के हुक्म पर चलने वाली थी और सास-ससुर तथा पति की सेवा में ही अपनी मुक्ति समझती थी। पार्वती पर अगर किसी का प्रभाव था तो केवल ढोंगी साधु-सन्तों तथा झूठे

फकीर और जोगियों का। पढ़े-लिखे लोगों की बातों में उसे जरा भी विश्वास नहीं था। ज्ञान के प्रकाश से वह कोसों दूर थी। अंधविश्वास की बातों में ही उसकी आस्था अधिक थी। इसीलिए नाती प्राप्त करने के लिए उसने उचित तथा अनुचित सभी बातों का सहारा लिया। एक साल के अन्दर लगभग एक दर्जन छौनों का काली देवी को भेंट कर दिया गया। इसे काली माई की ही कृपा कहना चाहिए कि दूसरे ही वर्ष पार्वती की बहू की गोद फिर भर गयी। किन्तु पुत्र से नहीं पुत्री से। पार्वती को नाती के स्थान पर नातिन पाने का दुःख तो हुआ ही किन्तु सुख भी कम न हुआ, क्योंकि उसके आंगन में एक गुड़िया आकर खेलने लगी।

पार्वती बात-चीत में सबसे यही कहती कि जैसा पुत्र वैसी पुत्री। उसे कौन किसी की कमाई खाने को बैठा रहना है। घर में कन्या है, तो समझो घर में साक्षात् लक्ष्मी निवास करती है। किन्तु भगवान ही जानता है कि उसकी इस बात में कहां तक सत्यता थी। परन्तु इस नन्हें से पौधे को ऐसा रोग लगा कि वह दिनों-दिन सूखता ही चला गया और एक दिन मुर्झा कर, गिर भी पड़ा। फिर पार्वती पर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा। उसका आंगन फिर अंधकारमय हो गया। ग्राम वासियों का कहना था कि पार्वती ने सूखा रोग को भी जमोखा देवी का कोप समझा और लोगों के मल-मल कहने पर भी उसने इलाज न कराया। अन्त में कन्या-रत्न से भी हाथ धो बैठी। एक बार फिर घर की बगिया उजाड़ हो गयी। लेकिन अपने देश में ढोंगी साधुओं और फकीरों

की क्या कमी। उन लोगों ने अब पशु-बलि के स्थान पर पार्वती को काली माई पर नर-बलि चढ़ाने की सलाह दी।

धीरे-धीरे नर-बलि की बात उसके पति, पुत्र तथा बहू के कानों तक पहुंची जिसे सुनकर सब सिहर उठे। मोहन भगत जो कभी पार्वती की किसी बात में दखल ही नहीं देता था चाहे वह घर में स्याह करे चाहे सफेद, परन्तु इस बात से उसने दृढ़ निश्चय के साथ कह दिया मुझे नर-बलि देकर घर में बच्चा नहीं चाहिए। भगवान को ही अगर मंजूर नहीं कि कोई बच्चा जिन्दा रहे तो नर-बलि देकर भी जिन्दा नहीं रहेगा। जीव हत्या कर जीव रक्षा भगवान कभी पसन्द नहीं कर सकते। अगर तुमने ऐसा कोई प्रयत्न किया तो समझ लो मैं स्वयं अपनी बलि चढ़ा दूंगा। परन्तु हाय रे अंधविश्वास। अंधविश्वासी के सामने तो सभी गुणी पंडितों को अपनी पराजय स्वीकार ही करनी पड़ती है, पार्वती के दिमाग में यह बात जम कर बैठ गयी थी कि जब तक वह काली माई का खप्पर नर-बलि से नहीं भरती है, उसके घर में कोई भी बच्चा जीवित नहीं रह सकता है। अतएव वह दिन-रात इसी उधेड़-बुन में रहने लगी। धूर्त और ढोंगियों ने उसके दिमाग में यह भी भर दिया था कि यदि वह नाती का स्थायी सुख देखना चाहती है तथा उसके द्वारा मुख में अग्नि दिलवाकर सीधे स्वर्ग जाना चाहती है तो उसे किसी पड़ोसी बालक का बध कर उसके खून से काली माई का खप्पर भरना होगा और मगर उसकी बहू ने ही कन्या को जन्म दिया तो उसे ही बध कर काली माई को प्रसन्न करना होगा।

के स्थान प
सलाह दी।
ति, पुत्र तथा
य सिहर उ
में दखल दो
है सफेद, परन्तु
दिया मुझे ना-
ान को ही अ
-बलि देकर भी
भगवान कभी
ोई प्रयत्न किया
। परन्तु हाय रे
भी गुणी पंडितों
है, पार्वती के
क जब तक वह
ी है, उसके घर
। अतएव वह
और ढोंगियों
कि यदि वह
या उसके द्वारा
हती है तो उसे
से काली माई
ने ही कन्या को
को प्रसन्न करना

मोहन-भगत इधर चार महीने के लिए चारों धामों की यात्रा करने चले गये थे। खेती का सारा काम रामजस यों एक नौकर के सहारे पूरा करते। बहू को पुनः गर्भवती जानकर पार्वती का मन फिर कुछ प्रसन्न रहने लगा किन्तु साथ ही आशंका भी कम नहीं थी और इस आशंका की प्रधानता ही इतनी अधिक रही जो पार्वती कभी खुल कर हंस और मुस्करा न सकी। घर में यदि कन्या होती है तो उसकी बलि के लिए वह अपने पति, पुत्र तथा बहू को किस प्रकार से तैयार करेगी और नाती ही फिर जन्म लेता है तो उसे जीवित रखने के लिए पड़ोस के किस बालक का बध कर वह काली माई का खप्पर खून से भरे। यह चिन्ता उसे खाये जा रही थी और वह दिन-ब-दिन दुबली होती चली जा रही थी।

पार्वती के भाग्य से कहिए अथवा दुर्भाग्य से घर में फिर नाती ने जन्म लिया। किन्तु देखने वालों ने देखा कि पार्वती के चेहरे पर हर्ष कम था, किन्तु विषाद ही अधिक था। खुशी मनाने के लिए उसने खुशी भी मनाई। धूर्त तथा पाखण्डी साधुओं को भोजन भी कराया किन्तु नाती का काल सांप बनकर उसे डस रहा था। नाती की सम्भावित मृत्यु की आशंका ही अब उसके सामने हर घड़ी नाचा करती।

एक धूर्त साधू ने जिस पर पार्वती को श्रद्धा कुछ विशेष थी उसने तो पार्वती से भरपूर दान-दक्षिणा लेकर यहां तक साफ-साफ कह दिया कि नाती के जन्म दिन से चार मास के भीतर ही यदि काली माई का खप्पर नर-बलि द्वारा

खून से न भरा गया और उस खून का टीका बच्चे को नहीं लगाया गया तो यह नाती भी उसकी गोद से छिन जायेगा ।

इधर स्वामी यानी मोहन भगत के तीर्थों से लौटने का समय करीब आ रहा था, उधर साधु द्वारा बताई चार महीने की अवधि भी पूरी हो रही थी, अब वह करे तो क्या करे, पड़ोस का हर बालक उसकी नजर में जरूर था, लेकिन कोई मौका नजर में नहीं आता था। यों उसने एक गड़ासा तेज करके अलग रख छोड़ा था। कोरे घड़े का एक खप्पर भी तैयार कर रखा था। अपना हृदय भी नर-बलि के लिए तैयार कर लिया था। कहते हैं चोर को भी एक दिन चोरी का मौका मिल ही जाता है। इसी प्रकार आखिर एक दिन पार्वती के हाथ वह मौका आ ही गया। गर्मी के दिन थे उसके पड़ोस के मर्द तथा औरतें सब बाहर मैदान में सोते। वहीं पड़ोस की एक बहू अपने एकमात्र पुत्र को लेकर सोती, जोकि अभी केवल ४ मास का ही था। पार्वती ने सोचा इसी बालक की बलि क्यों न दी जाय। गांव में शोर होने पर वह बस कह देगी बच्चे को भेड़िया उठा ले गया होगा। बध कर बच्चे का शव वह इस प्रकार छिपा कर कहीं खेत में गाड़ देगी कि किसी को भी पता नहीं लग सकेगा ।

फिर क्या था एक दिन मौका पाकर प्रातःकाल ३ बजे जब सभी प्रातःकाल की ठंडी-ठंडी हवा में मस्ती से सो रहे थे तथा उस बच्चें की मां भी तन-बदन का होश भुलाये किन्तु अपने दुर्भाग्य को जगाये सो रही थी, तो पार्वती ने चुपके से उस बच्चे को उठा लिया और फिर दबे पांव किन्तु तेजी के

साथ गांव के मंदिर की ओर बढ़ गयी। मंदिर में पहुंच कर उसने मन ही मन काली माई के नाम का जप किया और अपने नाती की दीर्घ आयु की कामना की। फिर थोड़ा इधर-उधर नजर उठाकर भी देखा किन्तु रात भी तो काली माई की तरह ही काली थी उसे कोई कहीं दिखाई न दिया। कभी कभी वह अपने ही पैरों की आहट से अवश्य चौंक पड़ती थी किन्तु अब सफलता प्राप्त करने में देर ही कितनी थी। केवल एक या दो मिनट में ही काली माई का खप्पर वह खून से भर देगी। खून से भरे गड़ासे को वह तालाब में फेंक देगी बच्चे की लाश को किसी खेत में गाड़ने की बात वह पहले ही से तय कर चुकी थी। वह घर से एक पुराना कपड़ा भी लेकर चली थी, जिसमें वह बच्चे को छिपाकर लाई थी, उसी कपड़े से वह मन्दिर के भीतर जमीन पर गिरे, बच्चे के खून को भी साफ कर देगी और उसी कपड़े का कफन बनाकर वह उस बच्चे को धरती माता की गोद में हमेशा के लिए सुला देगी। उसने हर बात की योजना पहले ही बना रखी थी, किन्तु भगवान ने क्या योजना बना रखी है इसका उसे कुछ भी पता नहीं था।

उसने पहले बच्चे को एक तरफ सावधानी से रखा जो अब भी गहरी नींद में सोया हुआ था, फिर हाथ का खप्पर तथा गड़ासा एक तरफ रखा और हाथ जोड़कर एक मिनट तक काली माई की प्रार्थना की। नाती के लिये शतायु की प्रार्थना की। प्रार्थना कर चुकने के पश्चात् उसने बच्चे को उठाकर काली माई के चरणों में लिटा कर गड़ासे के एक ही

झटके में उसका काम तमाम कर देना चाहा। उसने बच्चे को उठाकर काली-माई का नाम लेते हुए "काली माई अपनी भेंट स्वीकार करो" उसे काली माई के चरणों में रख दिया। उसे अपने हाथों के नीचे कोई चीज मुलायम सी मालूम हुई किन्तु उसने उसे पूजा के फूल समझा। फिर अपना तेज गड़ासा उठाकर उसने ज्यों ही बच्चे की गर्दन पकड़कर उसे बध करना चाहा तो उसके हाथ में बच्चे की गर्दन की जगह एक विषधर की गर्दन थी। एक चीख के साथ वह जमीन पर गिर पड़ी।

इधर चार बजने के करीब बच्चे की मां की नींद खुली तो बच्चे को अपने पास न पाकर चीख पड़ी। उसकी चीख से परिवार के अन्य व्यक्ति भी जग गये। बच्चे की तलाश शुरू हो गयी, किन्तु बच्चा कहां! जरा सी देर में सारे गांव में एक हलचल सी मच गई, एक तूफान सा आ गया। सभी कोई जग गये, और सभी लोग इधर-उधर खोज-खबर में लग गये। बच्चे की मां गौरी कलेजा फाड़े डाल रही थी तो बच्चे का बाप पिताम्बर पागल हुआ जा रहा था। किसी की समझ में कोई बात नहीं आती थी। अगर कुछ शक था तो यही कि बच्चे को भेड़िया उठा ले गया है। बड़ी-बूढ़ी होने के नाते पार्वती को आवाज दी गयी, किन्तु पार्वती इस समय तक आवाज की पहुँच से भी बाहर चली जा चुकी थी। रामजस बाहर निकल कर आया और साथ में धनिया भी गोद में बच्चे को लिए हुए निकली किन्तु किसी ने पार्वती को बाहर निकलते न देखा। धनिया तथा रामजस का माथा

ठनका किन्तु मुँह से कुछ न कह सके। लोगों के पूछने पर यही कह दिया कि दिशा-मैदान गई होगी। इस पर किसी को कोई शंका न हुई, किन्तु घबराहट से सबका बुरा हाल हो रहा था। किसी ने लालटेन जलाई तो किसी ने मसाल और लाठी, बरछा, भाला जो भी हथियार जिस किसी के हाथ आया लेकर बच्चे की तलाश में चल पड़ा।

चारों तरफ गांव के बाहर दूर-दूर तक बच्चे की तलाश की गयी, किन्तु किसी को उसकी खोज न मिली। इधर सबेरा भी हो चुका था। कुछ स्त्रियां मंदिर में पूजा के लिये गयीं तो उन्होंने वहां पर जो दृश्य देखा उसे देखकर भागी-भागी और शोर मचाती घर आयीं और चिन्तातुर जनों को मंदिर की घटना कह सुनाई। फिर क्या था, सभी लोग दौड़कर मंदिर पहुँचे।

और वहां जो कुछ देखा उसे देखकर आवाक् रह गयें। एक तरफ खप्पर, गड़ासा और कपड़ा पड़ा था तो दूसरी तरफ पार्वती की लाश पड़ी थी—काली और स्याह। नाग देवता बच्चे के सरपर अपने फन का छत्तर लगाये हुये थे, और बच्चा अब भी मस्ती की नींद में सो रहा था। चटपट गांव से दूध मँगाया गया। उसे नाग देवता के सामने रखा गया जिसे पीकर वे एक ही मिनट में मंदिर में ही कहीं अदृश्य हो गयें। किसी ने भी उन्हें नहीं छेड़ा। नाग देवता के अदृश्य होते ही बच्चे ने आंखें खोलीं और रोना शुरू कर दिया। बच्चे को उठाकर घर लाया गया। दुःख से कातर तथा पागल हो रहे मां-बाप को खोई निधि जैसे मिल गयी।

गांव के समझदार लोग शीघ्र ही समस्त परिस्थिति को भांप गयें। किन्तु जान बची तो लाखों पाये की कहावत के अनुसार सब्रकर चुप हो रहे। पुलिस में रिपोर्ट तक न लिखवाई। उसी दिन मोहन भगत भी तीर्थ कर गांव लौटा। अभी पार्वती की लाश मंदिर में ही पड़ी थी। सारी घटना उसकी समझ में भी आ गयी थी, वह सबके पैर छू रहा था और माफी मांग रहा था। गांव वालों को उसकी तरफ से उसके बेटे तथा बहू की तरफ से जरा भी शक नहीं था। अतः सबने उसे खुले दिल से माफ कर दिया। फिर सब लोग मंदिर गयें और पार्वती की लाश को उठाकर मंदिर के पास ही जला दिया। जलने से शेष बची हड्डियों को मोहन भगत ने बीन कर कुछ बुदबुदाते हुयें काली देवी के ऊपर चढ़ा दिया।

SAY JOY WHEN YOU WANT
REAL GOOD ICE-CREAM.

Get your JOY DUET from your
nearest Joy dealer.

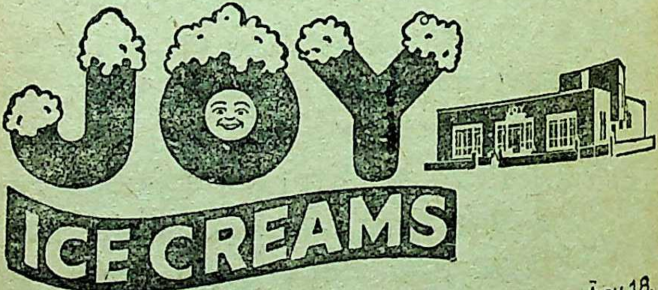

82, Dr. Annie Besant Road, Worli, Bombay 18.

(सामाजिक कहानी)

बुलाकी

लेखक—नामवर

उस दिन भिखारिन बुलाकी को रात भर नींद नहीं आई तरह तरह के विचार उसे मथने लगे। तरह तरह की भूखी हसरतों ने उसे कचोटना शुरू कर दिया। विगत-जीवन की घटनायें बाढ़ की तरह उसकी आंखों के सामने तैरने लगीं। थोड़ी सी तिक्त स्मृतियों के साथ साथ बे-शुमार मीठी स्मृतियां भी उसके विगत-जीवन में शामिल हैं, किन्तु उनकी मिठास भी अब किसी कड़वाहट से कम नहीं है। जीवन के इन पैंतिस वर्षों के उतार-चढ़ाव के बीच की किसी भी घटना को वह अब याद नहीं करना चाहती। जीवन के ढलते बसंत पर उसे पूर्ण पतझड़ का एहसास हो रहा है। एक विरक्ति का भाव अपने आप उसके मन में बरजोरी से घर कर रहा है। फिर भी उसकी बुझी आंखों में एक बेहद रंगीन चित्र रह-रहकर उभर ही जाता हैं—.......हरखू............उस समय उसकी उम्र यही बारह वर्ष की रही होगी। तब यौवन के द्वार पर आकर भी उसे यौवन का कोई खास एहसास नहीं हुआ कारण स्पष्ट था कि वह एक निपट भोली-भाली कमसिन कन्या थी। इस उम्र में भी उसे यह ज्ञान नहीं था कि बस एक दो वर्षों के भीतर ही उसका भी ब्याह गांव की और लड़कियों की तरह हो जायेगा, और वह अपने माता पिता, भाई बन्धु, एवं अपनी प्यारी सहेलियों के साथ ही साथ यह प्यारा गांव भी छोड़कर किसी दूसरे अनजान गांव में किसी दूसरे अनजान आदमी के साथ जीवन भर के लिए चली जायेगी।

हरखू भी उन दिनों यौवन के द्वार पर था। वह भी पास के दूसरे गांव से बुलाकी की तरह गायें चराने आया करता था। पन्द्रह वर्षीय हरखू का कसा हुआ छरहरा बदन, नटखट चाल, एवं चंचल स्वभाव को देखकर बुलाकी को पहली बार अपनी उम्र का एहसास हुआ। पहली बार उसे एक मीठी गुदगुदी के साथ ही साथ शर्म भी महसूस हुई। हरखू भी रोज नये नये बहानों के द्वारा बुलाकी से बात चीत का मौका निकाल ही लेता। धीरे धीरे बुलाकी का हरखू के प्रति संकोच भी जाता रहा। दो दिन हरखू बीमार पड़ जाने से गायें चराने नहीं आया तो बुलाकी को जैसे दिशायें फुँफकार सी महसूस हुईं। गांव के और चरवाहों ने भी उसकी मनस्थिति ताड़ ली, और उन्होंने भी बुलाकी को लक्ष्य करके हरखू के नाम पर कई मीठी चुटकियां लीं। आहिस्ता-आहिस्ता आखिर सच बात उड़ ही गई कि हरखू और बुलाकी एक दूसरे से प्रेम करते हैं।

फिर क्या था, हरखू और बुलाकी को लेकर लोगों में तरह तरह की चर्चायें होने लगीं। ग्राम पंचायत के उदार मुखिया ने पंचायत के सामने एक मन-पसंद, सुझाव पेश किया कि क्यों न बुलाकी का विवाह हरखू से कर दिया जाय। पंचों को बात भी पसंद आ गई और ठीक एक पखवारे के बाद हरखू और बुलाकी विवाह के सूत्र में बँध गए।

इस विवाह से जहां हरखू धन्य धन्य हो उठा, वहां बुलाकी का भी हर्ष किसी सीमा तक कम नहीं था। हरखू को पाकर उसे ऐसा लगा जैसे उसके जीवन की सबसे बड़ी भारी

मुराद पूरी हो गई जीवन के ये दस वर्ष कुछ इस फुर्ती और मिठास के साथ निकल गए कि हरखू और बुलाकी दोनों को कुछ पता न चला । बुलाकी एकाएक कांप उठती है । हरखू जब उस दिन खेत पर से लौटा तो उसके पेट में बेहद मरोड़ हो रही थी । यह मरोड़ बुलाकी के फूले जीवन को भी मरोड़ गई । हरखू इसी पेट की मरोड़ से मर गया ।

हरखू के मरने के बाद बुलाकी को अपने दस वर्षीय पुत्र बदलू को लेकर गृहस्थी का सारा भाग उठाना पड़ा । परिवार में अब कुल मिलाकर तीन सदस्य थे—हरखू की बूढ़ी मां, बुलाकी और उसका लाडला पुत्र । कलेजे पर पत्थर रखकर बुलाकी ने असमय में ही हरखू के अभाव को बर्दाश्त कर लिया । सारी गृहस्थी का भार उसने एक औरत होने पर भी बड़ी कुशलता के साथ हँसते हँसते झेल लिया ।

बुलाकी के रूप-रंग को देखकर ऐसा लगता मानो वह कोई राजकुमारी हो । पचीस वर्ष की इस उम्र में जवानी अपने पूरे निखार में उसका कदम चूम रही थी । उसके इस मदमाते गौर रूप को देखकर एकाएक सभी ललचा उठते थे ।

इसी बीच एक दिन उदण्ड युवा ठाकुर वंशीधर की नजर उसकी जवानी पर धँस गयी । वंशीधर रोज न रोज किसी बहाने से बुलाकी की कुशल क्षेम पूछने लगे । जब कई बार वह किसी एक बात को दुहराकर पूछते तो बुलाकी बस एक बार धीरे से—लजाकर उनका उत्तर दे देती । बस फिर क्या था मीठे मुह से उत्तर के रूप में उस संक्षिप्त मीठे स्वर को सुनकर बशीधर धन्य-धन्य हो—उठते थे । बुलाकी भी

बंशीधर की इस छिपी भावना को ताड़ गई। वह ठाकुर से बहुत बच बच कर रहने लगीं। पर आखिर वह कब तक बच सकती थी? चोरी छिपे ठाकुर बंशीधर अब उससे मीठे मीठे मजाक के साथ ही साथ मीठी मीठी बातें भी करने लगे थे। बुलाकी भी अपने बचाव का कोई उपाय न देखकर ठाकुर को उत्तर देने के लिए मजबूर हो ही जाती।

धीरे धीरे बुलाकी को अपनी सोई जवानी का स्वा जागता हुआ प्रतीत हुआ। ठाकुर का गठीला शरीर उसकी आंखों को परेशान करने लगा। दिल पर से संयम और मर्यादा का बांध टूटता सा दिखाई दिया। रह रहकर उसके शरीर में एक प्रकार का उफान सा उठने लगा। और फिर एक दिन...... पूस की रात में ठाकुर बंशीधर बुलाकी में समा गये और बुलाकी ठाकुर बंशीधर में समा गई। न ठाकुर को अपनी सुधि रही और न बुलाकी को अपनी सुधि। अनचाहे और अनजाने में यही मानवीय क्रिया कई दिनों और कई बार सम्पन्न हुई।

इधर बुलाकी और ठाकुर को लेकर एक दबी गूँज भी गांव वालों के कानों में घर कर रही थी। किन्तु किसी ठोस प्रमाण के अभाव में गांव के प्रतिष्ठित लोगों ने इस पर कोई विशेष ध्यान न दिया। ठाकुर के अपने कुछ आदमियों ने तो गुणगान शुरू कर दिया कि ठाकुर बंशीधर की जय हो, जिन्होंने बेवा बुलाकी के परिवार पर इतनी कृपा दृष्टि रखी है, वर्ना किसको इतनी फुर्सत है कि वह दूसरों के कारोबार में हाथ बटाये।

आखिर ठाकुर वंशीधर की बरजंरी का फल भी लग गया। बुलाकी एकाएक सिर से पैर तक कांप उठी। यों तो ठाकुर वंशीधर ने उसे सामाजिक रक्षा का आश्वासन भी दिया था, पर वह सब कहने की बातें थीं। बात फैल गयी कि बुलाकी को ठाकुर का गर्भ है। बुलाकी भी इस तथ्य पर कब तक पर्दा डाल सकती थीं। जब यह बात दकियानूस विचार वाले गांव के प्रधान तक गई तो उन्होंने झट से झल्लाकर इस मामले के लियें पंचायत बुलाई व बुलाकी के दस वर्षीय पुत्र के सामने अपना यह फैसला रक्खा कि यदि बदलू बिरादरी का हुक्का पानी चाहे तो अपनी मां को घर से बाहर निकाल दे वर्ना बिरादरी का हुक्का पानी छोड़ दे। अबोध बदलू की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गयी। वह कुछ कुछ समझकर भी कुछ भी समझ नहीं रहा था। किन्तु इतना समझकर कि गांव वाले उसकी प्यारी मां को घर से निकालने के लिए कह रहे हैं—उसका कलेजा फटा जा रहा था। पंचायत में कितने ही लोगों के बीच खड़े होकर बदलू की आंखों के सामने सिर्फ सावन-भादों की काली रात दिखाई देती थी। जल्लाद गांव वाले उसकी मां को घर से बाहर निकालने के लिये कह रहे हैं—यह सोचकर जब वह बीच बीच में कुछ सिसक उठता तो उसे बिजली की चमक के बीच अपनी ममता भरी मां का चेहरा दिखाई दे जाता था। एकाएक पंचों ने बदलू से कहा—'बदलू रोना धोना बन्द करो, साफ साफ बोलो कि तुम अमनी मां को घर से निकालना पसंद करोगे या बिरादरी से बाहर होना" उत्तर में बदलू ने

सिसकते हुए कहा "बिरादरी से बाहर……

बात की बात में पंचायत का यह फैसला गांव भर में कानों कान फैल गया। एक ओर से लोगों ने बुलाकी पर बौछारें उड़ानी शुरू कर दीं तथा उसके निराश प्रेमी तथा उसके अद्भुत रूप सौंदर्य पर मन ही मन ईर्ष्या करनेवाली कितनी ही औरतों के लिये यह एक अच्छा सुअवसर था। सभी ने उस के चरित्र पर मनमाना कीचड़ उछालना शुरु कर दिया।

इधर बुलाकी के घर में कुछ इस तरह का मातम छाया हुआ था, जैसे घर में किसी की अकाल मृत्यु हो।

बदलू जब घर में सिसकते हुए हुए घुसा तो हरखू की बूढ़ी मां दहाड़ मारकर अपना सिर पीटने लगी। बुलाकी किसी घर के अंधेरे कोने में बैठी शर्म के मारे पाताल की गहराई नाप रही थी।

उस दिन बुलाकी के घर में चूल्हा नहीं जला न किसी को भूख ही महसूस हुई। सामाजिक कलंक के कष्ट से पीड़ित सभी निराहार गहरी नींद में सो गये। नींद में बुलाकी ने एक सपना देखा कि हरखू द्वार पर दहाड़ मारकर उसके इस कुकृत्य पर रो रहा है। वह एकाएक चीख कर उठ बैठी तो देखा कहीं कोई नहीं। सावन भादों की अंधेरी रात में मरघट की तरह उसका घर सांय सांय कर रहा था। एक बार उस ने अपनी सूजी हुई फटी फटी आंखों से अपने घर के आंगन को चारों तरफ देखा। आंगन के किसी एक कोने में बदलू एक टूटी चारपाई पर बिना बिस्तर के ही गहरी

नींद में सो रहा था उस की ममता कराह उठी । उसके मन में आया कि वह झपट कर बदलू को कम से कम आखिरी बार अपने गले से लगा ले । पर न जाने क्यों वह सहसा रुक गयी ।

दूसरे दिन सुबह होते ही बदलू बुलाकी को घर में न पाकर चीख चीख कर रोने लगा । हरखू की बूढ़ी मां ने भी बदलू का साथ दिया, और फिर पहर भर दिन चढ़ते चढ़ते गांव में यह बात फैल गई कि बुलाकी रात ही रात अपना घर छोड़कर न जाने कहां चली गयी ? शायद वह अपने प्राण-प्यारे बेटे को सिर्फ अपने लियें जाति से अपमानित होते नहीं देख सकती थी ।

FOR COMPLEXION CARE

Afghan Snow

Beauty Aids

E. S. Patanwala BOMBAY 77

"दीपावली"

लेखक—श्री ब्रह्मदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य

संसार में प्राणियों का जीवन दुःखमय है। कभी बीमारी कभी अभाव और कभी कलह उसके ऊपर इतनी तीव्रता से प्रहार करते हैं कि सांस लेना ही दुष्कर है। यदि वह दुःख से मुक्त होकर समृद्धिमान भी बन जाय तो भी उसे सगे सम्बन्धी व पड़ोसियों का कष्ट दबा देता है। मानव का हृदय मोम सा है। वह संसार में अपना जीवन सुख एवं आनन्द से व्यतीत करना चाहता है। अतः सुख और आनन्द की तीव्र इच्छा ने मनुष्य को परम पवित्र त्यौहार मनाने के लिए प्रेरणा दी है। अतः इस परमपावन कर्मभूमि भारत में कई राष्ट्रीय त्यौहार मनाये जा रहे हैं। इनमें से एक सर्वोत्तम दीपावली त्यौहार है। इस पर्व के मनाने की तिथि कार्तिक कृष्ण अमावश्या है। दीवाली का त्यौहार आनन्द वर्धक पर्व है। दीपावली शब्द दीप और अवली से बना है। दीप का अर्थ है दीपक और अवली का अर्थ है पंक्ति।

भारतीय दस या पन्द्रह दिन पूर्व ही 'दीपावली' त्यौहार मनाने का साधन जुटाते हैं। वे अपने घर में सफाई व पोताई कराते हैं। जिससे घर की दीवारों पर लगे हुये पुराने कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। दूकानदार भी अपनी दूकानों की सफाई व पुताई कराते हैं और प्रत्येक वस्तु क्रमशः रखते हैं। जिसे देखकर मानव का हृदय कमल प्रफुल्लित हो उठता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भारतीयों के घर व दूकानों में पोताई व सफाई हो जाने से दीवारों पर चिपके हुये पुराने कीटाणु विनाशित हो जाते हैं। एवम् उनसे होने वाली बीमारियों से भी बच जाते हैं।

शहरियों के घर में हुई सफेदी इस प्रकार से प्रतीत हो रही है कि मानो चन्द्रमा ने अपनी ज्योत्स्ना उन पर ठंडेल दी हो। यह 'त्यौहार' त्रयोदशी से प्रारंभ होकर कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा तक मनाया जाता है।

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी के दिन श्री धन्वन्तरि वैद्य ने रोगों से पीड़ित आदमियों का उद्धार करने के हेतु जन्म लिया जिससे विस्फोटक रोगादि भयभीत हुए कांपने लगे। प्रातः स्मरणीय यह महानुभाव ही आयुर्वेद के प्रवर्त्तक है।

चतुर्दशी के दिन परम पिता परमेश्वर ने प्रकट होकर नरकासुर दैत्य का वध किया। दीपावली का त्यौहार वर्षा ऋतु समाप्त हो जाने के उपरान्त मनाया जाता है। उस समय जल से गड्ढे भर जाते हैं और उनका पानी सड़ता रहता है। घर भी धूप के अभाव में खराव होने लगते हैं। गन्दगी सड़ने लगती है और वायुमण्डल दूषित हो जाने पर अनेक वीमारियों की उत्पत्ति होती है। नरकासुर तमीचर तो किसी युग में पैदा हुआ था परन्तु वर्षा ऋतु के पश्चात् यह गन्दगी रूपी निशाचर तो प्रतिवर्ष पैदा होता है। इसका वध यदि नहीं किया गया तो नरकासुर की भांति विनाशक सिद्ध होगा। अतएव वर्षा समाप्त हो जाने पर इस रोग को भी अवश्य ही समाप्त कर दिया जाय तो भारतीयों का स्वास्थ्य समुचित वना रहेगा।

उक्त पर्व के हर्ष में मिष्ठान्न विक्रेता अपनी दूकानों में नाना प्रकार की मिठाइयों की सजावट करते हैं तो कपड़ा, चांदी, पीतल, आदि के दूकानदार भी अपनी दूकानें कपड़े, चांदी, पीतल, आदि से क्रमशः सजा देते हैं और वारूद

विक्रेता भी बारूद के पटाखों आदि से। लोग त्रयोदशी से अमावश्या तक नवीन वस्त्र की पोशाक पहनते हैं और दीपावली के मुख्य दिन बाजार में अपनी सामर्थ्यानुसार वस्तुएं खरीदते हैं। क्योंकि कोई नवीन वस्तु खरीदना उनका प्रमुख उद्देश्य होता है। उस दिन दूकानदार अपने व्यापार में प्रचुर लाभ को पूरे वर्ष पर्यन्त लाभ प्रतीक समझते हैं। उसकी खुशी में नगर के प्रत्येक घर व दूकानों पर दीपक पंक्ति सजा दी जाती है। उस समय दीपक पंक्ति इस प्रकार प्रतीत होती है कि मानो गगन से चमकते हुए तारे पृथ्वी पर उतर आये हों।

भारतीय लोग 'गोधूलिवेला' में महालक्ष्मी जी के पूजन में सपरिवार जुट जाते हैं और बड़ी धूमधाम से पूजा समाप्त हो जाने के पश्चात् परिवार सहित रसोईघर में बैठकर भोजन करते हैं और बारूद के पटाखे भी छोड़ते हैं। रात्रि के समय वे सामूहिक रूप में दीपावली की रोशनी देखने के लिये बाजार जाते हैं।

उस समय दीपावली की रोशनी गगन की तरह चमचमा उठती है। जिससे नगर की छटा निखर जाती है। यह पर्व वर्षमें एक बार आता है। यह दिन लोगोंका हर्षमें व्यतीत होता है तो वे शकुन द्वारा अपना पूरा वर्ष आनन्द से गुजरने का प्रतीक समझते हैं।

इस त्यौहार को इसलिए बढ़ावा दिया गया है कि सूर्यवंशीय दशरथ राजा के ज्येष्ठ पुत्र मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी लंका में सपरिवार रावण राक्षस का वध कर जब अयोध्या में पधारे तो अयोध्यावासियों को सुयोग्य शासक

मिल जाने से उनकी खुशी में नगर के प्रत्येक घर पर दीप पंक्ति नियत कर दी। जिससे नगर की छटा और भी विस्तृत हो गई। अतः 'दीपमाला' धूमधाम से मनाने में यह भी साधन बन गया।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को सुबह छः बजे गोवर्धन पूजा लोग सपरिवार करते हैं क्योंकि इन्द्र के गर्व को चूर करने के लिये गोवर्धन गिरि को उठाकर श्रीकृष्ण ने ग्वालों से कहा की "तुम सपरिवार इसके नीचे आ जाओ ताकि इन्द्र से वर्षाया हुआ मूसलाधार पानी भी तुम्हारी किंचित् भी हानि दायक सिद्ध नहीं होगा। मैं समस्त नगरी की छाते के सदृश गोवर्धन से रक्षा करूँगा।" श्रीकृष्ण ने पानी से डूबते हुये गोकुल की रक्षा की। इसलिए दीपावली के दूसरे दिन यह पर्व भी मनाने का मुख्य साधन बना।

आजकल दीवाली में बारूद के पटाखे छोड़ना, जुआ खेलना व मिष्टान पकाना ही हमारा एकमात्र उद्देश्य रह गया है। लोग इस त्यौहार के आगमन पर लाखों रुपयों का अपव्यय करते हैं। असावधानी के कारण कभी कभी बारूद के पटाखे छोड़ने से दुर्घटना भी घटित हो जाती है और कभी जुआ खेलने से व्यक्ति एक क्षण में निर्धन बन जाता है। भारत सरकार को चाहिए कि इस पर रोक लगाकर जुआ और बारूद के पटाखे छोड़ने की कुरीति समूल नष्ट करें एवं इस अवसर पर कवि सम्मेलन, धार्मिक चर्चा और समाज में एकता व संगठन का भाव पैदा किया जाय। तभी भारतवर्ष के सांस्कृतिक आचार-विचार व सांस्कृतिक आयोजनों का ज्ञान-विज्ञानात्मक मौलिक स्वरूप स्पष्ट हो सकेगा और केवल इसी स्पष्टता के बल पर हमारा भारतवर्ष विश्व में दीपावली का यथार्थ रूप से आचरण करता, राष्ट्र लक्ष्मी को प्रसन्न करने में समर्थ बन सकेगा। दीपावली महोत्सव तभी आर्यों के लिये महत्वशाली एवं लोकप्रिय सिद्ध होगा।

श्री गजाधर सोमानी

(एक जीवन परिचय)

ले०—प्रो० सत्यपाल

श्री गजाधर सोमानी (जी० डी० सोमानी) का जन्म राजस्थान के एक छोटे से गांव मौलासर में १२ अप्रैल, १९०७ को हुआ था। इनकी शिक्षा दीक्षा कलकत्ता में हुई। इनका विवाह सुप्रसिद्ध मानधनिया परिवार की सुश्री भंवरीदेवी से हुआ। आजकल आपके चार पुत्र एक पुत्री हैं।

श्री गजाधर जी के पिता श्री हजारीमल जी सोमानी बड़े ही धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे और एक कुशल तथा सफल व्यापारी होने के साथ साथ उनके विचार ईश्वर भक्ति की भावना से ओतप्रोत थे। श्री हजारीमलजी ने ही श्री गजाधर जी को व्यापार और धर्म में प्रेरित किया।

१९३४ में श्री गजाधरजी ने अपना कार्यक्षेत्र कलकत्ता से बम्बई चुना और सुप्रसिद्ध बांगड़ परिवार के साझे में श्री निवास काटन मिल्स लिमिटेड की स्थापना की। इस मिल की स्थापना के बाद ही श्री सोमानी ने अपनी प्रतिभा तथा व्यापार कुशलता से "श्रीनिवास उद्योग समूह" की स्थापना

की जिसमें श्रीनिवास काटन मिल्स के अतिरिक्त श्री मधुसूदन मिल्स लि०, श्री गोपाल इन्डस्ट्रीज लि०, श्री दिग्विजय सीमेंट कं० लि०; वेस्ट कोस्ट पेपर मिल्स लि०, तथा पेपर मिल्स लि० सम्मिलित हैं ।

उपरोक्त समूह के अंतर्गत कंपनियों के संचालक ने अतिरिक्त आप लगभग १६ प्रतिष्ठित कंपनियों के संचालक हैं । आप बैंक आफ जयपुर के अध्यक्ष रह चुके हैं जो अब स्टेट बैंक आफ इंडिया के अंतर्गत संचालित होता है।

श्री गजाधर जी के जीवन से राजनैतिक क्षेत्र अछूता नहीं रहा । सफलता ने यहां भी इनके चरण चूमे। आप १९५१ से १९६१ तक दोनों बार लोक सभा के सदस्य रहे । लोक-सभा में आर्थिक तथा व्यवसायिक जटिल समस्याओं पर सक्रिय रूप से भाग लेते रहे और आपके सुलझे हुए विचारों का औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा सरकार ने सदा स्वागत किया । उन्होंने चर्चा के समय ऐसा कोई विचार प्रस्तुत नहीं किया जो राष्ट्रहित में न हो । लोकसभा व उसके बाहर उनकी विचारधारा नीतियों की रचनात्मक आलोचक तथा देश की आर्थिक उन्नति में सक्रिय सहयोग तथा समर्थन की रही है। आजकल आप केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त कई समितियों तथा परिषदों पर उद्योग तथा व्यापार का प्रतिनिधित्व करते हैं एवम् कई औद्योगिक तथा व्यापारिक समितियों के सदस्य हैं ।

श्री सोमानीजी कई वर्षों तक बम्बई मिल मालिक संघ के

सदस्य तथा तीन बार उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। आप भारतीय सूती मिल संघ के भी सदस्य रह चुके हैं। आप कई वर्षों से फेडरेशन आफ इन्डियन चैम्बर्स आफ कामर्स एन्ड इन्डस्ट्री, नई दिल्ली के सदस्य हैं। चार वर्ष तक आप आल इन्डिया आर्गनिजेशन आफ इन्डस्ट्रियल इम्प्लायर्स, नई दिल्ली के अध्यक्ष रह चुके हैं। इन्डियन मर्चेन्ट्स चेम्बर, बम्बई, वेस्टर्न इन्डिया चैम्बर आफ कामर्स लि०, बंबई तथा जयपुर के राजस्थान चैंबर आफ कामर्स के अध्यक्ष रह चुके हैं। आप सीमेन्ट निर्माता संघ (सीमेन्ट मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन) के तथा सीमेन्ट एलोकेशन एण्ड कोआर्डिनेटिंग आर्गनिजेशन (केको) की गवर्निंग बाडी के अध्यक्ष हैं। बम्बई टेक्सटाइल रिसर्च एसोसियेशन की गवर्निंग कौंसिल के भी आप सदस्य हैं।

राजस्थान के आर्थिक विकास में श्री सोमानी जी की विशेष रुचि रही हैं। लोकसभा में कई बार उन्होंने राजस्थान की समस्याओं को उठाया। राजस्थान चैम्बर आफ कामर्स, राजस्थान राज्य की औद्योगिक सलाहकार परिषद् तथा अन्य मंचों से राजस्थान की औद्योगिक प्रगति में सक्रिय हाथ बटाते रहे। जिस समय टैक्सटाइल उद्योग महान संकट का सामना कर रहा था, उस समय आप राजस्थान की टैक्सटाइल एडवाजरी कमिटी के सदस्य थे। इस समिति ने कई रचनात्मक सुझाव दिए। राजस्थान में इन्डस्ट्रियल डिवलपमेंट कार्पोरेशन की स्थापना पर विचार करने के लिए जिस समिति का निर्माण हुआ था। उसके आप अध्यक्ष थे। आप राजस्थान

में आर्थिक विकास की उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए सक्रिय भाग लेते रहे हैं और ले रहे हैं।

श्री गजाधरजी सांस्कृतिक, शैक्षणिक, सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में भी उसी उत्साह से काम करते रहे हैं। राजस्थान में अपने ढंग का अनोखा प्रथम ग्रामोद्धार केन्द्र (रूरल अपलिफ्ट सेन्टर) आपकी जन्म-भूमि मोलासर में ही राज्य सरकार के सहयोग से स्थापित हुआ जिसका शिलान्यास जोधपुर के स्वर्गीय महाराज ने किया था। बाद में राजस्थान सरकार द्वारा यह केन्द्र प्रारंभिक स्वास्थ्य केन्द्र (प्रायमरी हैल्थ सेन्टर) के रूप में बदल दिया गया जिसका उद्घाटन तत्कालीन केन्द्रीय गृहमन्त्री डा० कैलासनाथ काटजू ने किया। इस केन्द्र के अतिरिक्त इस गांव में बहुत दिनों से कई शैक्षणिक तथा सामाजिक सेवाओं की संस्थाएं काम कर रही हैं।

कुछ समम पहले अपने पूज्य पिताजी स्व० श्री हजारीमल जी सोमानी की पुण्य स्मृति में बम्बई के भारतीय विद्या भवन के अंतर्गत एक आर्ट्स तथा साइन्स कालेज की स्थापना श्री गजाधर जी ने की, जिसका उद्घाटन प्रतिरक्षा मन्त्री श्री यशवन्तराव चह्वाण द्वारा हुआ था। सोमानी परिवार ने बम्बई के मध्यवर्ती क्षेत्र में मध्यवर्गीय परिवारों के उपयोग के लिए एक उपभवन का निर्माण किया है। बम्बई का सुप्रसिद्ध श्री वेंकटेश देवस्थान मंदिर, धार्मिक प्रवृत्तियों के अतिरिक्त पुस्तकालय, औषधालय तथा अन्य उपयोगी साधनों द्वारा जनता की सेवा कर रहा है। यह मंदिर दक्षिण की सर्वोत्कृष्ट

वास्तुकला का प्रतीक है और प्रतिदिन सैकड़ों यात्री इसमें दर्शनार्थ जाते हैं।

इसके अतिरिक्त कई अन्य शैक्षणिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं से आपका सम्बन्ध सर्वविदित है।

बंबई तथा राजस्थान में उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त श्री सोमानी भारत के अन्य भागों में सार्वजनिक सेवा के क्षेत्रों में सक्रिय भाग लेते जा रहे हैं। आप अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के अध्यक्ष हैं। यह सम्मेलन राजस्थानियों के सामाजिक, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए राष्ट्रीय संस्था है। बाहर से आए हुये विद्यार्थियों के लिये कलकत्ते में एक विशाल छात्रावास की योजना इस सम्मेलन द्वारा कार्यान्वित की जा रही है।

समय समय पर श्री सोमानी जी कई सामाजिक तथा लोकोपयोगी योजनाओं में सक्रिय भाग लेते रहे हैं। श्री धरमसी मूलराज खटाऊ की अध्यक्षता में अकाल पीड़ित क्षेत्रों की सहायता के लिये निर्मित केन्द्रीय राहत कोष (सेन्ट्रल रिलीफ फन्ड) के आयोजन में अभी हाल ही में आपने प्रमुख तथा सक्रिय भाग लिया। ऐसी और कितनी ही संस्थायें हैं जिन्हें आप सहयोग तथा सहायता देते रहे हैं अथवा दे रहे हैं। अखिल भारत गोसेवक समाज के आप अध्यक्ष हैं। अभी हाल ही में श्री लाल बहादुर शास्त्री सेवा निकेतन के लिये सीमेंट उद्योग तथा अन्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों से आर्थिक

सहायता दिलाने में महान् प्रयत्न किया।

राष्ट्रहित के लिए प्रयत्न करने में आप सक्रिय रहे हैं। उदाहरण के लिए जब आप इंडियन मर्चेन्ट्स चैंबर के अध्यक्ष थे, चीनी आक्रमण के तुरन्त बाद ही जैसे ही श्री मोरारजी देशाई ने नेशनल डिफेन्स फन्ड तथा गोल्ड बान्ड में धन देने की अपील की, तो आपने इन कार्यों के लिए साधन जुटाने में भगीरथ प्रयत्न किया। बाद में १९६५ में जब भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने गोल्ड बांड के लिए अपील निकाली तो आपने विशेष प्रयत्न किया। विशेषकर अपने प्रतिष्ठानों द्वारा लगभग ५००० तोला सोना तथा सोने के आभूषण ८ दिसम्बर १९६५को दिल्ली में आयोजित एक विशेष समारोह के अवसर पर श्री लाल बहादुर शास्त्री को दिए। उस अवसर पर दिए गए श्री शास्त्री के भाषण का निम्नांस उल्लेखनीय है।

"मुझे इस बात की खुशी है कि सोमानी जी से इस बारे में जब मेरी बातचीत हुई और मैंने उनसे निवेदन किया कि इस काम को उन्हें उठाना चाहिये और अपने साथियों में बातचीत करनी चाहिए तो उन्होंने कहा कि वे इसको करेंगे और फिर बहुत जल्द उन्होंने यह कर दिखाया। यह जो आज सोना यहां दिया गया यह उसीका अच्छा नतीजा है। इसमें कोई शक नहीं कि सोना और बहुत से लोगों ने दिया है, मगर इस तरह से, एक संगठित तरीके पर और इतनी मात्रा में मालदार आसामियों से पहली बार मिला है। इसके लिए मैं सोमानी जी को बहुत बहुत बधाइयां देता हूँ।"

प्रतिक्रियाओं का सिलसिला

झूठे ख़तरे का परिणाम है देरी।

रेल के डिब्बे में खतरे की ज़ंजीर का बहुत महत्व है। इसे बिना सोचे-विचारे खींचने से बहुत-सी रेल गाड़ियां समय पर नहीं पहुंच सकेंगी और पूरे टाइम-टेबल में गड़बड़ी पैदा हो सकती है।

खतरे की जंजीर तभी खींचिये
…जब
सचमुच खतरा हो।

मध्य रेलवे

रामतीर्थ
तन मन विकासक सर्वोत्तम मासिक

नेति, धोति, बस्ति, नवली, त्राटक, कपालभाति, नाना प्रकार के आसन, विभिन्न प्रकार के प्राणायाम, कुण्डलिनी शक्ति जागृतिके लिये महत्वनीय अनेक मुद्राएँ, धारणा, ध्यान समाधि का अभ्यास गत ४० बरसों से श्री रामतीर्थ योगाश्रम में चालू है। सत्य सुख का स्रोत, जन्म-मृत्यु का निजी अनुभव, आपके मूल स्वरूप सत् चित् आनन्द प्राप्त करने के लियें सुलभ उपाय बताया जाता है। अष्टांग योग तथा राजयोग के निरंतर अभ्यास की व्यवस्था रखी गई है। व्यवहार एवं परमार्थ का अज्ञान यह दुःख का कारण तथा [illegible]ज्ञान सुख का भंडार है। केवल आहार, भय, मैथुन तथा निद्रा से सदा सुख आपको नहीं प्राप्त होगा। अर्थात् दुःखों के साथ सुख का अनुभव मिलेगा। आपका वर्तमान काल ही सुख-शांति प्राप्त करने का अमूल्य समय है। अष्टांग योग अथवा राजयोग से यथेच्छ लाभ उठाने के लियें रामतीर्थ योगाश्रम का आश्रय लीजिये। सुवर्ण संधि का लाभ उठाइये।

प्राती

सिलरि

झूठे ख़

रेल के डिब्बे में खतरे क
ज़ंजीर का बहुत महत्व
बिना सोचे-विचारे खींचे
बहुत-सी रेल गाड़ियां स
नहीं पहुंच सकेंगी और पू
टाइम-टेबल में गड़बड़ी फै
हो सकती है।

खतरे की जंजीर तभी खीं
… जब
सचमुच खतरा हो।

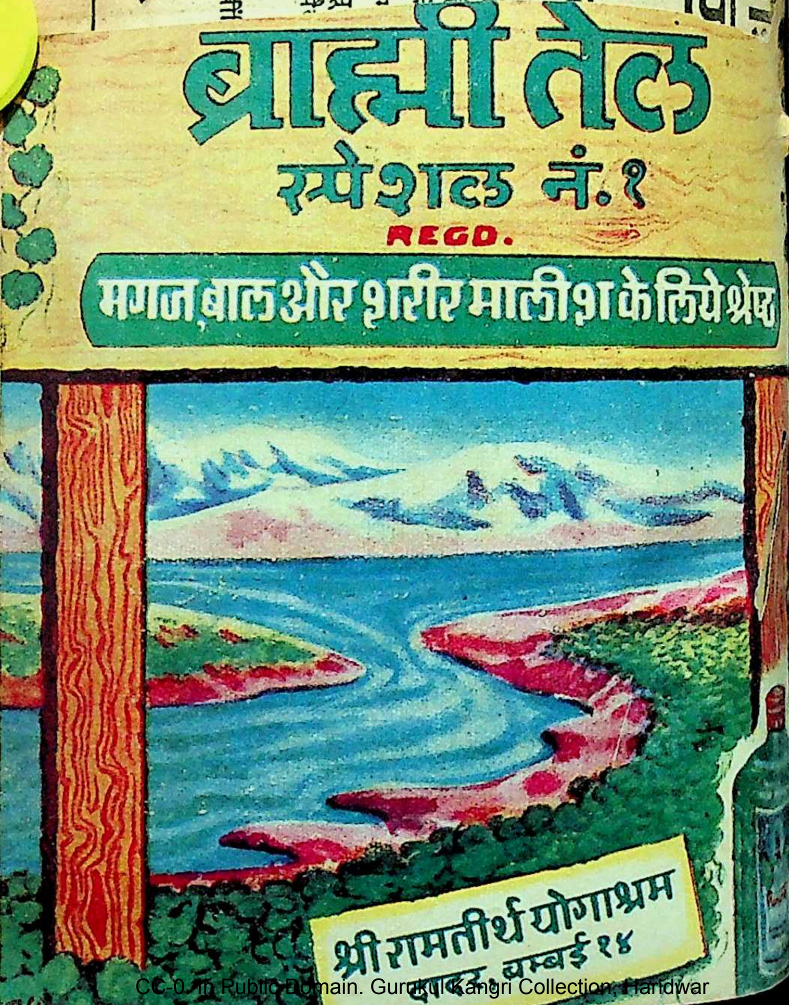
ब्राह्मी तेल
स्पेशल नं. १
REGD.
मगज, बाल और शरीर मालीश के लिये श्रेष्ठ
श्री रामतीर्थ योगाश्रम
दादर, बम्बई १४

रामतीर्थ

तन मन विकासक सर्वोत्तम मासिक

दिसम्बर

50 पैसे

१९६८

श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर, बम्बई - १४

आप सदा कैसे सुखमय रह सकोगे।

आपके पास धन-दौलत कम हो अथवा अधिक हो, सत्ता बड़ी हो या कीर्ति बड़ी हो किन्तु आपका शरीर तथा मन की सुलभ साध्य एवं त्रासदायक बीमारिओं से व्यस्त जीवन बिताते होंगे तो सुख-सम्पत्ति के लाभ से वंचित रहना पड़ेगा। इन स्थूल-सूक्ष्म जटिल व्याधियों से छुटकारा पाने के लिये 'उमेश योगदर्शन' प्रथम खंड अवश्य पढ़िये। अनेक आकर्षक मनोरंजक योगासनों की छबियों से सुसज्जित, हरेक पृष्ठ में महत्त्वनीय इलाजों का जैसे क्रोमोपेथी, हायड्रोपेथी, मालीश, यौगिक थेरेपी, आहार, सायकालोजी आदि का दिग्दर्शन आधुनिक वैज्ञानिक ढंगसे किया गया है। उमेशयोग दर्शन ग्रंथ एक बार पढ़ने से आपके मन में जीवन के ऊँचे मूल्य का पता लगेगा। बारम्बार पढ़ने की इच्छा बढ़ती रहेगी अन्त में सारा जीवन अपने पास रखने की इच्छा बढ़ जायेंगी।

भाषा: हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी।

पृष्ठसंख्या १०० से अधिक। कागज बढ़िया, बाईं
आकर्षक।

कीमत : १५-०० रु. डाकव्यय २-५० रु.

पैसा पहले से भेज सकते हैं अथवा वी. पी. पी. से मंगा सकते हैं।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम, दादर, (मध्य रेल्वे) स्टेशन
के पास (पूर्व), स्वामी नारायण मंदिर के पीछे,
बम्बई १४ फोन— 442899

(प्रकाशन तिथि १-१२-६६)

मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और
पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

सम्पादक—
योगीराज
उमेशचन्द्र जी

रामतीर्थ

वर्ष–७ अंक–९
दिसम्बर १९६६

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक } 442899
विज्ञापन
तार–प्राणायाम दादर

लेख	लेखक	पृष्ठ
वैदिक प्रार्थना	संकलित	४
उमेश वाणी		५
तपस्	जनमेजय विद्यालंकार	९
जीवन की व्याख्या	हरिमोहनलाल श्रीवास्तव	१७
मौन व्रत	मुकुन्दराय वि. पाराशर	२२
जीवन भाग्य का खेल नहीं	लक्ष्मीकान्त मिश्र	२९
सुख और दुःख	आर. एस. शास्त्री	३५
मेरा पथ (कहानी)	सर्वेन्द्र प्रसाद गर्ग	४०
विश्व विहार	कालूभाई बसिया	४८
धर्मोपदेश	स्वामी रामतीर्थ	६३

लेख	लेखक
जी सीधे रास्ते...(कहानी)	डा. गोपाल प्रसाद वंशी'
एक कुटिल शर्त (कहानी)	गिरिजेश
रामचरितमानस	टी. योगीराज उमेशचन्द्रजी
कपट शाप और अन्त (एकांकी)	कृष्णमुनि प्रभाकर
मैं तेरा जीवन दाता (कविता)	रूपनाथ यादव 'अश्क'

मुख पृष्ठ का परिचय

नीर क्षीर विवेक वाले हंस के दर्शन कर आप भी वैसे ही बनने की कोशिश करें।

विशेष सूचना– 'रामतीर्थ' मध्यप्रदेश व राजस्थान सरकार के शिक्षण विभाग की ओर से प्राथमिक, माध्यमिक उच्चतर, बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों व सार्वजनिक व पंचायत समिति पुस्तकालयों के उपयोग के लिये स्वीकृत है।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके लिये विन्सेन्ट स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

* * *

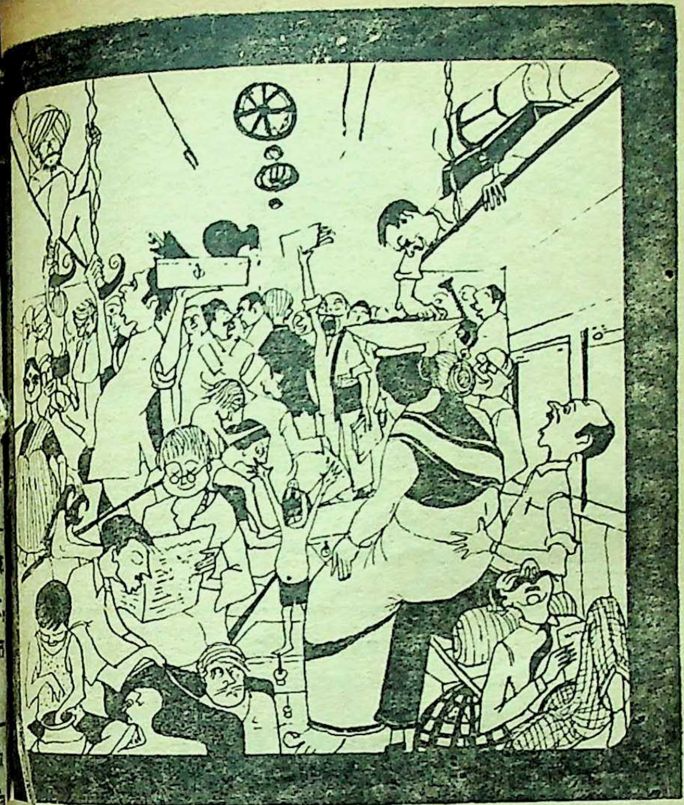

कोई सूरत नज़र नहीं आती!

ने गला फाड़ कर है चिल्लाये ☐ अम्मा चुप बैठी है अपने होंठ दबाये ☐ छोटे चाचा मस्त रहे हैं खर्राटे भर
टो रानी आ टपकी पतले राजा पर ☐ ऊपरवाला साफ़ टमाटर उड़ा रहा है ☐ बचन सिंह गुस्से में आँखें दिखा
☐ उसकी टाँगें खींच झूलता झूला छोटू ☐ डिब्बे की यह रेल पेल कितनी दमघोटू ☐ कोई सूरत नज़र नहीं
लेकिन रहे मेल से सभी रेल में तो सब मुमकिन

पश्चिम रेलवे

भद्रं कर्णेभिः श्रणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

सम्पादक - **रामतीर्थ** योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ७] दिसम्बर १९६६ [संख्या ९

वैदिक-प्रार्थना

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ३ ऋषयश्च ये ॥

ऋ. वे. पु. सू. १० / ९०-७

भावार्थ—जो यज्ञस्वरूप पुरुष पहलेसे उत्पन्न हुआ था, (उसको पशुरूप मान कर) उसका दर्भ के आसन पर अभिषेक किया और उसके बाद जो देव, साध्यगण एवं ऋषिगण थे, उन्होंने यज्ञ कार्य किया ।

(२९८) सदैव ईश्वर परायण बने रहना और ईश्वर-निष्ठ विचारों में लीन रहना चाहिये । परमात्मा ही सुख शांति तथा परमानन्द का केन्द्र है । अखिल विश्व दिव्य भगवदीय सौंदर्य से भासमान हो रहा है और विश्व का कण कण परम प्रभु की सत्ता का विश्वास दिला रहा है. अतः परमात्मा की खोज करने की जरूरत नहीं, बल्कि सर्वत्र उसके दर्शन कर परम तृप्ति और शांति का अनुभव करना चाहिये ।

(२९९) सर्जन और विसर्जन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । न तो सर्जन आनन्द का कारणभूत होना चाहिये और न विसर्जन (विध्वंस) को देखकर उद्विग्न हो उठना चाहिये । जो व्यक्ति इन दोनों स्थितियों से निरपेक्ष भाव रखता है, जो परिस्थितियों का दास नहीं अपितु परिस्थितियों का स्वयं संचालक है, वही वास्तविक मुक्तात्मा है और बन्धहीन होकर कर्तव्य कार्यों में मनोनिवेश किये रहता है ।

(३००) यह सत्य है कि आशा जीवन ही नहीं, जीवन की पतवार है। यदि उसका आधार न हो, तो जीवन नौका इस अनन्त संसार सागर में निस्सन्देह डूब जायेगी। किंतु यह भी एक वास्तविकता है और इसे ध्यान में रखना है और इसे ध्यान में रखना आवश्यक है कि मनुष्य को हाथ पैर चलाने ही पड़ेंगे, मात्र पतवार (आशा) का भरोसा रखकर निष्क्रिय बैठ रहने से इस विराट संसार सागर के पार पहुंचना असंभव है।

(३०१) माता पिता ने जो उपकार किये हैं, उनसे यदि भलीभांति अवगत होना हो, ध्यान पूर्वक मनन करना हम स्वयं अपने बच्चों के प्रति कैसा मनोभाव रखते हैं। हमारे नन्हें शरीर का पालन पोषण कर और उसे सशक्त तथा कार्य-क्षम बनाने वाले, उच्च शिक्षा तथा संस्कारों से मानसिक विकास करने की ओर माता पिता सतत सचेष्ट रहते हैं। भले ही हम माता-पिता या अन्य अभिभावकों के सदाशयतापूर्ण उपकारों का प्रतिदान न कर सकें, परन्तु उनका अपमान करना, उनसे द्वेष, घृणा और तिरस्कार के भाव रखना तो महान् कृतघ्नता है। ऐसा करके कोई व्यक्ति कदापि सुखी नहीं हो सकता। प्रकृति का यह अटल नियम है।

(३०२) आज की समाज व्यवस्था ऐसी विचित्र है, जिसके प्रभाव में आकर मानव की चिर अभ्यस्त त्याग भावना क्रमशः लुप्त होती जा रही है। आज भोग वस्तुओं के विराट अर्जन और उपभोग को ही परम श्रेयस्कर माना जा रहा है। इस स्थिति से त्राण पाने के लिये मानव का कर्तव्य है कि वह दैहिक

सुख की बाह्य वस्तुओं को मूलभूत साधन न माने और अपने अन्तरतम को सुख संतोष से प्लावित रखे। इच्छाओं वासनाओं का प्रबल प्रवाह मानव की मुक्त चेतना पर छा जाता है। इससे बचने का उपाय है संयम नियम पूर्वक परिमित और सहजसाध्य मूलभूत आवश्यकताओं के साथ जीवन धारण की कला में कुशल बनना।

(३०३) आनन्द या प्रसन्नता परमात्मा या प्रकृति की ओर से मानव को बहुमूल्य उपहार है, परन्तु इसके साथ एक शर्त भी है। वह यह कि मानव इस अन्तःजन्य आनन्द की अनुभूति तभी कर सकेगा, जब वह योग युक्त होकर उच्चतम विचारों का विस्तार करेगा। और अपने निस्स्वार्थ सेवा कार्यों द्वारा मानव मात्र को आनन्द और उत्साह से परिपूर्ण बना देने के प्रयास करता रहेगा। भले ही पारमार्थिक प्रयास छोटे होंगे, परन्तु उनका मूल्यांकन किया जायेगा। हमें अनुभव होगा कि जब हम किसी के जीवन भार को हलका बना देने की ओर प्रवृत्त होते हैं, किसी के अप्रत्यासित संकट को दूर करने में कुछ योगदान करते हैं, तब अनायास हमारा अन्तर्मन आनन्द और परितृप्ति से भर उठता है। दूसरों के लिये तनिक भी त्याग करना मानवता की महती सेवा है।

(३०४) जीवन में संघर्ष और कठिनाइयां हमें निराश बनाने के लिए नहीं, अपितु अदम्य साहस और सामर्थ्य से संपन्न बनाने के लिए आते हैं। जो लोग जीवन से हताश और निरुत्साहित हो बैठते हैं, वे न केवल जीवन के आनन्द से हाथ

धो बैठते हैं, बल्कि अपनी आंतरिक शक्तियों को नष्ट कर डालते हैं। ऐसे लोगों के उदास मुख और बुझे हुए मन को देखकर हमेशा यही इच्छा होती है कि उनके मुखों को प्रकाश और आनन्द की ओर फिरा दें, जिससे वे जीवन के उल्लास का अनुभव कर सकें। जो लोग स्वयं हँसते और दूसरों को हँसाते हुये जीवन-यापन करते हैं, वस्तुतः वही भाग्यशाली हैं और संसार में आरोग्य आनन्द और सफलता की प्राप्ति करते हैं।

(२०५) दुःख के अत्यन्तिक अभाव को मुक्ति कहा जाता है। मन ही बन्धन— मुक्ति और दुःख-सुख का मूल कारण है, शरीर नहीं। कहा जाता है कि यदि मन सदा प्रसन्न रहे तो दुःख की विभीषिका पास भी नहीं फटकती। साम्यावस्था प्राप्त करने पर भी मन निस्सन्देह शांति और सुस्थिर होता है। वासनाओं और इच्छाओं से विरत होकर मन को अंतर्मुखी बनाया जा सकता है और नित्य मुक्तावस्था का अनुभव किया जा सकता है।

(२०६ वस्तुतः देखा जाए, तो प्रत्येक मनुष्य का जीवन उस परम पवित्र विराट् जीवन का द्वार है, जिसमें प्रवेश करने के बाद हमारे समस्त दुःखों, अभावों और विकारों की समाप्ति हो जाती है। अतः मेरी सदिच्छा है कि जगत् के सभी मानव दिव्य जीवन की उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित हों और अन्तस्थ आत्म देव के प्रकाश का दर्शन प्राप्त कर शाश्वत सौंदर्य और अमरानन्द की अनन्त रस-धारा में निरंतर गोते लगाते रहें।

तपस्या

ले. प्रो. जनमेजय विद्यालंकार एम. ए., शास्त्री

वेदों और शास्त्रों में तप की बहुत महिमा वर्णन की गई है। जन साधारण में भी तपस्या के लिए बहुत श्रद्धा है। संस्कृत साहित्य तप का महत्व बार बार उद्घोषित करता है। यहां कुछके अत्यन्त महत्वपूर्ण वैदिक तथा शास्त्रीय उद्धरण हम प्रस्तुत कर रहे हैं जो कि तपके महत्व को बतलाते हैं ।

[१] ब्रह्मचर्येणतपसा देवाः मृत्युमुपाघ्नत ।—अथर्ववेद.

[२] ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति । अथर्ववेद.

[३] यद् दुष्करं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुस्तरम् ।
तत् सर्वं तपसा साध्यं तपोहि दुरतिक्रमम् ॥—मनुस्मृति.

[४] नातपस्विनो योगः सिद्ध्यति, अनादि कर्मक्लेशवासनाचित्ता प्रत्युपस्थित विषय जाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः सम्भेदमापद्यते, इति तपस उपादानम् ।—योगशास्त्र, व्यास भाष्य.

[५] कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धि क्षयात् तपसः। निर्वर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्ध्या वरणमलम्, तदावरणमलापगमात् कायसिद्धि अणिमाद्या, तथेन्द्रियसिद्धिः दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति। - योगशास्त्र, व्यासभाष्य।

क्रमशः इनका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है।

[१] ब्रह्मचर्य तथा तपस्या के बल से ही सदाचारी विद्वान लोग मृत्यु को जीत लेते हैं। यह अथर्ववेद का वचन है।

[२] ब्रह्मचर्य और तप के बल से ही राजा अपने राष्ट्र की रक्षा कर सकता है। यह भी अथर्ववेद का वचन है।

[३] इस लोक में तथा परलोक में भी जो दुष्कर कठिन कार्य हैं, जो दुलभ पदार्थ हैं, जो दुर्गम स्थान हैं, जो कुछ भी अत्यन्त दुस्तर है, वह सब कुछ तप के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है अर्थात् तप के द्वारा जीता जा सकता है, वस्तुतः तप बहुत बड़ी शक्ति है। यह मनुस्मृति का वचन है।

[४] विना तप के कभी भी योगाभ्यास की सिद्धि नहीं हो सकती। अनेक जन्म जन्मान्तरों के सञ्चित पाप तथा कुसंस्कार तथा मानसिक अपवित्रताएं विना तपस्या के कदापि नष्ट नहीं की जा सकतीं। इसीलिए योगी के लिए तप की परम आवश्यकता है। यह वचन योगशास्त्र की व्याख्या करते हुए महर्षि वेदव्यास जी ने कहे हैं।

[५] तप के द्वारा जब मनुष्य अपने शरीर की तथा इन्द्रियों की अपवित्रताओं को दूर कर देता है तब उसे अनेक प्रकार की अद्भुत सिद्धियां और आश्चर्यजनक विभूतियां प्राप्त होतीं हैं। यह वचन योगशास्त्र की व्याख्या करते हुए महर्षि वेदव्यास जी ने कहे हैं।

यह तो हुआ तपस्या के महत्त्व का संक्षिप्त विवरण। अब हम तप का लक्षण और तप का स्वरूप भी प्राचीन संस्कृत साहित्य के ही आधार पर संक्षेप से यहां लिखते हैं।

योगशास्त्र की व्याख्या करते हुए महर्षि वेदव्यास जी ने कहा है कि,

"तपो द्वन्द्व सहनम् । द्वन्द्वश्च जिघत्सा पिपासे, शीतोष्णे, स्थानासने, काष्ठमौनाकार मौने ।" अर्थात् "भूख प्यास, सर्दी गर्मी, बैठना चलना, बोलना मौन रहना, आदि आदि जो द्वन्द्व हैं उनको सहन कर सकना ही तप है।" यह तो अति संक्षेप से महर्षि वेदव्यास जी ने तप का लक्षण बतलाया है। इसी की व्याख्या अपनी बुद्धि से भली प्रकार करके विद्वान् लोग तप का स्वरूप भली प्रकार समझ सकते हैं। हमें तो, भगवान् श्रीकृष्ण जी ने भगवद्गीता में जो तप विस्तृत रूप व्याख्या के तौर पर बतलाया है, वही सबसे अच्छी व्याख्या प्रतीत होती है, अतः उसे ही हम यहां उद्धृत करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं।

(क) देवद्विजगुरु प्राज्ञ पूजनं शौच मार्जवम् ।
ब्रह्मचर्य महिंसाच शारीरं तप उच्यते ॥
(ख) अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितञ्च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनञ्चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥
(ग) मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानस मुच्यते ॥
(घ) श्रद्धा परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते ॥
(ङ) सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥
(च) मूढ ग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः ।

परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥

(छ) अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

यह सब भगवद्गीता में कहे हुए भगवान् श्रीकृष्ण के वचन हैं। इनमें तप का असली स्वरूप व्याख्या पूर्वक समझाया गया है। नीचे हम इन्हीं श्लोकों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं। जब तपस्या का महत्व भली प्रकार समझ में आ गया तब उसके लिए श्रद्धा उत्पन्न होती है, अतः तप का स्वरूप भी जानना परम आवश्यक है। जो लोग तप करना चाहते हैं वह क्या करें। श्रीकृष्ण जी ने यही बतलाया है कि तप का स्वरूप यह है, जो तप करना चाहो तो यह कार्य करो। हिन्दी अनुवाद निम्न लिखित हैं।

(क) देवताओं, सदाचारी विद्वानों गुरुओं, बुद्धिमानों, की पूजा सत्कार करना, शारीरिक तप है। पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, ये सब भी तप हैं जो शरीर से किए जाते हैं।

(ख) वाणी ऐसी बोलना जो सुनने वाले को एकदम अनुचित रूप से उत्तेजित करने वाली न हो। वाणी ऐसी बोलना जो सच्ची हो, प्रिय हो, हितकारी हो। स्वाध्याय का अभ्यास करना। यह सब वाणी से करने योग्य तपस्याएं हैं।

[ग] मन को सदा प्रसन्न रखना मन में मृदुता रखना, चुप रहना, अपने को वश में रखना, मानसिक भावों में शुद्धता और सच्चाई रखना, यह सब मन की

तपस्याएं हैं। मन के द्वारा इन तपों का अभ्यास करना चाहियें।

[घ] पूर्वोक्त तीनों तप यदि श्रद्धापूर्वक किए जाएं, फल की इच्छा न रखते हुए किए जाएं, कुशलता-पूर्वक सावधानी से किए जाएं, तो उन्हें सात्विक तप समझना चाहिए।

[ङ] जो तपस्या यह सोचकर की जाए कि ऐसा करने से मुझे प्रतिष्ठा मिलेगी, लोग मेरा आदर करेंगे, कुछ भेंट पूजा भी प्राप्त होगी, ऐसी तपस्या राजस कहलाती है। ढोंग रचकर, संसार को ठगने और धोखा देने के लिए यदि तपस्या की जाए तो वह भी राजस ही कहलाती है। इन राजस तपों में स्थिरता नहीं होती, यह णिक अस्थायी होती हैं।

[च] चालाक लोगों के द्वारा मूर्खों को बहकाकर जो तपस्या करवाई जाती है अथवा मूर्ख लोग स्वयं ही बिना सोचें विचारे जो तपस्या करने लगते हैं, यों ही खामखाह अपने को कष्ट देने लगते हैं, वह सब तपस्याएं तामसिक कहलाती हैं। दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए जो तप किया जाता है वह भी तामसिक ही है।

[छ] बिना श्रद्धा के, बे मन से, जो भी कुछ भी तप किया जाए, वह सब तप व्यर्थ होता है। उस तप का कोई लाभ न तो इस संसार में होता है, न परलोक में ही।

जिस तप का इतना महत्व माना गया है, जिस तप की भूरि भूरि प्रशंसा वेदों और शास्त्रों में बार बार गाई गई है,

जिस तप का स्वरूप भी संक्षेप से तथा विस्तार से वर्णन किया जाचुका है, उस तप की विधि अब यहां लिखी जाएगी। तप करने की विधि अर्थात् तप की मात्रा विशेष ध्यान देने की वस्तु है। सच तो यह है कि तप की विधि और तप की मात्रा समझाने के लिए ही यह लेख मुख्यतया लिखा गया है। तप की मात्रा वस्तुतः एक बहुत ही महत्वपूर्ण वस्तु है। इस प्रकरण में महर्षि वेदव्यास जी ने योग सूत्र की व्याख्या करते हुए जो एक वाक्य विशेष लिखा है वह स्वर्णाक्षरों में लिखने के योग्य है। हम साधारण लोग पृष्ठों पर पृष्ठ रंग कर भी जो बात नहीं समझा सकते, वही बात महर्षि वेदव्यास जी ने इस छोटे से वाक्य में समझा दी है। वह वाक्य सबको सदा स्मरण रखना चाहिए और हर समय, विशेषतया तप के प्रकरण में, विशेषतया व्यायाम और आसन और प्राणायाम के प्रकरण में, विशेषतया योगाभ्यास के प्रकरण में, तदनुकूल ही आचरण भी अवश्य करना चाहिए। वह वाक्य है,

"तच्च तपः चित्तप्रसादमबाधमानं स्यात्।"–महर्षि वेदव्यास

"तप उतना ही करना चाहिए जितने से चित्त की प्रसन्नता नष्ट न होने लगे।" घबराहट पैदा न होने पावे, थकावट का अनुभव न होने लगे, मन की सामान्य अवस्था बिगड़ने न पावे, उतना ही तप करना चाहिए। बस यही सब से ठीक मात्रा है, यही सब से अच्छी पहिचान है। तप, आसन, योगाभ्यास, सब बातों में इस मात्रा का हमेशा ध्यान रखना चाहिए। इस मात्रा से अधिक नहीं करना चाहिए।

महर्षि वेदव्यास जी ने यह एक छोटा सा वाक्यरत्न लिखकर संसार को विनाश से बचा लिया। जैसे मां बाप अपने बच्चे को सब दोषों से और सब कष्टों से बचाते हैं वैसे ही यह छोटा सा वाक्य भी मनुष्यों को सब दोषों से तथा सब कष्टों से बचाता है। शरीर की और मन की जो स्वाभाविक अवस्था है वह व्याकुल न होने पावे, जरा सी भी थकावट न आने पावे, बस तप उतना ही करना चाहिए, उससे अधिक हरगिज नहीं। महर्षि वेदव्यास जी की इस आज्ञा का पालन हमेशा सब को करना चाहिए। तप, योगाभ्यास, आसन, प्राणायाम, वस्तुतः बड़ी अच्छी वस्तुएँ हैं किन्तु मात्रा से अधिक इनका सेवन हरगिज कभी नहीं करना चाहिए। मात्रा से अधिक होनेपर यही वस्तुएँ अवश्य हानिकारक हो जाती हैं।

मात्रा का यह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि संस्कृत साहित्य के कवियों ने भी इस विषय पर बहुत सुन्दर ढंग से और बहुत मनोहारी तरीके से बहुत कुछ लिखा है। कविकुल गुरु कालिदास जी ने अपने काव्य " कुमार संभव " में इस तपस्या के प्रकरण में एक बहुत ही सुन्दर श्लोक लिखा है। प्रसंग यह है कि पार्वती जी तपस्या कर रही हैं। तपस्या के द्वारा वह शिवजी को अपने पति के तौर पर प्राप्त करना चाहती हैं। उनके तप की चर्चा दूर दूर तक फैल गई। लोग उनके दर्शनों के लिए आने लगे। एक दिन शिवाजी भी एक छात्र का वेष धारण करके पार्वती जी के पास पहुँचे। नवयुक विद्यार्थी के वेष में शिवजी को कोई

भी पहिचान नहीं सकता था। स्वागत और कुशलक्षेम के पश्चात् उस युवक छात्र ने पार्वती जी से पूछा,

"अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणिते।

अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्॥"—महाकवि कालिदास.

"क्या आपको इस जंगल में तपस्या के लिए समिधाएं और कुशाएँ तो आसानी से मिल जातीं हैं, क्या आपको स्नान आदि के लिए जल तो ठीक ठीक सुभीते से मिल जाता है, क्या आप तपस्या अपनी शक्ति के अनुकूल ही तो करती हैं, कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप अपनी शक्ति से अधिक तपस्या कर रही हैं, ध्यान रखिए कि अधिक तपस्या करने से शरीर को हानि पहुँचती है। धर्माचरण, योगाभ्यास, तपस्या, आदि सब उत्तम कर कर्मों का मूल साधन तो यह शरीर ही है। शरीर को ही यदि हानि पहँची तब फिर यह सब धर्मकार्य भला कैसे किए जा सकेंगे।" वही बात, तो महर्षि वेदव्यास जी ने एक गुरु के तौर पर उपदेश के रूप में कही थी, यहां कितने सुन्दर तरीके से एक मित्र के तौर पर महाकवि कालिदास जी ने समझाई है। "तपस्या अपनी शक्ति से अधिक नहीं करना" और "शरीर ही धर्माचरण का मुख्य साधन है" यह दो कितने मधुर और कितने मनोहर वचन हैं। सूक्ति के तौर पर भी इन दो वाक्यों का संस्कृतज्ञ लोगों में खूब प्रचार है। "अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे" "शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्।"

जीवन की व्याख्या

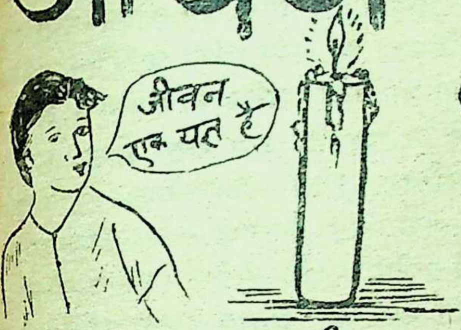

लेखक-हरिमोहनलाल श्रीवास्तव

'जीवन' एक अत्यन्त व्यापक विषय है, और उसकी व्याख्या के लिये मनीषियों ने अपना सम्पूर्ण जीवन लगाकर अनेक ग्रन्थों का सृजन किया है, परन्तु उसकी थाह फिर भी नहीं पा सके हैं। एक छोटे निबन्ध के कलेवर में यह व्यापकता कदापि नहीं बाँधी जा सकती, तथापि सागर की गहराई में से कुछ ही मोती खोज निकालने वाले के लिये वही एक सम्पूर्ण सम्पदा है। प्रकाश-पुंज को जो जितना समझ पाये, वही श्रेष्ठ है।

जीवन में विशालता होते हुये भी आचार्यों ने उसके लिये कुछ इने-गिने उपमानों की ही खोज की है। जीवन को यज्ञ, कला, संग्राम, खेल अथवा पहेली के पांच उपमान सामान्यतः प्राप्त हैं। हम इन पांच रूपों में ही जीवन की प्रभुता मापने का प्रयास करें।

योग से तन मन का विकास कीजिये

जीवन एक यज्ञ है, एक पवित्र उत्तरदायित्व है। मानव स्वयं ईश्वर का सन्देश है। अतः उसे जीवन-रूपी यज्ञ का निर्वाह पूरी पवित्रता के साथ करना चाहिये। 'जीवन' से अभिप्राय है, 'आत्मा और शरीर का संयोग'। आत्म-ज्ञान 'जीवन का प्रमुख कर्तव्य है, और सत्, चित्, आनन्द की प्राप्ति उसका अन्तिम ध्येय। जीवन-यज्ञ में प्रारम्भ से अन्तिम आहूति तक श्रेष्ठ शक्तियों और सम्भावनाओं को सदैव जागृत एवं प्रदीप्त रहना चाहियें। जीवन को एक यज्ञ, एक पवित्र धरोहर मान कर मानव उसकी यथेष्ट रक्षा करते हुए उसे प्रज्वलित अर्थात् प्रकाश-पूर्ण बनाये रखे। देह का विनाश हो जाने पर भी आत्म-तत्व के नाते जीवन तो बना ही रहता है, जैसा सुप्रसिद्ध कवि लांग फैलो ने भी कहा है:- "जीवन वास्तविक है, जीवन गम्भीर है, और मृत्यु उसकी परिणति नहीं।"

जीवन एक कला है और इस नाते सत्यं, शिवं और सुन्दरं के आदर्श से प्रेरित हैं। शरीर मन और बुद्धि के तीन तत्त्वों के सम्यक अथवा स्वस्थ सामंजस्य या सन्मवय से ही जीवन-कला प्रकट होतीं है। इस सामंजस्य से ही प्रत्यक्ष सौन्दर्य का प्रत्यक्षी-करण संभव होता है। यह सौन्दर्य को औदार्य की ओर निरन्तर प्रेरित करता है। आत्मिक विकास का यह उच्चतम निदर्शन है। महात्मा गांधी ने जीवन को सभी कलाओं में श्रेष्ठ बताया है। वस्तुतः जीवन उसी व्यक्ति का सार्थक है, जिसमें जीवन को कला मान कर भली प्रकार जीने की बलवती इच्छा हो, और हो तदनु-

सार सजग एवं सबल आवरण । बेली नामक एक विद्वान ने कहा है :—"विचारणीय बात है कि हम कैसे जीते हैं, कब तक जीते हैं—यह नहीं।" डा० राधाकृष्णन् का कथन है :—"जीवन को एक बुराई और संसार को एक मरीचिका समझना निरी कृतघ्नता है।" सिरजनहार की पवित्रता के निहोरे जीवन पवित्र निधि है, और उसे कलात्मक सौन्दर्य प्रदान करना प्रत्येक का अपना प्रयास होना चाहियें ।

जीवन एक संग्राम है, संघर्षों का अखाड़ा है। किसी ने कहा है:—"जीवन है संग्राम बन्दे !

सेज नहीं फूलों की दुनिया,
कांटों की है खान बन्दे !"

परन्तु लार्ड एवबरी एक दम निराशा के पहलू को हटा रखने के लिये कहते हैं—"जीवन गुलाबों का बिछौना नहीं है, और न ही रोगों का कंटीला बिस्तर।" यथार्थ में जीवन की स्थिति सुख-दुख दोनों के बीच की है। मानव को परिस्थितियों से डट कर संघर्ष करना पड़ता है, और इस लड़ाई के बीच ही उसका आचरण निखर कर प्रकट होता है। महात्मा गांधी का कथन है :—"जीवन का आनन्द लेने के लिये व्यक्ति को जीवन का लोभ त्याग रखना चाहियें।" प्राण हथेली पर लेकर या सर कटाने की तमन्ना लेकर ही जीवन-संग्राम में सफलता पाई जा सकती है। जीवन का युद्ध निरन्तर उकसाता है कि लोग अपने सिद्धान्तों के लिये मर मिटें ।

जीवन एक खेल, नाटक या लीला भी है। परियों की कहानी के लेखक एन्डरसन ने कहा है :—"प्रत्येक व्यक्ति का जीवन एक परी-आख्यान है, जो ईश्वर की अँगुलियों द्वारा लिखा गया है।" संग्राम भी एक प्रकार का खेल ही है, मर केवल उन्हीं लोगों के लिये जो वीरता में आनन्द पाते हैं, और मरण से भय नहीं खाते। परन्तु जीवन को खेल समझने का यह दूसरा दृष्टिकोण कुछ दूसरे स्वभाव के लोगों का है, जो कुछ विनोदी प्रवृत्ति के हैं और थोड़ेसे सुविधा-प्रेमी। खाओ, पियो और मौज करो' का नारा तो वे ही बुलन्द कर सकते हैं, जिन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य जन्म लेने और मर जाने से अधिक कुछ सोचा नहीं। परन्तु इसी वर्ग में कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं, जो मानसिक और आत्मिक विकास में आगे बढ़ कर प्रत्येक कठिनाई को एक खेल समझने की धान में पूरे हैं।

जीवन का सच्चा आनन्द वे ही लोग पाते हैं, जो जीवन के महान् खेल में विजय पाने का पूर्ण प्रयास करते हैं। उनकी महत्वाकांक्षा की पूर्ति हो जाती है, तो वे गर्वित नहीं होते। जीवन के उपहारों से वंचित रह जाने पर भी वे उदासी को पास नहीं फटकने देते। जीवन का खेल वे निष्पक्षता और प्रफुल्लता से खेलते हैं। कारण कि वे जानते हैं कि संघर्ष या प्रयत्न की इस खेल का वास्तविक पुरस्कार है।

जीवन को एक जटिल पहेली भी कहा जाता है। यह इसलि कि इसकी कठिन गुत्थी को सुलझाने के लिये संसार के विचारक अनादि काल से प्रयास करते रहे हैं। परन्तु जीवन की विचित्रता, स्वभावों की विभिन्न । और

नियमों की अनेकरूपता के कारण सब को समान सफलता नहीं दिला सकी है ।

जान मेसफील्ड की धारणा है—' जीवन एक शोर-भरी गली में एक लम्बा सरदर्द है ।" परन्तु एक अज्ञात लेखक जीवन में दुख-दर्द न देख कर कहता है :—क्या जीवन जीने योग्य है—यह निर्भर करता है जीने वाले पर"—और 'यकृत' पर भी क्योंकि इस बुद्धिमान लेखक ने बड़ी चतुराई से श्लेष का आश्रय लेकर बात पते की कही है । मनुष्य का यकृत—उसका अपना स्वभाव ही उसे संसार में सुख अथवा दुख के सम्पर्क में लाता है ।

वैंकस नाम के एक विचारक का कथन है—"मैं जीता हूँ उन लोगों के लिये, जो मुझसे प्रेम करते हैं, और उन लोगों के लिये, जो मुझे सच्चा समझते हैं ।" इस कथन से स्पष्ट है कि प्रेम और सत्य-दो बड़े तथ्य हैं, जिन पर जीवन का प्रासाद अवस्थित है । उतार-चढ़ाव तो जीवन के साथ लगा ही हुआ है, और वह यज्ञ, कला, संग्राम, खेल या पहेली से भी अधिक कुछ हो, परन्तु वह मानव से इतनी आशा तो करता ही है कि वह व्यर्थ न जियें, अच्छी तरह जिये । स्वामी दयानन्द सरस्वती का कथन है :—"जो मनुष्य जगत का जितना उपकार करेगा उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा ।" अभिप्राय यह है कि कुछ विशिष्ट नियमों का पालन करने पर जीवन सुख और मुक्ति प्राप्त करके रहता है । जीवन-यात्रा में साहसपूर्वक बढ़ते चलना ही उसका लक्ष्य है ।

मौन--व्रत

ले०—श्री मुकुन्दराय वि. पाराशर

मौन अर्थात् न बोलना, निःशब्द रहना। मौन की यह सामान्य व्याख्या है। जन्मजात गूंगापन अथवा बीमारी या दर्द के परिणाम स्वरूप मनुष्य बोलने में असमर्थ हो जाय, ऐसा भी होता है। ऐसे व्यक्ति को गूंगा ही कहते हैं, परन्तु ऐसा व्यक्ति मौन साधता है, जानबूझकर चुप रहता है, ऐसा नहीं कहा जाता। गूंगा व्यक्ति मौन नहीं पालता। मौन पालन के हेतु उसे प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उसके लिये मौन स्वाभाविक है। मौन साधन के लियें जिसे क्रिया, यत्न, करना पड़े, यानी कि जो गूंगा न होते हुयें भी गूंगा रहे, उसे मौनी कहते हैं। दूसरे ढंग से कहिए तो—जिस व्यक्ति के लियें वाणी स्वाभाविक है, वह व्यक्ति अपनी इच्छापूर्वक वाणी पर नियन्त्रण रखकर, उच्चारण नहीं करता, मौन पालता है।

मनुष्य बोल सके ऐसा शक्ति सम्पन्न हो, दूसरे व्यक्ति क्या कहते हैं, जानना चाहता हो, बोलने का प्रसंग उपस्थित होने पर वह कुछ भी बोलता न हो ऐसा भी देखने में आता है। इस प्रकार सामर्थ्य और प्रसंग उपस्थित होने पर भी मनुष्य न बोले, इसमें पृथक-पृथक हेतु हो सकते हैं, और हेतु के अनुरूप अलग-अलग प्रकृति के मनुष्य।

बहुत से सहनशील सज्जन पुरुष अपने दुःख, विपत्ति या आघात, अपमान की बातें हृदय में ही दबा देते हैं, बोलते नहीं और अपनी व्यथा को भी बाहर प्रकट नहीं करते।

दाहरण के तौर पर—रामचन्द्रजी, सीताजी का सगर्भावस्था त्यागकर, अपने दुख को मन में छिपाकर राज्य करते हैं, और अश्वमेध यज्ञ के समारम्भ के समय निश्वास तक व्यक्त हीं करते।

कौरवों की सभा में पांचाली का चीर हरण हुआ, उस समय और उसके पश्चात्, जब द्रौपदी सभासदों के सम्मुख न्याय की बात पूछती है, तब द्रोणाचार्य या भीष्म पितामह न्याय जानते हुये भी, एक शब्द तक नहीं बोलते। राज्य के साथ अपने (स्वार्थमय) सम्बन्ध दर्शाने के हेतु, वे मौन रहते हैं ।

बड़े-बड़े सेनापति, राजनीति के खिलाड़ी, उद्योगपति और व्यापारी लोग भी अपनी सारी योजनाओं को प्रकट नहीं करते।

कोई-कोई ऐसे भी होते हैं जो, मेरे दुश्मन निर्दोष हैं, ऐसा भली भांति जानते हुये भी, दुश्मनों के अनिष्ट की भावना मन में मानकर, मौन रहते हैं और दुश्मनों का निर्दोषपन जाहिर नहीं होने देते।

कुछ ऐसे भी होते हैं जो, परिणाम लाभदायक हो या हानिकारक यदि मान लिया कि नहीं बोलना है, तो नहीं ही बोलते, चाहे कुछ भी हो ।

न्द्रद्युम्न राजा मौन धारणकर, हरि की उपासना में बैठा था, इसी मध्य दुर्वासा ऋषि वहां आ पहुँचे। राजाने ध्यान भंगकर, मौन तोड़ा नहीं, कोपवश दुर्वासा शाप देकर चले गये। राजाने शाप को हरि-इच्छा मान, स्वीकार किया, परन्तु मौन नहीं तोड़ा।

इस प्रकार मौन धारण का कार्य एक है, किन्तु हेतु भिन्न-भिन्न हो सकते हैं और हेतु, यह कर्म के सार असार के निर्णय करने में उपयोगी है। मौन धारण का हेतु क्या है ? यह मुख्य है। जो मौन, केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण रखा जाता है, जिस मौन से दूसरों का अनिष्ट होता है, वह मौन समाज का सरासर अनिष्ट करता है, वह मौनी आदर का पात्र नहीं।

परन्तु जब हेतु दूसरों के अकल्याण का न हो, व्यक्ति नियमपूर्वक अपने हित के लिये मौन धारण करे तो, उसे मौन व्रत कहते हैं। व्रत यानी अपनी उन्नति के लिये, परमार्थ के लिये, कोई एक नियम-पालन अथवा आचरण। यूँ व्रत अनेक हैं— एकादशी व्रत, सत्य व्रत, पतिव्रत, ब्रह्मचर्य व्रत। मौन व्रत इन्हीं में से एक है। मौन व्रत अर्थात् अपनी उन्नति के लिये, धार्मिक विकास के लिये आचरण करते हुये वाणी पर संयम—न बोलने का नियम।

यह मौनव्रत एक ही प्रकार का नहीं। न बोलने के कारण प्रकार अनेक हैं। कोई मनुष्य अमुक दिन ही न बोलना ऐसा नियम लेते हैं। जैसे गांधी जी सोमवार को मौन-व्रत पालते थे। कोई व्यक्ति सिर्फ सुबह या शाम देव-सेवा या ध्यान में बैठने के समय, मौन रखते हैं। वर्षों पर्यन्त मौन व्रत धारण करने वालों के भी अनेक दृष्टान्त हैं।

मौन व्रत अर्थात् शब्दोच्चार न करना, ऐसा नहीं है। मौन व्रत का हेतु, शब्द मुख से न निकालना ही नहीं, मौन का मूल हेतु, निरंकुश चित्त वृत्ति को शांतकर, चित्त वृत्ति पर संयम रखकर, उसके द्वारा अपनी चित्त की शक्ति और

प्रवृत्ति को अपने अंतिम ध्येय की सिद्धि के लिये, एकाग्रता से लय करना है। जिसका मन पर संयम होता है, उसकी इन्द्रियां संयम में रहती हैं, पर इन्द्रियों को संयम में रखकर जो मनुष्य मन को अनेक विषयों में, विचारों और स्वार्थमय तर्क में, रमण करने देता है उसका मन, मनुष्य का जीवन बरबाद कर देता है, उसे उसके हितकारी ध्येय की ओर आगे नहीं बढ़ने देता।

सामाजिक सेवा-कार्य में संलग्न व्यक्ति मौन व्रत धारण करे तो कभी-कभी ऐसा अवसर आजाता है, कि उसके पास तात्कालिक महत्व के और साथ-साथ सामाजिक हित कार्य के प्रसंग आ पड़ते हैं। ऐसे समय में निर्णय-न दे तो सामाजिक हित बिगड़ने का भय रहता है। जैसे कि गांधी जी को सोमवार के दिन तात्कालिक कार्यों के लिये, मौन रहते हुए भी कागज पेन्सिल का उपयोग करना पड़ता था। मौन के समय पारमार्थिक महत्त्व के तात्कालिक-निर्णय की अपेक्षा वाले कार्यों में यह अनिवार्य है। दोनों का मूल्य आंकने में समर्थ व्यक्ति, योग्य निर्णय के अनुसार बरतता है। यह निर्वाह्य है।

किन्तु मौन व्रत का नियम लेकर जो व्यक्ति के, मुंह बन्द रखकर, अपने व्यवहारिक काम-काज चालू रहें, इस हेतु से, गांधी जी जैसों का उदाहरण सामने रखकर, किसी-प्रकार के हाव-भाव द्वारा, चिन्हों द्वारा या पट्टी में लिखकर, अपने विचार व्यक्त करता है, आज्ञा देता है, वह शुद्ध मौन नहीं पालता। ऐसे मौन में दम्भ सम्भव है और इससे मौन व्रत का फल प्राप्त नहीं होता।

मौन व्रत का हेतु विचार पर, तथा विचार को उत्पन्न करने वाले मन पर अंकुश रख कर, मन को स्वस्थ बनाना है। इससे शरीर और मन प्रसन्न रहते हैं एवं उत्कृष्ट व्याख्यान की शक्ति उत्पन्न होती है। मनुष्य अपने मनको विचार रहित बनादे, शान्त, जिससे कि वाणी का उद्भव स्वयमेव रुक जाय, यह सच्चा मौन है। मौन यह, ओष्ठ बन्द बन्द रखने की क्रिया नहीं, अपितु चित्त को स्वस्थ, निर्विकल्प, शान्त बनाने की विधि है। मौन व्रत का आदर्श यही है।

अपने ध्यान में या विचार में स्वस्थ होने के लिये मनुष्य जिस प्रकार बाह्य कोलाहल को टालने की इच्छा करता है और इसलियें-एकान्त में जा बैठता है, इसी प्रकार अन्दर की उठतीं चित्त वृत्ति की हलचलों को टालने के लिये मौन व्रत, यह मुनिजनों का व्रत है।

एक तत्त्व चिन्तक आचार्य श्री आनन्द शंकर बापूभाई ध्रुव ने 'अपनाधर्म' नामक पुस्तक में एक प्रसंग दिया है :

“पुराने समय में.........एक अमलदार के विषय में कहा जाता है कि (शायद यह बात कल्पित हो) वह नित्य प्रति देव पूजन करता और देव-पूजन के समय मौन रखता, मात्र संज्ञा से ही बात करता ऐसे ही समय एक कारकुन ने आकर उससे पूछा कि अमुक गुनहगार को क्या सजा दी जा चाहियें ? उस अमलदार ने उत्तर में जनेऊ से मुद्रा टांगकर, आचमन के करपात्र द्वारा प्रहार करके बताया।”

इस दृष्टान्त में अमलदार ने जो मौन साधा वह किस प्रकार का कहलाया इसकी चर्चा उठती है। वह अमलदार

भक्तिभाव से प्रेरित होकर देव-पूजन नहीं करता था, अन्यथा वह कारकुन को जनेऊ द्वारा, आचमनी से प्रहार करके न बताता। वह अमलदार कदाच, अपने शरीर पर वस्त्र बांधकर, स्वयं पर आचमनी से वार करता, तो उसे संज्ञा में शब्द सम्बन्धी मौन गिना जाता, पर उसके बतायें अनुसार तो, वास्तविक मौन का, मानसिक मौन का, अंश भी नहीं।

यह बात कई स्थलों पर लागू होती है, मुलाकातियों को टालने के लिये, सप्ताह में एक दिन मौन पालना, यह व्यवहारिक उपयोगिता की दृष्टि से तो ठीक है, किन्तु मौन-व्रत नहीं। इसी प्रकार मौन व्रत के अन्तर्गत असंगत है, कर्त्तव्य नहीं। जितने समय तक मौन रहे, उतने समय तक, ध्यान या सत्संग में चित्त को एकाग्र रखने का प्रयत्न रहे, यही सच्चा मौन है। मौन की सफलता, उसकी सार्थकता इसी में है।

इसके अलावा ध्यान, चिन्तन की एकाग्रता के लिये मौन आवश्यक है। यह मौन कई प्रकार से सिद्ध होता है : बाह्याभ्यन्तर कोलाहल को, शब्द रूप बिचार वृत्ति को,... शान्त कर। यह मौन दर्शनार्थियों या मुलाकातियों को टालकर, जिह्वा को रोककर, कागज पेन्सिल के उपयोग करने में नहीं, वरन मुख्य रूप से, मनके विचारों को शान्त करने में रहता है। चित्त की असंख्य वृत्तियां हैं, यह सब शान्त हुए वगैर, और अपनी ध्येयवस्तु में—एकाग्रता आये विना, लौकिक ध्येय की वस्तु विषय में भी गाढ़ चिन्तन, दर्शन सम्भव नहीं, आध्यात्मिक चिन्तन, दर्शन की तो सम्भावना ही कहां ?

मौन-व्रत

मौन का आदर्श चित्त की निर्विकल्प शांति के लिये है, नीरवता के लियें नहीं। कुछ लोग नीरवता को-कोलाहल या ध्वनि-आवाज न हो, ऐसी स्थिति को शांति समझते हैं, औरों को बतलाते भी हैं, किन्तु नीरवता और शांति में अन्तर है। नीरवता: ये रव, आवाज-शब्द रहित बाह्यस्थिति का निर्देश करती है। मनुष्य की कर्णेन्द्रिय को और उसके द्वारा मनुष्य के चित्त को विक्षेप न करे नीरवता ऐसी ही स्थिति का नाम है और इसका औचित्य इतना ही है। नीरवता बाह्य-जगत के मौन की स्थिति है, आन्तरिक शांति इससे भिन्न है। चित्त रूपी समुद्र में असंख्य तरंगें हैं—वृत्तियां हैं। इनका छोभ, चंचलता थम जाय, परस्पर वृत्तियों का संघर्ष रुक जाय और एक निश्छल-नीरव समता व्याप्त हो जाय, ऐसी स्थिति का नाम शांति है। नीरवता-यह श्रवणेन्द्रिय गोचर बाह्य परिस्थिति है। शांति-यह चित्त की आन्तरिक स्वस्थता का स्वानुभव है। शांति के लियें बाहर का वातावरण भी कुछ अंशों में उपकारक है अवश्य, पर शांति का मुख्य आधार अन्तःकरण है। वृत्तियों को उत्पन्न न होने देना, यदि उत्पन्न हों तो उन्हें, स्वतन्त्र विचरने न देना, यह विशेष ध्यान रखना है और इसी कारण मौन व्रत पर विशेष जोर दिया गया है 'मौन' यानी शब्द को मुख से बाहर न निकलने देना, इतना ही नहीं, वरन शब्द के उद्गम, चित्त के विचारों को समूल शान्त करना है, उन्हें उत्पन्न होने से रोकना है। इस आदर्श के साथ मौन व्रत का पालन, ध्येय प्राप्ति में परम उपयोगी सिद्ध होता है।

जीवन भाग्य का खेल नहीं है।

ले० – लक्ष्मी कान्त मिश्र, एम० ए०

बहुधा लोग कहा करते हैं कि आजकल मेरा भाग्य ही खराब है। जो भी काम हाथ में लेता हूं उसमें सफलता प्राप्त नहीं होती है। संसार में मुझसा अभागा कोई नहीं है। मेरे ग्रह अच्छे नहीं हैं। हमारी तो किस्मत ही खराब है और जो कुछ भाग्य में लिखा है वह होकर रहेगा। हम चाहे जितना प्रयत्न करें पर उससे कोई खास परिणाम नहीं निकलेगा।' न मालूम किसलिये लोग दुर्भाग्य की घटनाओं का ढेर अपने आसपास लिये फिरते हैं। मेरे मित्र, आप इस तरह निराश न हों। आपका भविष्य लिखने वाला कोई दूसरा नहीं है। आप स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं। आपकी सफलता का दारोमदार आपका अपना संकल्प है। जिसे आप भाग्य या नियत कहते हैं वह आपका पुरुषार्थ है जिसे आप विधाता का लेख बता रहे हैं उसे बदल देने की शक्ति आप में मौजूद है। मन में कभी यह भ्रम न होने दें कि आपको असफलता मिलेगी। अपने मन में दृढ़ संकल्प और पूर्ण विश्वास के साथ कहें कि मुझे संसार में किसी काम के लिये पैदा किया गया है। मैं अपने पराक्रम, बुद्धि एवं व्यवसाय से अपने कार्य को सम्पन्न करूंगा।

भाग्य सफलता के लिये ईश्वर द्वारा तय की गयी कीमत नहीं है। ईश्वर भी उसी की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता करता है यदि हम हाथ पर हाथ रखकर बैठ जांय तो ऊँचे नहीं उठ सकते। जीवन संघर्ष है। अपनी

इच्छित वस्तु प्राप्त करने ने लिये हमें परिश्रम, प्रयत्न तथा संघर्ष करने पड़ते हैं। यदि हर मनुष्य राजसी ठाठ-बाट में पैदा होता; यदि उस पर काम करने की जिम्मेदारी न होती तो मनुष्य जाति अब भी बचपन की ही हालत में होती, हमारे यहां की विपुल सम्पदा अविकसित होती और बड़े बड़े नगरों का अभाव रहता । सभ्यता संस्कृति तथा देश का विकास सतत संघर्ष से हुआ है। संघर्षहीन जीवन मृत्यु है। जिसने दुःख का आलिंगन नहीं किया उसे सुख की अनुभूति कैसे हो सकती है ? नीम खाने के बाद ही गुड़ का स्वाद मालूम पड़ता है। अग्नि में तपकर ही स्वर्ण कुन्दन बनकर निखर उठता है। यदि आप शक्ति के साथ दृढ़ निश्चय कर लें तो बहुत जल्दी आप अपने चारों ओर सफलता का वातावरण पैदा कर लेंगे। सफलता की कुंजी आपके हाथों है। अभिलाषा का कोई मूल्य नहीं, यदि उसके पीछे प्रयत्न, संकल्प और और दृढ़ता न हो। आज तक कोई आदमी तब तक ऊँचा नहीं उठा है जबतक उसने अपने शब्दकोष में से 'असम्भव' 'अच्छे ग्रह', तथा 'बुरे ग्रह' जैसे शब्दों को काटकर दूर न फेंक दिया हो। नेपोलियन का कथन है कि 'असम्भव' शब्द मूर्खों के शब्दकोष में पाए जाते हैं। आजकल भाग्य शब्द से अधिक गलत प्रयोग और किसी शब्द का नहीं होता। जब कभी मनुष्य को असफलता मिलती है तो उसे यह कहने में किंचित् झिझक नहीं होती कि भाग्य हमारे प्रतिकूल था। कितना अच्छा होता कि हालत कुछ बदल जाते, आप आह भरकर कहते हैं केवल चाहने से हालत नहीं बदलते। ऐसे

व्यक्ति जो संकल्प शून्य हैं। परिस्थितियों की कठपुतली हैं। इनसे युक्त मनुष्य राजा है।

इतिहास साक्षी है कि महान व्यक्तियों की सफलता का श्रेय पुरुषार्थ को है, प्रारब्ध को नहीं। वाशिंगटन, लिंकन, डेनियल वेब्सटर, हेनरी क्ले, ग्रांट, गारफील्ड, नेपोलियन, लेनिन, शिवाजी, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर आदि महान् विभूतियों के जीवन का निर्माण करने में भाग्य ने कौन सा साथ दिया ? क्या इसने एडिसन, मारकोनी, न्यूटन आईन्स्टिन आदि वैज्ञानिकों को अपने आविष्कार करने मे मदद दी ? क्या इसने किसी यंत्र का आविष्कार किया ? क्या इसने सुपरसोनिक जेट, अन्तरिक्ष-यान बनाए ? क्या इसने टेलीविजन जैसे चमत्कार पैदा किये ? भाग्य से आजतक दुनियां में कोई काम नहीं हुआ है। राष्ट्रपति रूजवेल्ट के भाग्य की बड़ी चर्चा सुनते हैं, पर भाग्य उनके किस काम आता यदि वे दृढ़ संकल्पी नहीं होते। उन्हें आत्मविश्वास था। जैसे नेपोलियन नेपोलियन में विश्वास रखता था, वैसे ही रूजवेल्ट रूजवेल्ट में विश्वास रखते थे। वे महान राष्ट्रपति कोई भी काम उदासीन मन से नहीं करते थे। वह जबरदस्त आदमी किस चीज से परास्त हो सकता है, न गरीबी उसे पस्त कर सकती है, न दुर्भाग्य उसे रोक सकता है, न मुसीबतें उसे विचलित कर सकती हैं। ठीक ही कहा गया है 'पुरुष प्रयत्नशीलस्य असाध्यं नास्ति'।

* योग से तनमन का विकास कीजिये *

यदि आप महान बनना चाहते हैं तो महानता का विचार हर समय मन में रखना होगा। मनुष्य का निर्माण सफल होने के लिये हुआ था, असफल होने के लिये नहीं। सफलता के विचारों पर दृढ़ रहिये। यह संकल्प कर लीजिये कि आप परिस्थितियों के मालिक बनकर रहेंगे, गुलाम नहीं। आप चाहे जितने गरीब हों, उसकी विवशता को कबूल न करें। यदि घूमने निकलें तो अपने मन में कभी भी निराशा के विचारों को न आने दें। सदा अपना बड़प्पन कायम रखिये। अच्छा भाग्य स्वयं उस आदमी के पीछे पीछे चलता है जिसमें दृढ़-संकल्प हो, अच्छा स्वास्थ्य हो, आत्मविश्वास हो, महात्वाकांक्षा हो और हो सतत परिश्रम।

परिस्थितियां कितनी ही प्रतिकूल क्यों न हों आप सदा अपने सामने एक उद्देश्य रखें। आपको अपनी कल्पना पर ऐसा अधिकार होना चाहिये कि वह सदैव उच्च उद्देश्यों के ही बारे में सोचे। कोई भी काम आरंभ करते समय मन में ये शब्द दोहरायें 'अब यह कार्य मुझे ही करना है। मुझे अपनी वीरता सिद्ध करनी है और अपना पौरुष प्रदर्शित करना है।' हमें अपनी आन्तरिक तथा वास्तविक शक्ति का ज्ञान उस समय होता है जब कोई विषम संकट हमारे सामने आ खड़ा होता है। बहुधा पुरुष और स्त्रियां अपनी सफलता का यही कारण बतायेंगे कि उन पर सहसा संकट आ पड़ा। जिम्मेदारी शक्ति पैदा करती है। इतिहास की कुछ महान विभूतियां तबतक अपना असली रूप नहीं देख सकें, जबतक उनके पुरुषार्थ और चरित्रबल के अतिरिक्त सब कुछ नए

न हो गया या जबतक उनपर कोई बड़ी मुसीबत न आ गई। यदि गृहयुद्ध का संकट पैदा न होता तो जनरल ग्रांट और लिंकन को कौन जानता। जहां जिम्मेदारी होती है, वहां मनुष्य बढ़ता है। हमारे भीतर अद्भुत शक्तियां मौजूद हैं जिनका शायद हमें कभी भी ज्ञान न हो। यह बात इससे सिद्ध होती है कि विषम संकट के समय सामान्य लोगों में बड़ी विराट शक्ति पैदा हो जाती है। जिन लोगों को किसी उत्तरदायित्व का पद नहीं दिया जाता उनकी सुप्त शक्तियां कभी प्रगट नहीं होतीं। सुप्त शक्तियों के खुलते ही मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि जिसे पहले वह भाग्य का लेख बताया करता था वह भाग्य का 'लेख' न होकर 'पुरुषार्थ का लेख' बन जाता है। भाग्य कोई कल्पित वस्तु नहीं। भाग्य सदा वीरों का साथ देता है! धीर, वीर और गंभीर व्यक्ति भाग्य की प्रतीक्षा नहीं करता। वह अपने पुरुषार्थ से भाग्य का निर्माण करता है। स्वामी रामतीर्थ ने लिखा है :—

'मनुष्य स्वयं अपना भाग्य विधाता है। गरीब से गरीब होकर भी मनुष्य अपने को देश का सबसे बड़ा धनी बना सकता है, जैसा कि कुछ लोगों ने किया भी है। भिखारी भी अपने को लोकमान्य और लोक विख्यात बनाने में सफल हुए हैं। नीची से नीची और घृणित दशाओं में पैदा होनेवाले व्यक्ति भी अपने को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में सफल हुए हैं। बस केवल अपने ऊपर दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है।

* योग से तन मन का विकास कीजिये *

दुर्भाग्य की बात है कि हममें से अधिकांश लोग अपनी शक्तियों को नहीं पहचानते । ज्ञानाभाव के कारण हम पशु की तरह जीवन व्यतीत करने लगते हैं । अपनी योग्यताओं के अनुसार हम ऊँचे नहीं उठते । मित्रवर ! याद रक्खें जीवन 'भाग्य का खेल नहीं है । आप ही अपना हित कीजिये । निरन्तर श्रम और अध्यवसाय असंभव को भी संभव कर देता है । तुलसीदास ने कहा है :

अतिशय रगड़ करै जो कोई ।
अनल प्रकट चन्दन ते होई ॥

आज और अब ही निश्चय कीजिये 'कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि'—करेंगे या मरेंगे ।

चिन्ता चिता की सगी बहन है ।

भय किटाणुओं की अपेक्षा अधिक रोग पैदा करता है ।

एक योगाश्रम दस अस्पताल से भी अच्छा है ।

भोजन स्वाद के लिये नहीं, स्वास्थ्य के लिये करना चाहिये ।

रक्त की स्वच्छता ही स्वास्थ्य है ।

कोई दवा प्रभाव में आशा का मुकाबिला नहीं कर सकती ।

कुदरती इलाज हमें भगवान के नजदीक ले जाता है ।

स्वास्थ्य से सुख का अनुभव होता है ।

सुख और दुःख

ले०— आर. एस. शास्त्री

मन और जल दोनों की समानोपमा दी गई है। जल मधुर पिपासाकुल के लिए ही अन्यथा जल में जो कभी कभी मधुरता स्वाद में आती है, वह उसकी अपनी नहीं। मिश्री के संयोग से जल मीठा होता है, अब देखो कि यह मधुरिमा आखिर आई तो कहां से आई ? यह मधुरिमा उधार ली गई है। जैसे मानव समाज अपने कार्यों को उधार से भी शानो शौकत से निभाता है, ठीक इसी प्रकार जलने भी मधुरिमा मिश्री से उधार लेकर अपने स्वरूप को मधुर बना डाला है। यह मधुरिमा जलने उधार ली है परन्तु मिश्री ने नहीं। जल तब तक ही मीठा रहेगा जब तक उसमें मिश्री रहेगी, परन्तु मिश्री जब भी रहेंगी, जितनी व जिस अवस्था में भी रहेगी, मीठी ही रहेंगी। परन्तु जल सदा व सभी स्थितियों में ही मीठा रहे यह असंभव, वह कभी मीठा रहेगा कभी नहीं, कारण कि उसकी अपनी मधुरिमा नहीं।

इसी प्रकार जल में जो गर्मी आ जाती है वह भी उधार ली हुई है तभी तो जल सदा गर्म नहीं रहता, वह कभी गर्म और सर्द दोनों स्थितियों में रहता है उसका अपना स्वरूप गर्म नहीं है।

ऐसे ही आत्मा का सुख भी अपना है वह पराया या उधार लिया हुआ नहीं एवं उसमें जो दुःख प्राणी देखता है

वह भी उसका अपना नहीं बल्कि उधार की वस्तु है, क्योंकि वह दुःख, निद्रा में अथवा समाधि में नहीं रह जाता है और उसके अभाव में सुखी तो मनुष्य सभी ही स्थितियों में है क्योंकि वह उसका अपना निजी स्वरूप है।

यह दुःख माना कि स्वप्न-सुषुप्ति और समाधि में न फटके परन्तु जाग्रत में भी जो लोग इस दुःख के चक्र में आते हैं, वे भी केवल प्रतिकूलता से ही दुःखी हैं अन्यथा दुःख का कोई कारण ही नहीं है। परन्तु इस दुःख का बोध नहीं किया जा सकता। क्योंकि जल की गर्मी तथा मधुरिमा की तरह आखिर भासता तो यह है ही इसलिए इसके सम्बन्ध में यह विचार करना चाहिये कि यह उधार का तत्त्व जिसका कि हमारे स्वरूप से कोई वास्ता नहीं, आया तो कैसे व कहां से आया ?

यह दुःख जो कि स्वरूप से कोसों दूर का तत्त्व है, इसका कारण भ्रम है और वह भ्रम आवश्यकता की पूर्ति के साधनों के सम्बन्ध में मनुष्य ने नई सूझ से उधार लेकर स्वयं आनन्द से परिपूर्ण होकर भी कंगाल बना डाला।

आवश्यकता के साधनों में यह नहीं कि ईश्वर ने कोई भेदभाव रक्खा हो बल्कि उसका नियम राजा से लेकर भिखारी तक एक जैसा ही है। परन्तु यहां जो मानव मानव में भेद हो गया, यह है उसकी पूर्ति की व्यवस्था पर; क्योंकि इस आवश्यकता के साथ जैसे ही इच्छा जुड़ जायगी कि

नुष्य उससे छूट ही नहीं सकता है। इच्छा का कोई अंत हीं। फिर इच्छा पूर्ति में भले ही समय लगे किन्तु इच्छा के न्म में समय नहीं, वह पूर्ति के साथ ही नई शोध कर डालती है, अर्थात् एक पर विजय प्राप्त करो एवं दूसरी पर चढ़ाई। यह है इच्छा का परिणाम। जब इसके साथ एक और बात जुड़ेगी जो कि साधारण मनुष्य को दुःखों के गड्ढे में गिरा देगी कारण कि मनुष्य की इच्छा का जैसे अन्त नहीं वैसे ही समय भी नहीं। मनुष्य ही एक ऐसा जन्तु है जिसने अपने बुद्धिकौशल से प्राकृतिक नियमों को भी अनुकूल बना डाला, उसका क्या सुझाव हुआ यह तो वही जाने परन्तु मनुष्य अब तक इस नियम पर विजय नहीं प्राप्त कर सका है कि वह "जब जो चाहे, तभी वह हो जाये" बस यही दुःख का कारण है।

यह तो मानवने कर लिया है कि बाहर यदि लू चल रही हो और वह अन्दर एयर कन्डीशन में शीतल हुआ बैठ जाये पर वही मानव यदि जंगल में शीतल बयार का झोंका खाना चाहे तो यह नहीं हो सकता। देश-काल और स्थिति पर काबू न पा सकने वाला मानव इस दुःख से भूल गया अपने स्वरूप को।

अभी मेरी इच्छापूर्ति होनी चाहिये। नहीं हुई तो दुःखी मनुष्य कई कुछ कर लेते हैं, किन्तु यहां जिस घटना को जिस समय व जिस दशा एवं जिस निमित्त से होना होगा, होगी, यह परमात्मा का नियम है। क्योंकि जैसे आम की गुठली

बोने के साथ उसके फल की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, वह हमारी इच्छा के साथ साथ समय पर निर्भर है कि वह मिले या न मिले। हर पदार्थ अपने समय एवं देश में ही मिलेगा। अब यह जो हमारी इच्छा के साथ ही न मिलता है यही है दुख का कारण जिसे कि भ्रमवश मानव ने अपने सुन्दर स्वरूप पर डालकर दुःखी बना लिया।

क्योंकि मनुष्य ने जब चाहा तब नहीं मिला अथवा जितना चाहा उतना भी नहीं मिला—उस समय पर इस दुख से मात्र सन्तोष एवं धीरज जो के उन्हें भूलकर मनुष्य ने यही गलती की अन्यथा सन्तोष तथा धैर्य के रहते कम से कम इस दुख से तो मनुष्य को मुक्ति मिल सकती थी।

फिर यदि कहीं परमात्मा मनुष्य मात्र की इच्छा पूर्ण करने लगे तो उसे भागना पड़ेगा।

यहां जो कुछ हमें मिलता है वह पिछले कर्मों के अनुसार ही मिलता है।

यमराज के यहां हमारा प्रत्येक कर्म नपा तुला रखा है वह उन सभी कर्मों को छांट लेता है, फिर उन्हीं कर्मों के अनुसार शरीर निश्चय होता है—फिर आयु-समय एवं देशके साथ ही माता-पिता भी निश्चित हो जाते हैं यह सब प्रकार की स्थितियां मनुष्य के कर्मानुसार होंगी न कि उसकी इच्छानुसार।

शरीर का सुख दुःख तथा शरीर संचितकर्म है, आगामी तो अभी है ही नहीं। इस समय संचित कर्म का फल सम्मुख है। किन्तु यह बात मनुष्य मानने को तय्यार नहीं, उसका प्रश्न है कि आखिर यह धीरज और सन्तोष कब तक धारण किया जाए?

बस धारण करने की आवश्यकता ही नहीं, मन को क्यों उस परिस्थिति में घुमाना कि वह इच्छा करे फिर उसे सन्तोष धारण करने की स्थिति आ उपस्थित हो, बस इच्छा ही मत करो। मन को समझा दो और उचित ढंग से कमाई करो, जो मिले उसी से निर्वाह करो और यदि हम पुरुषार्थ से अधिक कमाई कर भी लेते हैं तो क्या उसे भोगने का भी समय मिलेगा, यह फिर एक और दुःख का कारण बन जायगा।

सन्तोष और धैर्य का परित्यागी मानव संभवतः इस धरती पर सुख का अर्थात् ईश्वर का साक्षात्कार करने में सफल नहीं हो सकेगा और जो मानव सुख दुःख का जीवन व्यतीत करेगा वह तो है ही आनन्द स्वरूप उससे दुख का क्या वास्ता?

(कहानी)

मेरा पथ

लेखक—सर्वेन्द्र प्रसाद गर्ग

रमेश भोपाल के स्टेशन पर बैठा उत्सुकता पूर्वक किसी की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे कालेज में रमेश कुमार 'सैंया' के नाम से पुकारा जाता था। वह सैंया रमेश अपनी प्रेमिका मनोरमा की प्रतीक्षा कर रहा था। मनोरमा रायसेन के एक कपड़े व्यापारी राधेश्याम शर्मा की लड़की थी। वह बी० ए० में तीन वर्ष से रमेश के साथ भोपाल में पढ़ रही थी।

वह कहां जा रहा था इसका कुछ पता नहीं था। वह अपने रूमाल में एक पत्र बड़ी सतर्कता के साथ पकड़े हुये था। गाड़ियां आयीं और चली गयीं लेकिन उसकी प्रेमिका मनोरमा नहीं आयी।

वह सुबह चार बजे स्टेशन से अपने घर की ओर लौट पड़ा। उसकी आत्मा विद्रोह कर उठी कि मेरे साथ यह कब तक होता रहेगा। मैं एक दिन उसके घर जाकर अवश्य कह दूँगा कि अब मैं अधिक दिन तक.........और वह पत्र को पढ़कर उसमें क्या लिखा था मन में छिपाते हुये कुछ कहने को बड़बड़ाता एवं जो उसका मन कहना चाहता था नहीं कह पा रहा था। वह अपने घर आकर सो जाता है। उसका पिता शराबी था जो कि अभी तक भी बड़बड़ा रहा था। उसकी मां भाई ठंड के कारण सिकुड़े हुये सो रहे थे।

छोटी बहिन के गाल पर आंसू आकर जम गये थे। वह यह सब दशा देख अपने दिल को पत्थर करके तमाम दुःखों को पीकर सो जाता है।

नित्य शाम को चार बच्चों को पढ़ाने से उसका खर्चा चल जाता था।

उसकी प्रेमिका उस समय तक नहीं आयी जबकि उसने घर से भाग जाने के लियें लिखा था। वह पन्द्रह दिन तक कालेज भी नहीं आयी। उसने बड़ी उत्सुकता से उसका इन्तजार किया। मनोरमा आयी और उनका उसी प्रकार मिलना व प्रेमभाव प्रारम्भ हो गया। लेकिन एक कसक जो थी वह पूरी न हो सकी। रमेश ने उस पत्र का जवाब मांगा और मनोरमा ने उसे बड़ी चालाकी से पत्र का जवाब दिया। जो कि रमेश असत्य को सत्य जान संतोष करता रहा।

वह अपने पूर्ण अपमानित जीवन से उकता जाता तो दुःख से पीड़ित अकेले में न जाने क्या क्या सोचा करता था। वह कविता लिखता-२ अपनी जीवन कहानी में ही खो जाता है। विचारता हुआ स्वप्न सा देखने लगता है।

एक दिन था जब वह सागर में पढ़ता था। उसके पिता एक मामूली क्लर्क होकर एस० ई० एल० में आये थे। सवासौ रुपयें मिलते थे। साथ ही उसका पिता मांगीलाल शराब की लत में पन्द्रह तारीख तक एक पैसा भी नहीं रख छोड़ता था। कई लोगों का कर्ज चुकाना रह जाता था।

रमेश भोपाल जैसे स्थान पर यह सोचकर आया था कि वहां वह सुख सुविधा से रह सकेगा। वह बचपन से ही संगीत कविता व कहानी लिखने में रुचि रखता था। वह हायर सेकेन्ड्री की परीक्षा में प्रथम श्रेणी पाकर पास हुआ था। उसे कालेज में स्कालर शिप मिलने लगी थी। वह कालेज में अन्य विद्यार्थियों की तरह रहने लग गया था। वह खर्चे में भी भूपाल की तरह हो गया था उसकी मां उसे जब भी पैसे की जरूरत होतीं थी अपने पास से दे देती थी। उसकी मां रात दिन बीड़ी बनाया करती थी। उरुकी मां ने अपने पुत्र से जो आशायें रख छोड़ी थीं वे रमेश के पढ़ लिख जाने से ही पूर्ण हो सकतीं थीं उसकी मां की आशाएं थी कि रमेश एक दिन पढ़ लिखकर नौकरी करेगा लेकिन उसका पिता रात्रि में जब आता तो उसका घर में रहना मुश्किल हो जाता था। एक शराबी के कारण घर में अशांति रहती जब तक कि वह न सो जाता।

इस प्रकार लगातार दो वर्ष प्रथम आया। उसकी कविताएं, कहानियां समाचार पत्रों में छपने लगी। दूसरे वर्ष मरनोमा इन्टर पास कर आयी थी। महेशकुमार वर्मा मनोरमा के बारे में सब कुछ जानता था। बी० ए० तृतीय वर्षमें मनोरमा का चौथा वर्ष था। और रमेश का तृतीय वर्ष। महेशकुमार जबलपुर का था। उसके पिता डिप्टी कलेक्टर थे। यह अंतिम वर्ष भी उसने विक्रम विश्व विद्यालय से प्रथम श्रेणी में ही पास किया इसी बीच महेश के पिताजी का स्थानांतरण रायपुर हो गया था।

रमेश अपने प्रेम पत्रों को पढ़ता है। मनोरमा उसकी गरीबी को खरीदना चाहती थी। वह रमेश द्वारा लिखित गीत, कविताएं, कहानियां कालेज की पत्रिका में अपने नाम से दे देती थी। मनोरमा का रमेश की ओर आकर्षित होना केवल एक मात्र धोका था। महेश की बातें उसे याद आती हैं ....कि "मित्र कभी किसी को इतनी ऊपर छलांग नहीं लगानी चाहिये कि ऊपर से गिरने पर शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायें। हमेशा एक सीमित दायरे में ही रहना चाहिये"।

मनोरमा इस प्रकार अब दो युवकों को मूर्ख बना चुकी है। अब उसका साथ गुप्त रूप से हरिसिंह के साथ रहता है। वह एक जागीरदार का लड़का था। अपनी जागीर नायला नामक ग्राम में बतलाता था। उसका मनोरमा से गुप्त प्रेम था। रमेश कभी इन बातों पर ध्यान नहीं देता था। वह सहज ही भोला था। उसकी बातों में रमा हुआ था। वह पहिला प्रेम पत्र पढ़ता है। उसके घर के सामने सरिता साहू समाज की लड़की जो उसी के साथ पढ़ती थी, सारी घटना जो कि वह सुनती थी, कालेज में जाकर उसे बढ़ा चढ़ाकर कहती थी और मनोरमा ने इसका फायदा उठाया था। उसने जो भी रमेश से मांगा उसे रमेश ने लाकर दिया।

मनोरमा के प्रेम पत्र उसके जीवन में एक नयी उमंग नया उत्साह लाते थे और वह इस अपमानित जीवन को सहकर भी कहता था कि मेरा कोई है जो मेरे इस दुःख भरे जीवन में सहानुभूति रखता है। वह मनोरमा को कभी नहीं जान पाया कि वास्तव में वह क्या है?

एक दिन फिर उसके पिता ने घर में गड़बड़ फैला दी। रमेश को अपने छोटे भाई बहिनों का रोना बहुत ही मार्मिक व रंजित पूर्ण लगता था । वह कभी गुस्से में पिता को क्या कह जाता व कभी डांटता । लेकिन शराबी के मुह लगना आग में घी डालना था । कालेज खुल गये थे । उसने एम० ए० प्रथम वर्ष में पढ़ने का निश्चय किया था । दस या पन्द्रह दिन ही हुये थे कि रमेश का पत्र आया कि "मित्र पांच अगस्त को फूड इन्सपेक्टर की नियुक्ति के लिये आवेदन पत्र मिल रहे हैं नौकरी करने की इच्छा है या नहीं ।" उसका मन कहता था कि क्यों ने आवेदन पत्र भर दूँ । महेश के पिता मुझे अवश्य ही नियुक्त करवा देंगे । वह घूमता हुआ घर पर आता है । वह अपमानित जीवन में रहने के बजाय इधर उधर भाग जाने की सोचता है ।

फिर मनोरमा ने उसे एक पत्र दिया जो कि धोका था। वह पत्र को पढ़ता है :—

प्रिय रमेश,

पैसों का इन्तजाम हो गया है आज रात को मैं अवश्य ही रायसेन जा रही हूँ। वहां पिताजी घर में नहीं हैं काम हो जायेगा। आज रात को हमारा स्वप्न पूरा होगा।

—मनोरमा।

पहिले पत्रों में लिखा था कि रमेश कुछ रुपये लेकर घर से भाग चलें। कहीं जाकर तुम धन्धा कर लेना हम प्राईवेट स्कूल या कालेज खोलेंगे या अन्य कुछ धन्धा

करेंगे। हमारे जीवन के सब दुःख दूर हो जावेंगे और तुम भी अपनी मांको कुछ समय बाद बुला लाना इत्यादि। इस प्रकार घर से भाग जाने की योजना थीं। लेकिन मनोरमा ने हरिसिंह से मिल कर उसको धोका दिया था। रमेश यह भी नहीं जान पाया था।

वह शीघ्र सबके सो जाने पर भोपाल स्टेशन पर जाता है। लेकिन धोका धोका ही देता है वह वेदनाओं की आग में जलता हुआ बहुत रो उठता है। वह दूसरी रात उसके घर जाता है तो देखकर पैरों तले जमीन खिसक जाती है वह दृश्य देखकर घबरा जाता है और सोचता है कि वह अभी चक्कर खाकर गिर पड़ेगा। वह लौटना चाहता है पर उसके पैर रुक जाते हैं। दो मंजिले मकान पर हरिसिंह मनोरमा से प्रेम भरी बातें कर रहा है। कभी-कभी उसका हाथ मनोरमा के गालों पर भी जा पड़ता है। रमेश क्रोध से हरि को मारने के लिये लपकता है। हरि को आवाज देता है। हरि घबरा जाता है और शीघ्र डर कर भागता है। रमेश उसे बहुत मारता है। मनोरमा डरी सी वह दृश्य देखतीं रहती है। रमेश हरि को मारकर एक शांति का अनुभव करता है। वह कुछ बड़बड़ाता हुआ मनोरमा के ऊपरी घर में चला जाता है वह मनोरमा से पूछता है मनो यह पत्र क्यों ? मनोरमा ने घबराकर पूछा-कैसा पत्र, कब दिया था ? रमेश पत्र बताता है। मनोरमा कहती है मैंने इसे नहीं लिखा मैं नहीं जानतीं कि यह सब क्या है।

तुम जानतीं हो। मैं आज जानकर ही जाऊँगा कि वह पत्र तुमने लिखा था या नहीं।

मनोरमा-(गुस्से में) रमेश। कैसा प्रेम! कैसा जीवन साथी बनने का निश्चय! वह ऐसे कहती है जैसे कुछ जानती ही नहीं। रमेश। तुमने पत्र में लिखा था कि पैसों का इंतजाम हो गया है आज रात भाग चलना है।

मनोरमा हंसती है-कहती है कि तुम इस लायक भी हो। मुझे धोका देना चाहते हो कि तुम जैसे नंगे भूखे के साथ घर के रुपयें लेकर भाग जाऊँ। रमेश को यह सुनकर चक्कर आने लगते हैं। वह वहां से चल देता है। मैंने धोका दिया था मैं वास्तव में अपना जीवन पथ भूल गया था। वह घर आकर रात्रि को ही महेश के पास चल देता है। वह रेल में बैठा टपटप आंसू लाता है। रूमाल से आंसू पोछते हुयें यात्रियों से मुंह छिपाता हुआ मन ही मन रह जाता। वह चाहता है कि इतना रोयें कि दुःखों के सारे आंसू उसके जीवन को नष्टकर दें।

वह मनोरमा के तमाम प्रेम पत्रों को फाड़ फाड़ खिड़की में से बाहर डालता जाता है।

वह महेश के घर पहुँचता है। वह आप बीती सब कह सुनाता है। महेश प्रेम पूर्ण सहानुभूति एवं आशा दिलाकर पिछली बातों को भूल जाने के लिये कहता है।

कुछ दिन बाद रमेश को नौकरी मिल जाती है। वह नायब तहसीलदार हो जाता है जीवन का सुगम पथ मिल जाता है और वह अपने घर चल पड़ता है।

मनोरमा की शादी एक व्यापारी के अधेड़ लड़के के साथ होती है। वह अब रमेश को याद करती थी। अब उसे रमेश याद आता था जो दो वर्ष बाद तहसीलदार हो गया था।

उसकी शादी जबलपुर में हुयी थी। एक दिन रमेश जबलपुर जाता है। जबलपुर में रमेश मनोरमा को देखता है लेकिन वह उससे बचकर किसी दूसरे चौराहे से निकलता है। वह अब मनोरमा की शक्ल से भी घृणा करने लगता है। वह अपने सुख पूर्ण दिन बिताता है।

मनोरमा का अधेड़ पति टीबी का मरीज होता है। एक दिन किसी जगह मनोरमा रमेश को देख उसे पुकारती है एवं नम्रता पूर्वक नमस्कार करती है। रमेश रुककर नमस्कार का जवाब देता है। वह अपने साथ वाले साथी को चलने को कहता है।

साथी आगे बढ़ जाता है

मनोरमा कहती है कि क्या आप कभी मेरे घर आयेंगे।

रमेश एकदम गम्भीर भाव में जवाब देता है। नहीं कभी नहीं आ सकूँगा। अब मुझे राह में भटकने की जरूरत नहीं है मुझे मेरा रास्ता मिल गया है मुझे पुरानी बातों पर रोना नहीं है।

मनोरमा अपने पति का बीमार होना बताती है।

रमेश कहता है मैं क्या करूँ। मेरे घर में आज खुशी का दिन है। मेरी पत्नी मेरा इन्तजार कर रही होगी। वह आज ही आयी है। मेरा सुख का रास्ता है। मुझे दुःख की बातें सुनने का अवसर नहीं है वह चल देता है अपने घर। यह कहता हुआ है कि मैं 'मेरा पथ' पा गया हूं।

विश्व विहार

ले०— कालूभाई बसिया

(गतांक से आगे)

स्वामी नारायण धर्म

स्वामी नारायण धर्म स्वामी सहजानन्द महाराज का चलाया हुआ है। उसमें शुद्ध द्वैत तथा विशिष्टाद्वैत का समन्वय है। वह परम वैष्णव धर्म है। उसके अनुसार स्वामी विष्णु (सूर्य) की इच्छा के अनुसार आचरण करना चाहिए। यही मुक्ति है। वह शुद्ध जीवन और पवित्र आचरण को श्रेष्ठ मानता है। धर्म के आदि संस्थापक सहजानन्द स्वामी का प्रादुर्भाव अयोध्या के निकट छपिया ग्राम में संवत १८३७ वि. की चैत्र शुक्ला नवमी के दिन हुआ था। उनका हृदय अति कोमल था। फलतः उन्हें स्वामी रामानन्द की भक्ति और उपदेशों का रंग लग गया और धर्म संस्कार का उदय हुआ। उन्होंने विरक्त होकर १२ वर्ष तक हिमालय में साधना की। इसके बाद वे पूर्ण संन्यासी बन गए और समाज को पवित्राचार का उपदेश देने लगे। पवित्र आचरण ही श्रेयस्कर और धर्ममूलक है। और भक्ति भगवान को प्राप्त करने का सच्चा मार्ग है। इसी आशय का जनता को उपदेश देते हुए वे सौराष्ट्र में पधारे और काठी दरबारों के गढ़हा गांव में पहला बड़ा मुकाम किया। उस समय सौराष्ट्र में हिंसा अधिक बढ़ रही थी और चारों ओर [illegible] की धाक जमी थी। गढ़हा गांव में उस समय जीवा खाचर और उसका भतीजा दादा खाचर धर्म-प्रेमी और परम उदार दरबार थे। उन्होंने

स्वामी सहजानन्द महाराज का बड़ा आदर-सत्कार किया। यही कारण है कि स्वामीजी ने सर्वप्रथम धर्म गद्दी की स्थापना गढ़हा में की। काठियों और घनकांटियां वर्ण की जातियों को उपदेश देकर हिंसक कार्यों को मिटाने और निचले वर्ग को ऊपर उठाने का उनका उद्देश्य था। काठी स्वामीजी के अनुयायी बन गये और स्वामी जी के उद्देश्य की सिद्धि हो गई। उस समय सौराष्ट्र में एक लाख काठी रहते थे और उन्होंने समग्र सौराष्ट्र में राजगद्दियों की स्थापना की। गुजरात के किसानों को संरक्षण प्रदान कर सौराष्ट्र में बसाया था और चारणों को सम्मानपूर्वक राजस्थान से लाकर उत्तमोत्तम लोक साहित्य का सृजन कराया था। वे इन सबका बहुत आतिथ्य सत्कार करते और दान तथा धर्मादाय का प्रवाह बहाते, फलतः अंग्रेजों तथा पेशवाओं ने सौराष्ट्र के असली नामको बदलकर काठियावाड़ रख दिया। काटियोंका मूल-स्थान सीरिया और ईराक था। वे ईस्वी-सन् से ६ हजार से ५ हजार वर्ष पूर्व जब सीरिया में रहते थे, उस समय उन्हें काठी कहा जाता था। बाइबल में उनका उल्लेख हीराइट नाम से किया गया है। वे मिश्र तथा ईरान में राज्य चलाये थे और भारत में आने के बाद भारत की रक्षा के लिए सगाला में सिकन्दर के साथ भयंकर युद्ध किया था और सौराष्ट्र में सोमनाथ मंदिर की रक्षा के लिये धर्म-युद्ध किया था। उन्होंने बहुतेरी लड़ाइयां लड़ी और सौराष्ट्र में विजय पताका फहराई यही महान् शूर-वीर काठी स्वामीनारायण धर्म के अनुयायी बन गये, अतः सौराष्ट्र में इस धर्म का बृहत् क्षेत्रीय विस्तार

हुआ। स्वामीजी ने काठियों को धर्म पथ पर सर्वप्रथम आरूढ़ किया और स्वामीनारायण धर्म का सर्वप्रथम प्रसार करने वाले काठी ही थे। यह घटना ऐतिहासिक बन गई है। काठियोंके इस्टदेव सूर्य, कुलदेवी गायत्री और कुलधर्म धर्मान्दाय है।

संप्रति स्वामीनारायण धर्मकी दो आचार्य गद्दियां हैं। एक अहमदाबाद में और दूसरी बड़ताल में। प्रमुख अहमदाबाद गद्दी के आचार्य धर्मगुरु देवेन्द्र प्रसाद जी महाराज वर्तमान में विद्यमान हैं।

साम्यवादी आर्य समाज

आर्य समाज कोई पन्थ या सम्प्रदाय नहीं, अपितु सच्चा वैदिक आदि साम्यवाद है। यह विश्व क्रांतिकारी महान् संस्था है। सामुदायिक जीवन, सहकारी जीवन और बन्धुत्व इसके मुद्रा लेख हैं। आर्य समाज के आदि संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म सौराष्ट्र में मौरबी के निकटवर्ती टंकारा ग्राम में सन १८२५ में औदीच्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। वे प्रचंड पुरुष, महान बुद्धिशाली तथा क्रांतिकारी थे। उनका आदेश था कि जिसका कोई उपयोग नहीं, ऐसी वस्तु को कभी ग्रहण करना उच्चित नहीं, बल्कि ऐसी बातों और वस्तुओं को स्वीकार कर उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिये, जिनसे मानव जीवन सुखी हो। उनके दार्शनिक विचार थे- आत्मा, ब्रह्म और प्रकृति-यह तीन तत्त्व अनादि और अनन्त हैं इन्हीं तीन तत्त्वों से विश्व का सृजन हुआ है और कर्म सत्य है। यदि कर्म न हो, तो कर्त्ता का भी अस्तित्व नहीं

रहेगा, अतः विश्वकर्त्ता और कर्ममय है। स्वामीजी एक सार्वभौम, सर्वव्यापक अदृश्य सत्ता को ईश्वर के रूप में मानते और मनवाते थे और सृष्टि आरम्भ के साथ ही प्रादुर्भूत चार वेदों में निर्दर्शित व्यवस्था के अनुसार जीवन व्यतीत करने का उपदेश देते थे। वेदों में जितने देवों के नाम हैं, उन सबको वे ईश्वर के गुणवाचक मानते हैं और कहते हैं कि इसीलिये हमारा कर्तव्य है कि हम एक ईश्वर की उपासना करें। ईश्वर की कोई मूर्ति नहीं। मूर्ति पाखण्ड है और जड़ता का विस्तार करने वाली है। उसका सच्ची धार्मिकता के साथ कोई संबन्ध नहीं। आर्य समाज का पाठ्य-ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश है, जिसमें बुद्धि विरोधी असंगत विचारों का निर्भीकता के साथ खंडन किया गया है। उसमें ब्रह्मचर्य को अग्रस्थान दिया गया है और आदिकालीन अव्यवस्था और सदाचार को वर्तमान काल में पुनः प्रस्थापित करने के लिए जनता को प्रत्येक क्षेत्र में जागृत रहने तथा मिथ्या वहमों और पाखण्डों से दूर रहने को कहा गया है और व्यापक अनिष्टों से जनता को मुक्त कराने के लिये स्वाधीनता के क्रांतिकारी महामंत्र को दिगन्त व्यापी बनाया। उन्होंने प्रगति के प्रवाह को सभी क्षेत्रों में बहवाया और सभी वादविवादों को तिलांजलि देकर मानव जाति को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने की भूमिका का सृजन किया। महर्षि दयानन्द कार्ल मार्क्स के समान थे, उसके समकालीन तथा समकक्ष सिद्धांतवादी भी थे। महर्षि दयानन्द ने समाजवादी आर्यसमाज का श्री गणेश ११ जनवरी, १८७५ ई० को प्रथम राजकोट में

आर्य समाज संस्था की स्थापना करके की। राजकोट को यह महान ऐतिहासिक गौरव प्राप्त है।

रामकृष्ण-मिशन का भगवद्वाद

स्वामी रामकृष्ण के परम शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी ने सन १८९५ ई० में कलकत्ते के बेलूर मठ में श्री रामकृष्ण मिशन की प्रथम स्थापना की। संप्रति उस मिशन की १०० से भी अधिक शाखायें देश भर में काम कर रही हैं और अपने सेवा, त्याग और प्रेम भाव से जगत का कल्याण कर रही हैं। वह खष्टान मिशनों की प्रतिद्वन्दी जैसी विश्व सेवा-भावी संस्था है और आत्मा की मुक्ति तथा विश्व कल्याण के लियें स्थापित विश्वव्यापी धार्मिक संस्था है। उसका आदर्श सिद्धांत सबको भगवान मानने का है। वह सभी क्षेत्रों में सभी प्रकार की सेवा के सक्रिय कार्य करती है और त्याग को धर्म का महान अंग मानती है तथा विविधता में एकता का दर्शन कराकर मानव मात्र में प्रेम और एकता का प्रचार करती है।

जैन धर्म

जैन धर्म अति प्राचीन है। इसके प्रवर्तक आदिनाथ प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव थे। उन्होंने शरीर, इन्द्रियों तथा प्राण को जीत लिया था, इसीलिये उन्हें जिन अर्थात् जयवन्त कहा जाता था। उनके अनुयायी जैन अर्थात् जिज्ञासु कहलाते हैं। जैन धर्म में २४ तीर्थंकर हुये हैं, जिनमें भगवान महावीर अंतिम तीर्थंकर थे। वे ईस्वी सन पूर्व ५३९ में क्षत्रिय कुल शिरोमणि राजा सिद्धार्थ के घर में अवतरित हुए थे और ३०

वर्ष की आयु में संसार को त्यागकर उन्होंने १२ वर्ष तक साधना की। ४२ वर्ष की आयु में केवल ज्ञान प्राप्त कर वे संसार के उद्धारक बने। ३० वर्ष तक लगातार चारित्र्य-ज्ञान का उपदेश देकर ७१ वर्ष की उम्र में उन्होंने अपाया नगरी में हस्तिपाल राजा की लेखन शाला में निर्वाण प्राप्त किया था। इस महान तीर्थंकर का जीवन दीप बुझने से प्रकाश के प्रतीक रूप अभी भी दीपमाला जलाई जाती है। भगवान महावीर ने समग्र जनता के उद्धार लिये अनेक कल्याणकारी प्रवृत्तियों का आयोजन किया था और जनता को न्याय-नीतिपरायण और सदाचारी बनाया था। भगवान महावीर के निर्वाण के ४७० वर्ष पश्चात् विक्रम संवत का प्रारंभ हुआ था। इस गणना के अनुसार भगवान महावीर के निर्वाण काल को २४९० वर्ष पूर्ण हो गये हैं। फिर भी उनके ज्ञान-दीपक की ज्योति मन्द नहीं हुई है। भगवान महावीर का महान उपदेश यह था कि संसार दारुण दुःखमय है। उसका कारण कर्म है। उसके निवारण का उपाय है सच्चा ज्ञान और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के साधन हैं—तीन रत्न—ज्ञान, चरित्र और दर्शन। तीन गुप्ति, पांच समितियां, पांच महाव्रत, चारभावनाएं और दो आवश्यक क्रियाएं सामयिक और प्रतिक्रमण हैं। जैन धर्ममें ९तत्त्व और ६प्रकारके जीव-सजीव और अजीवका भी वर्णन किया गया है, जिसमें आत्मद्रष्टा, ज्ञाता परम चैतन्य ज्योति रूप है। जगत अनादि है। इसका कर्त्ता—निर्माता कोई नहीं। सब कर्म के नियम पर चल रहा है। किए हुये कर्मों का भोग किये बिना किसी का छुटकारा नहीं—कर्म—फल का भोग अनिवार्य है। चरित्र तथा ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं।

स्याद्वाद महान् है।

जैन दर्शन का स्याद्वाद अति गूढ़ और सर्वोपरि है। वह आइन्स्टीन के वैज्ञानिक सिद्धांत सापेक्षवाद– जैसा और जगत के सभी प्रश्नों का निराकरण करने में समर्थ है। स्याद्वाद का अर्थ है—स्याद अर्थात् अपेक्षा और वाद अर्थात् कर्थन। एक की अपेक्षा पर ही दूसरा है। एक नहीं, तो दूसरा भी नहीं। इसे अनेकांतवाद भी कहा जाता है। क्योंकि एक ही वस्तु अनेक रूपों में प्रकट होती है। इसे अस्ति-नास्तिवाद भी कहा जाता है। ऐसा हो भी सकता है और ऐसा नहीं भी हो सकता। जैन धर्म-दर्शन में सप्तभंगीनय का सिद्धांत अद्भुत है सप्त भंगीनय के अनेक अर्थ होते हैं। नय का अर्थ है-दिखाना, निर्देशन करना भंगी अर्थात् खण्ड, अंश आदि। सत्य को सात अंश से तपासना—छानबीन करना, सात तरह मापना आदि। सप्त भंगीनय में सत्य को सात प्रमाणों से मापने को बताया गया है। परंतु सत्य को मात्र चार प्रमाणों से मापने वाला केवल आइन्स्टीन ही था, अतः सात प्रमाणों से मापनेवाला इस युग में कोई नहीं। सप्तभंगीनय में अंतिम भंग शून्य है। शून्य अर्थात् सिद्ध। सिद्धि प्राप्ति के पश्चात् करने जानने के लिये कुछ भी शेष नहीं रहता।

जैन-वणिकों का इतिहास

दयाधर्मधारी वणिक मूलतः आर्य क्षत्रिय थे। उनका मूल स्थान मध्य एशिया के जार्जिया प्रांत में था। वहां से सहस्रों वर्ष पूर्व वे भारत में आये थे और छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना की थी जिनमें से एक राज्य राजस्थान में श्रीमाल का

था। उनके मूल पूर्वज चौहान और ओसी राजपूत थे। उनकी चौहाल शाखा में राजा गोग हुये थे। वह संवत ४०५ विक्रमीय में श्रीमाल का राज्य संचालन करते थे। उनके पुत्र राजा उदयभानु थे और उदयभानु की सातवीं पीढ़ी में नरपाल नामक राजा हुए उन्होंने संवत ६०९ विक्रमीय में श्रीमाल में व्यापार प्रारंभ किया, इस लिये उन्हें श्रीमाली वणिक कहा जाता है। जैन वणिक बड़े-बड़े जहाजी बेड़े चलानेवाले तथा अतीव साहसी थे। उनका एक कुटुंब श्रीमाल से सौराष्ट्र में आकर महाराज भोज के कोठार की देख-रेख करता था, अतः उनके वंशज कोठारी कहलाते हैं। तदुपरांत रोजगार धन्धा और बाप-दादों के अनुसार अनेक शाखाएं बन गयीं। धर्म में भी दसा, बीसा, स्थानकवासी, देशवासी आदि अनेक विभाजन हो गए। फिर भी उनकी एकता, बुद्धि और दूर दर्शिता में कोई अन्तर नहीं आया। यह जैन धर्म का प्रभाव है। जैन धर्म मूलतः अहिंसा धर्म का प्रतिपालक है।

बौद्धधर्म-अनात्म शून्यवाद

बौद्धधर्म के स्थापक भगवान बुद्ध का जन्म ईस्वी-सन् से ६२३ वर्ष पूर्व विहार में राजा शुद्धोदन के यहां हुआ था। उनकी माता का नाम मायादेवी था। बुद्ध ने राज्य-वैभव को त्याग कर तपश्चर्या की और जगत् के दुःख का कारण और उपाय की खोज करके घोषित किया कि दुःख का कारण स्वार्थ-वृत्ति, तृष्णा, और अज्ञान है। बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त कर वेद से पृथक धर्म की स्थापना की। इसे बुद्ध का अष्टांग योग कहते हैं। उनका उपदेश था कि

द्वेष के बदले प्रेम से काम करना चाहिये तथा झगड़ा और मार-पीट के स्थानपर एक्य-भाव से मिलकर रहना चाहियें। सच्चा जीवन जीने के लिये किसी देव-देवी को भोग देने की आवश्यकता नहीं। पूजा-पाठ के कर्म की अपेक्षा अध्ययन अधिक फलदायी होगा। अध्ययन मे चर्चा, विचार विमर्श और मनन प्रमुख हैं। आत्मा और ईश्वर की बात कल्पित तथा मिथ्या है। आत्मा शरीर का ही उल्लेख करनेवाला शब्दमात्र है। वस्तु या प्रकृति ही सत्य है और उसी से मन, बुद्धि, आत्मा आदि सबका सृजन होता है। शरीर के बिना मन, संभव नहीं। शरीर का नाश होनेपर सबका नाश हो जाता है। मैं शब्द ही आत्माका परिचायक है। आत्मा शब्द शून्यमात्र है। अष्टांग योग सम्यग्दर्शन, सम्यग्विचार, आदि मध्यम योग मार्गद्वारा दुःख का अन्त आ जाता है। बुद्ध का अनात्मवाद जड़ नहीं, बल्कि 'मैं' के मिथ्या नाम से उद्घोषित मिथ्या आत्मा को बिखेर देना चाहियें, यहीं इसका ज्ञान है। मनके शान्त होनेपर ही उच्च ज्ञान की प्राप्ति होती है।

बुद्ध के सिद्धान्त

१— दुःख स्वार्थमय है। धर्म में वैराग्य श्रेष्ठ है। कर्म में अष्टांग योग श्रेष्ठ है।

२— रोगी के लिये औषधि बन जाना, दुखी का सेवक बनना और तबतक शान्ति से नहीं, बैठना, जबतक दुःख का निवारण भलीभांति हो न जाये।

३— द्वेष के द्वारा द्वेष का प्रशमन कदापि संभव नहीं। वैर को त्याग देने पर ही वैर शान्त होता है।

४— सत्य के प्रति जागरूक रहना चाहिये। परमार्थ में प्रवृत्त रहना अमृतत्व का पद है।

५— पुष्प सुन्दर होनेपर भी सुगंधि के बिना अच्छा नहीं लगता उसी तरह वाणी भले ही सुन्दर हो, परन्तु यदि वह क्रियाहीन है, तो उसकी शोभा नहीं।

६— प्रमाद मृत्यु का पद है। जबतक इच्छा-कामना वशीभूत नहीं होतीं, तबतक दुःख टलते नहीं। दुःख और भय का जन्म वासनाओं से होता है।

७— दुःख की दारुणता, संसार की क्षणिकता और उसमें से आत्मोद्धार के उपाय में लगे रहना चाहिये। सब के प्रति करुणा और कल्याण करने की ओर वृत्ति रखना उचित है।

८— आत्माविषयक कोलाहल करते रहने से कोई लाभ मिल नहीं सकता। कार्य से सिद्धि प्राप्त होती है। दुःख रहित स्थिति ही निर्वाण है। निर्वाण का अर्थ है बुझ जाना। हृदय में अहंभाव और राग-द्वेष, स्वार्थ-वृत्तियों की जो आग जल रही है, उसे बुझा देना चाहिये। इनके बुझाने का मार्ग प्रतिपदा है। मानव जबतक राग-द्वेष-और मोह से ढका हुआ है, तबतक सत्यानुभूति होने की संभावना नहीं। भयपर विजय प्राप्त करना ही अमरत्व है यही बुद्धका अनात्म शून्यवाद है।

सिख धर्म

सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक का जन्म १४६९ ई० में लाहौर के निकटवर्ती तलवण्डी ग्राम में श्री कालचन्द्र बेदी नामक महा भक्त के यहां हुआ था। उनकी माता का नाम तृप्ताजी था। छोटी आयु में ही गुरु नानकदेव ने संस्कृत और फारसी भाषा का बहुत अच्छा अध्ययन कर लिया था, अतः उनकी समझ-ग्रहण-शक्ति बहुत बढ़ गई थी। उनका उपनयन संस्कार करानेवाले विद्वान् ब्राह्मण जब जनेऊ पहना रहे थे; तब उन्होंने कहा-"यह क्या पहना रहे हो ? यह जनेऊ तो निरर्थक है। मानव को दया के कपास से संतोष का सूत कात कर सत्य और गांठ से ग्रथित जनेऊ पहनना चाहिये। इस प्रकार जनेऊ जो पहनता है, वह धन्य होता है। ईश्वर का नाम सत है। सत नाम एक ही सत्य है। विश्व का सृजन सत नाम से ही हुआ है। मूर्तिपूजा, जनेऊ आदि पाखण्ड है।" गुरु नानक द्वारा आलिखित पुस्तक को ग्रन्थ साहब कहा जाता है। सभी सिख इसकी पूजा करते हैं और गुरु नानक के पश्चाद्वर्ती दस गुरुओं के प्रति भी सभी सिख भक्ति भाव रखते हैं। सिख जाति योद्धा (लड़नेवाली), वीर साहसी और भली है। वह धर्म की पांच मुद्रा-कच्छ, कांसकी, केश, कड़ा और कृपाण सदा रखते हैं। इन्हें पंचककार कहा जाता है। सिखों के धर्मस्थान को गुरुद्वारा कहते हैं। सिख जाति जगत् भर में बसी हुई है।

सिख धर्म के सिद्धान्त

ईश्वर एक है। वह हिन्दुओं के मानव-जैसा-राम-सरीखा और मुसलमानों के अल्लाह-जैसा विभिन्न भावनाओं से भरित नहीं अपितु वह तो एक, एकाकी, अविभाज्य, स्वयंभू, कालातीत और सर्वव्यापी है। उसे कोई नाम दिया नहीं जा सकता परन्तु वह भजन करने योग्य सर्वांशतः उत्तमोत्तम है। ईश्वर का नाम ग्रन्थ साहब में धर्म दिया गया है। वह गुरु है और सिख अर्थात् सीखनेवाले शिष्य हैं-चेले हैं। सिख धर्म में ईश्वर का वास्तविक नाम सत्-नाम है। सत्-नाम सिखों का महामंत्र है।

धर्म की शिक्षा

मानव जाति एक महान् भ्रातृ समुदाय है। सभी मानव भाई हैं। ईश्वर एक है। उसे ऊंच-नीच का कोई भेद नहीं। ईश्वर के साथ तुलना करते हुए जगत् व्यर्थ और क्षणिक है और मानव विवश है, असमर्थ है, उसकी कोई बिसात नहीं। सिख धर्म में सभी धर्मों के विचारों को स्थान दिया गया है। उदाहरण स्वरूप मुसलमानों की तरह उद्धारक कृपा का साधन ईश्वर का महान् नाम है। बौद्धों की निर्वाण है, विश्रान्ति प्राप्त करना अन्तिम फल है, सूफियों की तरह आत्मा-परमात्मा से प्रस्फुटित अविनश्वर तेज किरण है और हिन्दुओं की तरह 'सोऽहं'-

मैं वह हूं। इस प्रकार सभी मतों का उसमें समन्वय किया गया है। वे सबको मानते हैं। शुद्ध वेदान्त के अनुसार ईश्वर ही प्रवृत्ति आदि सब कुछ है। आत्मा मात्र उसका अंश या तेज है। ईश्वर एक ही है, इस मान्यता को दृढ़ बनाने के लिये धर्म-ग्रन्थ के प्रत्येक प्रकरण में १ (एक) का अंक लिखा गया है। एक ही देखो, एक ही बोलो, एक ही जानो यही शिक्षा का सार है। अनेक पन्थ और जातियां होनेपर भी सिख सब को एक भ्रातृमण्डल मानते हैं। यह सिख धर्म में सीखने योग्य विशेषता है।

ग्रन्थ साहब दुनिया के किसी भी धर्मशास्त्र की अपेक्षा गूढ़ भाषा में लिखा गया है। कहा जाता है कि ग्रन्थ साहब में क्या लिखा है, इस बात से ९० प्रतिशत अज्ञात हैं। वह अमृतसर के गुरु द्वारे में रखा गया है। उसे अदृश्य ईश्वर की दृश्य प्रतिमा माना जाता है। हीरा-मोतियों के छत्र के नीचे एक गद्दीपर उसे रखा गया है। उसमें लिखा गया है कि जो मरता है, उसका भजन क्यों करना चाहिये? अमर ईश्वर का स्मरण करना ही श्रेयस्कर है।

इसलाम धर्म

इसलाम या मुसलिम का अर्थ सुलह शान्ति भी होता है। वह खुदाई पाक धर्म है। उसके खास सिद्धान्त है एकता, एकीन, खैर (कुशल), मेहर (कृपा) और बन्दगी

(उपासना) प्रमुख हैं। इसलाम धर्म के संस्थापक हजरत मोहम्मद पैगम्बर साहब का जन्म मक्का शरीफ में २० अप्रैल, ५७१ ई० को हुआ था। वे बचपन से ही भले दयालु स्वभाव, और लोक कल्याणकारी कार्यों के प्रेमी थे। उन्हें खुदा के दीदार (ईश्वर-दर्शन) की लगन लगने से मक्का के निकट की पहाड़ी टेकरियों पर जाकर घण्टोंतक चिन्तन करते रहते थे। एक दिन अन्धकार में प्रकाश का दर्शन हुआ और आवाज सुनाई दी-'हे मोहम्मद! तुम खुदा के पैगम्बर हो, तुम लोगों के दुःखों को नष्ट करने के लिये उन्हें खुदाई मार्ग पर चलने का उपदेश दो। खुदा के समान अन्य कोई नहीं।'' इसके बाद वे सब के साथ बड़े ही प्रेम-भाव से बर्तने लगे और सभी लोग पैगम्बर साहब को बहुत चाहने लगे। वे ४० वर्ष की आयु में खुदा के सच्चे पैगम्बर बन कर जीवन का हर क्षण परोपकार में व्यतीत करते थे। मुसलमानों को जगत् में महान् बना कर सन् ६३२ में वे जन्नत नशीन (स्वर्गवासी) हुए और सच्चाई, भ्रातृभाव तथा ईमानदारी जैसे उत्तम गुणों और पवित्र कुरान ग्रन्थ मुसलमानों को दिया। कुरान खुदा की ओर से फिरस्तान जिब्राइल द्वारा अरबी भाषा में भेंट की गई है। उसमें ११४ सुरा (प्रकरण) हैं। उसमें पांच बृहद् धर्म-स्तम्भ कलमा, नमाज, रोजा, खैरात, और हज हैं। उसे मानने वाले शिया और सुन्नी-दो बड़े पन्थ हैं। पैगम्बर साहब के स्वर्गवासी होने के बाद उनके ससुर अबूबकर साहब ने धर्म गद्दी को सँभाला था। उन्हें

माननेवाले सभी मेमन जाति सहित सुन्नी कहे जाते हैं और पैगम्बर साहब की पुत्री फातिमा बीबीके पति हजरत अली और उनके पुत्र हजरत हसन और हजरत हुसेन को माननेवालों को शिया कहा जाता है। शिया का अर्थ है पक्षकार। वे पैगम्बर साहब की गद्दी के सच्चे उत्तराधिकारी हजरत अली के वंशजों को ही मानते हैं। ईरान के सभी मुसलमान, कुछ मुग़ुल, और खोजा, बोहराजाति के सभी लोग शिया-पन्थी हैं।

शिया—खोजा की जानकारी

खोजा जाति ईरान से आई है। उसमें खोजा, इसमाइली, खोजा इश्नाशरी और बाराभाया-यह तीन जमातें हैं, जिनमें बाराभाया की जनसंख्या कम है और खोजा इसमाइली बहुसंख्यक हैं। वे सभी आगाखान साहब को मानते हैं और इश्नाशरी अर्थात् बारह इमामों को माननेवाले वे १९०० ई० के साल से पृथक पड़ते हैं। वे मानते हैं कि बारहवें इमाम परदे में हैं। वे पुनः आयेंगे और उन्नति होगी। शिया पन्थ में से एक सूफीवाद प्रकट हुआ है। वह वैराग्य की भावना से ओतप्रोत है। —क्रमशः

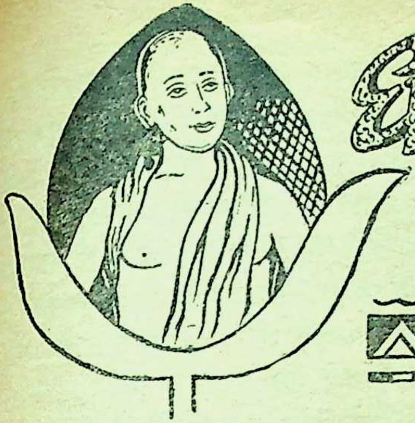

धर्मोपदेश

स्वामी रामतीर्थ

(गतांक से आगे)

प्रश्नः— क्या रोग मिटाने के लिये भौतिक पदार्थों का अस्वीकार आवश्यक है ?

उत्तरः— रोग मिटाने के लियें आपको यह भावना करनी चाहियें कि मैं अखण्ड सुखस्वरूप हूँ। आपको सर्वत्र प्रभुता ही देखनी चाहियें। आप आत्म-भावना करें, अतः आपकी सभी व्याधियां नष्ट हो जायेंगी और आरोग्य, बल, विचार आदि सभी पदार्थ आपकी ओर आकर्षित होकर चले आयेंगे। ईश्वर को भी देखने की इच्छा नहीं करना, क्योंकि आप ईश्वरस्वरूप ही हैं। जब आप ईश्वर-दर्शन की इच्छा करते हैं, तब आप ईश्वर अपने अन्तर से निकाल फेंकते हैं—उसे अपने आप से दूर कर देते हैं।

गणितज्ञ न्यूटन के जीवन पर दृष्टिपात करने पर हमें पता चलेगा कि वह ध्यानपरायण ही रहता था और ध्यानपरायण होने का अर्थ इच्छा से रहित होने के सिवा अन्य कुछ भी

नहीं। वह जिस विषय पर विचार करता, उसके अन्दर उसका आत्मा निमग्न हो जाता, जिसका परिणाम यह होता कि वह मानव जाति के लिये उपकारी — लाभकर सिद्ध होता। उसने मानव जाति को ऋणी बनाने के उद्देश्य से अपने प्रश्न को सिद्ध नहीं किया था। उसके मन में ऐसा विचार ही उत्पन्न नहीं होता था। उसने जो कार्य किया, उसका कारण यही है कि यह कार्य उसे आनन्दमय था और इस प्रकार वह जन-समाज के लिये कल्याणकारी बन गया।

लोग आपकी प्रशंसा न करें, उसकी कुछ भी चिन्ता नहीं। आपका नाम न रहे, कोई हर्ज नहीं, क्योंकि जगत् की दृष्टि में जो विजय दिखाई देती है, वह मात्र इन्द्रियों का भ्रम है। वास्तविक विजय तो आपको तभी मिलती है, जब आप यह भावना करते हैं कि "मैं सर्वरूप हूँ, दिव्य स्वरूप हूँ, मैं स्वयं ही विजय हूँ।" क्या इसके बाद भौतिक पदार्थों के अस्वीकार की आवश्यकता रह जाती है ? आप अपने स्वरूप का स्मरण करें कि मैं दिव्य स्वरूप हूँ और जिस क्षण आपको यह अनुभव होगा उसी क्षण भौतिक पदार्थों की सत्ता का स्वभावतः अभाव हो जायेगा और इन पदार्थों को अस्वीकार और आत्मस्वरूप में दृढ़ निश्चय करने के लिये भिन्न-भिन्न मार्ग नहीं, बल्कि एक ही है।

इस प्रकार आपको अनुभव होगा कि आपका सत्यस्वरूप इन सब प्राणियों, सूर्यों, ताराओं, वृक्षों आदि सबका नियामक परमात्मा है। जब राम रास्ते में चलता है, तब चलते-चलते विचार करता है कि यह सूर्य ही सब बादलों और ओस कणों

का निर्माण करता है। इन सबका कारण सूर्य ही है। कुछ लोगों का कहना है कि बादलों का कारण सूर्य नहीं, अपितु पृथ्वी और जल है, परन्तु यह बात यथार्थ नहीं। जल, मेघ, ओसबिन्दु—यह सब सूर्य से ही उत्पन्न होते हैं। इन सबको सूर्य ही पैदा करता है और फिर जब वही सूर्य उनकी ओर प्रचण्ड दृष्टि से देखता है, तब वह बादल और ओसकण सब अदृश्य हो जाते हैं। जिस प्रकार एक ही सूर्य जल और ओसकण बनाता है, फिर उन सबको नष्ट कर देता है, उसी तरह आत्म-साक्षात्कार की एक अवस्था तो यह है कि जिसमें आप आपको सूर्य के समान परमात्मा मानते हैं और द्वितीय अवस्था में परिच्छिन्न जीवनरूपी ओसकणों को दूर कर देते हो।

लोगों का कहना है कि "परमात्मा की प्रतिमा के अनुसार मेरा निर्माण किया गया है," परन्तु राम का कहना यह है कि भले आप प्रतिमा बनो, परन्तु इससे आप बहुत दुःखी होंगे। आप परमात्मा की प्रतिमा या आकृति नहीं, बल्कि आप तो साक्षात् परमात्मा हैं।

पानी में आकृति का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसपर विचार करें, तो वह प्रतिबिम्ब जल है और उसमें परमात्मा सूर्य है। इसी प्रकार मनुष्य प्रथम स्थिति में सूर्यरूप अपने परमात्मा का साक्षात्कार करता है।

आंख की खोल-बन्द क्रिया करते हुये राम को सदैव यह प्रतीति होती है कि—"मैं ही सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों को आच्छादित कर रहा हूँ। मैं ही उनमें गति, शक्ति और जीवन

का संचार कर रहा हूँ, मैं ही उनका आधार और आश्रय हूँ, मैं सबके अन्दर सुशोभित परमात्मा हूँ।" आत्मसाक्षात्कार की यह एक अवस्था है। यदि आप इस स्थिति को प्राप्त कर लेंगे, तो आपको प्रतीत होगा कि ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, भय आदि सभी मनोविकार दूर हो जायेंगे।

बालक जब अपनी माता से कोई पुस्तक छीन लेता है, तब क्या माता को किसी प्रकार का उद्वेग होता है? नहीं, कभी नहीं। क्योंकि जैसे बालक उसका है, उसी तरह पुस्तक भी उसी की है। इसी प्रकार यदि कोई मानव आपके पास से कोई वस्तु चुराकर ले जाता है, तो वह चोरी करनेवाला मानव और आप एक ही हैं और चोर जो कुछ चुराता है; वह भी तुम्हारा है और जो कुछ चोर का है वह तुम्हारा ही है, अतः आपको भय किस लिए होना चाहिए? आपका आनन्द और विजय ऐसे नहीं, जिन्हें लोग आनन्द और विजय कहते हैं। आपका अंतिम लक्ष्य सत्य है; अतः यदि कभी इस जगत के भौतिक पदार्थ आपको प्राप्त होते हैं, तो आपको उनसे कहना चाहिए—"हे शैतान! तू मेरे पास से चला जा, मैं तुमसे कुछ भी नहीं चाहता।" अहा! ऐसा करने से आप कितनी आनन्दानुभूति करते हैं। आप स्वर्ग स्वरूप ही बन जाते हैं और अपने जीवन को विजय-स्वरूप बना देते हैं।

प्राणायाम क्या है? लोग प्राणायाम करने की बड़ी ही आवश्यकता बताते हैं। परंतु राम का कहना है कि जब हमारा मन तत्त्व में विलीन हो जाता है, तब प्राणायाम स्वयमेव स्वाभाविक स्थिति में चला करता है। जिस क्षण हम

ऐसे अनुभव में निमग्न हो जाते हैं, जिस क्षण हम एकाग्र चित्त से ॐ का जप करते हैं, उसी क्षण प्राणायाम अपने आप उत्तम ढंग से सिद्ध हो जाता है। फेफड़े प्राणवायु से परिपूर्ण हो जाते हैं और पेट के निचले भाग में प्राणवायु प्रवाहित होने लगता है। मुख्य बात अपने स्वरूप का साक्षात्कार करने की ही है और यदि यह सिद्ध हो जाए, तो फिर प्रत्येक वस्तु आकर्षित होकर आपके पास चली आएगी।

इस देश में बहुतेरे लोगों को सुन्दर नासिका, नेत्र और कोमल शरीर का शौक होता है। राम का कहना है कि आत्म शक्ति की प्राप्ति होने के बाद भी आप परिच्छिन्न और दुःखी रहते हैं। इसके अतिरिक्त लोग आध्यात्मिक शक्ति से धन प्राप्ति की आकांक्षा रखते हैं, परन्तु यदि आपको सौन्दर्य, रूप-रंग, आरोग्य आदि प्राप्त करने की इच्छा है, तो भी आपको वेदांत के त्याग धर्म का कुछ अंशों में पालन करना ही पड़ेगा और जितने अंशों में आप उसका पालन करेंगे उतने अंशों में उसका फल आपको उपलब्ध होगा परन्तु अल्प फल-प्राप्ति से आप पूर्णकाम नहीं होंगे। जब ऐसी बात है; तब किसलिए सभी वस्तुओं के उत्पत्ति स्थल को आप प्रथम सिद्ध नहीं करते ? उसके सिद्ध हो जाने के पश्चात् आपको जो भी कामनाएं आपको करनी हों, वह भले आप करें, वह निःसंदेह पूरी तो होंगी ही—आपको खोजती हुई भी आयेंगी। अतः कृपा करके आप इच्छा के किसी विशेष पदार्थ में बंधकर नहीं रहना, बल्कि जिससे सभी कामनाएं सिद्ध होती हैं, उस राज-मार्ग का ही अनुगमन करना। स्वर्गीय सुख और परमात्मा

इन दोनों को प्राप्त करने का राजमार्ग यही है कि 'मैं स्वयं साक्षात् परमात्मा और स्वर्ग हूँ।"-ऐसी भावना करें।

आत्मसाक्षात्कार दो तरह से हो सकता है—एक श्रद्धा से और दूसरे ज्ञान से। वेदांत शास्त्र का अध्ययन करने से आप अपनी सभी शंकाओं का समाधान कर सकेंगे और आशा की जाती है कि भविष्य में थोड़े ही समय में इस तत्त्वज्ञान का संपूर्ण विवरण रामकी ओर से प्रकाशित होगा।

वेदांत के अध्ययन से यदि आपको आत्म साक्षात्कार न हो। तो भी आप उसमें श्रद्धा विश्वास रखें। स्त्रष्टान लोगों को साक्षात्कार की झांकी होती है, इसलिए यदि आपको समय मिले और यदि उसमें आपको आपके सम्पूर्ण कल्याण की प्रतीति होती हो, तो आप वेदांत शास्त्र को पढ़ें। और यदि यह भी संभव न हो, तो आप राम में—प्रभु में और आपके आत्मा में श्रद्धा रखें, जिससे आप निःसन्देह मुक्त हो जायेंगे।

निश्चल चित्त अथवा स्थिर बुद्धि

एक दिन यह प्रश्न किया गया कि "क्या वर्तमान युग में मानव वेदांत के सिद्धांतानुसार आचरण कर सकता है?" किसी ने यह प्रश्न भी किया था कि वेदान्त के सिद्धांतों की अनुभूति के लिए हिमालय में जाना चाहिए। परन्तु रामका कहना है कि "आमको एतदर्थ वन में जाने की आवश्यकता नहीं।"

आजकल तो "समय नहीं है" की शिकायत सामान्य हो गई है। लोगों का कहना है कि "हमें समय नहीं हमें बहुत काम हैं, सगे सम्बन्धी और मित्रों के बीच हमारा बहुत सा

समय निकल जाता है" एक प्रार्थना यह है—"हे ईश्वर! तू हमारे शत्रुओं से हमारी रक्षा कर" परन्तु आज के जमाने तो लोगों को यह प्रार्थना करनी चाहिए कि "तू मित्रों से भी हमारी रक्षा कर।" क्योंकि मित्र तो हमारा सारा समय नष्ट कर ही देते हैं साथ ही चिन्ता उद्वेग, भय आदि भी हमारा बहुत सा समय बांट जाते हैं। हमें अपने बाल बच्चों और सहवासियों की बातें सुननी पड़ती हैं, हमें अनेकशः मानवों से मिलना पड़ता है और मिलने आते हैं, उनका स्वागत सत्कार करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ स्वाध्याय भी आवश्यक होता है। ऐसी स्थिति में आध्यात्मिक उत्कर्ष करने का समय कहां से लायें। अहा! कर्तव्य हमारा समग्र समय ले लेते हैं। लोगों को शांति से खाने को भी मिल नहीं पाता। कर्तव्य के नाम पर आपका समग्र जीवन विक्षिप्त रहता है, अतः हम छानबीन करें कि यह कर्तव्य कहां से आते हैं?

इन कर्तव्यों को आपके सिरपर किसने रखा है? अन्य कोई नहीं, बल्कि आपने स्वयं ही इस कर्तव्य भार को शिरपर रख लिया है। वस्तुतः देखा जाये तो आप ही इन कर्तव्यों के निर्माता हैं। आफिस में जाकर काम करना-यह आप अपना कर्तव्य मझते हैं। परन्तु यह आफिस का काम आपके सिर पर किसने रखा? यह सब आपने स्वयं शिरोधार्य कर लिया है। इस प्रकार यदि आप अपने कर्त्तव्य के स्वरूप पर दृष्टिपात करेंगे, तो आपको यह अनुभव होगा कि आप स्वयं ही आपके मालिक हैं। इन सभी कर्तव्यों ने आपको जिस संसार का दास बना दिया है, उसे आपने स्वयमेव उत्पन्न

किया है। यदि आपको एकबार भी ठीक से समझ में आ जाये कि दुनिया में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो तुम्हें अपने पास में बांध सके। प्रत्येक पदार्थ वस्तुतः तुम्हीं से उत्पन्न होता है। ऐसी दशा में ऐसे ज्ञान से आप अत्यन्त सुखी होंगे और अपनी सांसारिक स्थिति को अति सुचारू रूप से सुव्यस्थित कर सकेंगे।

एक बार डा० जानसन के पास एक मनुष्य ने आकर कहा — "डाक्टर, मैं तो मरा, मैं निकम्मा हो गया कोई काम करने योग्य नहीं रहा। अब मैं कुछ भी करने में समर्थ नहीं। मनुष्य इस दुनियां में क्या कर सकता है?" डा० जानसन ने पूछा तुम्हारे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न होने का कारण क्या है? समागत मानव अपने तर्क इस प्रकार प्रस्तुत करने लगा—"देखिए, सुनिए, मनुष्य इस दुनिया में अधिक से अधिक सौ वर्ष तक जी पाता है और इस विश्व की अनन्तता में इन सौ वर्षों की क्या गणना? क्या बिसात? इन सौ वर्षों में पचास वर्ष निद्रा में नष्ट हो जाते हैं। बाल्यावस्था भी एक लम्बी नींद है, वृद्धावस्था भी अशक्ति और बेबसी का समय है, जब कि हम कुछ भी करने में समर्थ नहीं होते। युवा काल भी दूषित विचारों और सब प्रकार के मोह में निरर्थक निकल जाता है। शेष आयु खेल कूद और खाने पीने आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति में बीत जाता है। और इसके बाद जो अवशेष रहता है, वह क्रोध, ईर्ष्या, उद्वेग परिताप और दुःख में तथा सन्तान, मित्र और सगे सम्बन्धियों के प्रति कर्तव्य पालन में चला जाता है। इस

प्रकार सारा समय निरर्थक ही व्यतीत हो जाता है । अतएव मानव अपने ईश्वर का साक्षात्कार करने के लियें समय कहां से निकाले ? नहीं निकाल सकता । देवालयों और धर्म-स्थानों में जाकर धर्माचार्यों और देशकों को कहदेना चाहियें कि लोग धर्म के लिये समय बचा नहीं सकते । उन्हें ईश्वरानुभूति के लिये समय नहीं । य हमारी स्थिति है ।

डा० जानसन यह शब्द सुनकर हँस नहीं सकते और न उसकी भर्त्सना की । वह रो पड़े और उसको तरह दुःखी होकर बोले-सचमुच मानव को आत्म हत्या ही कर लेनी चाहियें । क्योंकि परमार्थ के लिये उसके पास समय ही नहीं । भाई, आपकी इन सिकायतों में मुझे एक सिकायत और बढ़ानी है, यह तो अधिक खराब है ।

उस मानव ने डा० जानसन से पूछा—"आपकी कौन-सी शिकायत है ?" डा० जानसन बनावटी रुदन करने लगे और बोले— "देखो, इस पृथ्वी में कहीं भी मेरे लियें जगह नहीं— स्थान नहीं, जहां हमारे पोषण के लियें अन्न उत्पन्न हो सके ! मैं सचमुख बहुत दुःखी हूँ ।" समागत मानव ने कहा— 'ऐसा कैसे संभव है ? मैं मानता हूँ कि आपको दस मानवों के जितना खाने को चाहियें, फिर भी आपका पेट भर सके, उतना अन्न उत्पन्न करने के लिये तो पर्याप्त भूमि है । आपके शरीर का पोषण करने कें लिये पर्याप्त अनाज और शाक-भाजी उत्पन्न करने के लियें तो बहुत जमीन है । डा० जानसन ने कहा— देखो, आपकी इस पृथ्वी का तो क्या

माप निकाला जाये ? यह पृथ्वी तो कुछ भी नहीं। खगोल शास्त्र की गणना के अनुसार यह पृथ्वी तो गणित के एक मध्यबिन्दु के समान है। जब तारा और सूर्य के अन्तर का माप हम करते हैं, तब पृथ्वी को हम एक बिन्दु के समान मानते हैं। इस बिन्दु—जो हमारी पृथ्वी है—का तीन चतुर्थांश तो जल से ही परिपूर्ण है, फिर उसमें से बाकी कितनी रही ? जो शेष रही उसमें रेतके बड़े-बड़े मैदान हैं। बहुत सी जमीन पर रूक्ष पर्वत और पत्थर फैले हुये हैं। इसके सिवा जो शेष रही, उसपर सरोवर और नदियां विद्यमान हैं और इनसे भी बच रहे बहुत बड़े भागपर लन्दन-जैसे विशाल नगर स्थित हैं इसके अतिरिक्त सड़कों, रेलवे-लाइनों से भी पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग ढका हुआ है। इस प्रकार जब कि सारी पृथ्वी ढकी हुई है, तब उसमें से मनुष्य के लियें कितनी शेष रही ? मान लें कि मानव के लियें कदाचित् थोड़ी-सी पृथ्वी अवशेष रह जाती है, परन्तु इस जगत् में अभी कितने ही ऐसे प्राणी हैं, जिन्हें न्यूनाधिक शेष रही पृथ्वी से लाभ उठा लेना है। हम जगत् में कितने अधिक पक्षी, जीव-जन्तु, घोड़े और जैसे अन्य अनेकशः प्राणी देखते हैं। यह सब जो कुछ थोड़ी-बहुत हमारे गुजर-बसर के लिये शेष रह गई है, उस पर रहते और अपना काम चलाते हैं, जिसमें से मनुष्य के हिस्से में तो 'नहीं' के समान ही पृथ्वी शेष रहती है। इस 'नहीं' के समान भागपर कितने मनुष्यों का निवास है! लन्दन की ओर ही दृष्टि दौड़ाओ। लाखों मनुष्यों से वह भरा हुआ है। एक बड़े बिन्दु के समान शेष रही इस पृथ्वी पर

सबको जीना है। अब विचार करो कि पृथ्वी मेरे पेट के लिये आवश्यक अनाज कैसे उत्पन्न कर सकती है? इस विचार से मैं तो सर्वथा निराश हो गया हूँ और मुझे मर जाने के सिवा अन्य कोई रास्ता नहीं सूझता। मैं तो आत्महत्या के निर्णयपर पहुँच गया हूँ, क्योंकि मुझे कहीं ऐसी जमीन दिखाई नहीं देतीं, जो मेरी आवश्यकता की पूर्ति कर सके।"

यह सब सुनकर समागत मानव ने कहा— "डाक्टर साहब आपका तर्क सच्चा नहीं, वह सच्चा जान पड़ता है। परन्तु आपका तर्क चाहे जितना सच्चा हो, परन्तु आपके पोषण के लियें आवश्यक अनाज यह पृथ्वी उत्पन्न कर सकती है।" प्रत्युत्तर में डा० जानसन ने कहा— "यदि मेरी शिकायत निराधार है, तो आपकी यह शिकायत भी निराधार है कि आध्यात्मिक खुराक से अपने आपका पोषण करने के लियें आपके पास समय नहीं। भौतिक आहार से अपने आपका पोषण करने के लियें यदि यह पृथ्वी पर्याप्त है तो ईश्वर-भजन के लियें आपके पास भी पर्याप्त समय है और यह समय आपको आध्यात्मिक आहार की पूर्ति समुचित रीति कर सकेगा।"

आध्यात्मिक भोजन के लियें वर्तमान कथित सुधरे हुये युग में इस समय न मिलने की शिकायत का उत्तर राम भी जानसन के समान दे रहा है। आज के प्रवृत्तिशील युग में भी आध्यात्मिक उन्नति करने के लियें जितना समय चाहिये, उतना अवश्य मिल सकता है। यदि आप समय का सदुपयोग

करें, तो समय की कोई कमी नहीं।

एक बार एक मानव घोड़े पर बैठकर यात्रा कर रहा था। रास्ते में उसे कुएं में से पानी निकालने के एक रहँट के पास से निकलना था। भारत में रहँट द्वारा कुएं से पानी निकाला जाता है और जब रहँट घूमता है, तब उसमें से आवाज निकलती है। इस कुएं से जो पानी बह रहा था, उसे पीने के लिये यात्री अपने घोड़े को कुएं के पास ले गया, परन्तु उस घोड़े ने पहले कभी रहँट की आवाज सुनी नहीं थी, इसलिये वह भड़क उठा और उसने पानी नहीं पिया। जो किसान रहँट चला रहा था, उससे उस अश्वारोही ने वह आवाज को बन्द करने के लिये कहा। किसान ने पानी का रहँट बन्द किया, अतः आवाज भी बन्द हो गई, परन्तु आवाज कें बन्द होने के साथ ही पानी का प्रवाह भी बन्द हो गया। घोड़ा पानी के पास गया, परन्तु वहां पानी बिलकुल नहीं था। यह देखकर अश्वारोही ने कहा-"अरे, भले आदमी, मैंने तुमसे आवाज बन्द करने के लिये कहा था, पानी बन्द करने के लिये नहीं कहा था। तुम तो कोई विचित्र मानव जान पड़ते हो। किसी के घोड़े को क्या तुम पानी भी नहीं पिला सकते ?" किसान ने कहा— घोड़े को पानी पिलाने की आना कानी मैंने तनिक भी नहीं की। परन्तु आपकी मांग इतनी विचित्र है कि आवाज भी न हो और पानी भी मिले। यह दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं, अतः यदि आपको पानी की जरूरत है और घोड़े को पानी पिलाकर

परितृप्त करना है, तो आवाज होने के समय ही आपको घोड़े को थपथपा कर, पुचकार कर पानी पिलाना चाहिये, क्योंकि आवाज बन्द होने के साथ पानी का आना भी बन्द हो जायेगा। हमेशा आवाज के साथ ही पानी आता है।"

रामका कथन भी यही है कि यदि आपको वेदान्त के सिद्धान्त का अनुभव करना है तो सभी प्रकार के कोलाहल और उपाधियों में भी आप उसका अनुभव कर सकते हैं। इस दुनिया में आप ऐसा स्थान कभी कहीं भी पा सकते नहीं जहां कोलाहल और उपाधियां न हों। आप भले हिमालय के शिखर पर जाकर बसें, किन्तु वहां भी आसपास की उपाधि ओर धांधली अवश्य होगी। आप जंगल में रहकर जीवन व्यतीत करें, तो वहां भी अपको उपाधियां बाधक होंगी। जहां भी जाना चाहो, जाओ, परन्तु यह उपाधि और धांधली कहीं भी आपका पीछा नहीं छोड़ेगी। यह तो सदा आपके साथ ही रहेंगी।

अतः यदि वेदान्त का स्वानुभाव करना हो, तो तभी करना चाहियें, जबकि आपके आस-पास पानी निकालनेवाले रहँट की आवाज हो रही है। निराशाजनक अवसरों और उपाधियों में भी इस जगत् में अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए हैं। जैसे-जैसे यह परिस्थिति अधिकाधिक प्रतिकूल होती जाती है जैसे-जैसे आसपास की उपाधियां अधिकाधिक कसौटी कसनेवाली होती हैं। तदनुसार इन परिस्थितियों और उपाधियों को पार करनेवाले मानव अधिकाधिक

सुदृढ़ बनते जाते हैं, अतः बाह्य उपाधियों तथा चिन्ताओं का तो स्वागत करना चाहिये। उसी कठिन परिस्थिति में आप वेदान्ती बन कर जीवन बितायें और जब आप ऐसा वेदान्ती जीवन बिताने लगेंगे, तब आसपास की सभी परिस्थितियां और उपाधियां आपकी अधीनता स्वीकार कर लेंगी। वह सब तुम्हारी अनुचरी होंगी और आप उनके स्वामी होंगे ।

क्या यह समाज आपकी अधोगतिका कारण है ? क्या यह जगत् आपकी अवगति करता है ? नहीं। वस्तुतः आप इस जगत् में नहीं रहते, अपितु प्रत्येक मानव स्वयं स्वतः के मनः कल्पित नाना जगत् में रहता है। इस विराट् जगत् में तो बहुत ही अल्प संख्या में मानव रहते हैं। आप स्वयं ही अपने आस-पास के जगत् को छोटा-सा और परिमित घरौंदा बनाये रखते हो। ऐसे बहुतेरे मनुष्य हैं, जिन्हें यह भी पता नहीं होता कि अपनी जाति और गांवरूपी छोटी-सी दुनिया के बाहर क्या है। बन्धुओ! आप इस विशाल (ईश्वर कृत) जगत् में निवास करो और अपने छोटे से परिच्छिन्न जगत् के उस पार पहुँचो। जो तुम्हारे अधःपतन का कारण है, वह ईश्वर कृत विराट् जगत् नहीं, प्रत्युत आपका अपने हाथों निर्मित क्षुद्र लघु संसार है। यदि आप अपने परिच्छिन्न जगत् के परे पहुंच जायेंगे, तो यह समग्र विश्व आपके अधीन होगा।

कर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है, यह अच्छी तरह

समझ लेने से इस मनः कल्पित संकीर्ण जगत् का स्वरूप स्पष्ट हो जायेगा आप कहते हैं कि हमें अधिक काम है और राम ने देखा भी है कि इस देश में लोग समय के लिये बड़ी आवाज उठाते हैं। यद्यपि राम को यह देखकर बहुत खेद होता है कि यहां लोग जीवन भर इसी प्रयत्न में रहते हैं कि समय कैसे व्यतीत किया जाये। फिर भी, कहते हैं कि हमें समय नहीं मिलता! आप स्वयं स्वेच्छा से समय को खदेड़ देते हैं और घड़ी के टकोरे गिन कर कठिनाई से समय पूरा करते हो। फिर भी आप कहते हैं कि हमें समय नहीं। यह कैसे संभव है? आप कर्म के वास्तविक स्वरूप को ही नहीं समझते। यही आपकी शिकायत का कारण है। वस्तुतः जो काम नहीं, उसे आप काम कहते हैं। विभिन्न लोग काम की विभिन्न व्याख्या करते हैं। यन्त्र विज्ञान और यन्त्र-वैज्ञानिक काम का जो स्वरूप बतलाते हैं, उसकी अपेक्षा हम उसका स्वरूप भिन्न ही बताते हैं। यदि हम किसी सतहपर चलते होते हैं, तो उनकी दृष्टि में यह काम कर्म नहीं, यदि किसी सतह पर ढेला गतिशील हो, तो वह कोई काम नहीं। जब आप किसी ऊंचे पर्वतपर चढ़ते हैं तभी, तभी यह कहा जा सकता है कि आप काम-कर्म करते हैं। जब आप सीधी लाइन में चले जाते हो, तब यह नहीं कहा जा सकता कि आप काम करते हैं। काम के स्वरूप-निर्णय की यह अनेक तरह की व्याख्या है।

—क्रमशः

(कहानी)

जो सीधे रास्ते छोड़कर चलेंगे

लेे०— डा० गोपाल प्रसाद 'वंशी'

अनन्तपुर नगरी का मंत्री एक बार घोड़े पर बैठ कर सैर को निकला। वह जिस तरफ से निकल जाता उसी तरफ से लोग झुक-झुककर उसको प्रणाम करते। जब वह चलते-चलते एक गांव के बाहर पहुंचा तो उसने देखा कि एक आदमी सड़क के किनारे छोटे-छोटे पर गहरे गढ्ढे खोद रहा था। मंत्री को देखकर उस आदमी ने न तो प्रणाम किया और न उठकर खड़ा ही हुआ। मंत्री ने उसे आश्चर्य से देखा और घोड़ा रोककर उससे बोलाः—

'ऐ आदमी! तुम सड़क के किनारे गढ्ढे क्यों खोद रहे हो? अगर इनमें किसी का पैर चला गया तो वह जरूर ही गिर जायेगा। क्या तुम्हें इस बात का कोई खयाल नहीं है?' यह सुनकर उस आदमी ने जिसका नाम मोती था, कहाः—

'भला इन गढ्ढों में कोई क्यों गिरने लगा? यह तो किनारे पर हैं। जो आदमी सीधी सड़क छोड़कर किनारों पर चलेगा वह जरूर इनमें गिरेगा। सीधे रास्ते जानेवालों को तो इनसे कोई खतरा हो ही नहीं सकता।'

मंत्री ने उसके उत्तर को सुना और तब और भी आश्चर्य से पूछाः—

'तुमारा नाम क्या है, क्या करते हो और इस समय कहां जा रहे हो?'

वह आदमी बोलाः—

'नाम मेरा मोती है पर मैं काम कुछ भी नहीं करता और जहां परम पिता परमेश्वर मुझे सुवह के समय ले जाता है वहीं दिनभर विता देता हूं।'

मंत्री को उसका ईश्वर पर ऐसा अटल विश्वास देखकर खुशी हुई और तब उसने उससे उसके घरवालों के बारे में पूछा तो मोती बोलाः—

'मेरा बाप जीवित है पर मैं उसके साथ नहीं रहता क्योंकि हर कोई संसार में अलग-अलग आये हैं तो भला साथ क्यों रहें?'

अब मंत्री ने उसे मूर्ख समझा और कहाः—

'तुम मेरे साथ चलो और मेरे यहां रहो तो तुम्हें मैं काम दे सकता हूं।'

'पर काम क्या होगा?' मोती ने प्रश्न किया।

'तुम मेरे बगीचे में माली बन जाओ और मेरे पेड़-पौधों को सींचो, फूलों को सजाओ। इसके बदले में तुम्हें रोटी-कपड़ा मिलेगा।' मोती यह सुनकर उसके पास आ गया और खुशी-खुशी उसने कहाः—

'मैं तैयार हूं,' और मंत्री के साथ चल दिया।

मंत्री उसे ले आया और अपने बड़े बाग पर उसे बागवान नियुक्त कर दिया। उस बाग की शोभा अपरूप थी। जगह-जगह फूलों के पेड़ महक रहे थे और उनके बीच पतली-पतली पक्की रविशें बनी हुई थीं जिन पर होकर मंत्री घूमा करता था। चारों तरफ घने ऊंचे ऊंचे पेड़ थे जिनकी छाया में हमेशा पक्षी कलरव किया करते। बीच-बीच में पानी के बड़े-

बड़े कुंड थे जो पक्के थे और जिनमें चारों तरफ से सीढ़ियां बनी हुयीं थीं। घाट भी पक्के थे और उनपर आम के पेड़ों की सघन छाया रहती थी। कुंड संगमरमर के बने थे और उनमें पानी बिल्लौर की तरह साफ भरा, रहता था। उस बाग को देखकर मोती बहुत खुश हुआ।

मंत्री जब आता तब वह उसे एक गुलदस्ता भेंट करता और इनाम पाता था।

मोती को पक्षियों की बोली आती थी। एक दिन जब वह बाग में काम कर रहा था तो उसने एक तरफ पक्षियों को लड़ते सुना।

एक चिड़ा और उसकी स्त्री चिड़िया एक घोंसला बनाकर एक मोरछली के पेड़ में आराम से रहते थे। एक दिन चिड़िया जब कहीं बाहर गयी थी तो एक नई चिड़िया उसी जगह आई और उस चिड़ा पर रीझ गई। चिड़ा भी उसके साथ चला और दोनों खूब बातें करने लगे और एक दूसरे के मित्र बन गयें और साथ-साथ झूमते हुयें और उड़ते हुयें बहुत दूर निकल गयें। जब चिड़िया लौटी तो उसने चिड़ा को घोंसले में नहीं पाया। वह उसे ढूंढ़ने लगी और जब वह कहीं नहीं मिला तो नाराज होकर पेड़ की एक ऊंची डाल पर बैठ गई और उसकी प्रतीक्षा करने लगी। उसने देखा कि बाग के दूसरे किनारे एक पेड़ पर बैठकर उसका चिड़ा एक नई चिड़िया के साथ खेल रहा है। वह गुस्से से थर-थर कांपने लग गई और सीधी उड़कर वहीं पहुंची। आपे के बाहर होकर उसने चिल्लाकर उस चिड़िया से कहा:—

'दूर हो जा चुड़ैल, मेरे पति को बहकाती है। चली जा वरना जान से मार डालूंगी।'

'मैं नहीं जाऊंगी,' उस चिड़िया ने कहा 'मैंने इस चिड़े को वर लिया है, अब तो मैं भी इसी के पास रहूंगी।'

'हरगिज नहीं,'' पहली चिड़िया झपटी और नई चिड़िया की गर्दन पकड़ ली। तब नई चिड़िया ने चिड़े की तरफ मदद की खातिर देखा और उससे पूछाः—

'क्या मैं चली जाऊं ?'

चिड़ा बोलाः—

'नहीं मत जाओ, तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है,' यह सुनकर पहली चिड़िया ने विरोध किया तो वह फिर उससे बोलाः—

'इसको छोड़ दो और तुम दोनों ही मेरी स्त्रियां बनकर रहो। कोई कहीं मत जाओ, दोनों ही मिलकर प्रेमपूर्वक रहो और मत लड़ो।'

पर पहली चिड़िया को यह मंजूर नहीं था। वह झगड़ने लगी, बड़ा झगड़ा हुआ और बहुत देर तक हुआ पर कोई किसी नतीजे पर नहीं पहुंच पाया। तब तीनों राजा के दरबार में फैसला कराने चले।

तीनों सुबह ही दरबार में पहुंच गये और तब तक वहां बैठे रहे जब तक दरबार खुला रहा और जब दरबार बन्द हो गया तो वे वहां से उड़कर चले आये। आदमियों की बोली तो उन्हें आती न थी इसलिये वे वहां केवल बैठकर ही चले आये। फिर दूसरे दिन भी वह वहां इसी तरह गये

और शाम को वापस लौट आयें। तीन दिन जब इसी तरह जाकर लौट आयें तो राजा को उनका नित्य आकर चला जाना कुछ अजीब सा लगा। पर वह चुप रहा। चौथे दिन जब वह तीनों फिर आकर वापस चले गये तो राजा ने मंत्री को बुलाकर पूछाः—

'यह चिड़िया और चिड़ा रोज यहां क्यों आते हैं और दिन भर दरबार में रहकर शाम को क्यों चले जाते हैं? बताओ ?'

मंत्री बोलाः—

"महाराज मुझे तो मालूम नहीं है।"

तब राजा ने कहा :—

"तुम मंत्री हो तुम्हें यह बात मालूम करनी चाहियें।"

"पर वह तो पक्षी हैं, भला मैं उनके मन की बात कैसे जान सकता हूँ ?"

मंत्री ने हाथ जोड़कर कहा।

"हम कुछ नहीं जानते, जल्दी कारण बतलाओ।"

मंत्री ने फिर हाथ जोड़े और वह बहुत घबराया तो राजा बोला :

"कल तक बतला दो, वरना तुम्हारा सिर काट दिया जायगा।" और राजा यह कहकर अपने महल को चला गया।

अब तो मंत्री गहरे सोच में पड़ गया। भला पक्षियों के मन की बात वह कैसे बतला सकता था? इसी सोच में जाकर वह अपने बाग में एक बेंच पर बैठ गया और गुम-

सुम होकर बिना हिले-डुले, बोले चाले बैठा रहा। उसकी ऐसी हालत देखकर मोती बागवान ने उससे पूछा :—

"हे महाराज! आज आप इतने चिंतित क्यों नजर आ रहे हैं ?"

मंत्री ने उसे कोई जवाब नहीं दिया और न उसका दिया हुआ गुलदस्ता लेकर सूँघा। मोती ने फिर कहा :—

"हे महाराज! आप कहिये क्या चिन्ता है, शायद मैं उसे हल कर सकूँ।"

मंत्री मन में हँसा कि भला यह मूर्ख मेरी चिन्ता कैसे दूर कर सकता है, पर फिर भी उसने झुँझला कर उससे सब बात कह सुनाई। सुनते ही मो ने झुककर प्रणाम किया और कहा :—

"बस इसीलियें इतनी चिन्ता कर रहे हैं ?" अब तो मंत्री ने गर्दन उठाई और उसे गौर से देखकर पूछा :— क्या मतलब ?

मोती ने कहा :—"मतलब यह कि इस बाग में एक चिड़ा और चिड़िया रहते हैं। एक नई चिड़िया ने आकर चिड़े को वर लिया है। पहली चिड़िया झगड़ा करती है कि उसके पति के साथ और कोई दूसरी स्त्री नहीं रह सकती। चिड़ा कहता है कि वह दोनों को रखना चाहता है। इसी झगड़े को तय कराने को वह तीनों रोज दरबार में जाते हैं, पर आदमियों की बोली तो उन्हें आती नहीं है जो वहां जाकर अर्ज कर सकें। इसीलियें रोज लौट आते हैं।"

मंत्री यह सुनकर बड़ा खुश हुआ और बोला :—

"पर तुझे यह सब कैसे मालूम हुआ ?"

"मुझे पक्षियों की बोली आती है," मोती ने उत्तर दिया। मंत्री ने कुछ सोचा और फिर पूछा :—

"पर अपना फैसला इनको कैसे सुनाया जायगा ?"

"उसकी तो तरकीब बड़ी आसान है," मोती बोला, "यदि दोनों स्त्रियां चिड़ा रखे तो उसकी तरफ दो उँगलियां उठा दो और यदि एक ही स्त्री वह रखे तो उसे एक उँगली दिखा दो। बस फिर वह चिड़िया और चिड़ा वापस चले जायँगे।"

मंत्री बहुत खुश हुआ और उसने उसे अपने गले से मोतियों का हार उतार कर इनाम में दिया। वह दूसरे दिन बहुत सवेरे ही राजा के महल गया और उसने राजा से सब बात कही पर यह नहीं बतलाया कि उसे यह सब बात उसके बागवान ने बतलाई थी। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ।

दरबार जुड़ा और सबने देखा कि रोज की तरह चिड़ियां फिर आकर हाजिर हो गईं। तब राजा ने मंत्री से कहा :— "इनका,, मुकदमा आज तै होना चाहिए, इसलिये इनकी शिकायत पूछो।"

मंत्री ने सभा के बीच में सब बातें फिर बतलाईं। तब राजा ने कहा।—

"इस चिड़े को एक ही स्त्री दी जाती है। पहली चिड़िया ही इसके साथ रहेगी, दूसरी नहीं।"

मंत्री ने यह सुनकर एक उँगली उन चिड़ियों की तरफ

उठा दी। उसकी उँगली जैसे ही उठी कि दूसरी चिड़िया फुर्र से उड़ गई और थोड़ी देर बाद वह चिड़ा और पहली चिड़िया साथ साथ उड़ गये। सारी सभा को बड़ा अचंभा हुआ और राजा बड़ा खुश हुआ। उसने मंत्री को बहुत इनाम दिया।

जब मंत्री घर लौटा तो बहुत खुश हुआ पर एक विचार उसके मन में रह-रह कर उठ रहा था। वह था उस बागवान के बारे में। मंत्री ने सोचा कि यह आदमी मामूली नहीं है बल्कि बड़ा बुद्धिमान है। कहीं इसकी असलियत राजा को मालूम पड़ गई तो फिर राजा इसी को मंत्री बना लेगा और मुझे हटा लेगा। कई दिन तक वह यह सब सोचता रहा और एक दिन उसने पक्का विचार बना लिया कि वह उस बागवान को मरवा डालेगा। क्योंकि तब वह रहेगा न कभी राजा के सामने जाकर अपनी बुद्धिमानी दिखा सकेगा। उसने सोचा :—

'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी,' बस उसने एक हुक्म जल्लाद के नाम लिखा कि जो आदमी यह हुक्मनामा लेकर उसके पास जाय उसे वह तलवार से काट डाले और फिर उस पत्र को बन्द करके मोती के हांथों में दे दिया और कहा:—

'मोती तुम बहुत बुद्धिमान आदमी हो, हम तुमसे बहुत खुश है। यह खत तुम फौरन जाकर जल्लाद को दे दो।'

मोती ने वह कागज ले लिया और जल्लाद के घर जाने लगा। पर जैसे ही घर के बाहर निकला कि उसे मंत्री के पुत्र ने बुलाया। जब वह लौटकर उसके पास आया तो वह बोला–

'ऐ बागवान ! जा और मेरे बाग में से एक बहुत अच्छा गजरा जल्दी तैयार करके ला ।'

मोती बोला :--'मुझे मंत्री जी ने जल्लाद को यह कागज देने को कहा है इसलिए पहले मैं यह खत दे आऊँ ।'

'नहीं पहले गजरा लाओ', मंत्री के लड़के ने कहा ।

'तो फिर यह खत ?' मोती ने उससे पूछा ।

'यह मैं पहुँचा दूँगा', वह लड़का बोला, 'और जबतक मैं लौट कर आऊं तबतक गजरा तैयार मिलना चाहिए' ।

'बहुत अच्छा', कहकर मोती ने वह खत उस लड़के को दे दिया और खुद बाग की तरफ मुड़ा ।

मंत्री का लड़का जब जल्लाद के पास पहुँचा तो पहले जल्लाद उसे देखकर बहुत डरा पर फिर जब उसने खत पढ़ा तो उसने उसे पकड़कर फांसी-घर के नीचे जमीन पर दे मारा और उस चिल्लाते, चीखते लड़के का सिर पैनी तलवार से काट डाला ।

उधर तो यह हुआ और इधर जब काफी देर हो गई और गजरा तैयार हो गया तो बागवान उसे लिए बैठा रहा । वह बैठा-बैठा उकता गया । उसने समझा मंत्री का पुत्र शायद सीधे महल में चला गया हो, इसलिए वह उस गजरे को लेकर सीधा महल की ओर चला । जब वह महल के पास पहुँचा तो मंत्री ने उसे देखा और बुलाकर पूछा :—

'तुमको तो मैंने जल्लाद के यहां भेजा था फिर तू यहां कैसे नजर आ रहा है ?'

मोती बोला :– 'हुजूर ! मैं जब आपका खत लेकर जल्लाद के यहां जा रहा था तो मुझे आपके पुत्र ने मुझसे गजरा फौरन बनाने को कहा। मैंने कहा कि पहले खत दे आऊं तो वह बोले कि नहीं पहले गजरा बनाओ। मैंने फिर कहा कि यह खत कैसे पहुंचेगा तो बोले कि खत को वह खुद पहुंचा देंगे। उन्होंने मुझसे यह खत ले लिया और खुद ही जल्लाद के यहां चले गए। पर अभी तक नहीं लौटे हैं। गजरा मैंने कब का तैयार कर लिया है। अब मैंने सोचा कि शायद सीधे महल में चले गए हों तो यह गजरा वहीं उनको दे आऊं।'

मंत्री यह सुनकर जमीन पर गिर गया और दहाड़ें मारकर रोने लगा। उसकी स्त्री आ गई और उसने अपने पति से रोने का कारण पूछा। जब मंत्री ने रो रोकर बतलाया तो वह भी जमीन पर गिर पड़ी और फिर दोनों पति पत्नी बेहोश हो गये। जब मोती को सारी बातें मालूम हुई तो वह अफसोस से बोला :—

'हे मंत्री जी महाराज ! जब आप मुझसे पहली बार मिले तब मैंने कहा था कि जो सीधे रास्ते को छोड़कर अगल-बगल चलेंगे वह ही गढ्ढों में गिरेंगे और आज भी ऐसा हुआ है। आपने सीधा रास्ता छोड़कर धोखे से मुझे मरवाना चाहा था पर आपका बेटा ही मारा गया।'

मोती मंत्री का महल छोड़कर चला गया और फिर कभी वहां वापस नहीं आया।

कहानी

एक कुटिल शर्त

ले०—गिरिजेश

उसके काले कजरारे नयनों की छवि हर किसी के लिए एक बाण का काम कर रही थी। रह रह कर उसके कटाक्षों का शिकार उसके इधर उधर चक्कर लगाया करता था।.... और वह थी कि एक मोटा सा झांसा मार कर आगे चल देती पूरे अस्पताल में सैनिक मरीजों की कराहटों के मध्य उसकी रस-स्निग्ध वाणी गूंजती, लम्बे ठहाके लगते। ......और ये ठहाके बरबस ही किसी को अपनी तरफ खींच लिया करते थे।

उन कजरारी आंखों का ही असर था कि पत्थर सेनापति जोगिन्द्रसिंह भी फिसल गया। नहीं तो अच्छीअच्छी के प्रस्तावों को उसने रोंदा था। कई अरमानों को कुचला था।

परन्तु अस्पताल की इस नर्स के आते ही उसके सारे शरीर में अजीब सी सिहरन रह-रह कर दौड़ जाया करती है। वह लड़ाई में एक छोटा सा आघात लेकर यहां मरहम पट्टी करवाने आया था। पर यहां एक गहरा घाव उसे हो गया। यहां से वह एक गहरी चोट खाकर जा रहा है। रूप लावण्य की इस संचारित शिला ने उसे एक उन्माद भरी दुनियां में ला पटका था। कल तक जिसे देश की सीमाओ की रक्षा का उन्माद था, आज वह एक नए ही उन्माद में खो गया था। वह कुछ फाइनल ही नहीं कर पा रहा है कि क्या करे, क्या न करे। बस उसके मस्तिष्क में तो रह-रह कर वे ही कजरारे नयन घूम उठते थे। और यह था कि उसके इशारों पर ही अपना पाया खो बैठा था।

वादे, और वादे करते रहना, तरह तरह के बहाने बनाकर पिंजड़े की कैद से निकल भागना तो उसके बायें हाथ का खेल था। रह रह कर जोगिन्दर के छकाने में उसे गजब का मजा आता था। वह उसके समीप आतीं, और समीप आती, छेड़तीं और उसका हाथ 'आगे बढ़ते ही वह एकदम नजरों से ओझल। .... और ये सब हरकतें रह रह कर जोगिन्दर में एक नयी आनन्दानुभूति को जन्म दिया करती थी। अकेला रहने पर वह घंटों उसको चुलबुलाहटों, वादों और उसकी प्रतिछाया के 'रिफलेक्शन्स' में खोया रहता, रह रह कर उसके बारे में अपनी धारणायें बनाता रहता, कल्पना की अलबेली दुनियां में खोया रहता।

*   *   *

एक ठण्डी हवा का झोंका मूँछों में जाकर एक पल के लिए सिहर सा उठा। उसने एकटक खिड़की की ओर ताकना आरम्भ किया। दूर दूर तक सांय सांय करता निविर अंधकार, रह रह कर पास के जंगलों में गूंजती सियारों की थोड़ी सी आवाजें, और उन्हीं में मिलता घायल सैनिकों का अन्तर्नाद एक पल के लिए वह भावुक-सा बन उठता। पर तभी उसके अंग अंग में बहती काम वासना उसको झकझोर कर रख दिया करती। एक तीक्ष्ण वासनात्मक अनुभूति उसके अंतर में जल रही थी। जब-जब उसे नर्स की कल्पना हो आती, इस अग्नि में एक घृताहुति गिर जाया करती। उसने एक बार और खिड़की के बाहर देखा और फिर करवट लेकर चुपचाप लेट गया।

तभी नर्स ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में दूध का भरा हुआ बड़ा सा गिलास था।

वह उसे निर्मिम दृष्टि से निहारता रहा। पर जब न तो वह बोली और न बैठी ही, तो उसने ही कहना शुरू किया- "मुझे कल सवेरे कैंप में चले जाना है। मोर्चे पर जाकर व्यवस्था भी देखनी है।"

फिर वह उसकी आंखों में ताकने लगा कि उसके चंचल नेत्रों में भी यह संवाद सुनकर जैसे वेदना की छाया घिर आयी है।

तभी उसने जरा सा मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा-- "सर! मुझसे यह बात छिपी नहीं है। आपके दर्द को मैं पहचानती हूं, पर मजबूरी खड़ी है सामने।"

वह भूखी आंखों से ताकने लगता है, फिर कुछ पल चुप रहकर पूछ उठता है—"याद आयेगी मेरी?"

सुनते ही वह जरा जोर से हंसी। उसका ठहाका पूरे कमरे में गूंज गया और बोली—"इसे मेरी वनिस्बत आप खुद ही अच्छी तरह से जानते हैं, सर।"

मेज पर दूध का गिलास रखकर वह तुरंत ही वापस जाने के लिए मुड़ गयी।

"एक बात सुन तो......?"

वह वहां रुक गयी।

"मेरे साथ ही चलो ना, तुम मेरे कैंप में ही। यहां रोगियों की चिल्लपों में धरा ही क्या है। उधर.......।"

"वहां क्या होगा.......?" सब कुछ जानते हुयें भी वह

पूछ उठी और अपने ही प्रश्न पर बिलक भी उठी।

"अरे ! नहीं जानती क्या ? क्या होगा वहां, आज तो आजाओ इधर। दस मिनट के लिये ही सही......।"

"उधर ही आऊंगी पर सोचती हूं सेनापति के कैंप में एक अदनी सी नर्स पहुंच ही कैसे सकती है।"

"खूब कही डार्लिंग ? अरे यार। जाने वाले दीवानों को राह भी मिल ही जाती है। तुम मरदाने वेश में चली आओ उधर। एकदम फौजी गस्ट बनकर।

सुनते ही किलक उठी। सेनापति उसे प्रसन्न देखकर जरा आश्वस्त हुआ। तभी वह ठोडी पर हाथ रखकर पूछ बैठी।"

"पर छुट्टी कैसे मिलेगी?"

"खूब कही, खूब कही यार तुमने भी। सेनापति की 'लवर' हो और तुम्हें ही छुट्टी नहीं। किसको शामत आई है जो तुम्हें रोकेगा। खैर ? मैं जाने से पहले तुम्हारी छुट्टी का सारा इन्तजाम किये देता हूं।'

'वाय वाय' को हल्की सी मुस्कान बिखेरती अपनी राह आगे बढ़ गई। इधर सेनापति एक अज्ञात परिकल्पना में बिस्तर पर ही लौटने लगा। आज उसे लग रहा था कि वहां उसने सीमाई मोर्चे से भी बड़ा एक मोर्चा जीत लिया है।

* * *

सांय सांय करती गहन तिमिराच्छादित नीरव रात में सेनापति के कक्ष का लैम्प रह रह कर टिमटिमा रहा था। जोगिन्दर कभी आराम कुर्सी पर पसर कर पनामा की पूर्णाहुति करता। कभी किसी फिल्मी गीत की पंक्तियां गुनगुनाता।

उसकी व्याकुलता आज बेहद बढ़ी हुई थी, रह-रह कर उसकी नजर कैंप के दरवाजे पर जाकर के टिक जाया करती थी।

वह आई, नहीं नहीं वह पुरुष के छद्मवेश में ही आई, एकदम नौजवान सैनिक की ड्रेस में। उसे देखते ही जोगिन्दर का रोम-रोम खिल उठा। 'वल्ले-वल्ले' वह होंठों में बुदबुदाया-

वह उसकी ओर भूखी निगाहों से ताकता रहा और वह भी आंख गड़ाए उसको देखती रही। गहनतम तिमिराच्छादित अंधकार और घिर आया। तभी वह बोल उठा—

"चलो विस्तर पर चलें। काफी रात यूं ही बीत गई है।'

वह चट से पास में पड़ी एक कुर्सी पर धम्म से बैठ गयी। वह दो पल उसको घूरता रहा फिर बोला—'कुछ चाहिए क्या।' ?

'और क्या इस दिन की याद में तुमसे कुछ भी न लूं. यह कैसे सम्भव है। एक शर्त है मेरी भी, पहले उसे पूरी करने का वचन दो।'

वह दो पल चुप रहा। फिर बोल उठा—'अरे, क्या मूर्खों की सी बातें हैं, यार। ख्वाम ख्वांह ही देर कर रही हो। जो तुम मांगोगी वही दूंगा। बोलो क्या चाहिए।

अरे! क्या मागूंगी तुमसे। जब तुम ही मिल गये हो, तो बाकी रह ही क्या गया है जहां में। हां, मेरी एक उत्सुकता है कि इतने बड़े भयानक युद्ध में इतनी जल्दी विजय किस प्रकार तुमने प्राप्त की थी।'

'अरे! विजय कोई हंसी खेल है। सत्तरह सौ साठ तरह के जौहर बतलाने पड़ते हैं।'

तभी वह बोल उठी—'सुनती हूं तुम कुछ ही दिनों बाद फिर से शत्रुओं पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हो। किस तैयारी से आक्रमण करोगे तुम।'

'तो तुम वार का प्लान जानना चाहती हो—'

वह दांतों से होठों को काटता हुआ बोला।

'जी हां, ठीक समझे आप'—उसने निष्पलक दृष्टि से उसको घूर कर देखते हुये कहा।

'हूं तो यह छलना है,-गुप्तचर है।' वह मन ही मन बुदबुदाया। फिर पूछ उठा--'पर डार्लिंग, तुमतो मस्त रहो। हमारे पास ऐश करो, तुम्हें युद्ध बुद्ध से क्या सरोकार है। क्या करोगी तुम प्लान जानकर ?'

'कुछ नहीं डार्लिंग, कुछ नहीं। इसी दम पर वादे करते थे। अरे! मुझे क्या तुम्हारी लड़ाई से। मैं तो वैसे ही देखना चाह रही थी। पर तुम तो बड़े वो निकले। ऐसे झूठों से क्या मोहब्बत करना'—रोने का नाटक करते हुये वह एक एक ही सांस में कह गयी।

उसे रोते देख वह कुछ पिघला। अपनी शंकापर उसे बड़ा ही गुस्सा आया। वह उठा और उसके बांह में भरकर आंसू पोछते हुयें बोला--"डार्लिंग! नाहक ही हठ नहीं किया करते, युद्ध का प्लान बतलाना मना है। नहीं तो मैं अभी बतला देता। चलो शयन कक्ष में चलें, अब देर मत करो।'

"मैं अभी शयन-कक्ष में नहीं चल सकती। अपनी इज्जत, शास्त्रों की आज्ञा आदि सबका ख्याल करना पड़ेगा ना। पर पुरुष के शयन कक्ष में प्रवेश कैसे करूंगी' ....और यह

कहते कहते उसके मतवाले नयनों में एक बड़ी अजीब सी चंचलता नाच उठी।

उसके चेहरे पर रह-रह कर कठोरता के भाव उभर रहे थे। उसके भीतर का दानव उमस रहा था। एक अजीब-सी व्यथा में वह घुटता ही जा रहा था। कुछ देर तक वह उसको और भूखी निगाहों से ताकता रहा फिर बोल उठा—"युद्ध का प्लान नहीं बतलाऊं तो तुम मेरे बिस्तर पर नहीं चलोगी ?"

उसने अपनी सैनिक वर्दी उतारी और मुसकरा कर सिर हिलाते हुए कहा—" कभी भी नहीं।"

वह उसे और अधिक घूरने लगा। उसका अर्द्धनग्न शरीर उसकी आंखों में कदम उठा। अंग-अंग से टपकते उसके यौवन को वह लोलुपता पूर्वक देखे ही जा रहा था। तभी वह एकाएक बोल उठा-" और सुनो। यदि अभी जबर्दस्ती करूँ तो।"

"मैं अभी एकदम चिल्लाऊँगी, और एक गौरवशाली सेनापति के लिए, आगे जो भी प्रतिक्रियाएँ होने लगेंगी, वह किसी मौत से कम नहीं अधिक ही होंगी।"

वह टहलने लगता है, एक बोतल में से थोड़ी-सी गिलास में डालकर वह गट से पी लेता है। एक हल्की-सी बदबू की लहर कैम्प के इस कोने से उस कोने तक बिखर जाती है उसकी मुखमुद्रा जरा और कठोर-सी हो जाती है। वह दो पल के लिए स्तब्ध-सा हो जाता है और फिर बोल उठता है—"लैम्प की बत्ती जरा-सी तेज करके उस द्वार को खोलो। उसमें एक छोटा-सा बैग है। उसमें एक नक्शा है,

उसे देखकर और तुरन्त ही बिस्तर पर चली आओ अन्यथा तुम्हारी अब खैर नहीं।"

उसने चट से बत्ती तेज की, ड्रार से कागज निकाला और अत्यधिक मनोयोग से वह नक्शा देखने लग गयी। तभी उसकी आवाज गूंजी—

"चलो जल्दी से।"

"आप लेटिये चलकर, मैं अभी बाथरूममें जा कर आती हूँ। बाथ-रूम किधर है, आपका।"

उसने एक उँगली से इशारा किया और जाकर धम से बिस्तर पर गिर गया। तभी नर्स मेज पर से एक नीला कागज उठा कर उस पर कुछ लिखने लगी। दो पल में ही उसने लिखना बन्द किया और बाथरूम में चली गयी। कोई दो पल भी नहीं गुजरे होंगे कि वह सेनापति की पुष्ट बाहों में कैद हो गयी।

+ +

रात्री का निविड़ अंधकार और बढ़ गया था। एक अजीब-सी निस्तब्धता रह-रह कर वातावरण में छाती जा रही थी। उस निविड़ रात्री में कभी कभी पलँग की चरर-मरर की आवाज आ जाती थी।.... ..और कभी दूर जंगलों में चिल्लाते सियारों की आवाजें। और मुर्गे की बांग के साथ ही उसके स्वर फूटे— "वह प्लान वाला कागज कहां है, छोकरी।"

"खो गया कहीं"—नर्स ने अपने होठों पर मुस्कराहट लाने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"देखती हो।" सेनापति ने उसे पिस्तौल बतलाते हुए कहा जो टंगी हुई थी— 'एक गोली में तुम्हारा नाम सदा-सदा के लिए दुनियां भूल ही जायगी। मजाक बन्द करो लाओ जल्दी से वह कागज।'

'तुम्हारी कसम डार्लिंग। वह वाकई कहीं पर खो गया है।'

और वह बौखला उठा। उसी क्षण धांय-धांय करके दो बार आवाज गुँजी। उसका शरीर भूमि पर निढाल-सा गिर पड़ा—'घिनोनी जासूस कहीं की।' बुदबुदाता हुआ वह पिस्तौल एक तरफ फेंक कर बाहर की तरफ आया।

तभी अचानक ही मेज पर पड़े नीले कागज पर उसकी आंख टिक गयी। उसने चट कागज उठाया और पढ़ने लगा। लिखा था—डार्लिंग।

कैद हो गई हूँ। सचमुच ही आज मेरा अन्त ही होगा यहां। आपने एक शर्त मेरी पूरी की, पर शर्त एक और शर्त, है मेरी। दो पल को शैय्यागामिनी रही हूँ मैं, सो अधिकार पूर्वक यह शर्त मनवाऊँगी।

आप मेरा शव देश भेज देना। क्योंकि एक पठान की हर्दिक तमन्ना रहती है—

मुसाफिर मा बजने सावन्दा,
पजन कजन बदा वतना अरमान कविना।

मेरा भी अरमान है कि अपने वतन में मेरी मिट्टी बने। सो आप मेरा शव मेरे देश भिजवा दें। आप अपनी क्षणसंगिनी की यह शर्त पूरी करेंगे। इसी उम्मीद के साथ खुदाहाफिज।

पढ़कर वह संकेत में आ गया। यह घटना आगे बढ़ेगी तो न मालूम क्या रूप ले। सो उसने चट से अपने दो तीन विश्वस्त सैनिकों को बुलाकर उसके उस शव को शत्रु पक्ष के सैनिकों को दे आने को कहा। देखते ही देखते सैनिक अपने सेनापति का आर्डर बजाने आगे बढ़ गये। धर उसके मस्तिष्क में तरह-तरह की बात आ रही थी, जा रही थी। वह धम्म से आराम कुर्सी में धस गया।

दो घंटे भी नहीं गुजरे होंगे कि उसे मिलिट्री हास्पिटल के इंचार्ज का एक गोपनीय दस्ती पत्र मिला। बड़ी बेताबी से उसे खोला। वह पढ़रहा था "कल जिस नर्स को छुट्टी देने के लिए आपने कहा था। उसने अपने देश को यह संवाद भेजा है कि मैं यहां उलझ गयी हूँ। अब तो मरना ही होगा। परन्तु मेरे शव का पोस्टमार्टम बहुत सावधानी से करवाना, शायद है मेरा बलिदान देश के लिए कुछ काम का हो सके।

अतः आप उस पर कड़ी नजर रखें और तुरन्त ही गिरफ्तार करवा दें। लगता है वह शत्रु पक्ष की कोई जासूस ही है।"

पढ़ते-पढ़ते जोगिन्द्र घबरा उठा। तुरन्त ही उसने कागज के टुकड़े टुकड़े कर दिये। तभी उसे उसके विश्वस्त सैनिक लौटते हुए नजर आयें, और वह चीख उठा—

"शर्त, एक और शर्त, एक बहुत महँगी शर्त पर उसकी बुदबुदाहट कोई भी नहीं समझ पायें। सब उसका मुखड़ा ताक रहे थे।

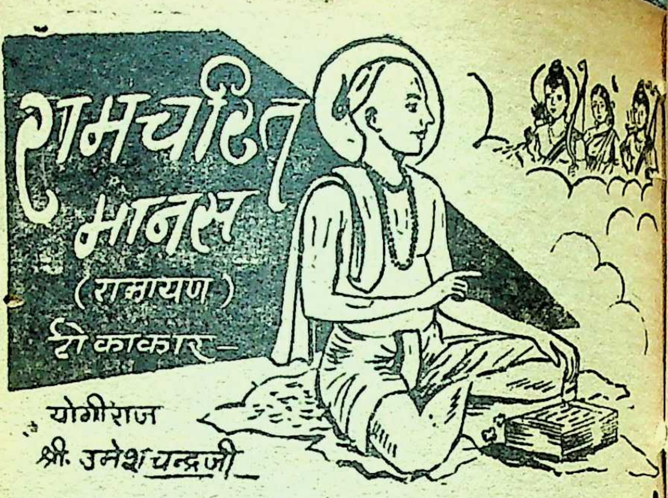

रामचरित मानस

(रामायण)

टीकाकार-
योगीराज
श्री उमेशचन्द्रजी

(गतांक से आगे)

रामचन्द्र मुखचन्द्र छवि, लोचन चारु चकोर,
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर।

रामचन्द्र के मुखचन्द्र की छबि (उज्ज्वल प्रभा) को लोगों के लोचन रूपी चकोर सादर पान कर रहे हैं-पी रहे हैं। अपरिमित प्रेम और आनन्द का रस उमड़ रहा है।

समय विलोकि वसिष्ठ बुलायें,
सादर शतानन्द मुनि आयें,
बेगि कुंवरि अब आनहु जाई,
चले मुदित मुनि आयसु पाई।

यथा समय समझकर वसिष्ठ ने शतानन्द को सादर बुलवाया और वे आ गये। वसिष्ठ ने उनसे कहा—अब राजकुमारी को शीघ्र ही ले आओ। यह आज्ञा पाकर शतानन्द सानन्द चल पड़े।

रानी सुनि उपरोहित बानी,
प्रमुदित सखिन समेत सयानी,
बिप्रबधू कुल-वृद्ध बुलाईं,
करि कुल रीति सुमंगल गाईं ।

बुद्धिमती रानी पुरोहित की बात सुनकर सखियों सहित आनंदित हो उठीं और विप्रवधुओं तथा कुलवृद्धाओं को बुलाकर कुलाचार संपन्न किया और मंगल-गीत गाये।

नारि वेश जे सुर वर वामा,
सकल सुभाय सुन्दरी श्यामा,
तिनहिं देखि सुख पावहिं नारी,
विन जाने प्रानहु ते प्यारी ।

देवताओं की जो श्रेष्ठ स्त्रियां मानवी स्त्रियों के वेश में थीं। और जो स्वभावतः सुंदरी और षोडशी हैं, उन्हें देखकर स्त्रियां परम प्रसन्न हो रही हैं। बिना परिचय के वह प्राण से भी अधिक प्रिय लग रहीं हैं।

बार बार सनमानहिं रानी,
उमा-रमा शारद सम जानी,
सीय सँवारि समाज बनाई,
मुदित मंडपहिं चलीं लिवाई ।

उन सब देवांगनाओं को उमा, रमा और शारदा के समान मानकर रानी ने उनका बारम्बार सम्मान किया तदुपरांत सीता को सर्व श्रृंगार से अलंकृत कर प्रसन्न मन मंडप की ओर ले चलीं।

चलि लाय सीतहिं सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी,
नव-सप्त साजे सुंदरी सब मत्त कुञ्जरगामिनी,
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं,
मंजीर नूपुर कलित कंकण ताल गति वर बाजहीं।

सब प्रकार के मांगलिक शृंगार सज्जित सजकर स्त्रियां सीता को सादर मंडप की ओर ले चलीं। वे स्त्रियां सोलहों शृंगार से सजी हुई हैं और मत्त हाथी की तरह मन्द गति से चल रहीं हैं। उनके गीतों की मनोरम ध्वनि को सुनकर ध्यानावस्थित मुनियों का भी ध्यान भंग हो जाता तथा कामदेव की कोकिलायें भी लज्जित हो उठती हैं। मंजीरा, नूपुर, कंकण आदि तालबद्ध गति से बज रहे हैं।

सोहति वनिता-वृन्द महँ, सहज सुहावन सीय,
छबि लालनागण मध्य जनु, सुषमा तिय कमनीय।

उस वनिता वृन्द कें बीच स्वभावतः सौंदर्यमयी सीता इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो छबि रूपी ललनाओं के मध्य साक्षात् सुषमा ही कमनीय नारी रूप धारण कर उपस्थित हो।

सिय सुन्दरता वरणि न जाई,
लघु मति, बहुत मनोहर ताई,
आवत दीख बरातिन सीता,
रूप राशि सब भांति पुनीता।

सीता के सौंदर्य का वर्णन करना संभव नहीं। मेरी बुद्धि बहुत थोड़ी है और मनोहरता अत्यधिक है। जब बारातियों ने देखा कि सौंदर्य-राशि और सब तरह से परम पावनी सीता

आ रही हैं, तब—

सबहिं मनहि मन किये प्रणामा,
देख राम भये पूरण कामा,
हरषे दशरथ सुतन समेता,
कहि न जाय उर आनँद जेता।

सबने मन ही मन उन्हें प्रणाम किया, राम उन्हें देखकर पूर्णकाम हो गयें—अर्थात् उनकी सभी आकांक्षाएं सफल हो गयीं। दशरथ भी पुत्रों सहित परम प्रसन्न हो उठे हृदय में इतना अधिक आनन्द भर गया है, जिसका वर्णन करना असंभव है।

सुर प्रणाम करि बर्षहिं फूला,
मुनि अशीष ध्वनि मंगल-मूला,
गान निशान कोलाहल भारी;
प्रेम प्रमोद नगर नर-नारी ।

देवगण प्रणाम करके पुष्प-वर्षा कर रहे हैं और मुनिवरों के मंगलकारी आशीर्वादों की ध्वनि गूंज रही है। गायन-वादन, डंकों का विशाल रव, जन कोलाहल विराट् रूप में हो रहा है। और नगर के नर नारी प्रेम और आनन्द में मग्न हो रहे हैं।

यहि विधि सीय मंडपहिं आई,
प्रमुदित शांति पढ़हिं मुनिराई,
तेहि अवसर कर विधि व्यवहारू,
दुहुं कुलगुरु सब कीन अचारू।

इस प्रकार सीता ने मंडप में पदार्पण किया और मुनिवर प्रसन्न भाव से शांति-पाठ कर रहे हैं। उस समय के

आचार व्यवहार-विधान को दोनों कुलगुरुओं ने विधिवत संपन्न किया।

आचार करि गुरु गौरि गणपति मुदित विप्र पुजावहीं;
सुर प्रकट पूजा लेहिं, देहिं आशीष, अति सुख पावहीं;
मधुपर्क, मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मनमहँ चहैं,
भरे कनक कोपर कलश सो तब लिये परिचारक रहैं।

कुलका सब आचार सविधि संपन्न करने के बाद ब्राह्मण प्रसन्न मन गौरी गणेश का पूजन करा रहे हैं। देवगण प्रत्यक्ष प्रकट होकर पूजा ग्रहण कर रहे और आशीर्वाद देकर सुख का अनुभव कर रहे हैं। मधुपर्क या जो भी मंगल द्रव्य जिस समय मुनिवर मन ही मन चाहते हैं, उस समय वह सब स्वर्ण-थालों और कलशों को लिए परिचारक प्रस्तुत रहते हैं।

कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सब सादर कियो,
एहि भांति देव पुजाय सीतहिं सुभग सिंहासन दियो,
सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै,
मन, बुद्धि वर वाणी अगोचर प्रकट कवि कैसे करै।

स्वयं सूर्यदेव प्रेमपूर्वक और आदरभाव से अपने कुलकी प्रथा बता देते हैं। इस प्रकार देवताओं का पूजन करा कर सीता को सुरम्य सिंहासन पर समासीन किया। सीता और राम का परस्पर एक दूसरे को देखना और आंतरिक प्रेम भाव को कोई देख नहीं पा रहा है। कवि भी इसे प्रकट करने में समर्थ नहीं। यह सब भाव उसके मन, बुद्धि और वाणी से अगोचर है।

होम समय तन धरि अनल, अति सुख आहुति लेहिं,
विप्र वेश धरि वेद सब, कहि विवाह विधि देहिं।

हवन के समय अग्निदेव प्रत्यक्ष शरीर धारण कर प्रसन्न मन आहुति ग्रहण कर लेते हैं और ब्राह्मण-वेश में प्रत्यक्ष होकर सभी वेद विवाह की विधि विधान बता देते हैं।

जनक पाट महिषी जग जानी,
सीय मातु किमि जाय बखानी,
सुयश, सुकृत, सुख, सुन्दरताई,
सब समेटि विधि रची बनाई।

जनक जी की राज महिषी पटरानी और सीताजी की माता विश्व विख्यात है, उनकी वर्णन सराहना कैसे की जा सकती है? सुयश, पुण्य भाव, सुख और सौंदर्य की समग्र राशि को एकत्र कर मानो विधाता ने उनकी मूर्ति के रचना सौष्ठव को बनाया है।

समय जानि मुनिवरन बुलायीं,
सुनत सुआसिनि सादर लायीं,
जनक वाम दिशि सोह सुनयना,
हिम-गिरि संग बनी जनु मयना।

यथा समय मुनिवरों ने उन्हें बुलाया। यह सुनकर सौभाग्यवती स्त्रियां उन्हें सादर ले चलीं। जनक के वाम पार्श्व में सुनयना, इस प्रकार सुशोभित हुयीं, जैसे हिमाचल के साथ मयना सुशोभित होती है।

कनक कलश मणि कोपर रूरे,
शुचि सुगन्ध मंगल जल पूरे,

निज कर मुदित राय अरु रानी,
धरे राम के आगे आनी ।

पवित्र सुगन्धमय मंगल जल से परिपूर्ण स्वर्ण कलश और हीरा तथा मणियों से भरे थाल राजा और रानी ने लाकर राम के सामने अपने हाथों से रखे ।

पढ़हिं वेद मुनि मंगल वाणी,
गगन सुमन झर अवसर जानी,
वर विलोकि दम्पति अनुरागे,
पाय पुनीत पखारन लागे ।

मुनि मंगल वाणी से ध्वनि कर रहे हैं और सुअवसर समझकर फूल बरसाने लगे । वर (दूल्हन) को देखकर राजा रानी प्रेम विभोर हो उठे और उनके पावन चरणों को पखारने लगे ।

लागे पखारन पांव पंकज प्रेम तन पुलकावली,
नभ नगर गान निशान जयध्वनि उमँगि जनु चहुँ दिसि चली,
जे पद सरोज मनोज अरि उर-सर सदैव विराजहीं,
जे सकृत सुमिरत विमलता मन सकल कलिमल भाजहीं ।

दम्पती रामके पाद-पंकज पखारने लगे । उनका मन प्रेम विभोर और तन पुलकित हो रहा है । गायन-वादन और नगाड़ों का नाद तथा जय जयकार की ध्वनि उमंगित होकर चारों ओर व्याप्त हो गई । जो चरण-सरोज कामरिपु-शंकरजीके हृदय-तड़ाग में सदैव विराजमान रहते हैं, जिनका स्मरण करते ही कलिकाल के सारे मलिन भाव भाग खड़े होते हैं और मन पवित्र बन जाता है,—

जे परसि मुनिवनिता लही गति, रही जो पातकमई,
मकरन्द जिनको शंभु सिर शुचिता अवधि सुर वर्णई;
करि मधुप मन मुनि-योगि जन जे सेय अभिमत गति लहैं,
ते पद पखारत भाग्यभाजन जनक जय-जय सब कहैं।

जिन चरणों का स्पर्श पाकर गौतम मुनि की पापमयी पत्नी को मुक्ति की गति प्राप्त हुई; जिनका मकरन्द-गंगाजल-शंकरजी के मस्तककी पवित्रता की सीमावधि है-जैसा कि देवगण कहते हैं, मुनि और योगी जन जिन चरण-कमलों में अपने मनको तल्लीनकर अभिमत-इच्छित गति प्राप्त करते हैं, उन्हीं चरणों को भाग्यभाजन जनक पखार रहे हैं-सर्वत्र जय-जयकार हो रही है।

वर कुंवरि करतल जोरि शाखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं,
भयो पाणिग्रहण विलोकि विधि सुर मनुज मुनि आनंद भरैं;
सुखमूल दूलह देखि दम्पति पुलक तन हुलस्यो हियो,
करि लोक-वेद-विधान कन्यादान नृपभूषण कियो।

दोनों कुलों के गुरु वर-वधूका हस्तमिलाप कर शाखोच्चार करने लगे। पाणि-ग्रहण संपन्न देखकर ब्रह्मा, देवगण, मानव, मुनि आदि आनंद-रस से सराबोर हो उठे। सुखमूल दूलह-रामको देखकर दम्पती-जनक और सुनयनाका हृदय उल्लास से भरगया और शरीर पुलकित हो उठा। राजशिरोमणि जनक ने लोक और वेदोक्त विधान से कन्या-दान किया।

हिमवन्त जिमि गिरिजा महेशहिं हरिहिं श्री सागर दई,
तिमि जनक रामहिं सिय समरपी विश्व कल कीरति नई,
क्यों करै विनय विदेह कियो विदेह मूरति सांवरी,

करि होम विधिवत गांठ जोरी होन लागीं भांवरी।

जैसे हिमाचलने शिवजीको पार्वती समर्पित की और सागरने विष्णु को लक्ष्मी समर्पित की, उसी तरह जनक ने राम को सीता समर्पित की और विश्व में नया कीर्ति स्तंभ स्थापित किया। विदेह-जनक-कैसे विनीत वचन सुनायें। उन श्याममूर्ति रामने उन्हें और भी अधिक विदेह बना दिया है। विधिवत् हवन करनेके बाद गठबन्धन किया गया और भावरें-अग्नि-परिक्रमा होने लगीं।

जय ध्वनि, बन्दी वेदध्वनि, मंगल गान निशान,
सुनि हरषहिं बरसहिं विबुध, सुरतरु सुमन सुजान।

जय-ध्वनि, बन्दीध्वनि और वेदध्वनि, मंगल गान नगाड़ों की ध्वनि सुनकर देवगण प्रसन्न होकर कल्पवृक्ष के फूलों की वर्षा कर रहे हैं।

कुंवरि कुंवर कल भांवरि देहीं,
नयन-लाभ सादर सब लेहीं,
जाय न बरणि मनोहर जोरी,
जो उपमा कछु कहौं, सो थोरी।

कुमार और कुमारी भांवरें घूम रहे हैं और सब लोग सादर नेत्रों का लाभ ले रहे हैं। उस मनोहर जोड़ी का वर्णन किया नहीं जा सकता। जो कोई भी उपमा खोज निकालता हूँ, वह अत्यन्त लघु और हीन प्रतीत होती अर्थात् वह जोड़ी अनुपम-अनन्वय है।

राम-सीय सुन्दर प्रति छांहीं,
जगमगात मणि-खंभन माहीं,

मनहुँ मदन-रति धरि बहु रूपा,
देखत राम-विवाह अनूपा।

सीता और राम की मनोहर प्रतिछाया मणि खम्भों में जगमगा रही हैं। यह दृश्य देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो कामदेव और रति अनेकशः रूप धारण कर सीता-रामके अनुपम विवाह को देख रहे हैं।

दरश लालसा सकुच न थोरी,
प्रकटत-दुरत बहोरि बहोरि,
भयें मगन सब देखनिहारे,
जनक समान अपान बिसारे।

दर्शन की लालसा उमंगित हो रही है, परन्तु संकोच भी कम नहीं है। विवाह विधान देखनेवाले सभी हर्ष-मग्न हो उठे हैं और जनक समान ही अपना सुध बुध खो बैठे हैं।

प्रमुदित मुनिन भांवरी फेरी,
नेग सहित सब रीति निबेरी,
राम सीय-सिर सेंदुर देहीं,
शोभा कहि न जाति विधि केहीं।

मुनियों ने आनन्द-मग्न भाव से भांवरें फेरीं—अग्नि परिक्रमा कराई और नेगसहित सारा विधि विधान संपन्न कराया। राम सीताके शिरपर सिन्दूर लगा रहे हैं। किसी तरह भी शोभा का वर्णन किया नहीं जा सकता।

अरुण पराग जलज भरि नीकें,
शशिहिं भूष अहि लोभ अमी के,
बहुरि वसिष्ठ दीन अनुशासन

वर-दुलहिनि बैठे एक आसन।

मानो कमल अरुणाभ पराग को भलीभांति भरकर सर्प अमृत के प्रलोभनमें चन्द्रमाको आभूषित कर रहा हो। इसके बाद मुनि वसिष्ठ का अनुशासन—आदेश पाकर वर और वधू एक आसन पर सुशोभित हुए।

बैठे वरासन राम-जानकि मुदित मन दशरथ भये,
तन पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नये,
भरि भुवन रहा उछाहु, राम विवाह भा सबही कहा,
केहि भांति वरणि सिरात रसना एक यह मंगल महा।

राम और सीता परमोत्तम वरासन पर आसीन हुए। यह देखकर दशरथ आनन्दित हो उठे और अपने सुकृत रूप कल्पवृक्ष को नवीन फलों से मण्डित देखकर उनका शरीर वारंबार पुलकित हो उठता है। सारा जगत् आनन्दमय उत्साह से परिपूर्ण हो रहा है और सबने कहा कि राम का विवाह हो गया। जिह्वा एक है और मंगलभाव अनन्त हैं, उसका वर्णन भला कैसे किया जा सकता है!

तब जनक पाय वसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै,
माण्डवी, श्रुति कीरति, उर्मिला-कुंवरि लई हँकारि कै,
कुशकेतु कन्या प्रथम जो गुण-शील-सुख शोभामयी,
सब रीति, प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहिं दये।

तदुपरान्त वसिष्ठ की आज्ञा से समग्र वैवाहिक शृंगार से सुसज्जित कर माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, और उर्मिला—इन तीनों राजकन्याओं को बुला लिया कुशध्वज की प्रथम कन्या माण्डवी-सर्वगुणसंपन्न, सुशीला, सुखमयी और सौन्दर्यराशि

है-का विवाह समग्र विधि-विधान के साथ प्रेमपूर्वक राजा ने भरत के साथ कर दिया।

जानकी लघु भगिनी सकल सुन्दरि शिरोमणि जानि कै,
सो तनय दीनी ब्याहि लखनहिं सकल विधि सनमानि कै,
जेहि नाम श्रुतकीरति सुलोचनि सुमखि सब गुण आगरी,
सो दई रिपुसूदनहिं भूपति रूप-शील उजागरी।

जानकी की छोटी बहन-उर्मिला-को सर्व सुन्दरियों की शिरोमणि समझकर हर तरह से सम्मान पूर्वक उसका विवाह लक्ष्मण के साथ कर दिया। जिनका नाम श्रुत-कीर्ति है, जिसके नेत्र सुन्दर हैं, मुख सुन्दर है, जो सर्व गुणालंकृत है और जो शील-सौन्दर्य से भासमान हो रही है, उस श्रुतकीर्ति नामकी कन्या का पाणि-ग्रहण शत्रुघ्न के साथ कर दिया।

अनुरूप वर-दुलहिन परस्पर लखि सकुच हिय हर्षहीं,
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुरगण वर्षहीं,
सब सुन्दरी सुन्दर वरन सह एक मण्डप राजहीं,
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं।

परस्पर एक-दूसरे को स्वानुरूप देखकर संकोच के साथ उनमें हार्दिक प्रसन्नता भी उमड़ रही है। सब लोग प्रसन्न होकर उनके सौन्दर्य की सराहना कर रहें हैं और देवता पुष्प बरसा रहें हैं। सब सुन्दरी वधुएं सुन्दर वरों के साथ एक मण्डप में सुशोभित हैं, मानो जीव के मनमें चारों अवस्थाएं-जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय स्वामियों-विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म सहित विराजमन हों।

मुदित अवधपति सकल सुत, वधुन समेत निहार,
जनु पाये महिपाल-मणि, क्रियन सहित फल चार।

पुत्रों को वधुओं सहित अवलोकन कर अवधराज दशरथ परमानन्द में मग्न हो रहें हैं। उन्होंने मानों क्रियाओं यज्ञ, श्रद्धा, योग और ज्ञान सहित चरों पदार्थ-अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष हस्तगत कर लिये हों।

जस रघुवीर ब्याह-विधि वरणी,
सकल कुंवर व्याहे तेहि करणी,
कहि न जाय कछु दायज भूरी,
रहा कनक मणि-मंडप पूरी।

राम के विवाह का जैसा विधि-विधान ऊपर बताया गया है, उसी विधि से सभी राजकुमारों का विवाह-संस्कार संपन्न किया गया। दहेज की विशाल राशिका वर्णन करना संभव नहीं। सारा स्वर्ण-मँडप उससे भरपूर हो रहा है।

कंबल वसन विचित्र पटोरे,
भांति-भांति बहु मोल न थोरे,
गजरथ तुरग दास अरु दासी,
धेनु अलंकृत कामदुहासी।

नाना प्रकार के विचित्र रंग-विरंगे बहुमूल्य कम्बल और वस्त्र, हाथी, घोड़े रथ, दास-दासी और कामधेनु-सी अलँकृत गायें, आदि—

वस्तु अनेक करिय किमि लेखा,

कहि न जाय जानहिं जिन देखा,
लोकपाल अवलोकि सिहाने,
लीन अवधपति सब सुख माने।

इतनी बहुसँख्यक और अधिक परिमाण में हैं. जिनका लेखा जोखा करना सँभव नहीं। इस सब वस्तुओं को देखकर लोकपाल भी अप्रतिभ हो उठे। अवधपति दशरथ ने सब प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया।

दीन जाचकनि जो जेहि भावा,
उबरा सो जनवासे आवा,
तब कर जोरि जनक मृदुबानी,
बोले सब बरात सनमानी।

अवधराज ने दहेज में मिली हुई वस्तुएँ याचकों में उनकी चाहके अनुसार बांट दीं। जो कुछ बच रहा, वह सब जनवास में लाया गया। तदनन्तर करबद्ध होकर जनक बिनीत भाव से समग्र बारात का स्वागत-सम्मान करते कहने लगे।

सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइ कै,
प्रमुदित महामुनिवृन्द वन्दे पूजि प्रेमि लड़ाइ कै,
सिर नाय, देव मनाय सब सन कहत कर सँपुट किये,
सुर साधु चाहत भाव-सिन्धु कि तोष-जल अंजलि दिये।

आदर, दान, विनय-बड़ाई आदि के द्वारा समस्त बारात

बारात का सम्मान कर आनन्द और प्रेमपूर्वक मुनिवृन्द की वन्दना की, सिर झुका कर देवों को मानकर हाथ जोड़ कर सब से कहने लगे—देव और साधु-महात्मा तो भाव के ही भूखे रहते हैं, शेष बाह्याचार का उनके लिये कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि समुद्र को एक अंजलि जल प्रदान करने का क्या महत्त्व ?

कर जोरि जनक बहोरि बन्धु समेत कोशलराय सों,
बोले मनोहर बयन सानि सनेह शील सुभाय सों,
सँबन्ध राजन् रावरे हम बड़े अब सब विधि भयें,
यहि राज साज समाज सेवक जानियें बिनु गथ लयें।

पुनः जनक बन्धुसमेत करबद्ध होकर कोशलराज दशरथ से स्वाभाविक शील और प्रेमसे सानकर मनोहर नम्र वाणी से कहने लगे—हे राजन्! आपके सम्बन्ध से आज हम सब तरह से बड़े हो गये। इस राज-साज और समाज-सहित हम दोनों को आप बिना दामका सेवक समझिये।

ए दारिका परिचायिका करि पालवी करुना नई,
अपराध क्षमिवो बोलि पठये बहुत हौं ढीठ्यौ कई,
पुनि भानुकूल भूषण सकल सम्मान निधि समधी किये,
कहि जाति नहिं विनती परस्पर प्रेम परिपूरन किये।

इन कन्याओं को परिचारिका समझकर नित्य नये दया-भाव से इनका पालन करना। मैंने बहुत धृष्टता की, जो

आप को बुला भेजा और यहां आने का कष्ट दिया, इसलिए आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें। जनक का यह विनीत भाव देखकर भानुकुल भूषण दशरथ ने समधी जनक को सब तरह से सम्मान प्रदान किया। उस समय के उस परस्पर विनय भाव का वर्णन करना असंभव है। दोनों के हृदय कलश प्रेम रस से परिपूर्ण होकर छलक रहे हैं।

वृन्दारकागण सुमन बरसहिं, राहु जनवासेहिं चले,
दुन्दुभी, जय-वेदध्वनि नभ-नगर कौतूहल भले,
तब सखी मंगल गान करन मुनीश आयसु पाइकै,
दूलह-दुलहिनिन सहित सुन्दरि चलीं कोहबर ल्याइकै।

राजा दशरथ जनवास की ओर चल पड़े। देवगण पुष्पों की वर्षा करने लगे, दुन्दुभी बज रही है, जयध्वनि और वेद-ध्वनि सर्वत्र गूँज रही है। आकाश और नगर में कौतूहल लक्षित हो रहा है - हलचल मची हुई। तब सखियां मुनिवर की आज्ञा पाकर मंगल गीत गातीं हुई वर वधुओं सहित कोहवर की ओर लिवा चलीं।

पुनि पुनि रामहिं चितव सिय, सकुचत मन सकुचैन,
हरत मनोहर मीन छबि, प्रेम-पिया से नैन।

सीता बारंबार राम की ओर देख रही हैं, मन संकुचित होकर भी संकुचित हो नहीं रहा है। उनके प्रेम पिपासु नेत्र मीन की शोभा को हरण कर रहे हैं। —क्रमशः

(एकांकी)

कपट शाप और अन्त

ले०— कृष्ण मुनि प्रभाकर

पात्र परिचय—

- परशुराम : ऋषि जमदग्नि के पुत्र, धनुर्विद्या के आचार्य
- वसुषेण : छद्मनामधारी कर्ण, कौरव पक्ष का एक महारथी, राधेय
- शल्य : भद्रराज, युद्ध में कर्ण के सारथि
- श्रीकृष्ण : पाण्डवों के मार्गदर्शक और परम हितैषी
- अर्जुन : (मौन पात्र) पृथापुत्र, श्रीकृष्ण के परम सखा

++ प्रथम दृश्य ++

(अरुणोदय। परशुराम का अपने आश्रम के सहन में बैठे धनुष की प्रत्यंचा को तन्मयता पूर्वक ठीक करना। मनमोहक कान्ति एवं रूपसौन्दर्य से युक्त युवक वसुषेण का आगमन।)

परशुराम : (वसुषेण की ओर दृष्टिनिक्षेप करते हुये, गम्भीर मुद्रा से) कौन ? किस उद्देश्य से आना हुआ भद्र ?

वसुषेण : (अभिवादनोपरान्त) धनुर्विद्या का स्नातक बनने की लालसा हृदय में संजोयें हूँ, आचार्य। मुझे शिष्य रूप में स्वीकार कीजियें।

परशुराम : सौम्य! क्या तुम्हें मेरे प्रण का परिज्ञान है कि मैं एकमात्र ब्राह्मणपुत्रों को ही अपनी रहस्य विद्या में निष्णात बनाने का निश्चय कियें हूँ, क्षत्रियकुल के मूलोच्छेद का मेरा दृढ़ संकल्प है ?

वसुषेण : (सनम्र (आर्य्य ! मैं आपकी प्रतिज्ञा से भलीभांति परिचित हूँ। निसन्देह आप विश्वास कीजिये, मैं ब्राह्मण-पुत्र ही हूँ। आपके असाधारण शौर्य व अपार कीर्ति से प्रभावित होकर ही लगन पूर्वक धनुविद्या के रहस्यों को आत्मसात करने और उसके शिक्षण को प्राप्त करने की कामना से चरणों में उपस्थित हुआ हूँ।

(परशुराम का निर्निमेष दृष्टि से विचारों में लीन हुये वसुषेण के मुख पर आये भावों को आंकना। फिर एकाएक वह कुछ गम्भीर और एकाग्र-से हो जाते हैं।)

परशुराम : क्या सत्य कहते हो कि तुम क्षत्रिय नहीं, ब्राह्मण हो ?

वसुषेण : (शिघ्रता पूर्वक) आर्य के समक्ष असत्य बोलने का साहस वसुषेण नहीं कर सकता, इसलिये असत्यता का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, देव ! तब भी यदि संशय हो, तो वसुषेण सहर्ष परीक्षा के लियें तत्पर है।

परशुराम : समय आने पर उसका भी उपयोग किया जायेगा। परन्तु, भद्र ! जानते हो कि शिष्यत्व स्वीकार से पूर्व तुम्हें कुछ संकल्प करने होंगे ! तभी तुम धनुर्विद्या के वास्तविक रहस्यों को मुझसे प्राप्त कर पाओगे। नहीं तो, उसकी आकांक्षा व्यर्थ है।

वसुषेण : विद्या प्राप्त करने के लियें वसुषेण को यदि अपना सर्वस्व भी त्यागना पड़े, तब भी वह कभी पीछे नहीं हटेगा, आर्य। आज्ञा कीजिये, वसुषेण प्रत्येक संकल्प के लिये तत्पर है। (और वह आचार्य की ओर इकटक देखने लगता है।)

परशुराम : (प्रसन्नता पूर्वक वसुषेण को कण्ठ से लगाते हुये) वत्स ! आज से तुम मेरे शिष्य हो मुझे अब पूर्ण विश्वास हो गया है कि मेरे सँकल्प की परम्परा को केवल तुम ही आगे बढ़ा सकते हो, क्यों कि तुम में दिव्य कान्ति व दृढ़ निश्चय की मात्रा भरपूर है। भन्ते ! मैं ने इक्कीस बार इस भरतखण्ड से क्षत्रियों का उन्मूलन किया, उनको जड़मूल से नष्ट कर डाला, परन्तु... किसी एकाध बीज के बचे रह जाने के कारण उनकी वंश-परम्परा पुनः आरम्भ हो गयी। अब मैं उस परम्परा में शेष बचे क्षत्रियों का अस्तित्व भी नष्ट कर डालना चाहता हूँ। वत्स ! प्रण करो कि तुम मेरे इस संकल्प को पूर्ण करोगे। तुम्हें धनुर्विद्या के गुप्त रहस्यों में निष्णात बना मैं तुम में संकल्प पूर्ण करने की शक्ति का संचार कर दूंगा। विद्या प्राप्त कर तुम्हें क्षत्रियों का नाश करना होगा।

वसुषेण : (नत-मस्तक) आर्य की आज्ञानुसार मैं संकल्प करता हूँ।

परशुराम : मुझे विश्वास है कि मेरे संकल्प को पूर्ण किये बिना तुम पीछे नहीं हटोगे।

(परशुराम का वसुषेण को प्रेम-विह्वल नेत्रों से देखते हुए आश्रम में चला जाना। वसुषेण द्वारा उनके मार्ग का अनुकरण करना। पट-परिवर्तन।)

×× द्वितीय दृश्य ××

(मध्यान्होपरान्त। आश्रम के पृष्ठभाग में वसुषेण की जंघा पर शीष रखे परशुराम का निद्रा से एकाएक हड़बड़ा कर उठना। वसुषेण का जानु थामे खड़ा हो जाना।)

परशुराम : (वसुषेण की जंघा से प्रवाहित रक्तधार की ओर देख कर, सविस्मय) वत्स ! यह क्या ?

वसुषेण : (निर्विकार भाव से) कुछ नहीं गुरुदेव !

परशुराम : कुछ नहीं क्या ? तुम्हारी जंघा से यह अनवरत रक्तधार क्यों प्रवाहित हो रही है ?

(वसुषेण घबरा कर जानु पर हुये घाव को दोनों हाथों से ढांपने का निरर्थक यत्न करता है, आचार्य अभी तक उसे अपलक दृष्टि से देखे जा रहे हैं। इससे यह कुछ हड़बड़ा-सा जाता है ।)

परशुराम : वसु ! दुराव का व्यर्थ यत्न मत करो शीघ्र बताओ यह रक्त क्यों निकल रहा है ?

वसुषेण : कुछ नहीं, गुरुदेव । चिन्ता की कोई बात नहीं है । भौंरे के काटने से साधारण सा घाव हो गया है । उसी से ....

परशुराम : साधारण ? इसे तुम साधारण घाव कहते हो ? जिससे इतना रक्त प्रवाहित हुआ कि मेरे सारे वस्त्र भी आरक्त हो गये ! भूमि भी सिक्त हो गयी !! भौंरा जब काटने लगा था, तब तुमने उसे उड़ाया क्यों नहीं ?

वसुषेण : उसे उड़ाने का अपनी ओर से भरसक यत्न किया था गुरुदेव मैं ने, परन्तु.........

परशुराम : परन्तु क्या ? मुझे उठा लेते !

वसुषेण : (नत-मस्तक) गुरुदेव की निद्रा भँग करना मुझे उस समय उचित न जान पड़ा !

परशुराम : (गम्भीरता पूर्वक) जानु-प्रदेश में भौंरे

ने इतना गहरा घाव कर दिया, फिर भी तुम विचलित नहीं हुये ! और नहीं मेरी निद्रा ही भँग होने दी !! आश्चर्य है !! इतना गम्भीर साहस ब्राह्मण में होना अशक्य है। (विचाराधीनता से कुछ क्षण मौन) वसु ! सत्य बोलो, तुम कौन हो ? (अकस्मात् इस अप्रस्तुत वाक्य को सुन कर वसुषेण का चौंकना। परन्तु पुनः शीघ्र ही सम्भल जाना)

वसुषेण : (मुस्कराने का प्रयत्न करते हुये)

परशुराम : (उत्तेजित वाणी से) मेरा तात्पर्य तुम्हारे वर्ण से है, वसु ! शिष्यत्व से नहीं। तुम ब्राह्मण नहीं प्रतीत होते मुझे। वसु ! सत्य बोलो, नहीं तो.... नहीं तो... (वसुषेण का कांपते हुये किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से पृथ्वी की ओर ताकना और परशुराम का अपलक नेत्रों से उसे घूरना।)

परशुराम : (सक्रोध) वसु ! मैं पूछ रहा हूँ तुम्हारा वर्ण क्या है ? बोलते क्यों नहीं ? ठीक-ठीक उत्तर दो। सत्यता को छिपाने की चेष्टा मत करो।

वसुषेण : (सहमते हुये प्रकम्पित स्वर में) ब्राह्मण..

परशुराम : (उत्तेजित वाणी से) सत्य बोलो, वसु! जानते हो मेरे सम्मुख मिथ्या बोलने का परिणाम क्या होगा ?.........जीवन से निराशा.........!

(आचार्य के यह शब्द सुनते ही वसुषेण के गात्र शिथिल पड़ जाते हैं।)

वसुषेण : (रुद्ध कण्ठ से) सारथि अधिरथपुत्र वसुषेण !

परशुराम : (रोषाक्त नेत्रों से वसुषेण को घूरते हुये) मिथ्यावादी ! विश्वासघाती !! कपट पूर्वक मुझसे विद्या प्राप्त करके तुम ने मेरे प्रण को तोड़ा है... उसे छिन्न-भि

किया है। (क्रोधातिरेकता से कम्पायमान होना) इसका दण्ड तुम्हें भारी मात्रा में भोगना पड़ेगा। तुमने मुझसे छल किया है; द्रोह किया है........

(वसुषेण का परशुराम के चरणों में गिरकर पाद पकड़े याचना करना।)

वसुषेण : (प्रकम्पित स्वर में) गुरुदेव! क्षमा करें, क्षमा करें। अर्जुन के प्रति प्रतिहिंसा के भाव से प्रेरित होकर ही आपके पास धनुर्विद्या के गुप्त रहस्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से आया था। परन्तु आप शुद्ध ब्राह्मणपुत्र के अतिरिक्त अन्य किसी को भी शिक्षण नही देते, इसलिये विवशतावश मुझे आपके सम्मुख असत्य भाषण करना पड़ा। इस अपराध के लिये मैं वास्तव में अन्तर्मन से लज्जित हूँ, देव।

परशुराम : (क्षुब्ध मन से) वैराग्नि को शांत करने के लिये तुमने मुझसे छल किया है। मैंने तुम पर विश्वास कर, अपने संकल्प की पूर्ति-हेतु धनुर्विद्या के समस्त गुप्त रहस्यों को तुम्हें लगन पूर्वक सिखाया। परन्तु आज मेरे आशा-प्रासाद को तुमने निराशा के खण्डहर में परिवर्तित करके रख दिया। (क्षुभितातिरेकता) मैंने तुम्हें उतना प्यार किया, जितना एक पिता भी अपनी रक्तसिचित संतान से नहीं कर सकता। तुम्हारे इस कपट व्यवहार की मैंने स्वप्न में भी कभी कल्पना न की थी। क्षमा करना ब्राह्मणों का कुलधर्म है। परन्तु वसु, तुम्हारा अपराध मुझे क्षमा के योग्य नहीं प्रतीत होता। तुमने मेरे हृदय को भारी आघात पहुँचाया है, मेरी

समस्त आशा मिट्टी में मिला कर रख दी है। मैं तुम्हें ऐसी स्थिति में कभी भी क्षमा नहीं कर सकता।

वसुषेण : (याचकवाणी से) गुरुदेव ! मैं मानता हूँ, अनजाने में मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया है। क्षमा करें गुरुदेव ! मैं अपने किये पर वास्तव में लज्जित हूं।

परशुराम : (सकोप) तुम्हारे अपराध के गुरुत्व को देखकर तुम्हे कदापि क्षमा प्रदान नहीं की जा सकती, वसु! अपने से छल करनेवाले को परशुराम कभी क्षमा नहीं कर सकता।...... तुमने मुझसे कपट किया है, घोर कपट! अक्षम्य अपराध !!...... जाओ, मेरी आंखों से दूर हो जाओ। और सुनो, मैं तुम्हे शापित करता हूँ कि मेरे सिखाये धनुर्विद्या के समस्त गुप्त रहस्य अन्त समय में तुम्हारा साथ न देंगे। युद्धभूमि में तुम्हारा रथचक्र उस समय पृथ्वी में धंसने लगेगा, तुम मेरे द्वारा सिखलायी सारी विद्या भूल जाओगे और तब.......और तब.......

वसुषेण : बस-बस गुरुदेव ! क्षमा कीजियें, इतना ही पर्याप्त है.. ....इतना ही पर्याप्त है......

परशुराम : (सक्रोध) नहीं, वसु ! जितना भारी अपराध तुमने किया है, उसके अनुसार यह दण्ड तो बहुत ही नगण्य है...अपर्याप्त है।

वसुषेण : (विह्वल स्वर से) गुरुदेव.... (तीव्र चीत्कार के साथ रुदन करता है।)

(परशुराम के हृदय में अकस्मात् वसुषेण के प्रति आत्मिक स्नेह उत्पन्न हो जाने से उसके नेत्रों का भर आना और स्वर शिथिल पड़ जाना। वसुषेण रुदन करते हुये उनके चरणों में लोटपोट हो जाता है। परशुराम अपने पैरों को जोर से झटक कर छुड़वा लेते हैं और आश्रम की ओर तीव्र गति से चल पड़ते हैं। वसुषेण सिसकता है। पट-परिवर्तन।

तृतीय दृश्य

(कुरुक्षेत्र में महाभारत के सत्रहवें दिवस का अपराह्न। कौरव-सेनापति कर्ण का पाण्डव-पक्ष से युद्ध करते अपने सारथि मद्रराज शल्य से वार्तालाप।)

कर्ण : (दूरस्थ अर्जुन के रथ की ओर इंगित करते हुयें) शल्य ! वह देखो अर्जुन। तीव्रता से मेरा रथ उधर ले चलो।

शल्य : सूतपुत्र ! तुम पृथापुत्र अर्जुन से प्रतिस्पर्धा करोगे ? (आश्चर्य पूर्वक कर्ण के मुख की ओर देखता है।) जिसके समक्ष बड़े-बड़े समर्थ योद्धा भी नहीं टिक सकते ! (अट्टहास करता है।) व्यर्थ ही अपनी मृत्यु का आवाहन क्यों करते हो ? कहां तुम और कहां गांडीवधारी नरपुंगव अर्जुन ! इन गीदड़-भभकियों को अपने तक ही सीमित रखो, दासीपुत्र ! अर्जुन को पराजित करने की स्वप्न में भी कल्पना मत करो।

(कर्ण का हतोत्साहित हुये अवाक् दूरस्थ कौरव-पक्ष का संहार करते अर्जुन को निर्निमेष दृष्टि से द्वेष पूर्वक ताकना।)

कर्ण : (कुछ क्षण मौन रहकर दीन वाणी से) मद्रराज! मेरा रथ अर्जुन के समक्ष तुरन्त ले चलो। आज मैं उसे रणभूमि में चिरनिद्रित करके ही रहूँगा। देखो, मान भी जाओ........

शल्य : मिथ्याभिमानी! तुम और अर्जुन को चिरनिद्रित करोगे? (सव्यंग्य-हास्य) उसके समक्ष एक क्षण भी टिक सकने की क्षमता तुममें नहीं है। नहीं मानते, तो लो बुलाओ अपनी मौत को.. ...मुझे क्या!....

(शल्य द्वारा रथ को अर्जुन के रथ के समक्ष ले जाकर रोकना। कर्ण और अर्जुन का परस्पर घमासान युद्ध। कर्ण द्वारा अर्जुन पर सकोप सर्पमुखास्त्र का प्रयोग करना, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की युक्ति से उसका एकदम निष्फल जाना। अर्जुन का क्रुद्ध अवस्था में कर्ण पर अनवरत शरवृष्टि करना। भयाक्रान्त होकर कर्ण का बचाव के लिये भरसक यत्न करने पर भी असफल होना। तत्काल ही परशुराम द्वारा दिये हुये शाप के प्रभाव से कर्ण के रथचक्र का पृथ्वी में धंसना।)

कर्ण : (रथचक्र को पृथ्वी में धंसते देखकर भय से अभिभूत हुये, व्यग्रता पूर्वक) शल्य! रथचक्र पृथ्वी में धंस रहा है, उसे शीघ्र बाहर निकालो। जल्दी करो।

शल्य : मैंने केवल सारथि का कार्य करने के लिये ही वचन दिया हुआ है, कर्ण। यह कार्य मेरा नहीं है। इसे मैं नहीं करूंगा।

(कर्ण का हतोत्साहित हो रथ से कूद कर चक्र निकालने का यत्न करना। तत्काल ही श्रीकृष्ण का संकेत पाते अर्जुन

का कर्ण पर अनवरत तीव्रता से शरवृष्टि आरम्भ कर देना। कर्ण का रथचक्र निकालते हुये परशुराम से सीखे गुप्त मन्त्रास्त्रों को प्रयोग करने की चेष्टा करना, परन्तु शाप के प्रभाव से अस्त्रप्रयुक्ति की क्रिया को भूल जाना।)

कर्ण : (अर्जुन को देखते हुये) अर्जुन ! तुम योद्धा हो। तुम्हारी वीरता का मैं सत्कार करता हूँ। परन्तु इस प्रकार निहत्थे शत्रु पर आक्रमण करना अपनी वीरता को कलंकित करना है। यह धर्मयुद्ध नहीं है, पृथापुत्र ! जब तक मैं अपना रथचक्र पृथ्वी से निकाल न लूं, तब तक तुम रुक जाओ। यही युद्धनीति भी कहती है।

श्री कृष्ण : (कर्ण से उत्तेजित वाणी में) अपने समस्त जीवन में अब तक तुमने कभी धर्माचरण भी किया है, कर्ण ? जो आज धर्म की डींग हांक रहे हो, उसकी दुहाई दे रहे हो ? संकट पड़ने पर ही क्या धर्माधर्म का विचार उत्पन्न हुआ करता है ? मैं पूछता हूँ कि तुम्हारी अनुमति से दुर्योधन ने जो कुचक्र रचे क्या वह सभी धर्मानुकूल ही थे ? भीमसेन को विष देकर समाप्त कर देने का कुचक्र, पाण्डवों को लाक्षागृह में ठहरा कर सदा के लिये उन्हें मिटा देने की योजना, धर्मराज युधिष्ठिर को दूत के बहाने फंसाकर हराने का षड्यंत्र—सबमें तुम्हारी ही अनुमति थी। क्या वह सारे कार्य धर्मानुसार ही थे ? कर्ण ! स्मरण करो भरी सभा में द्रोपदी के अपमान के समय कहे गये अपने उन शब्दों को कि— "द्रौपदी, उपस्थित व्यक्तियों में से किसी एक को अपना नया

पति चुन लो"—एक सतीसाध्वी के प्रति इस प्रकार अभद्र व्यवहार करने वाले व्यक्ति के मुख से आज धर्म की बातें निकलना महान् आश्चर्य है ! जब तुम सबने कपट व अन्याय पूर्वक वीरपुत्र अभिमन्यु को घेर कर नृशंसता पूर्वक उसका वध किया था, उस समय तुम्हारी यह विचार शक्ति कहां लुप्त हो गयी थी ? कर्ण ! तुम्हारे किन किन पातकों का स्मरण कराऊँ ! संगति के प्रभाव से तुमने इतने घोर से घोर पातक किये, जो गिने भी नहीं जा सकते । अब संकट को समक्ष उपस्थित देखकर धर्म की बड़ी दुहाई दे रहे हो !

कर्ण : (क्षुभित स्वर से, स्वगत) श्रीकृष्ण का कथन सर्वथा उचित है । विपत्ति पड़ने पर ही मनुष्य को धर्माधर्म का विचार उत्पन्न होता है । दुर्योधन की ओर से पाण्डवों का समाप्त कर देने के लिये जितने भी षडयंत्र रचे गये, उनमें मेरी भी सहमति थी: यह मैं स्वीकारता हूँ । मुझे इसका अत्यन्त पश्चात्ताप है कि उस समय दुर्योधन की संगति के प्रभाव से मेरे हृदय में कुछ भी उचितानुचित का विचार न आया । मैं पापी हूँ, जीवन भर मैंने पाप किये हैं । अर्जुन के प्रति वैरभाव से प्रेरित होकर मैंने गुरुदेव परशुराम से कपट पूर्वक धनुर्विद्या प्राप्त की, जिसका प्रत्यक्ष परिणाम आज मैं स्वयं देख और अनुभव कर रहा हूँ । मेरी मृत्यु अब मुझे स्वयं निकट ही दीख रही है । (फिर अर्जुन की ओर उन्मुख हो कर प्रत्यक्ष रूप से) वीरवर अर्जुन ! मुझे अपार हर्ष है कि मेरा अंत तुम्हारे जैसे योद्धा के हाथों हो रहा है । जिस पर भगवान श्रीकृष्ण की अपार कृपा है । (अर्जुन का विचारलीनता से श्रीकृष्ण की ओर ताकना । वह कुछ दुविधाग्रस्त

सा प्रतीत होता है और भगवान श्रीकृष्ण से मार्गदर्शन चाहता है।)

श्रीकृष्ण : (अर्जुन को विचारों में तल्लीन देखकर) पार्थ! विचार करने का अब अवसर नहीं है। इसी अवसर को उपयुक्त समझ लगाओ तीर निशाने पर। तनिक भी विलम्ब करना अब उचित नहीं है। यही अवसर है.... पार्थ !....

(अर्जुन द्वारा गांडीव पर विषबुझा शर चढ़ाकर तीव्रता से कर्ण पर छोड़ना। कर्ण का शर लगते ही परशुराम की विद्या का रिक्त अस्त्र थामे पृथ्वी पर गिर पड़ना। कुछ क्षण सूर्य के भीषण अंधकार का साम्राज्य। रथ हांकते भगवान श्रीकृष्ण का गंभीर स्वर चारों ओर गूंजता है — "इस नश्वर संसार में कोई भी सदा के लिए नहीं आता। किसी न किसी दिन यहां से सबको घर, परिवार, धनसम्पत्ति और इन समस्त सांसारिक अनित्य वस्तुओं का परित्याग कर विदाई लेनी ही पड़ती है। यह क्षोभ का विषय है कि प्रत्येक प्राणी संसार के इस अमिट नियम से परिचित होते हुये भी जीवितावस्था में इसका विचार नहीं करता और न ही इस सम्बन्ध में कुछ सोचना ही उपयुक्त समझता है।"

वाक्य की समाप्ति पर धनंजय के गांडीव की भीषण टंकार सुनाई पड़ती है। महाभारत के सत्रहवें दिवस का सूर्यास्त होता है और घना अन्धकार छाने लगता है। घना अन्धकार कौरवों की पराजय का घना अन्धकार !!)

× × धीरे धीरे परदा गिरता है × ×

रामतीर्थ ब्राम्ही तेल विषयक लोकमत

(१)

मैंने ब्राम्ही हेयर ऑईल की केवल दो शीशी व्यवहार में लीं उससे मुझे पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ। ब्राह्मी हेअर आईल ने मेरे दिल और दिमाग दोनों को आकर्षित कर लिया है अपने जीवन में मैंने अनेकों तेलों और इत्रों का व्यवहार किया है। और मुझे यह लिखते हुए बड़ी प्रसन्नता है कि आपका रामतीर्थ ब्राह्मी हेअर आईल सबसे सिरे पर है।

गिरधारीलाल जी अग्रवाल
एम. बी. बी. एस. एच.
मु. पो. परासिया (म. प्र.)

(२)

श्री रामतीर्थ ब्राह्मी तेल दिमाग नूँ ताकत दैंदा है। इह बाला नूँ काले, मुलायम अते चमकीले बनांवदा है। इह दी मीठी मीठी खुशबू साडे दिला नूँ खुश करदी है। श्री रामतीर्थ योगाश्रम दा नां ही इस बात दी गारन्टी है कि इह पवित्तर अते शुद्ध चीजा द्वारा वैज्ञानिक तरीके नाल बनाया गिआ है।

मैं इस दी जिन्ही तारीफ करा उन्ही थोडी है।

शकुन्तला सुगन्ध, नारनौल

मैं तेरा जीवन दाता

कवि—रूपनाथ यादव 'अश्क'

मैं तेरा जीवन दाता हूं ।
कोटि कोटि वर्षों से तुझको,
जीना मैं सीखला जाता हूं ॥
तू है जीवन, मैं हूँ दाता ।
तू है श्रोता मैं हूँ वक्ता,
तू है गीत लेखनी मैं हूं,
तू है वाद्य मंत्र साकार,
नयें नयें सुर भर दूं उसमें
शब्दों की शृंखला दे तुझको,
नई भावना भर जाता ।
मैं तेरा जीवन दाता ॥
तू है जल, और मैं हूँ विद्युत ;
तू है फूल, महक मैं उसमें ।
पत्ते के नस नस में रस हूँ,
बूँद बूँद रस भर अंगों में,
मैं नव यौवन ले आता ।
मैं तेरा जीवन दाता ॥
छितिजमय, जलमय, अग्निवायुमय,
आकार मे नील गगन हूँ
तुझमें मै हूँ, मुझमें तू है,
तुझको नई चेतना देने,
नया जागरण तुझमें भरने,
समय समय पर नया रूप ले,
लाल जबाहर बन जाता,
मैं तेरा जीवन दाता ॥

112554
पुस्तकालय
112554

* धर्मोपदेश *

(प्रथम खण्ड)

स्वामी रामतीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी तथा चुने हुये धार्मिक (वेदान्त परक) प्रवचनों का संग्रह। मानव जन्म सार्थक कर नित्य सुख प्राप्त करने के लिये अतीव सुन्दर सुयोग्य रूप से स्वामी रामतीर्थ जी ने देश--विदेशों में पर्यटन करके अपने स्वानुभव को बताया है। हरेक घरमें नित्य पठन पाठनकर सुख--शांति का लाभ लीजिये।

पृष्ठ संख्या ३८४ कीमत ४-०० डाक व्यय अलग।

द्विरंगी आसन चित्रपट

बहुरंगी आसन चित्रपट में नित्य उपयोगी १७ आसनों का संग्रह है। रोगों से मुक्त होकर सदा सुदृढ़ शरीर बनाए रखने के लिए आकर्षक चित्रपट अवश्य मंगवाइये। आसनों के नाम तथा लाभ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं। डाक व्यय के साथ ३-०० रु०.

प्राप्तिस्थान

श्री. रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

मानव जीवन सफल बनाइये

नेति, धोति, वस्ति, नवली, त्राटक, कपालभाति, नाना प्रकार के आसन, विभिन्न प्रकार के प्राणायाम, कुण्डलिनी शक्ति जागृतिके लिये महत्वनीय अनेक मुद्राएँ, धारणा, ध्यान समाधि का अभ्यास गत ४० बरसों से श्री रामतीर्थ योगाश्रम में चालू है। सत्य सुख का स्रोत, जन्म-मृत्यु का निजी अनुभव, आपके मूल स्वरूप सत् चित् आनन्द प्राप्त करने के लियें सुलभ उपाय बताया जाता है। अष्टांग योग तथा राजयोग के निरंतर अभ्यास की व्यवस्था रखी गई है। व्यवहार एवं परमार्थ का अज्ञान यह दुःख का कारण तथा आत्मज्ञान सुख का भंडार है। केवल आहार, भय, मैथुन तथा निद्रा से सदा सुख आपको नहीं प्राप्त होगा। अर्थात् दुःखों के साथ सुख का अनुभव मिलेगा। आपका वर्तमान काल ही सुख-शांति प्राप्त करने का अमूल्य समय है। अष्टांग योग अथवा राजयोग से यथेच्छ लाभ उठाने के लियें रामतीर्थ योगाश्रम का आश्रय लीजिये। सुवर्ण संधि का लाभ उठाइये।

78348

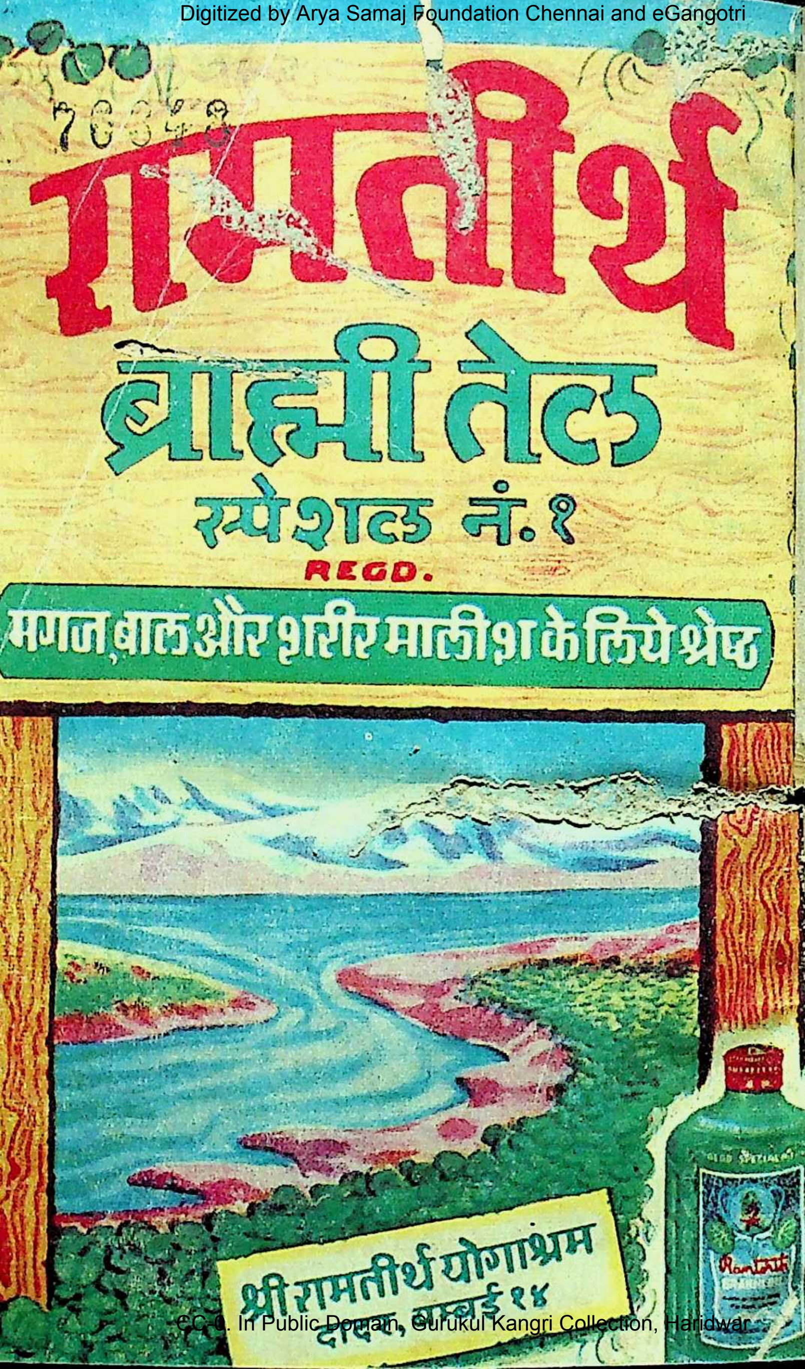
रामतीर्थ
ब्राह्मी तेल
स्पेशल नं. १
REGD.
मगज, बाल और शरीर मालीश के लिये श्रेष्ठ
श्री रामतीर्थ योगाश्रम
दादर, बम्बई १४
Ramtirth

[illegible] Library

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
Any Other

Compiled
1999-2000